आप्तवाणी

श्रेणी–२

दादा भगवान प्ररूपित

आप्तवाणी

श्रेणी-2

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरू बहन अमीन

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
दादा भगवान विज्ञान फाउन्डेशन
1, वरूण अपार्टमेन्ट, 37, श्रीमाणी सोसायटी,
नवरंगपुरा पुलिस स्टेशन के सामने,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद - 380009,
Gujarat, India.
फोन : +91 93 2866 1166 / 93 2866 1177

प्रथम संस्करण : 3000, प्रतियाँ, अगस्त, 2014
रीप्रिन्ट : अक्तूबर, 2021

भाव मूल्य : 'परम विनय' और 'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 200 रुपए

मुद्रक : अंबा मल्टीप्रिन्ट
B-99, इलेक्ट्रॉनिक्स GIDC,
क-6 रोड, सेक्टर-25,
गांधीनगर-382044.
फोन : (079) 39830341

ISBN/eISBN : 978-93-82128-62-5

Printed in India

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो ऊवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद

'दादा भगवान' कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्‌भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षुजनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्‌भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट।

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, वे तो 'ए.एम.पटेल' हैं। हम ज्ञानीपुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

समर्पण

आधि, व्याधि और उपाधि के इस कलियुगी त्रिविध ताप में भयंकर रूप से तपते हुए, एकमात्र आत्मसमाधि सुख के तृषातुरों की परम तृप्ति के लिए प्रकट परमात्मा स्वरूप स्थित वात्सल्य मूर्ति दादा भगवान के जगत् कल्याण यज्ञ में आहुति स्वरूप परम ऋणीय भाव से समर्पित।

आप्त विज्ञापन

हे सुज्ञजन ! तेरा ही 'स्वरूप' आज मैं तेरे कर कमलों में आ रहा हूँ ! कृपा करके उसका परम विनय करना ताकि तू अपने आप, अपने ही 'स्व' के परम विनय में रहकर स्व-सुखवाली, पराधीन नहीं ऐसी, स्वतंत्र आप्तता का अनुभव करेगा !

यही है सनातन आप्तता, अलौकिक पुरुष की आप्तवाणी की !

यही है सनातन धर्म, अलौकिक आप्तता का !

जय सच्चिदानंद

संपादकीय

जिनके एक-एक शब्द से अनंतकाल का संसार रोग निर्मूल हो जाता है, जिनकी एक दहाड़ से जिज्ञासुओं का अनंतकाल से सुषुप्त आत्मा जागृत हो जाता है, जिनके सुचरणों में काल, कर्म और माया थम जाते हैं, ऐसे परम पूज्य दादाश्री की प्रकट सरस्वती स्वरूप वाणी का इस ग्रंथ में संकलन किया गया है। वीतराग वाणी जिससे कि 'इस प्रकृति का पारायण पूरा हुआ, तो हो गया वीतराग।' 'आप्त' वाणी होने के कारण इसे किसी भी काल में कोई भी काट नहीं सकता, क्योंकि इस स्याद्वाद वाणी से किसी भी जीव के प्रमाण को ठेस नहीं पहुँचती। प्रकट परमात्मा को स्पर्श करके निकली हुई सहज कल्याणमयी वाणी जो कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव या प्रसंगों के निमित्ताधीन निकली होती है। ऐसी वाणी का संकलन करना अति-अति कठिन है। नम्रभाव से ज्ञानग्रंथ के संकलन की क्षतियों के लिए क्षमा चाहती हूँ।

यह ज्ञान ग्रंथ या धर्म ग्रंथ नहीं है, लेकिन विज्ञान ग्रंथ है। इसमें आंतरिक विज्ञान का, वीतराग विज्ञान का ज्ञानार्क जो कि परम पूज्य दादाश्री के श्रीमुख से प्रकट हुआ है, उसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है, बाकी, 'जैसा है वैसा' तो उनके प्रत्यक्ष दर्शन से ही प्राप्त हो, ऐसा है। फिर भी, जब तक जगत् के किसी भी कोने में उनकी उपस्थिति होगी, तब तक यह ज्ञानग्रंथ यथार्थ फल देगा। यह ज्ञानग्रंथ तत्व चिंतकों, विचारकों तथा सच्चे जिज्ञासुओं के लिए अत्यंत उपयोगी रहेगा। भाषा सादी और एकदम सरल होने के कारण सामान्य जन को भी वह पूरा-पूरा फल दे सकेगी। सुज्ञ पाठक गहराई से इस महान ग्रंथ का चिंतन-मनन करेंगे तो अवश्य समकित प्राप्त करेंगे। उसके लिए सर्व शासन रक्षक देवी देवता सहायक हों, यही प्रार्थना।

- डॉ. नीरू बहन अमीन के

जय सच्चिदानंद

उपोद्घात

❑ जगत् के स्वरूप के बारे में जो भ्रांति अनादिकाल से चली आई है, उसका 'स्पष्टीकरण' केवल सर्वज्ञ के अलावा अन्य कोई दे सके, ऐसा नहीं है। ऐसे सर्वज्ञ पुरुष हज़ारों साल पहले स्पष्टीकरण दे गए हैं। आज इस विकराल कलिकाल में वह सत्य आवृत हो गया है। उसका स्पष्टीकरण तो जो सर्वज्ञ हो चुके हों, वे ही आज फिर से दे सकते हैं, और आज इस महादूषमकाल में, कलियुग जहाँ संपूर्णतया सोलह कलाओं तक पहुँचकर चोटी पर विराजमान है, वहाँ अनंतकाल का आश्चर्य प्रकट हुआ है, और वह है सर्वज्ञ श्री 'दादा भगवान' का प्राकट्य! उन्होंने पूरे जगत् का स्वरूप, उत्पत्ति, व्यय और संचालन के बारे में तरह-तरह के तर्क-वितर्कों का संपूर्ण समाधान एक ही वाक्य में दे दिया है! और वह है,

'द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ' – **दादाश्री।**

'जगत् स्वयं पहेली है, बनाने वाला कोई बाप भी नहीं जन्मा है।' पूरा जगत् किस तरह चल रहा है? साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्सेस मात्र से जगत् चल रहा है। अब ये वैज्ञानिक सांयोगिक प्रमाण, वे स्थूलतम से सूक्ष्मतम तक के हैं, उन सभी का जो ज्ञाता-द्रष्टा हो, वही सर्वज्ञ है, और वही 'पुरुष' जगत् स्वरूप का यथार्थ दर्शन करवा सकते हैं। इसीलिए तो नरसिंह महेता ने भी गाया है कि,

सृष्टि मंडाण छे सर्व एणी पेरे जोगी जोगेश्वरा को'क जाणे...

यहाँ नरसिंह भगत का 'योगी-योगेश्वरा' कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मयोगी या आत्मयोगेश्वर, कोई विरला ही सृष्टि की रचना को समझ सकता है! अन्य देहयोगी, वचनयोगी या मनोयोगियों में से कोई भी नहीं जान सकता। ये दो वाक्य, जो कि दादाश्री के श्रीमुख से अंग्रेज़ी में निकले हैं, वे ईश्वर को जगत्कर्ता स्थान से पदच्युत कर देते हैं! और जो भ्रांति ईश्वर पर, भगवान पर, अल्लाह पर या गॉड पर गलत आरोप लगाती है, वह पूरी ही खत्म कर देते हैं!

❑ इस जगत् की अधिकरण क्रिया क्या है? 'मैं चंदूलाल हूँ' इस

आरोपित दर्शन से, ज्ञान से या चारित्र्य से जो भी कुछ किया जाता है उससे जगत् की अधिकरण क्रिया हो रही है। उस प्रतिष्ठा से नए प्रतिष्ठित आत्मा का निर्माण होता है, जो इस जगत् का अधिष्ठान है। सर्वप्रथम प्रतिष्ठित आत्मा का स्पष्ट विवरण देने वाले दादाश्री ही हैं!

❑ धर्म किसे कहते हैं? परिणामित हो वह धर्म। जिस धर्म से क्रोध-मान-माया-लोभ कम होते-होते निर्मूल हो जाएँ, वही धर्म कहलाता है। सारी ज़िंदगी देवदर्शन, प्रवचन, सामायिक, प्रतिक्रमण करने के बावजूद भी यदि एक भी दोष कम नहीं हो, तो उसे धर्म कैसे कहा जा सकता है?

धर्म दो प्रकार के हैं : एक रिलेटिव धर्म और दूसरा रियल धर्म। रिलेटिव धर्म यानी मन के धर्म, वाणी के धर्म और देह के धर्म, और दूसरा है रियल धर्म यानी स्वधर्म, आत्मधर्म। जैन, वैष्णव, मुस्लिम, क्रिश्चियन वगैरह सभी रिलेटिव धर्म कहलाते हैं और रियल धर्म, आत्मधर्म तो सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' के हृदय में ही समाया हुआ होता है, वह और कहीं भी नहीं हो सकता।

श्रीमद् राजचंद्र कह गए हैं, 'और कुछ भी मत ढूँढ, मात्र एक सत्पुरुष को ढूँढकर उनके चरणों में सर्वभाव अर्पण करके बरतता जा। फिर यदि मोक्ष नहीं मिले तो मेरे पास से ले जाना।'

जिनका आत्मा संपूर्ण प्रकाशमान हुआ है, वहीं पर आत्मधर्म प्राप्त हो सकता है। और सभी धर्म हैं ज़रूर, लेकिन वे प्राकृत धर्म कहलाते हैं। जप, तप, त्याग, व्याख्यान, प्रवचन और सामायिक-प्रतिक्रमण वगैरह सभी प्राकृत धर्म हैं। जहाँ पर संपूर्ण आत्मधर्म है, वहाँ पर केवल ज्ञान क्रिया और केवल दर्शन क्रिया है, जिसका परिणाम केवल चारित्र है!

''धर्म पूरा-पूरा परिणामित हो तब 'खुद' ही धर्म स्वरूप हो जाता है!''

- दादाश्री

रियल धर्म वह साइन्टिफिक वस्तु है, गप्पबाज़ी नहीं है। यह तो विज्ञान है। सामान्य समझ से धर्म के विषय में जो समझ में आता है, वह दरअसल, धर्म नहीं कहलाता।

'वस्तु स्व-गुणधर्म में परिणामित हो, वह धर्म है।' – **दादाश्री**

साइन्टिफिक तरीके से यदि समझें तो जैसे सोना सोने के गुणधर्म में हो, तभी वह सोना कहलाता है, पीतल को बफिंग करके रखें तो वह कभी भी सोना नहीं बन सकता। वैसे ही वस्तु जब खुद के स्व-गुणधर्म में, स्व-स्वभाव में परिणामित होती है, तब वह वस्तु उसके गुणधर्म में है, वस्तु खुद के धर्म में है, ऐसा कहा जा सकता है और वस्तु उसके गुणधर्म से कभी भी भिन्न नहीं हो सकती। आत्मा जब खुद के गुणधर्म में ही रहे, खुद के स्वभाव में आकर स्व-स्वभाव में ही स्थित हो जाए, तब आत्मा आत्मधर्म में है, ऐसा कहा जा सकता है। इसे ही सर्वज्ञ भगवान ने स्वधर्म, आत्मधर्म, रियल धर्म कहा है।

आत्मधर्म कैफ़ उतारता है और प्राकृतधर्म कैफ़ चढ़ाता है। खुद जब संपूर्ण निष्पक्षपाती हो जाता है, अरे! खुद अपने आप के लिए भी संपूर्ण निष्पक्षपाती होकर, खुद के एक-एक सूक्ष्मतम तक के दोष भी देख सके, वही रियल धर्म में आया हुआ माना जाएगा।

❑ संसार-स्वरूप क्या है? संसार रिलेटिव वस्तु है, टेम्परेरी है। संसार पूरा दगा है, इसमें कोई अपना सगा नहीं है। तमाम शास्त्रों में से करीब तीन चौथाई शास्त्र संसार में से वैराग्य उत्पन्न हो, उसके लिए हैं, जबकि 'ज्ञानी पुरुष' के चार ही वाक्यों में अच्छे-अच्छों को संसार पर से वैराग्य आ जाता है!

'अरे भाई! तूने अरथी देखी है या नहीं देखी? अरथी निकालते हैं, तब बीवी-बच्चे, मोटर-बंगला, जितना-जितना कमाया वह सभी ज़ब्ती में चला जाता है या नहीं? और साथ में क्या आता है? तो वह यह कि जितनी धाराएँ लागू की हैं, 420 की, 344 की, वे सभी साथ में आती हैं और नए सिरे से कमाई करके भाई को उधार चुकाना बाकी रहता है।' – **दादाश्री**

दूसरा, दादाश्री बहुत ही हँसी-मज़ाक में लेकिन गहन ज्ञानगर्भित तरीके से वैराग्य उत्पन्न करवाए, वैसी बातें करते हैं :

दादाश्री : बहन, कितने बच्चे हैं?

प्रश्नकर्ता : चार।

दादाश्री : तो पिछले जन्म के बच्चे अभी कहाँ हैं?

❑ संसार शब्द, वह मूल संसरण पर से आया हुआ शब्द है। जो निरंतर परिवर्तनशील है–उसका नाम संसार, और हर एक जीव इस संसरण मार्ग पर निरंतर चलता ही रहता है और ऊर्ध्वता को प्राप्त करता है। सिर्फ मनुष्यगति में आने के बाद ही जीव के लिए वक्रगति भी उत्पन्न होती है, क्योंकि यहाँ मनुष्यजन्म में कर्ताभाव, असीमित मन, बुद्धि उत्पन्न होते हैं और साथ ही यह भी लाभ है कि इस मनुष्यगति में से जीव मुक्तिधाम को, मोक्ष को प्राप्त करता है।

संसार का वर्णन 'ज्ञानी पुरुष' सादी, सुंदर भाषा में सिमिली देकर समझाते हैं : संसार, वह घोड़े जैसा है। संसारी लोग घोड़े पर बैठे हुए सवार जैसे हैं। घोड़े को दुर्बल जानकर सवार घोड़े पर साँस रोककर सिर पर घास का भार लेकर बैठता है, लेकिन अंत में भार तो घोड़े पर ही जाता है। उसी तरह आप सब भी अपना बोझा संसाररूपी घोड़े पर ही डालो, दिमाग़ पर बोझा किसलिए? और कुल मिलाकर भार तो घोड़े पर ही जाता है।

❑ संसारवृक्ष को निर्मूल करने में सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही समर्थ हैं। वह किस तरह? अन्य किसी चीज़ को किंचित्मात्र भी स्पर्श किए बिना 'ज्ञानी पुरुष' संसारवृक्ष की मूसला जड़ में चुटकी भर दवाई डाल देते हैं, जिससे अपने आप वृक्ष सूखकर निर्मूल हो जाता है।

❑ सत्देव कौन? मंदिर या जिनालय में मूर्ति के रूप में रखे हुए हैं, वे? ना। वे तो 'भीतर वाले' यानी कि अंदर विराजमान परमात्मा ही सत्देव हैं। जब तक वह परमात्मादर्शन नहीं हो जाते, तब तक मंदिर या जिनालय के सत्देव को मान्य रखना चाहिए।

'सद्गुरु' कौन? अंतिम गुरु वे 'ज्ञानी पुरुष', लेकिन जब तक वे नहीं मिलें, तब तक जो अपने से ऊँची स्टेज पर हों, भले ही दो डिग्री ऊँचे हों, तो वे गुरु।

'सत्धर्म' यानी क्या? 'ज्ञानी पुरुष' की आज्ञा, वही सत्धर्म, 'ज्ञानी

पुरुष' के श्रीमुख से निकले हुए वचन वे ही सत्धर्म हैं, वर्ना शास्त्र, वे सत्धर्म नहीं हैं। वे रिलेटिव धर्म हैं, रियल नहीं हैं। लेकिन जब तक सच्चे मोती नहीं मिलें, तब तक कल्चर्ड मोती पहनने तो पड़ेंगे न?

सत्देव, सत्गुरु और सत्धर्म से मोक्ष प्राप्त होता है!

❑ मूर्तिधर्म क्या है? अमूर्तधर्म क्या है?

'दादाश्री' ने मूर्तिधर्म और अमूर्तधर्म का सुंदर विवरण दिया है। कुछ लोग नासमझी से भगवान की मूर्ति को नहीं मानते, धिक्कारते हैं। तो वह भयंकर भूल है। मूर्ति की उपासना कब तक करनी चाहिए कि जब तक अमूर्तधर्म को, आत्मधर्म को, आत्मज्ञान को प्राप्त नहीं किया हो। जब तक आत्मा नहीं जाना है, तब तक चित्त की एकाग्रता के लिए कुछ साधन तो चाहिए न? और जहाँ हज़ारों लोगों ने वीतराग भगवानों की स्थापना की है, उस मूर्ति का तिरस्कार कैसे कर सकते हैं? और जो यथार्थ आत्मज्ञानी हैं वे तो तिरस्कार तो क्या लेकिन प्राप्त मन-वचन-काया से किसी भी जीव को किंचित्मात्र भी दुःख नहीं देते।

❑ मूर्तिधर्म, यह तो भारत का साइन्स है, कुछ स्टैन्डर्ड तक के लोगों के लिए धर्म का अवलंबन है। उस अवलंबन को गलत कैसे कहा जा सकता है? और जिसे मूर्तिधर्म की ज़रूरत नहीं हो, जो उस स्टैन्डर्ड से आगे निकल चुके हों, संपूर्ण आत्मज्ञानी, सर्व कलुषित भावों से रहित होकर आगे निकल चुके हों और केवल अमूर्त की ही रमणता में हों, वे मूर्तिधर्म को नहीं स्वीकारें तो वह योग्य है। लेकिन ऐसी दशा में जो पहुँच चुके हों, उनके लिए जगत् में स्वीकार या अस्वीकार करने जैसा कुछ रहता ही नहीं, वे तो सबके व्यू पोइन्ट को समझकर, किसी का भी प्रमाण किंचित्मात्र आहत न हो इस प्रकार से बरतते हैं!

मूर्ति में यथार्थ प्राण प्रतिष्ठा कौन कर सकता है? सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही यथार्थ प्राण प्रतिष्ठा कर सकते हैं।

❑ मोक्ष में जाने के दो मार्ग हैं : एक क्रमिक मार्ग और दूसरा अक्रम मार्ग। यह अक्रम मार्ग, वह अपवाद मार्ग है, आश्चर्य मार्ग है! हर दस

लाख साल में एकाध बार प्रकट होता है! ऋषभदेव भगवान से सिर्फ भरत चक्रवर्ती को जो प्राप्त हुआ था, वही अक्रम मार्ग आज दादाश्री के पास प्रकट हुआ है और वह अनेक पुण्यशालियों को प्राप्त हुआ है! अक्रम किसलिए? वह इसलिए कि जिस आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए चक्रवर्ती जैसों को भी राजपाट, बीवी-बच्चे छोड़कर जंगल में सद्‌गुरु के पीछे चले जाना पड़ता था, फिर भी उनका ठिकाना पड़ेगा या नहीं उसका कोई ठिकाना नहीं होता था, यह मार्ग ऐसे कष्टदायी क्रमिक मार्ग जैसा नहीं है। यह तो अक्रम! जो 'ज्ञानी पुरुष' की कृपादृष्टि प्राप्त कर जाए, वह एक घंटे में ही संपूर्ण आत्मज्ञान प्राप्त कर जाता है! और फिर ग्रहण-त्याग के लिए स्थान ही नहीं रहता। ग्रहण-त्याग रूपी साधन, साध्य वस्तु अर्थात् आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद गैरज़रूरी बन जाते हैं। फिर तो ज्ञानी की आज्ञा, वही धर्म और आज्ञा, वही तप। भगवान महावीर ने भी ऐसा ही कहा है, 'आणाए धम्मो आणाए तप्पो।' और अक्रम मार्ग की आज्ञाएँ सिर्फ पाँच ही हैं और वे ऐसी हैं कि जो संसार व्यवहार में ज़रा सी भी बाधक नहीं होतीं। बल्कि संसार व्यवहार में भी अत्यंत उपयोगी 'मास्टर की' समान बन जाती है, इस जगत् का ऐसा कोई ताला नहीं कि जो इससे न खुल सके!

हालांकि यह ऐसी बात है जो मानने में नहीं आए। इसके बावजूद, यह हकीकत है, इसमें दो मत नहीं क्योंकि अनेक पुण्यशालियों ने दादाश्री से घंटे भर में ही 'स्वरूप ज्ञान' की प्राप्ति की है और अनुभव किया है। उसके बाद एक क्षण के लिए भी 'खुद के स्वरूप' का लक्ष्य नहीं चूकते, ऐसा अनेकों का अनुभव है। 'दिस इज़ द ओन्ली कैश बैंक इन द वर्ल्ड!' इस बैंक में जिसे जो चेक डालना हो, वह डाल सकता है, लेकिन 'संपूर्ण' रूप से समझकर डाले। क्योंकि अंत में मोक्ष प्राप्ति तक का चेक पास हो सके, ऐसा है। फिर कहीं संसार की विनाशी चीज़ में मूर्छित होकर अविनाशी पद खो न बैठे!

❑ 'प्रकृति' विज्ञान पूरा-पूरा कौन समझा सकता है? जो खुद 'पुरुष' हो चुके हों और प्रकृति को निरंतर भिन्न देखते हों, वे ही यथार्थ प्रकृति-विज्ञान समझ सकते हैं, समझा सकते हैं। बाकी, जो खुद ही प्रकृति

स्वरूप हों, 'पुरुष' नहीं हुए हों, वे प्रकृति को किस तरह पहचान सकते हैं? और किस तरह समझा सकते हैं? इसमें तो 'ज्ञानी पुरुष' का ही काम है। अनंत आत्माएँ हैं और अनंत प्रकृतियाँ हैं। जब तक खुद पुरुष नहीं हो जाता, तब तक वह प्रकृति के नचाने से नाचता है।

क्रमिक मार्ग में प्रकृति क्रमशः सहज होती जाती है, तब अंत में सहज आत्मा प्राप्त होता है। जबकि अक्रम मार्ग में 'ज्ञानी पुरुष' आत्मा को सीधे ही सहज स्वभाव में ला देते हैं। फिर प्रकृति को सहज करना बाकी रहता है, और प्रकृति सहज किस तरह से होती है? तब कहे, प्रकृति की जो-जो फाइलें खड़ी हों, उनका समभाव से *निकाल* करे तो फिर उनसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है, उसके बाद सहज प्रकृति शेष रहती है!

''मोक्ष में जाने के लिए कोई मनाही का हुक्म नहीं है, मात्र 'खुद' को खुद का भान होना चाहिए। कोई त्यागी प्रकृति होती है, कोई तप की प्रकृति होती है, कोई विलासी प्रकृति होती है, जो हो सो, मोक्ष में जाने के लिए मात्र प्रकृति खपानी होती है।''

'प्रकृति *पूरण-गलन* स्वभाव की है और खुद *अपूरण-अगलन* स्वभाव का है।'

– **दादाश्री**

वीतराग निरंतर खुद की प्रकृति को ही देखा करते थे। जब 'खुद' प्रकृति का ज्ञाता-द्रष्टा रहे, तब वह विलय हो जाती है।

'केवलज्ञान की अंतिम निशानी यही है कि खुद की ही प्रकृति को देखता रहे।'

– **दादाश्री**

प्रकृति का स्वभाव कैसा है? प्रकृति बालक जैसी है। प्रकृति के पास से काम निकाल लेना हो तो बालक की तरह समझा-बुझाकर, फुसलाकर काम निकाल लेना है। बालक को समझाना, वह आसान बात है लेकिन यदि उसके प्रतिपक्षी हो जाओ, तो प्रकृति बिफरे ऐसी है। इसलिए चाहे कुछ भी करके, अंत मे 'लॉलीपॉप' देकर भी उसे पटाकर अपना काम निकाल लेना है!

कुछ लोग आत्मा को निर्गुण कहते हैं, लेकिन वह यथार्थ नहीं है।

प्रकृति के गुणों की तुलना में आत्मा निर्गुण है और खुद के स्वगुणों से आत्मा भरपूर है। आत्मा के अनंत गुण हैं।

दादाश्री का सूत्र है कि, ''प्रकृति का एक भी गुण 'शुद्ध चेतन' में नहीं है और 'शुद्ध चेतन' का एक भी गुण प्रकृति में नहीं है।''

❑ 'प्रकृति सहज हो जाए तो आत्मा सहज हो जाता है और आत्मा सहज हो जाए तो प्रकृति सहज हो जाती है।' – **दादाश्री**

अंबामाता, दुर्गामाता, ये सभी माता जी आद्य शक्तियाँ हैं और वे सहज–प्राकृत शक्तिसूचक हैं। हर एक देवी के नियम होते हैं और उन नियमों का पालन करने पर वे देवी खुश रहती हैं। अंबा माँ प्रकृति की सहजता सूचित करती हैं। यदि सहजता रहे तो अंबा माँ राज़ी रहती हैं। सरस्वती देवी को राज़ी करने के लिए कौन से नियमों का पालन करना चाहिए? वाणी का कभी भी दुरुपयोग न करे, झूठ नहीं बोले, प्रपंच नहीं करे, वाणी का किसी भी प्रकार का अपव्यय नहीं करे तो सरस्वती देवी प्रसन्न होती हैं। परिणाम स्वरूप ग़ज़ब का वचनबल उत्पन्न होता है! 'ज्ञानी पुरुष' की वाणी साक्षात् सरस्वती मानी जाती है, क्योंकि वह प्रकट परमात्मा को स्पर्श करके निकलती है!

लक्ष्मी जी के नियम क्या हैं? 'मन–वचन–काया से कभी भी चोरी नहीं करूँ', लक्ष्मी जी का वही एक बड़ा नियम है। लक्ष्मी जी के पीछे नहीं पड़ना चाहिए या उन्हें रोककर नहीं रखना चाहिए, लेकिन लक्ष्मी जी का तिरस्कार भी नहीं करना चाहिए। 'ज्ञानी पुरुष' तो, लक्ष्मी जी सामने मिलें तब फूलमाला पहनाते हैं और जाएँ तब भी फूलमाला पहनाते हैं! जो लक्ष्मी जी की इच्छा करे, उसके वहाँ लक्ष्मी जी देर से पहुँचती हैं और इच्छा नहीं करे, उसके वहाँ समय से आ पहुँचती हैं।

लक्ष्मी किस तरह कमाई जाती है? मेहनत से? बुद्धि से? ना। वह तो पुण्य से कमाई जाती है। जो यह भेद नहीं जानता, वह जब कमाता है तब कहता है, 'मैंने कमाया, मेरी बुद्धि से कमाया।' वह झूठा अहंकार है। मन के भाव सुधरें तो लक्ष्मी जी आती हैं। व्यभिचारी विचारों से सच्ची लक्ष्मी कभी भी नहीं आती। सच्ची लक्ष्मी ही शांति देती है। यह

भ्रष्टाचार से कमाया हुआ कालाधन आए, वह तो जाने वाला है ही, लेकिन जाते समय रोम-रोम में सौ-सौ बिच्छू एक साथ डंक मारें, वैसे काटकर जाती है! लक्ष्मी जी का आना या नहीं आना, वह परसत्ता में है। इंसान को तो मात्र नैमित्तिक क्रिया ही करनी होती है, प्रयत्न करने होते हैं। लक्ष्मी जी के लिए निस्पृह नहीं हो जाना चाहिए, तिरस्कार भी नहीं करना चाहिए। तिरस्कार करे (दुत्कारने पर) तो कितने ही जन्मों तक प्रयत्न करने पर भी लक्ष्मी जी नहीं मिलतीं, ऐसा है।

❑ दादा भगवान जगत् को नया सूत्र देते हैं। पुराने सूत्रों को तो लोग अब धोकर पी गए हैं।

'डिसऑनेस्टी इज़ द बेस्ट फूलिशनेस।' - **दादाश्री**

जिसे मोक्ष में जाना हो, उसे तो 'नो लॉ-लॉ' मे आना पड़ेगा। 'नो लॉ-लॉ' में रहा, वह सहज प्रकृति में आ गया माना जाएगा। जहाँ-जहाँ लॉ लगाकर कंट्रोल करने जाएँ, वहीं पर उस लॉ के प्रति अभाव हो जाता है और प्रकृति विशेष उछाल मारकर डिकंट्रोल हो जाती है!

'इस वर्ल्ड को एक दिन सभी नियम निकाल देने पड़ेंगे। सबसे पहला, बगैर नियम वाला हमने किया है! सरकार से कहेंगे कि देख जाओ, हमारे यहाँ बगैर नियम का संचालन!' - **दादाश्री**

नियम लादने से मन बिगड़ जाता है और फिर आचरण बिगड़ जाता है। नियम संकल्प-विकल्प खड़े करते हैं। आत्मा सहज है और नियम बंधन हैं, जो खुद को असहज कर देते हैं।

❑ यथार्थ 'धर्मध्यान' किसे कहा जाता है?

पूजा, जप-तप, सामायिक, प्रतिक्रमण, व्याख्यान सुनते हैं उसे? ना, वे तो स्थूल क्रियाकांड हैं, लेकिन स्थूल क्रिया करते समय आपका ध्यान कहाँ बरतता है, वह नोट किया जाता है। भगवान के दर्शन करते समय, भगवान की फोटो के साथ दुकानों के या बाहर रखे हुए जूतों को भी याद करे, उसे धर्मध्यान किस तरह कहा जाए? भगवान के वहाँ क्रिया नहीं देखी जाती, ध्यान किसमें बरतता है वह देखा जाता है। अभी हो

रही क्रिया तो पिछले जन्म में किए गए ध्यान का रूपक है, पिछले जन्म का पुरुषार्थ सूचित करता है, जबकि आज का ध्यान, वह अगले जन्म का पुरुषार्थ है, अगले जन्म का साधन है!

अब, धर्मध्यान क्या है? आर्तध्यान और रौद्रध्यान उत्पन्न होते हैं, तब उसे पलटने के लिए जो पुरुषार्थ करना पड़ता है, वही धर्मध्यान है। इस धर्मध्यान में आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान का समावेश होता है। लेकिन यह आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान खुद की समझ से किए हुए नहीं होने चाहिए, 'ज्ञानी पुरुष' द्वारा दिखाए हुए होने चाहिए।

आर्तध्यान और रौद्रध्यान को पलटें किस तरह? आर्तध्यान या रौद्रध्यान हुआ, वह मेरे ही कर्म के उदय के कारण हुआ, उसमें सामने वाले का किंचित्मात्र भी दोष नहीं है। बल्कि, मेरे निमित्त से सामने वाले को दुःख सहन करना पड़ा, उसका पश्चाताप करना और फिर से ऐसा नहीं करूँगा, ऐसा दृढ़ निर्णय निश्चय करना चाहिए। यह प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान है और वह शूट ऑन साइट होना चाहिए। प्रतिक्रमण कैश, ऑन द मोमेन्ट हों, तभी हो चुके दोष धुलते हैं। सच्चा धर्मध्यान समझे तो वह तुरंत ही प्रवर्तन में आए ऐसा है।

दादाश्री ने, सादा, रोज़मर्रा के व्यवहार में अक्सर उपयोगी हों, ऐसी सुंदर घटनाओं के उदाहरण देकर आर्तध्यान और रौद्रध्यान को पलटकर धर्मध्यान में कैसे रहा जाए, उसे सरल कर दिया है और वह हर एक को अपनी तरह से एडजस्ट हो ही जाए, ऐसा है।

❑ जिसके सर्व कलुषित भाव निकल जाते हैं, वह भगवान पद को प्राप्त करता है। खुद को तो कलुषित भाव उत्पन्न नहीं होते, लेकिन खुद के निमित्त से सामने वालों को भी कलुषित भाव उत्पन्न नहीं हों, सिर्फ वही व्यक्ति लोकपूज्य बन सकता है। वर्ना 'ज्ञानी पुरुष', जो कि खुद निर्विशेष पद में होते हैं, उन्हें 'भगवान', ऐसा विशेषण देना, वह उनकी अनुपम ऊँचाई को उपमा देकर नीचे गिराने के बराबर है! फिर भी पहचानने के लिए उन्हें सब भगवान, सर्वज्ञ आदि कहते हैं। सर्वज्ञ मतलब क्या? जो सर्व ज्ञेयों को जानते हैं, वे सर्वज्ञ। सर्वज्ञ दो प्रकार के होते हैं :

एक कारण सर्वज्ञ और दूसरे कार्य सर्वज्ञ। भगवान ने 'हो रही' क्रिया को, 'हो चुकी है', ऐसा माना है।

उदाहरण के तौर पर कोई व्यक्ति घर से बड़ौदा जाने निकला हो और पाँच मिनट में कोई पूछने आए कि, 'भाई साहब कहाँ गए?' तो आप क्या उत्तर दोगे? आप कहोगे कि, 'भाई साहब बड़ौदा गए हैं।' अब भाई साहब तो मुश्किल से स्टेशन भी नहीं पहुँचे होंगे। फिर भी, क्रियावंत हो चुकी क्रिया को भगवान महावीर ने हो चुकी है, ऐसा माना है! वैसे ही जिनके सर्वज्ञ के कारण सेवित हो रहे हैं, वे कारण सर्वज्ञ ही कहलाते हैं। 'दादा भगवान' कारण सर्वज्ञ हैं।

❑ जगत् का नियम है कि जिससे, दिखाई देने वाली भूलें होती हैं उसी की भूल! लेकिन कुदरत का नियम है कि 'जो भुगते उसी की भूल।'

'किसी को अपने से किंचित्मात्र दुःख हो तो मानना कि अपनी भूल है।'

– **दादाश्री**

'भुगते उसी की भूल' इस नियम के आधार पर जो कोई भी चलेगा, उसे इस जगत् में कुछ भी सहन करने को रहता नहीं है, किसी के निमित्त से किंचित्मात्र दुःख होने को रहता नहीं है। हम अपनी ही भूलों से बंधे हुए हैं और जो खुद की सभी भूलों को मिटा दे, वह खुद ही परमात्मा है! वीतराग सर्व भूल मिटाकर मोक्ष में सिधार गए। हमें भी वही करके छूट जाना है। 'वीतराग' ध्येय स्वरूप हैं और प्रकट 'ज्ञानी पुरुष' मूल उपादान संयोगी हैं! 'मेरी भूल नहीं है' ऐसा कहा वही सबसे बड़ी भूल है, उससे भूल पर *गाढ़* आवरण आ जाता है। कृपालुदेव कह गए हैं:

'हुं तो दोष अनंतनुं भाजन छुं करुणाळ।'

जहाँ अनंत दोषों का भाजन है, पग-पग पर भूलें ही हैं। अरे, यहाँ इस जगत् में हम विद्यमान हैं, क्या वही सबसे बड़ी भूल नहीं है? मूलतः जहाँ खुद ही भूल से भरा हुआ है, वहाँ औरों को कहाँ दोष देना? औरों को दोष देना, उसके जैसा अवगाढ़ मिथ्यात्व इस जगत् में और कुछ भी नहीं।

'जो खुद की एक ही भूल मिटाए, उसे भगवान कहा जाएगा।'

– **दादाश्री**

‘इस वर्ल्ड में कोई आपका *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) नहीं है। उसकी मैं आपको गारन्टी देता हूँ। कोई बाप भी आपका *ऊपरी* नहीं है। आपकी भूलें, वे ही आपकी *ऊपरी* हैं!’ – **दादाश्री**

खुद कौन है, वह जान ले तो सब भूलें मिटाने का रास्ता कटने लगेगा और अंत में परमात्मा बन जाएगा!

❑ जगत् का नियम कैसा है कि कोई आपको कुछ खराब कह जाए या आपका कोई खराब कर जाए तो आप सामने वाले की भूल देखोगे और ‘मुझे ऐसा क्यों कहा?’ ऐसा करके खुद के साथ अन्याय हुआ है ऐसा मान लोगे। हकीकत में ‘न्याय’ देखना ही नहीं होता। सामने से जो कुछ भी अनुकूल या प्रतिकूल आपको प्राप्त हुआ, वह आपके खुद के लाए हुए व्यवहार के हिसाब के अनुसार ही प्राप्त होता है, इसमें फिर न्याय देखने का कहाँ रहता है? हर एक का ‘व्यवहार’, जैसा खुद (बाँधकर) लाया है, वैसा ही व्यवहार खुलता रहता है और फिर जो मिलता है वह हिसाब से ही मिलता है, उसमें जो ‘न्याय’ ढूँढने जाता है या कुदरत के व्यवहार को अमान्य करता है, उसे इसके लिए मार पड़े बगैर कैसे रहेगी?

‘यह मेरी भूल है’ ऐसा समझ में आता है, उस स्टेज तक जो पहुँचा हुआ है, उसके लिए उसकी भूल मिटाने को ‘न्याय’ है और जिसे ऐसा रहता है कि ‘मुझसे भूल नहीं होती’ तो उसके समझने के लिए ‘व्यवहार’ है।

❑ सामान्य रूप से व्यवहारिक सुख-दु:ख की जो समझ है वह हकीकत में सुख-दु:ख नहीं हैं, वह तो *शाता* (सुख परिणाम) या *अशाता* (दु:ख परिणाम) वेदनीय कर्म हैं, ऐसा भगवान ने कहा है। यह शाता या *अशाता* वेदनीय मुद्दती होते हैं, टेम्परेरी होते हैं। क्योंकि ये अवस्थाएँ हैं। अवस्था का अर्थ ही टेम्परेरी है। अब यदि सामान्य समझ के अनुसार इस वेदनीय कर्म को स्थायी मानकर बड़ा स्वरूप दिया जाए तो उससे खुद को बहुत सहन करना पड़ता है। संसार के सर्व सुख-दु:ख अंत वाले हैं। खुद का स्वसुख ही अनंत है और वही प्राप्त कर लेने जैसा है।

सामान्य समझ से सुख-दु:ख की कल्पनाएँ करके जो भयंकर कर्म

बंधन बंध जाते हैं, उस कल्पना के स्थान पर दादाश्री ने बहुत ही सुंदर, सहज तरीके से यथार्थ 'ज्ञान-दर्शन' प्रदान किया है और इतना सरल कर दिया है कि उसकी *गेड़ (अच्छी तरह समझ में आना)* बैठ जाए और एक बार उसकी *गेड़* बैठ जाए तो व्यवहारिक सुख-दुःख स्पर्श कर सकें, ऐसा नहीं है।

❑ *कंटाला* (ऊब जाना) यानी काँटों के बिस्तर पर सोने से जो दशा होती है, वह! – **दादाश्री**

अब जिसने इस *कंटाले* का अनुभव नहीं किया हो, वैसा भाग्यशाली कौन हो सकता है? बड़े-बड़े आचार्य, महाराज, साधु-सन्यासी और बड़े-बड़े महात्मा भी *कंटाले* से वंचित नहीं रह सकते। यह तो, सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' को ही *कंटाले* जैसी चीज़ का अनुभव नहीं करना होता! अब यह *कंटाला* जिसे आता है, उसे उसको समभाव से सहन कर लेना होता है, लेकिन वैसा नहीं करके कंटाले को दूर करने के उपाय किए जाते हैं। अरे! सिनेमा, नाटक या उससे भी नीचे लुढ़क जाएँ वैसे उपाय किए जाते हैं, लेकिन हकीकत में *कंटाला* दूर नहीं होता है, मात्र थोड़े समय के लिए उसे आगे धकेल देते हैं, वह फिर वापस दुगुने ज़ोर से घेर लेता है। क्योंकि वह उदयकर्म कहीं छोड़ेगा नहीं, उसे पूरा भोगे बिना चारा ही नहीं है।

❑ राग-द्वेष की सामान्य समझ और वीतरागों की यथार्थ समझ में छाछ और दूध जितना फर्क है। 'मैं चंदूलाल हूँ' वही राग है। जहाँ खुद नहीं है, वहाँ 'मैं हूँ' ऐसा जो आरोप करता है, वही राग है। और जिसे 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह लक्ष्य निरंतर है, उसके सर्व राग टूट गए हैं।

'मुझे इस पर राग है' वैसी जो सामान्य समझ है, वह अयथार्थ है। हकीकत में आत्मा में राग नाम का गुण है ही नहीं। यह जो राग महसूस होता है, वह तो परमाणुओं का आकर्षण है और द्वेष महसूस होता है, वह परमाणुओं का विकर्षण है। यह सब *पुद्गल* (जड़ तत्त्व) की करामात है, उसे, 'खुद' को ही राग-द्वेष होता है, ऐसा मानकर आत्मा को रागी-द्वेषी ठहरा देता है। आत्मा वीतरागी ही है और रहेगा।

'अज्ञान के प्रति प्रेम - वह राग और ज्ञान के प्रति प्रेम - वह वीतराग।' - **दादाश्री**

❑ जगत् का आधारस्तंभ 'बैर' है। यदि बैर निर्मूल हो जाए तो संसार सहजता से निर्मूल हो जाता है। बैर से छूटने का एक ही मार्ग है और वह है 'समभाव से फाइलों का *निकाल* (निपटारा) करो'। इस 'शस्त्र की शरण', इस काल में ग़ज़ब की है। यह शस्त्र 'दादाश्री' ने सब को दिया है। अब इस शस्त्र को लेकर जो रण में जाता है, वह खरा शूरवीर। संसार, वह संग्राम ही है न? इस संग्राम में 'फाइलों' का समभाव से *निकाल* करो। इस दादाई शस्त्र को लेकर रण में उतरे, वह अवश्य विजय प्राप्त करता है और मिलता क्या है? मोक्ष! प्राप्त मन-वचन-काया को दादाश्री ने 'फाइल' कहा है और यह जिसे दर्शन में आ गया, उसकी अध्यात्म विजय हो गई!

❑ चार्ज हो चुका एक परमाणु भी जहाँ असर वाला है, वहाँ अनंत परमाणुओं से भरे हुए भाजनों का संग क्या असरमुक्त हो सकता है? फिर वह संग सुसंग हो या कुसंग हो, असर होगा ही। सिर्फ 'सत्संग' ही ऐसा है कि जो सर्व संगों से असंग करवाए और यह 'सत्संग', जैसा सामान्य अर्थ में कहा जाता है, वैसा नहीं है। 'ज्ञानी पुरुष' जो कि सर्व संग में होने के बावजूद निरंतर असंग रहते हैं, उनका सत्संग यदि प्राप्त हो तो किसी भी जीव को असंग पद प्राप्त हो जाए, ऐसा है। ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' का सत्संग हर रोज़ नया, नया और नया ही लगता है!

सत्संग से कुसंग के परमाणु निकल जाते हैं और नए शुद्ध परमाणु दाख़िल होते हैं।

'यह तो, यदि हींग की गंध किसी पतीले में समा गई हो तो छः महीने बाद उस पतीले में खीर बनाएँ तो वह बिगड़ जाती है। इस हींग के संग का छः महीने तक असर रहे तो कुसंग का संग लगे, तब तो आपके अनंत काल बिगाड़ दे ऐसा है।' - **दादाश्री**

❑ मंत्र, वह विज्ञान है, गप्प नहीं है। उनमें भी 'त्रिमंत्र', वह तो संसार विघ्नहर्ता है। त्रिमंत्र निष्पक्षपाती मंत्र है, सर्व धर्म समभाव सूचक है, सर्वधर्म के रक्षक देवी-देवता इससे राज़ी रहते हैं। मंत्र का असर कब

होता है? 'ज्ञानी पुरुष' के हाथों यदि विधिपूर्वक दिया गया हो, तो वह ग़ज़ब का असर करे, ऐसा है। जब तक व्यवहार बाकी रहता है, तब तक तीनों मंत्र-'नवकार, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय और ॐ नमः शिवाय', ऐसे एक साथ बोलने होते हैं। सिर्फ नवकार मंत्र, वह सन्यस्त मंत्र है। जब तक यथार्थ सन्यस्त प्राप्त नहीं हुआ, तब तक तीनों मंत्र एक साथ बोलने होते हैं। सन्यस्त का मतलब भेष बदलना, ऐसा नहीं है लेकिन आत्मज्ञान प्राप्त होना, वह है।

❑ आज जगत् की कैसी दशा हुई है, उसके निमित्त से दादाश्री समझाते हैं। दादाश्री कहते हैं कि सन् 1942 से मैं कहता आया हूँ कि जगत् पूरा मेन्टल हॉस्पिटल में कन्वर्ट हो रहा है।

जहाँ देखो वहाँ निरा पागलपन ही दिखता है। आप पूछते क्या हो और सामने वाला जवाब क्या देता है! एक-दूसरे के साथ कोई ताल-मेल ही नहीं बैठता। छोटी-छोटी बातों के लिए बड़े-बड़े झगड़े करते हैं, वह मेन्टल नहीं तो फिर और क्या है?

आज की नई पीढ़ी के युवा लड़के-लड़कियों की लोग बहुत बुराई करते हैं, लेकिन दादाश्री कहते हैं कि यही युवा पीढ़ी हिन्दुस्तान का नाम रोशन करेगी और दादाश्री की सहज वाणी निकली है कि 'हिन्दुस्तान सन् 2005 में पूरे वर्ल्ड का केन्द्र बन चुका होगा', अभी हो रहा है।

31 साल बाद फॉरेन से लोग यहाँ पढ़ने आएँगे कि जीवन कैसे जीएँ, खाएँ कितना, सोएँ कितना और रहें किस तरह!

❑ जगत् में 'शुद्धात्मा' और संयोग दो ही वस्तुएँ हैं। - **दादाश्री**

'शुद्धात्मा' शाश्वत है और संयोग निरंतर बदलते ही रहते हैं।

'स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग और वाणी के संयोग, पर हैं और पराधीन हैं।' - **दादाश्री**

पंचेन्द्रियों द्वारा अनुभव किए जा सकें, वे सभी संयोग स्थूल संयोग हैं। मन के, बुद्धि के, चित्त के और अहंकार आदि के संयोग सूक्ष्म संयोग हैं और वाणी के संयोग जो कि स्थूल-सूक्ष्म हैं, वे सब पर हैं और फिर

पराधीन भी हैं। वाणी रिकॉर्ड है, फिज़िकल है। आत्मा और वाणी का कोई लेना-देना नहीं हैं। आत्मा अवाच्य है। हाँ, वाणी कैसी निकलती है, कहाँ भूल होती है आदि का आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा है। संयोग विनाशी हैं। यदि संयोगों में मुकाम करे तो खुद विनाशी है और अविनाशी, ऐसे आत्मा में मुकाम करे तो खुद अविनाशी ही है। महावीर भगवान ने एक आत्मा के सिवा बाकी जो भी कुछ है, वह सब संयोग विज्ञान है, ऐसा कहा है। इन सर्व संयोगों के संग से मुक्त, ऐसा खुद असंग शुद्धात्मा है।

❑ तप दो प्रकार के हैं : एक बाह्य तप और दूसरा आंतर तप। बाह्य तप मतलब दूसरों को पता चल जाए, वह और आंतर तप का किसी को पता नहीं चलता, खुद खुद के ही अंदर तप करता रहता है वह। बाह्य तप का फल संसार है और आंतर (भीतरी, अंदरूनी) तप का फल है, वह मोक्ष है! बाह्य तप से तो हरकोई विदित है ही। लेकिन आंतर तप एक 'ज्ञानी पुरुष' से ही प्राप्त हो सके ऐसा है।

'आत्मा और अनात्मा के संधि स्थान पर एकाकार नहीं होने दे, वह खरा तप।' - **दादाश्री**

होम डिपार्टमेन्ट, यानी कि खुद में; स्व में, आत्मा में ही रहना और फॉरेन डिपार्टमेन्ट मतलब आत्मा के अलावा अन्य में रहना। *पुद्गल* में नहीं रहना, और उसके लिए जो तप करना पड़ता है, वह आंतर तप है। यह बाह्य तप जो किया जाता है, उसमें जो कर्तापन आ जाता है, वह अहंकार है। भगवान ने प्राप्त तप को समताभाव से सहन कर लेने का कहा है, न कि खींच-तान कर अहंकार करके, तप में तपने को कहा है! अभी जो भी स्थूल तप किए जाते हैं, वे सभी प्रकृति करवाती है, उसमें क्या पुरुषार्थ? पुरुषार्थ तो आंतरतप में 'पुरुष' होने के बाद ही शुरू होता है। प्रकृति ज़बरदस्ती तप करवाती है और इंसान अहंकार करता है कि 'मैंने तप किया!' जो कुछ भी तप होता है, वह प्रकृति के अधीन होता है। इसमें 'खुद' कुछ भी करता नहीं है, ऐसा सतत ख्याल रहे तो तप के रिएक्शन के रूप में अहंकार खड़ा नहीं होता, नहीं तो तप का रिएक्शन क्रोध, मान और अहंकार है।

❑ त्याग किसे कहा जाता है? सहज वर्तन में बरते, वह त्याग कहलाता है। अन्य सभी त्याग अहंकार करके किया हुआ कहलाता है। 'त्यागे सो

आगे!' जिस-जिस चीज़ का त्याग अहंकार करके किया हो, वह आगे जाकर सौ गुना होकर वापस मिलता है। 'मोक्षमार्ग में त्याग की भी शर्त नहीं है और अत्याग की भी शर्त नहीं है!' शास्त्र स्वयं कहते हैं कि ज्ञानी को त्यागात्याग संभव नहीं होते। जो प्रकृति में रमणता करते हैं, वे जो कुछ भी त्याग करते हैं, वह प्रकृति ही करवाती है और वह सिर्फ अहंकार करता है कि 'मैंने त्याग किया!' और जो निरंतर आत्मरमणता में हैं, उन्हें त्यागात्याग संभव ही नहीं हैं। आत्मा का स्वभाव त्याग या ग्रहण करने का है ही नहीं। यदि वैसा होता, तब तो सिद्धक्षेत्र में विराजमान सिद्ध भगवंत भी त्याग या ग्रहण करते हुए बैठे होते! तो फिर वह मोक्ष कहलाता ही कैसे? यह तो, *पुद्‌गल* त्याग करता है और *पुद्‌गल* ही ग्रहण करता है और खुद मात्र अहंकार ही करता है। भगवान ने वस्तु का त्याग करने को नहीं कहा है, लेकिन वस्तु की मूर्च्छा का, मोह का त्याग बरतना चाहिए, ऐसा कहा है।

'तादात्म्य अध्यास ही राग है और जहाँ तादात्म्य अध्यास नहीं है, वह त्याग।'

– **दादाश्री**

❑ अहिंसा का सूक्ष्म से सूक्ष्म अर्थ यदि कोई बता सके तो वे वीतराग ही बता सकते हैं। जिन्हें निरंतर ऐसा भाव है कि इस जगत् में किसी भी जीव को किंचित्मात्र भी दु:ख नहीं देना है, और वैसा ही वर्तन में है, वही वीतराग हैं! कोई जीव किसी जीव को मार ही नहीं सकता, वैसे ही कोई जीव किसी जीव को बचा नहीं सकता। चंदूभाई ने किसी जीव को मारने का भाव किया हुआ था और जब किसी जीव के मरने का टाइमिंग आ जाए, तब वह चंदूभाई के निमित्त से मरता है। मरणकाल से पहले कोई जीव मर ही नहीं सकता। यह तो मारने के जो भाव करता है, उससे भाव मरण होता है। भगवान ने 'स्थूल हिंसा मत करना' ऐसा नहीं कहा है, 'भाव हिंसा मत करना' ऐसा कहा है, अत: ऑटोमैटिक सभी प्रकार की अहिंसा आ जाती है। किसी जीव को बचाने के लिए दया नहीं रखनी है, लेकिन जीव को मारने का जो भाव हुआ, उस भाव मरण के लिए दया रखनी है!

❑ योग दो प्रकार के हैं : एक ज्ञानयोग यानी कि आत्मयोग और दूसरा अज्ञान योग यानी कि अनात्म योग। अनात्म योग में मनोयोग, देहयोग

और वाणीयोग समाविष्ट होते हैं। योग किसका होता है? जिसे जान लिया हो उसका या जो अनजाना हो उसका? जब तक आत्मा जाना नहीं हो, तब तक आत्मयोग किस तरह से होगा? वह तो देह को जाना, इसलिए देहयोग ही कहलाता है, और निर्विकल्प समाधि देहयोग से कभी भी प्राप्त नहीं हो सकती। विकल्पी कभी भी निर्विकल्पी नहीं बन सकता, वह तो जब आत्मज्ञानी सर्वज्ञपुरुष निर्विकल्प दशा में पहुँचा दें, तभी निर्विकल्प बनता है। प्रकट दीया ही अन्य दीयों को प्रज्वलित कर सकता है।

❑ एकाग्रता क्या है? किसलिए करनी पड़ती है? जिसे व्यग्रता का रोग हो वही एकाग्रता करता है, इसमें आत्मा पर क्या उपकार? इन मज़दूरों को कहाँ एकाग्रता करने की ज़रूरत है? और 'ज्ञानी पुरुष' भी एकाग्रता नहीं करते। जो व्यग्रता के रोग पर एकाग्रता की दवाई चुपड़ते हैं, उससे आत्मा को क्या फायदा?

ध्यान करें तो किसका करेंगे? ध्येय को जाने बिना किसका ध्यान करेंगे? खुद की कल्पना से ध्येय निश्चित करके ध्यान करने से दिन कैसे बदलेंगे?

समाधि किसे कहा जाता है? नाक दबाकर या हठयोग से समाधि करते हैं, उसे? ना, वह तो हैन्डल समाधि कहलाती है। जब तक हैन्डल मारा तब तक चला, फिर वह समाधि उतर जाती है। ऐसी समाधि से क्या मोक्ष होता है? समाधि तो उसे कहते हैं कि चलते-फिरते, अरे! लड़ते-झगड़ते हुए भी समाधि नहीं जाए, वह है 'यथार्थ समाधि'। जहाँ आधि, व्याधि, *उपाधि* (बाहर से आने वाला दु:ख) नहीं हो, वह 'यथार्थ समाधि' कहलाती है।

❑ मन क्या है? मन को तो सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही पहचान सकते हैं। जो मन से निरंतर परे रहकर उसके ज्ञाता-द्रष्टा रहते हैं, ऐसे पूज्य दादाश्री ने यथार्थ मनोविज्ञान प्रकट किया है। मन गांठों से बना हुआ है। जब बाह्य, या आंतर संयोग प्राप्त होते हैं, तब मन की गांठें फूटती हैं। जो कोंपल फूटती है, रूपक में आती है, वह विचार अवस्था कहलाती है। विचार आते हैं और जाते हैं, आत्मा खुद उसका ज्ञाता-द्रष्टा है। मन, वह ज्ञेय है और आत्मा ज्ञाता है। कुछ लोग कहते हैं कि, 'मेरा मन

निकाल दीजिए।' मन निकाल लें तो 'एब्सेन्ट माइन्डेड' हो जाएगा। मोक्ष में जाने के लिए मन ज़रूरी है। मन तो नाव है। मनरूपी नाव के बगैर संसार सागर में से मोक्षरूपी किनारे तक कैसे जा सकते हैं? कुछ कहते हैं, 'मन भटकता है।' मन इस शरीर से बाहर कभी भी नहीं भटकता, जो भटकता है वह चित्त है।

बुद्धि पर-प्रकाश है, इन्डायरेक्ट प्रकाश है। आत्मा का डायरेक्ट प्रकाश है। आत्मा स्व-पर प्रकाशक है। बुद्धि की परिभाषा क्या है?

'पूरे जगत् के सभी सब्जेक्टस् जानें, वे भी बुद्धि में समा जाते हैं, क्योंकि वह अहंकारी ज्ञान है और निरहंकारी ज्ञान, वह ज्ञान है।' - **दादाश्री**

जहाँ ज्ञानसूर्य प्रकाशमान हो, वहाँ बुद्धिरूपी दीये की क्या ज़रूरत? बुद्धि का स्वभाव संताप करवाने का है। ज्ञानी अबुध होते हैं, बुद्धि नाम मात्र को भी नहीं होती। संपूर्ण बुद्धि खत्म हो जाए, तब सामने सर्वज्ञ पद फूलमाला सहित हाज़िर हो जाता है!

जो बिना टिकट भटकता है, वह चित्त है। यहाँ बैठै-बैठे कहीं का भी हूबहू फोटो दिखलाए, वह चित्त है। शुद्ध ज्ञान + शुद्ध दर्शन = शुद्ध चित्त, यानी खुद शुद्धात्मा। अशुद्ध ज्ञान + अशुद्ध दर्शन = अशुद्ध चित्त। जगत् 'अनंत चित्त' में पड़ा हुआ है। साधु अनेक चित्त में आ गए हैं और 'ज्ञानी पुरुष' और सत्पुरुष 'एकचित्त' में होते हैं!

''अशुद्ध चित्त किसलिए अशुद्ध है? 'स्व' को नहीं देख सकता, मात्र 'पर' को ही देख सकता है। जबकि शुद्ध चित्त 'स्व' और 'पर' दोनों को देख सकता है।'' - **दादाश्री**

जो चित्त की हाज़िरी में भोजन नहीं कर सकते, उन्हें हार्टफेल, ब्लड प्रेशर आदि रोग हो जाते हैं। चित्त की हाज़िरी में भोजन कर सकें तो कोई रोग ही नहीं हो, ऐसा है!

अनाहत नाद, कुंडलिनी, वे सब चित्त चमत्कार हैं और पौद्‌गलिक हैं।

कुछ कहते हैं कि, 'मुझे भीतर कृष्ण भगवान दिखते हैं।' वह आत्मा नहीं है, वह तो चित्त चमत्कार है। उस कृष्ण को देखने वाला

आत्मा है। अंत में दृष्टि द्रष्टा में डालनी है। यह तो दृष्टि दृश्य में डालते हैं।'
– **दादाश्री**

ये जो कृष्ण दिखते हैं, वह तो दृश्य है और उसे देखने वाला 'खुद' द्रष्टा है, आत्मा है, स्वयं 'कृष्ण' है!

'मैं चंदूलाल हूँ' यही मूल 'अहंकार' है। यह जाए तो निरहंकारी पद प्राप्त होता है। जो बाकी रहे, वह निकाली अहंकार यानी ड्रामेटिक अहंकार है। ये अहंकार दो प्रकार के हैं, एक सुंदर और दूसरा कुरूप। इस अहंकार ने ही सब बिगाड़ा है, वह हमारे खुद के स्व-सुख को चखने नहीं देता। अहंकार को विलय करने का एक ही साधन जगत् में है और वह है 'ज्ञानी पुरुष' के चरण का अँगूठा!

अंत:करण के चार भाग हैं : मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार। इनका कार्य पार्लियामेन्टरी पद्धति से चलता है। मन पेम्फलेट बताता है, चित्त फोटो दिखाता है, बुद्धि इनमें से एक के साथ मिल जाती है और डिसिज़न देती है, प्रधानमंत्री की तरह, और जब अहंकार राष्ट्रपति की तरह हस्ताक्षर कर देता है, तब वह कार्य रूपक में आता है।

❑ अणुव्रत, महाव्रत यानी कि जो बरते वह, त्याग नहीं। त्याग करना और बरतना उसमें बहुत अंतर है। बरते वह व्रत! बरते मतलब क्या त्यागा वह याद ही नहीं रहता, वह सहज त्याग कहलाता है। जिसे सहज ही बीड़ी छूट गई हो, उसे वह याद ही नहीं आती और जिसने अहंकार करके त्याग किया हो उसे याद आता रहता है कि 'मैंने बीड़ी का त्याग कर दिया है!'

परिग्रह के सागर में होने के बावजूद जिन्हें एक भी बिंदु स्पर्श नहीं करता, वह खरा अपरिग्रही! और जो परिग्रह के चुल्लू भर पानी में मुँह डालकर डूब रहा हो, उसे अपरिग्रही कैसे कहा जा सकता है? यथार्थ अपरिग्रही सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही हो सकते हैं!

❑ योगेश्वर कृष्ण को यथार्थरूप से कौन पहचान सकता है? सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' जो कि स्वयं 'उस' रूप हो चुके हों, वे ही उनकी यथार्थ पहचान और वे क्या कहना चाहते थे, वह यथार्थ रूप से समझा सकते हैं, क्योंकि ज्ञानी, ज्ञानी से कभी भी अलग नहीं हो सकते, अभेद होते हैं।

जब चार वेद पूरे होते हैं, तब वेद इटसेल्फ क्या बोलते हैं? 'दिस इज़ नॉट देट, दिस इज़ नॉट देट।' तू जिस आत्मा को ढूँढ रहा है, वह इसमें नहीं है! चार वेद पढ़े, धारण किए, और अंत में क्या? 'नेति-नेति।' पुस्तक में आत्मा किस तरह समाविष्ट हो सकता है? अवर्णनीय, अवाच्य, दुर्गम, ऐसे आत्मा का भान 'ज्ञानी पुरुष' संज्ञा से करवाते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' के पास घंटे भर में 'दिस इज़ देट' हो जाता है!

❑ आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान यथार्थ रूप से करे, तभी किए हुए दोष यथार्थ रूप से धुल जाते हैं और खुद उतना निर्मल हो जाता है, लेकिन वे दोष हों, और तुरंत ही ऑन द मोमेन्ट यह विधि हो जाए, तभी इस काल में काम आएगा।

❑ वीतराग ही वीतराग-विज्ञान अनावृत कर सकते हैं। वीतरागों का अंतर आशय काल के अनुरूप ऐसी स्याद्‌वाद वाणी द्वारा 'ज्ञानी पुरुष' ही अनावृत कर सकते हैं, जिसके प्राप्त होने के बाद सामान्य व्यक्ति भी निरंतर यथार्थ धर्मध्यान में रह सकता है! इच्छा तो सिर्फ मोक्ष के लिए ही करने जैसी है।

'जिसे मोक्ष की ही एकमात्र तीव्र इच्छा है, उसे कोई रोकने वाला नहीं है। ज्ञानी उनके घर जाएँगे!'

'जिसे मोक्ष की इच्छा है, उसे *पुद्‌गल* की मालिकी नहीं रहती! जिसे *पुद्‌गल* की मालिकी है, उसे मोक्ष की इच्छा नहीं होती!'

❑ भक्त और भगवान अलग होते हैं! जबकि ज्ञानी में वह भेद नहीं होता है।

भक्ति कब तक करनी है? जब तक ज्ञानी से भेंट नहीं हो जाए तब तक, और 'ज्ञानी पुरुष' मिलें तो उनसे मोक्ष माँग लेनी है। वीतराग की भक्ति मुक्ति दिलवाती है।

'भगवान शब्द का अर्थ क्या है?' इसका स्पष्टीकरण दादाश्री देते हैं।

'भगवान नाम है या विशेषण? यदि नाम होता तो हमें उसे भगवान दास कहना पड़ता, भगवान विशेषण है। जैसे भाग्य पर से भाग्यवान बना

है, वैसे ही भगवत् पर से भगवान बना है। ये भगवत् गुण जो भी कोई व्यक्ति प्राप्त करता है उसे 'भगवान' का विशेषण लगता है।' - **दादाश्री**

सबसे ऊँची भक्ति कौन सी?

'केवलज्ञान स्वभावी आत्मा का लक्ष्य बैठ जाने के बाद उसके जागृतिरूपी ज्ञान में रहना वह, सबसे ऊँची और अंतिम भक्ति है।'

''ज्ञानियों का 'प्रतिष्ठित आत्मा' भक्ति में है और ज्ञान, ज्ञान में है। खुद शुद्धात्मा में रहते हैं और प्रतिष्ठित आत्मा से अपने खुद के शुद्धात्मा की और इन दादा की भक्ति करवाते हैं। वह सबसे ऊँची अंतिम भक्ति है!'' - **दादाश्री**

❑ मोक्ष यानी क्या?

मोक्ष यानी मुक्त भाव, सर्व बंधनों से मुक्ति, सर्व दुःखों से मुक्ति। और उसका अनुभव यहीं पर होता है, उसके बाद वह सिद्धों वाला मोक्ष सामने आता है! कष्ट उठाने से कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता। आत्मा का खुद का स्वभाव ही मोक्ष स्वरूप है, लेकिन उसका भान नहीं है, इसलिए बंधन अनुभव करता है। वह मुक्त भाव कब अनुभव में आता है? जब 'ज्ञानी पुरुष' खुद की अनंत शक्ति से, अनंत सिद्धि से हमारे आत्मा को झकझोरकर जगाएँ तब? जो खुद मुक्त हैं, वे ही अन्यों को मुक्ति दे सकते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' खुद प्रकट मूर्तामूर्त मोक्षस्वरूप हैं और घंटे भर में हमें स्वरूप का ज्ञान अर्थात् आत्मानुभूति करवाते हैं! यही अक्रम मार्ग की सिद्धि है!

कुछ लोग ऐसा मान बैठे हैं कि इस काल में मोक्षमार्ग बंद है और ऐसा मानकर बैठ हुए हैं! हकीकत में मोक्षमार्ग तो खुला ही है, ठेठ मोक्ष के दरवाज़े तक पहुँचा जा सके, ऐसा है। और वह प्रमाणित हो चुका है। हालांकि लाख का चेक इस काल में प्राप्त नहीं हो सकता, लेकिन दादाश्री निन्यानवे हज़ार नौ सो, निन्यानवे रुपये और निन्यानवे पैसे तक का चेक देते हैं, और अनेकों ने वह प्राप्त किया है! इसमें कितना नुकसान है? एक पैसे का ही न? लेकिन उसके बदले में लाख का छुट्टा मिलता है न?

मोक्षमार्ग खुला है, ढूँढ लेने की ही देर है।

'जिसे छूटना ही है उसे कोई बाँध नहीं सकता, और जिसे बंधना ही है उसे कोई छुड़वा नहीं सकता।' – **दादाश्री**

बंधन किससे हैं? अज्ञान से बंधता है, वह ज्ञान से ही छूट सकता है। बंधन का मूल कारण अज्ञान है।

दादाश्री ने यथार्थ मोक्षमार्ग खोल दिया है। जहाँ 'ज्ञानी पुरुष' प्रत्यक्ष हों, वहाँ किसी शास्त्र की या क्रिया की ज़रूरत नहीं है। वहाँ तो आज्ञा, वही धर्म और आज्ञा, वही तप है। भगवान महावीर ने कहा है न कि, 'आणाए धम्मो, आणाए तप्पो।'

भगवान ने ऐसा भी कहा है कि, 'पच्चीस सौ साल पूरे होने के बाद भस्मक ग्रह का असर समाप्त हो जाएगा और फिर से यथार्थ वीतराग धर्म उदय में आएगा', और वे पच्चीस सौ साल आज पूरे हो रहे हैं। 'ज्ञानी पुरुष' जहाँ प्रकट हुए हैं, वहाँ अब वीतराग धर्म को क्या आँच आने वाली है? खुद संपूर्ण निष्पक्षपाती हो जाए, खुद अपने आप के लिए भी निष्पक्षपाती हो जाए, तब मोक्ष सामने आता है!

❑ रमणता दो प्रकार की : एक पौद्गलिक और दूसरी आत्म। जिसे एक परमाणु मात्र में भी पौद्गलिक रमणता नहीं हो, उसे आत्म रमणता प्राप्त होगी ही। जब तक किंचित्‌मात्र भी पौद्गलिक रमणता रहती है, तब तक आत्मा प्राप्त नहीं हो सकता। मनुष्य जन्म लेता है, तब से लेकर मरने तक पौद्गलिक रमणता में ही रहता है। अरे! शास्त्र पढ़े, माला फेरे, सामायिक, प्रतिक्रमण करे या व्याख्यान करे, वे सभी पौद्गलिक रमणता हैं। स्व में रमणता हो, तभी मोक्ष प्राप्त होगा! जिसे स्व-रमणता उत्पन्न हो चुकी हो, वह सर्व परिग्रहों के संग में होने के बावजूद संपूर्ण अपरिग्रही-असंग है! और जिसे स्व-रमणता प्राप्त नहीं हुई है, उसने सर्व परिग्रहों के संग का त्याग किया हो, फिर भी वह संपूर्ण परिग्रही है, क्योंकि रमणता किसमें है? तब कहे, *पुद्गल* में ही।

'इस प्रकृति का पारायण पूरा हुआ तो हो गया वीतराग!' – **दादाश्री**

– **डॉ. नीरू बहन अमीन**

अनुक्रमणिका

❖❖❖❖❖

आप्तवाणी

श्रेणी - 2

जगत् स्वरूप

जगत् क्या है? जगत् किसने बनाया? किसलिए बनाया? जगत् को चलाने वाला कौन है?

अंग्रेज़ कहते हैं कि, 'गॉड इज़ क्रियेटर ऑफ दिस वर्ल्ड।' मुस्लिम कहते हैं कि, 'जगत् अल्लाह ने बनाया है।' हिन्दू कहते हैं कि, 'जगत् भगवान ने बनाया है।' कुछ जैन भी कहते हैं कि, 'जगत् भगवान ने बनाया है।' जगत् को क्रिएट करने वाला यदि कोई क्रिएटर होता तो वह क्रिएटर कहलाता और क्रिएटर का अर्थ कुम्हार होता है। भगवान के कौन से बच्चे कुँवारे रह जाते कि जिसके कारण उन्हें यह सब बनाना पड़ा? ये मिल के सेठ भी सेक्रेटरी को काम सौंपकर चैन से सो जाते हैं, ज़रा सी भी मेहनत नहीं करते, तो भला भगवान ऐसी मेहनत करते होंगे? जो मेहनत करे वह तो मज़दूर कहलाता है। भगवान तो क्या मज़दूर होते होंगे? भगवान ऐसे कोई मज़दूर नहीं हैं कि इन सब में हस्तक्षेप करने जाएँ और लोगों की शादियाँ करवा दें। इस भैंस के पेट में बैठकर बछड़े को गढ़ें, भगवान कोई ऐसे पागल नहीं हैं। और इस जगत् को क्रिएट करने वाला यदि कोई होता न, तो इन लोगों ने उसे कब का ही पकड़कर मार डाला होता। कहीं से भी उसे पकड़ लाते। क्योंकि इस जगत् को बनाने वाला ऐसा कैसा कि उसकी दुनिया में सभी दुःखी, कोई सुखी नहीं! इसलिए 'पकड़ो उसे', ऐसा कहकर उसे कब का ही इन सी.आई.डी. डिपार्टमेन्ट के लोगों ने पकड़ लिया होता। लेकिन ऐसा कोई हो तो पकड़ें न?

जगत् का कोई क्रियेटर है ही नहीं। द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ। पज़लसम हो गया है। इसलिए उसे पज़ल कहना पड़ रहा है। अब इस पज़ल को जो सोल्व करते हैं, उसे परमात्मापद की डिग्री मिलती है और जो सोल्व नहीं करते वे सभी पज़ल में डिज़ोल्व हो गए हैं। बड़े-बड़े महात्मा, साधु, महाराज, आचार्य, बाबा वगैरह सभी इस पज़ल में डिज़ोल्व हो गए हैं। जैसे पानी में शक्कर डिज़ोल्व हो चुकी हो और कोई कहे कि इसमें शक्कर कहाँ है? क्यों दिखाई नहीं देती? तो हम लोग कहें कि 'भाई, शक्कर पानी में है तो सही, लेकिन वह उसमें डिज़ोल्व हो गई है'। उसी तरह इन सभी में चेतन है तो सही, लेकिन वह 'निश्चेतन चेतन' है। 'शुद्ध चेतन' स्वरूप बन जाए, तब हल आएगा।

पाचन क्रिया में कितनी अलर्टनेस?

एक बड़ी कैमिकल कंपनी के रिटायर्ड चीफ इंजीनियर मेरे पास आए थे। उन्होंने मुझसे कहा, 'दादा, मैं नहीं होऊँ तो मेरी कंपनी चले ही नहीं।'

मैंने कहा, 'क्यों भाई ऐसा तो क्या है आप में?' तब उसने कहा, 'मैं बहुत अलर्ट रहता हूँ। मैं एक दिन नहीं जाऊँ तो सारा काम अटक जाए।' तब मैंने उन्हें कहा, 'जब रात को आप हाँडवा (एक गुजराती व्यंजन) खाकर सो जाते हो, तो रात को नींद में क्या अंदर जाँच करने जाते हो कि किस तरह पाचन हो रहा है? कितना बाइल (पित्त) पड़ा? कितने पाचक रस पड़े? सुबह उस हाँडवे में से खून, खून की जगह पर, पेशाब, पेशाब की जगह पर और संडास, संडास की जगह पर किस तरह पहुँचता है, क्या आप उसकी खबर रखते हो? यहाँ आप कितने अलर्ट रहते हो? अंदर के, खुद के बारे में आप कुछ भी नहीं कर सकते, तो और किस बारे में आप कुछ कर सकोगे? बड़े-बड़े बादशाह चले गए, चक्रवर्ती चले गए, फिर भी राज्य चलता रहा तो आपके बिना क्या अटक जाने वाला है? बड़े अलर्ट नहीं हों जैसे? आपकी तुलना में तो 'ज्ञानी पुरुष' का जूता अधिक अलर्ट है क्योंकि उसे ये महात्मा खुद पोंछते हैं! आप अलर्ट किसे कहते हो?

जन्मे तब दाँत आएँगे या नहीं आएँगे, उसकी चिंता करनी पड़ती है? कल सूर्यनारायण नहीं उगेंगे तो क्या होगा, ऐसी चिंता होती है?

जगत् का क्रिएटर कौन?

'द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ।' अंग्रेज़ भगवान को क्रियेटर कहते हैं। मुस्लिम और हिन्दू लोग भी ऐसा कहते हैं कि भगवान ने दुनिया बनाई है। वह उनके व्यू पोइन्ट से करेक्ट है लेकिन फेक्ट से रोंग है। यदि फेक्ट जानना हो तो हमारे पास आओ। हम गारन्टी से कहते हैं कि यह जगत् किसी ने नहीं बनाया है। ऊपर कोई बाप भी *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) नहीं है जो कि फालतू बैठा-बैठा इस जगत् को चलाता रहे। यह जगत् किस तरह चलता है, कौन चलाता है, वह सिर्फ 'हम' ही जानते हैं। इस जगत् में ऐसा एक भी ऐसा परमाणु बाकी नहीं है कि जहाँ मैं नहीं घूमा होऊँ! 'हम ब्रह्मांड के अंदर रहकर और ब्रह्मांड के बाहर रहकर सभी व्यू से डायरेक्ट और पर्स्पेक्टिव व्यू से देखकर कहते हैं कि ऊपर कोई भगवान नहीं है कि जो यह सब चलाए!

यह जगत् किस तरह चलता है, वह 'हम' आपको संक्षेप में, एक वाक्य में बता देते हैं, विस्तार से आगे समझ जाना। यह जगत् ओन्ली साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स से चल रहा है, कोई नहीं चलाता। पूरा जगत् निमित्त भाव से चल रहा है। कोई स्वतंत्र कर्ता है ही नहीं। और उसमें भी भगवान तो कर्ता हो ही नहीं सकते। यदि भगवान कर्ता होंगे, तो उन्हें कर्म बंधेंगे और उन्हें वापस भोक्ता बनना पड़ेगा। यदि भगवान को भी कर्ता-भोक्तापन हो, कर्म बंधन हो, तो उन्हें भगवान कैसे कहा जा सकेगा? तो फिर उनमें और आप में फर्क क्या रहा?

यह तो सब गप्पबाज़ी चली है। लोग चाहे जैसे खुद की समझ से चलते हैं। लोग मानते हैं कि 'इस जगत् का कोई ओर-छोर ही नहीं है, इसलिए जैसी गप्प मारेंगे वैसी चलेगी।' लेकिन ऐसा गप्प नहीं है यह जगत्! जगत् फेक्ट चीज़ है। लेकिन रिलेटिव फेक्ट है और 'खुद' रियल फेक्ट हैं। रियल फेक्ट में 'ज्ञानी पुरुष' बिठा दें, तब फिर अपना

'मुक्तिधाम' (मोक्ष) हो गया! लोग जगत् को गप्प मानते हैं कि, 'इसे भोग लो जैसे मरज़ी में आए वैसे, कौन बाप पूछने वाला है?' अरे, ऐसा नहीं है यह। यू आर होल एन्ड सोल रिस्पोन्सिबल फॉर योरसेल्फ (आप अपने खुद के लिए खुद ही पूरी तरह से ज़िम्मेदार हो)। पिछले जन्मों और अगले जन्मों के लिए तू खुद ही जोखिमदार है। एक इतनी सी भूल भी तू मत करना। भगवान इसमें हाथ डालते ही नहीं।

इस जगत् को समझना तो पड़ेगा न? यों ही गप्प से कब तक चलेगा? इस पज़ल को सॉल्व करना पड़ेगा या नहीं? कब तक इस पहेली में उलझते रहना है?

विश्व पज़ल का एकमेव सॉल्यूशन

द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ। देयर आर टू व्यू पोइन्ट्स टु सोल्व दिस पज़ल। वन रिलेटिव व्यू पोइन्ट एन्ड वन रियल व्यू पोइन्ट। बाई रिलेटिव व्यू पोइन्ट यू आर चंदूलाल एन्ड बाई रियल व्यू पोइन्ट आप 'शुद्धात्मा' हो। इन दो व्यू पोइन्ट्स से जगत् को देखोगे तो सारे ही पज़ल सोल्व हो जाएँगे। ये ही दिव्यचक्षु हैं। लेकिन जब तक 'ज्ञानी पुरुष' आपके अनंतकाल के पापों को भस्मीभूत नहीं कर दें, आपको स्वरूप का भान नहीं करवा दें, तब तक कुछ भी नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष प्रकट पुरुष के बिना काम नहीं निकलेगा।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश

दादाश्री : यह जगत् किसने बनाया होगा?

प्रश्नकर्ता : ब्रह्मा, विष्णु और महेश – इन तीनों ने मिलकर। क्रिएटर ब्रह्मा हैं, एडमिनिस्ट्रेटर विष्णु हैं और डेस्ट्रोयर महेश हैं।

दादाश्री : तो उन ब्रह्मा, विष्णु और महेश के माँ-बाप कौन हैं?

प्रश्नकर्ता : शंकर खुद ही फादर हैं।

दादाश्री : तो फिर मदर कौन है?

प्रश्नकर्ता : ही हिमसेल्फ इज़ द मदर।

दादाश्री : तो फिर तीन ही क्यों आए? पाँच क्यों नहीं आए?

प्रश्नकर्ता : तीन गुण हैं, इसलिए तीन हैं।

दादाश्री : ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम के कोई हैं ही नहीं। ये तो तीन गुणों को नाम दिए हैं। उन तीन गुणों की बात अच्छी तरह समझाने गए थे लेकिन उसका दुरुपयोग हुआ और मूर्तियाँ बनाईं! वे क्या कहना चाहते थे कि प्रकृति के इन तीन गुणों को निकालकर निर्मल हो जाएगा, तब तू परमात्मा बन जाएगा!

प्रश्नकर्ता : इन तीन गुणों को निकालकर?

दादाश्री : हाँ, इन ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूपक-गुणों को निकालकर। सुख तो आपके पास ही है, लेकिन क्यों नहीं मिल पाता? तो इसलिए कि, 'अंतराय हैं'। तो वे किसने खड़े किए? भगवान ने खड़े किए? नहीं, तेरे ही खुद के डाले हुए हैं। अंतराय ऐसी चीज़ है कि प्राप्त हो जाए, फिर भी फेंक देता है। नहीं तो आप खुद ही परमात्मा हो। लेकिन आपके खुद के ही अंतराय हैं, उसमें किसी का दखल नहीं है। यह तो अपना ही खड़ा किया हुआ तूफान है। यदि कोई यह सब खड़ा करने वाला होता तब तो ये लोग कम नहीं हैं, उसे पकड़कर उसका कब का ही साग बना दिया होता!

यमराज नहीं, नियमराज

कितने ही लोग यमराजा से डर जाते हैं। उन लोगों ने यमराजा का चित्रण भी कैसा किया? बड़े-बड़े दाँत और सींग वाले और भैंसे के ऊपर बैठे हुए! फिर डरेंगे नहीं तो और क्या होगा? कुत्ता रोए तो कहते हैं कि यमराज आए है। अरे, यमराज नाम का कोई जानवर है ही नहीं। यमराज, वह तो नियमराज है! नियमानुसार, पद्धति के अनुसार ही है यह सब। नियम के अनुसार ही मृत्यु आती है। अब यह नियमराज है, ऐसा हम कहें, तो फिर आपको किसी से घबराना बाकी रहा?

जगत् की अधिकरण क्रिया

इस जगत् का अधिष्ठान क्या है? उसकी अधिकरण क्रिया किस आधार पर हो रही है? जगत् के लिए यह एक गहन पहेली खड़ी हो गई है। जगत् को सच्चा अधिष्ठान आज हमारे माध्यम से कुदरती रूप से प्रकट होकर मिल रहा है।

'प्रतिष्ठित आत्मा', वह इस जगत् का सब से बड़ा अधिष्ठान है।

इस 'प्रतिष्ठित आत्मा' की अधिकरण क्रिया कौन सी? अज्ञानशक्ति से अधिकरण क्रिया चलती रहती है। 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा जो भ्रांति से बोलता है, उसकी बिलीफ़ में और वर्तन में भी 'मैं चंदूलाल हूँ' वही है। वही इस जगत् की अधिकरण क्रिया है। जहाँ खुद नहीं है, वहाँ आरोपण करता है कि 'मैं चंदूलाल हूँ' और उस आरोपित भाव में ही सबकुछ करता है और खुद को ही कर्ता मानता है। उससे अधिकरण क्रिया हो रही है। दूसरे शब्दों में कहें तो 'मैं चंदूलाल हूँ, यह मेरी देह है, जो भी कुछ हो रहा है, वह मैंने किया' वह सारी प्रतिष्ठा हुई। पिछले जन्म में जो-जो कर्म किए हुए हैं, जो-जो प्रतिष्ठा की हुई है, उससे इस जन्म के 'प्रतिष्ठित आत्मा' का निर्माण हुआ। अब इस जन्म में यह 'प्रतिष्ठित आत्मा' डिस्चार्ज होता है, तब भ्रांति खड़ी ही रहती है। इसलिए नई अधिकरण क्रिया चलती ही रहती है और उससे अगले जन्म का नया 'प्रतिष्ठित आत्मा' तैयार होता है। जो-जो चार्ज किया, उसका डिस्चार्ज तो अवश्य होगा ही। उसमें कोई बाल बराबर भी बदलाव कर सके ऐसा नहीं है। क्योंकि वह इफेक्ट है और इफेक्ट कोई रोक नहीं सकता।

अब यह 'प्रतिष्ठित आत्मा शुद्धात्मा' से बिल्कुल भिन्न है। 'प्रतिष्ठित आत्मा' और 'शुद्धात्मा' के बीच ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध है। यह ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध जब उत्पन्न होता है, 'शुद्धात्मा' ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहे और 'प्रतिष्ठित आत्मा' सिर्फ डिस्चार्ज स्वरूप में रहे, तब नया चार्ज नहीं होता, तब अधिकरण क्रिया संपूर्णतः बंद हो जाती है और अगले जन्म के लिए नया 'प्रतिष्ठित आत्मा' नहीं बनता, फिर जो पिछली गुनहगारी वाले पद का 'प्रतिष्ठित आत्मा' लाए हुए होते हैं, उसका समभाव से *निकाल* (निपटारा) करना बाकी रहता है। नया चार्ज नहीं होता। उसके कारण डिस्चार्ज होने का समय ही नहीं आता।

सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही इस अधिकरण क्रिया को सील मार सकते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' भ्रांतिरस का विलय कर देते हैं और 'शुद्धात्मा' और 'प्रतिष्ठित आत्मा' दोनों को अलग कर देते हैं। दोनों के बीच लाइन ऑफ डिमार्केशन डाल देते हैं। इसलिए दोनों निरंतर बिल्कुल अलग ही रहते हैं। ज्ञेय-ज्ञाता संबंध में ही रहते हैं। 'प्रतिष्ठित आत्मा' को जो ज्ञेय स्वरूप में जानता है, वह 'शुद्धात्मा' है। 'शुद्धात्मा', वह स्व-पर प्रकाशक है और 'प्रतिष्ठित आत्मा' परप्रकाशक है। इन्द्रियगम्य ज्ञान, वह 'प्रतिष्ठित आत्मा' है और अतीन्द्रियगम्य ज्ञान, वह 'शुद्धात्मा' है। ये सारी क्रियाएँ जो दिखती हैं, वे 'प्रतिष्ठित आत्मा' की हैं। 'शुद्धात्मा' की इसमें से कोई भी क्रिया नहीं है। 'शुद्धात्मा' की तो केवल ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया है और परमानंद, वह तो उसका मूल स्वभाव ही है।

'यह मैं हूँ' और 'यह मेरा है', ऐसी जो प्रतिष्ठा होती रहती है, उससे 'प्रतिष्ठित आत्मा' तैयार होता है। 'मैं' और 'मेरा' गए तो 'प्रतिष्ठित आत्मा' की नई प्रतिष्ठा नहीं होती, नए कॉज़ेज़ उत्पन्न नहीं होते। नया 'प्रतिष्ठित आत्मा' खड़ा नहीं होता। फिर उसके बाद जो बाकी रहते हैं, वे सिर्फ इफेक्ट्स बाकी रहते हैं और वे सब इफेक्ट्स, इफेक्ट्स के रूप में भोग लिए जाते हैं, फिर बाकी क्या रहा? 'केवल आत्मा!'

धर्म स्वरूप

धर्म किसे कहते हैं?

जो धर्म के रूप में परिणामित हो, वह धर्म। यानी कि अंदर परिणामित होकर कषाय भावों (क्रोध-मान-माया-लोभ) को कम करे।

कषाय भाव कम हो जाएँ ऐसे नहीं हैं, बढ़ें ऐसे हैं। वे खुद अपने आप कम करने से कम नहीं होते, लेकिन धर्म से ही कम होते हैं। धर्म कहाँ से प्राप्त होना चाहिए? 'ज्ञानी पुरुष' से, उनके हस्ताक्षर और मुहर वाला (आज्ञापूर्वक) धर्म होना चाहिए। उसके बाद यदि 'ज्ञानी पुरुष' के ऐसे दो ही शब्दों का उपयोग करने लगे, कि जो शब्द वचनबल वाले होते हैं, भीतर बल देने वाले होते हैं, जागृति रखवाने वाले होते हैं; तो वे शब्द आवरण भेदकर अंदर की शक्तियाँ प्रकट कर देते हैं।

परिणामित हो वह धर्म और परिणामित न हो वह अधर्म।

परिणामित क्या होता है? तो वह यह है कि जो, कषाय भावों को हल्का करे, कम करे, हल्के-पतले करे, और जैसे-जैसे वे कषाय भाव कम होते जाते हैं, वैसे-वैसे खुद की शक्ति और आनंद बढ़ते जाते हैं। खुद की सभी शक्तियों का पता चलता है कि ओहोहो! अंदर खुद की कैसी शक्तियाँ हैं! खुद में इतनी सारी शक्तियाँ कहाँ से आईं? यानी उसे धर्म कहते हैं। वर्ना यह लट्टू तो वैसे का वैसा ही रहता

है, बचपन से ठेठ अरथी निकाले, तब तक वैसे का वैसा ही रहता है, तो उसे धर्म किस तरह कहा जाएगा?

धर्म होकर परिणामित हो तब, परिणाम क्या प्राप्त करना है? व्रत, नियम, तप करना सीखे, वह? ना, यह परिणाम नहीं है। क्रोध-मान-माया-लोभ-कषायों का निवारण करे, उसे धर्म कहते हैं और अधर्म तो कषाय बढ़ाता है। तब कितने ही लोग कहते हैं न कि रोज़ सामायिक, प्रवचन, ध्यान करते हैं न? क्या ये धर्म नहीं हैं? भगवान कहते हैं कि 'नहीं, ये धर्म नहीं हैं।' भगवान तो कहते हैं कि, ''आप ज़रा उनसे पूछो कि 'ये औरों के साथ, शिष्यों के साथ कषाय होते हैं या नहीं होते?'' और हम पूछें कि, 'महाराज शिष्यों के साथ कुछ हो जाता है?' तब महाराज कहते हैं कि, 'जब कोई एक भी सामायिक नहीं करता, तब मुझे अंदर बहुत अकुलाहट हो जाती है।' तब तूने जो किया, उसे धर्म कैसे कहेंगे? यह तो बल्कि कषाय बढ़ाता है।

धर्म सामायिक वगैरह में नहीं है, धर्म तो परिणामित होने में है। धर्म तो वह है जो कषाय भावों का निवारण करे। कषाय भाव तो दबाने से दबाए नहीं जा सकते या उन्हें छीलते रहें या रंदा मारते रहें, तब भी कुछ नहीं होता।

धर्म जब पूरी तरह परिणामित हो जाए, तब 'खुद' ही धर्म स्वरूप हो जाता है!

रियल धर्म : रिलेटिव धर्म

धर्म दो प्रकार के हैं : एक रिलेटिव धर्म और दूसरा रियल धर्म।

रिलेटिव धर्म मतलब मनोधर्म, देहधर्म, वाणीधर्म और वे सब परधर्म हैं। जप कर रहे हों तो वह वाणी का धर्म है, ध्यान करना वह सब मन के धर्म और देह को नहलाना, धुलाना, पूजापाठ करना, वे सब देह के धर्म हैं।

हर एक चीज़ उसके धर्म में ही रहती है। मन, मन के धर्म में ही रहता है, बुद्धि, बुद्धि के धर्म में, चित्त, चित्त के धर्म में और अहंकार, अहंकार के धर्म में ही रहता है, कान, कान के धर्म में रहते हैं। ये कान हैं, वे सुनने का काम करते हैं, वे थोड़े ही देखने का काम करते हैं! आँखें देखने का काम करती हैं, सुनने का नहीं। नाक सूंघने का धर्म निभाती है, जीभ स्वाद का धर्म निभाती है और स्पर्शेन्द्रियाँ स्पर्श के धर्म में ही रहती हैं। हर एक इन्द्रिय अपने-अपने विषय के धर्म में ही होती हैं।

मन, मन के धर्म में हो, तब उल्टे विचार आते हैं और सुल्टे विचार भी आते हैं, लेकिन वह अपने धर्म में है। लेकिन सुल्टा विचार आए तब खुद कहता है कि मेरे अच्छे विचार हैं, लेकिन खुद उसमें भ्रांति से तन्मयाकार हो जाता है और उल्टे विचार आएँ तब खुद उनसे अलग रहता है और तब कहता है कि मेरी इच्छा नहीं है, फिर भी ऐसे उल्टे विचार आ रहे हैं! अंत:करण में सभी के धर्म अलग-अलग

हैं। मन के धर्म अलग, चित्त के धर्म अलग, बुद्धि के धर्म अलग और अहंकार के धर्म अलग। ऐसे, सब के धर्म अलग-अलग हैं। पर 'खुद' अंदर दखल करके बखेड़ा खड़ा करता है न? भीतर तन्मयाकार हो जाता है, वही भ्रांति है। तन्मयाकार कब नहीं होता है कि जब 'ज्ञानी पुरुष' स्वरूप का ज्ञान दें तब तन्मयाकार नहीं होता। खुद आत्मा होने के बाद निष्पक्षपाती बनता है। फिर मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार का, वाणी का या देह का पक्षपात नहीं रहता। यह तो आरोपित भाव से अहंकार के कारण तन्मयाकार हो जाता है। आत्मा होने के बाद इन सब को वह 'खुद' अलग रहकर देखता और जानता है।

पूरा जगत् रिलेटिव धर्म का पालन करता है। देह के धर्म, वाणी के धर्म, मन के धर्मों का ही पालन करता है। देह के धर्मों को ही 'खुद का धर्म है', ऐसा मानता है। वे रिलेटिव धर्म हैं, और 'आत्मा ही धर्म है' ऐसा मानता है, वही आत्मधर्म कहलाता है। आत्मधर्म ही रियल धर्म है, वही स्वधर्म है, वही मोक्ष है। खुद का स्वरूप जान लेना है। आत्मा का धर्म ही स्वधर्म है, बाकी के सब परधर्म हैं।

आपके अंदर 'दादा भगवान' बैठे हैं, वे ही चेतन प्रभु हैं। वे ही परमात्मा हैं। वे ही हमारे अंदर प्रकट हुए हैं और आप में प्रकट होने बाकी हैं। यह धर्म नहीं है, यहाँ तो काम निकाल लेना है। कब तक धर्मशालाओं में बैठे रहेंगे? खुद का काम निकाल लेना है, मतलब क्या कि 'ज्ञानी पुरुष' से खुद का स्वरूप जान लेना है। 'ज्ञानी पुरुष' का दीया प्रज्वलित हुआ है, 'उससे' आपका दीया छुआ दो, तो आपका दीया भी प्रज्वलित हो जाए। यह तो, किसी काल में ही 'ज्ञानी पुरुष' प्रकट होते हैं, दस लाख सालों में अक्रम 'ज्ञानावतार' अवतरित होते हैं, तब घंटे भर में ही खुद का आत्मा प्रकट हो सके, ऐसा होता है। इसीलिए 'हम' कहते हैं कि अपना काम निकाल लो। यह देह तो 'बुलबुला' है, वह कब फूट जाएगा, वह कहा नहीं जा सकता। अंदर जो बैठे हैं वे 'दादा भगवान' हैं। ग़ज़ब के प्रकट हुए हैं, परमात्मा प्रकट हुए हैं, लेकिन जब तक यह बुलबुला रहेगा, यह देह रहेगी तभी

तक लोगों का कल्याण हो सकेगा। क्योंकि अंदर प्रकट हो चुके 'दादा भगवान' हमारे वश में हैं। तीन लोकों के नाथ हमारे वश हो गए हैं! उनके पास वाणी नहीं है, हाथ-पैर नहीं हैं, इसलिए हमारे वश हो गए हैं और हमें कल्याण का निमित्त बनाया है! इसलिए हम तो कह देते हैं कि जब तक यह बुलबुला है, तब तक काम निकाल लो।

यहाँ हमारे पास तो आत्मा, वही धर्म है। यहाँ तो अविरोधाभासी हो, ऐसा रियल मार्ग है। जगत् में रिलेटिव मार्ग चलते हैं। जहाँ खुद नहीं, वहाँ *पोतापणा* (मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन) का आरोपण करना, खुद चंदूलाल है, ऐसा मानकर शुभाशुभ के मार्ग पर चलना, फिर भले ही सारी ज़िंदगी सब को ओब्लाइज़ करे, लेकिन उसे, रिलेटिव धर्म को प्राप्त किया, ऐसा कहा जाएगा। और मात्र एक ही क्षण यदि रियल धर्म का पालन किया, तब तो मोक्ष है! भगवान ने कहा है कि 'एक बार आत्मा होकर आत्मा बोलो तो काम हो जाएगा', नहीं तो 'मैं आत्मा हूँ, और देहादि जंजाल मेरे नहीं हैं', ऐसे लाख जन्मों तक बोले फिर भी कुछ नहीं होगा! भगवान क्या कहते हैं? तेरी श्रद्धा में भी यही है कि 'मैं चंदूलाल हूँ।' वह श्रद्धा नहीं टूटी है, वह ज्ञान नहीं टूटा, वह चारित्र भी नहीं टूटा। और फिर बोले कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तब तो कभी भी मोक्ष नहीं होगा। 'मैं चंदूलाल हूँ!' उस आरोपित भाव में रहकर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा किस तरह बोल सकते हैं? ज्ञान दर्शन के आरोपित भाव टूटते हैं, तब सम्यक् भाव में आता है, तो मोक्ष होता है।

रिलेटिव धर्म क्या कहते हैं? अच्छा करो और बुरा मत करना। अच्छा करने से पुण्य बंधते हैं और बुरा करने से पाप बंधते हैं। सारी ज़िंदगी का खाता सिर्फ पुण्य से ही नहीं भरता। किसी को गाली दी तो पाँच रुपये उधार चढ़ जाते हैं और धर्म किया तो सौ रुपये जमा होते हैं। पाप-पुण्य का जोड़-बाकी नहीं होता। यदि ऐसा हो सकता तब तो ये करोड़पति लोग पाप जमा ही नहीं होने देते। पैसा खर्च करके उधारी उड़ा देते। लेकिन यह तो असल न्याय है। उसमें तो जिस

समय जिसका भी उदय आए, तब वह सहन करना पड़ता है। पुण्य से सुख मिलता है और पाप के फल का उदय आए तब कड़वा लगता है। फल तो दोनों ही चखने पड़ते हैं। भगवान क्या कहते हैं कि तुझे यदि फल चखना पुसाता हो उसका बीज बोना। सुख पुसाता हो तो पुण्य का और दु:ख पुसाता हो तो पाप का बीज बोना। लेकिन दोनों रिलेटिव धर्म ही हैं, रियल नहीं। रियल धर्म में, आत्मधर्म में तो पुण्य और पाप दोनों से मुक्ति चाहिए। रिलेटिव धर्मों से भौतिक सुख मिलते हैं और मोक्ष की तरफ प्रयाण होता है। जबकि रियल धर्म से मोक्ष मिलता है। यहाँ 'हमारे' पास रियल धर्म है। उससे सीधा ही मोक्ष मिल जाता है। यहीं पर मोक्षसुख बरतता है। यहीं पर आधि, व्याधि और *उपाधि* (बाहर से आने वाला दु:ख) से मुक्ति मिल जाती है और निरंतर समाधि रहा करती है, निराकुलता उत्पन्न होती है। यहाँ तो आत्मा और परमात्मा की बातें होती हैं।

पुरुष हुए बिना पुरुषार्थ क्या?

एक बड़े प्रोफेसर मेरे पास आए थे। उन्हें मन में जरा कैफ़ था कि, 'मैं कुछ जानता हूँ और मैं कुछ पुरुषार्थ करता हूँ।' उनसे मैंने पूछा, 'आप क्या करते हो? क्या पुरुषार्थ करते हो?' उन्होंने कहा, 'आत्मा के लिए ही सब पुरुषार्थ करता हूँ।' तब मैंने पूछा, 'लेकिन पुरुष हुए बिना पुरुषार्थ कैसे हो सकता है? जैसे प्रकृति नचाए, उसी तरह आप नाचते हो और कहते हो कि 'मैं नाचा।'

सारे विश्व को मैं चैलेन्ज देता हूँ कि, 'आप यह जो कुछ भी करते हो वह आपकी खुद की शक्ति नहीं है। अरे! संडास जाने की भी सत्ता आप में नहीं है।' बड़ौदा के बड़े-बड़े डॉक्टरों को इकट्ठे करके मैंने पूछा कि, 'आप कहते हो कि हम अच्छे-अच्छों को संडास करवा दें, लेकिन क्या वह आपकी सत्ता है?' तब उन्होंने कहा कि, 'वह तो हम ही करवाते हैं न?' तब मैंने उनसे कहा कि, 'आप में खुद में ही संडास जाने की आपकी स्वतंत्र शक्ति नहीं है तो दूसरों को क्या करवाओगे? वह तो जब आपका अटकेगा, तब आपको पता

चलेगा कि मेरी शक्ति नहीं थी!' यह तो सब प्रकृति करवाती है और अहंकारी अहंकार करते हैं कि, 'मैंने किया!'

जो कैफ़ चढ़ाए, वह प्राकृत ज्ञान

बड़े-बड़े पंडित, शास्त्र पढ़ने वाले शास्त्रज्ञ, बड़े-बड़े साधु महाराज, आचार्य, सभी जो कुछ भी जानते हैं, वह प्राकृत ज्ञान है, वह आत्मज्ञान नहीं है। लेकिन प्राकृतिक ज्ञान है। प्राकृतिक ज्ञान और आत्मज्ञान में छाछ और दूध जितना फर्क है। यह सारा प्राकृतज्ञान क्या करता है? प्रकृति से प्रकृति को धोता है। प्रकृति से प्रकृति को धोने से वह पतली होती जाती है। फिर वापस एक जन्म प्रकृति को हल्की करने में जाता है और यदि कोई कुसंग मिल जाए तो वह प्रकृति को मज़बूत कर देता है! इसलिए उसे भगवान ने गजस्नानवत् कहा है। गजस्नानवत् यानी कि जैसे हाथी पानी में नहाता है और बाहर निकलकर धूल उड़ाता है शरीर पर, वैसी दशा है इन मनुष्यों की! आत्मज्ञान, वह तो दुर्लभ चीज़ है। अत्यंत दुर्लभ, दुर्लभ है। मोक्ष तो बस नाम लेते हैं उतना ही, बात करते हैं उतना ही। बाकी, प्राप्ति होना, वह आसान नहीं है। सभी प्रकृति ज्ञान वाले मन में क्या कहते हैं, 'मैं सब जान गया!' 'अरे! वह तो प्रकृति ज्ञान जाना है तूने! आत्मज्ञान जानना है। कितने ही जन्मों से प्रकृति ज्ञान, वही का वही जानते रहे हैं और क्या किया है? करती है प्रकृति और कहेगा, 'मैंने किया।' प्रकृति उसे नचाती है, उठाती है और कहेगा, 'मैं उठा।' सुलाती भी प्रकृति है, सोना हो तो सो नहीं पाता और जब प्रकृति सुलाती है तो कहेगा, 'मैं सो गया!'

बाकी, हम गारन्टी से कहते हैं कि पूरा जगत् प्राकृत ज्ञान में है। कोई शास्त्र पढ़ रहा हो या महावीर के पैंतालीस आगम धारण कर रहा हो या चार वेद धारण कर रहा हो, तब भी हम उसे कहेंगे कि, 'तू अभी प्राकृत ज्ञान में है!' आत्मज्ञान और प्राकृत ज्ञान में छाछ और दूध जितना डिफरेन्स है। छाछ और दूध दोनों सफेद दिखते हैं। प्राकृत ज्ञान कैफ़ चढ़ाता है और आत्मज्ञान कैफ़ उतार देता है। जिस प्रकार

का कैफ़ हो, वह सभी प्रकार का कैफ़ आत्मज्ञान उतार देता है। कैफ़ घटता जाए, वही आत्मज्ञान का लेवल है।

प्रश्नकर्ता : क्या शास्त्र पढ़ने से भी अहंकार बढ़ता है?

दादाश्री : हाँ, क्योंकि वह प्राकृतज्ञान है, इसलिए उन सब का कैफ़ चढ़ता है कि, 'मैं जानता हूँ, मैं जानता हूँ।' अरे! क्या जाना तूने? *कढ़ापा-अजंपा* (कुढ़न, क्लेश, बेचैनी-अशांति) तो जाता नहीं तेरा। गिलास फूट जाता है, तब तेरा आत्मा फूट जाता है! और 'ज्ञानी पुरुष' को तो, उनके हीरे खो जाएँ, तब भी कुछ नहीं होता। इनका यह ज्ञान तो कहाँ रहता है? 'मैं कुछ जानता हूँ', इतना ही।

इस काल में तो बड़े-बड़े साधु महाराज, आचार्य, वे सब कैफ़ में ही रहते हैं। 'मैं जानता हूँ', वे खुद की जोखिमदारी पर बोलते हैं न? अपनी जोखिमदारी थोड़े ही है उसमें! अपनी-अपनी जोखिमदारी पर बोल रहे हैं। सभी मार्ग भूल गए हैं, लेकिन क्या हो? इसमें उनका दोष नहीं है। उनकी इच्छा तो मोक्ष में जाने की ही है, भगवान की आज्ञा में रहने की ही है। लेकिन काल विचित्र आया है, इसलिए नासमझी से *आँटी* (गांठ पड़ जाए उस तरह से उलझा हुआ) पड़ गई है। यह सारा प्राकृतज्ञान है। उससे कैफ़ बढ़ता जाता है जबकि आत्मज्ञान से कैफ़ उतर जाता है। इसलिए खुद को आत्मज्ञान नहीं है, ऐसा खुद को निरंतर भान रहे तो भी बहुत अच्छा। ये तो बल्कि खुद का कैफ़ ढँकते रहते हैं। कोई उकसाए तब फन फैलाते हैं वापस। जब कैफ़ रहित हो जाएगा, तब इस जगत् की मालिकी तेरी है। पूरे जगत् का मालिक तू है। पूरे ब्रह्मांड का स्वामी तू खुद ही है! इसलिए अगर ऐसा कहे कि 'आत्मज्ञान के बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता', तब भी जल्दी हल आ जाए!

क्या जाना हुआ प्रकृतिज्ञान काम में आता है? नहीं, क्योंकि मोक्ष में जाने के लिए तो आत्मज्ञान की ज़रूरत पड़ेगी। आत्मज्ञान पुस्तकों में नहीं होता, शास्त्रों में नहीं होता। वह तो 'ज्ञानी पुरुष' के पास है।

जिन्हें वर्ल्ड में कुछ भी जानना बाकी नहीं रहा, उनका काम है, उसमें किसी और का काम नहीं है। 'ज्ञानी पुरुष' कौन? तो कहते हैं, जिन्हें कुछ भी जानना बाकी नहीं बचा होता, पुस्तक नहीं पढ़नी होती, माला नहीं फेरनी होती! यदि वे खुद पुस्तक पढ़ रहे हों, माला फेर रहे हों, तो हम नहीं समझ जाएँगे कि ये तो अभी स्टैन्डर्ड में हैं? खुद ही अभी अध्ययन कर रहे हैं, तो हमारे दिन क्या बदलेंगे? वे तो जो खुद संपूर्ण हो चुके हों, वे ही काम आते हैं। ये सब रिलेटिव धर्म हैं, वे सब स्टैन्डर्ड हैं। हर एक के डेवेलपमेन्ट के हिसाब से उसे उसके स्टैन्डर्ड का मिल जाता है। और रियल धर्म में, आत्मधर्म में तो आउट ऑफ स्टैन्डर्ड जाना पड़ेगा। सब स्टैन्डर्ड पास करके, सब स्टैन्डर्ड को मान्य करने के बाद ही खुद परमात्म-स्वरूप हो सकेगा!

पक्ष में पड़े हुओं का मोक्ष कहाँ से?

जैन, वैष्णव, शैव, स्वामिनारायण, मुस्लिम, क्रिश्चियन, वे सारे रिलेटिव धर्म हैं, स्टैन्डर्ड वाले धर्म हैं। व्यू पोइन्ट वाले धर्म हैं। जिन्हें जिस व्यू पोइन्ट से दिखा, उसी को सही मानकर बैठ गए और उसी पक्ष में पड़ गए। मोक्ष कब होता है? केवलदर्शन कब होता है? सच्चा समकित, सम्यक्दर्शन कब होता है? सारे जगत् में कहीं भी, किसी के भी साथ पक्षपात नहीं रहे, मतभेद नहीं रहे, तब! पक्ष में पड़े हुओं का मोक्ष नहीं होता। पक्ष किसलिए बनते हैं? अहंकारी अपने अहंकार को पोषण देने के लिए पक्ष बनाते हैं और निरहंकारी 'ज्ञानी पुरुष' सब को एक करते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' निष्पक्षपाती होते हैं, 'वीतराग' निष्पक्षपाती होते हैं। किसी जाति-पाँति के साथ पक्ष नहीं। संपूर्ण निष्पक्षपाती। हर एक इंसान के साथ अभेदता! अरे! एक छोटे से छोटा जीव हो, तो उसके साथ भी 'वीतराग' को अभेदता रहती है!

ये सभी तो पैकिंग हैं। वेराइटीज़ ओफ पैकिंग्स् हैं और भीतर आत्मा है, मटीरियल है। मटीरियल सब में समान है। लेकिन पैकिंग के डिफरेन्स से भेदबुद्धि खड़ी हो गई है। 'ज्ञानी पुरुष' पैकिंग नहीं देखते, वे तो निरंतर मटीरियल ही देखते हैं, सामने वाले के आत्मा

को ही देखते हैं। उनकी आत्मदृष्टि ही होती है। इस पैकिंग वाली दृष्टि से ही पक्षपात है और उसी से संसार खड़ा है। पक्ष में रहकर तो पक्ष की नींव मज़बूत करते हैं। अरे! तुझे मोक्ष में जाना है या पक्ष में पड़े रहना है? मोक्ष और पक्ष, वे दोनों संपूर्ण विरोधाभासी हैं। भगवान निष्पक्षपाती हैं, जबकि लोग पक्षपात में पड़े हैं! जैन कहेंगे, 'इतना हमारा है और वह हमारा नहीं है, वह तो वैष्णवों का है'। जबकि मुस्लिम कहते हैं, 'यह हमारा है, वह हमारा नहीं है, वह तो हिन्दुओं का है'। इस तरह सभी धर्मों वाले पक्ष में पड़े हैं। यहाँ सभी धर्मों के खुलासे होते हैं। हर एक धर्म वाले को यहाँ पर खुद का ही धर्म लगता है। क्योंकि हम निष्पक्षपाती हैं। उन सभी धर्मों का संगम यहीं पर है!

लोग पक्ष में पड़े, उससे भगवान बल्कि दूर हो गए। उसमें भी फिर एक धर्म में कितने ही पक्ष बन गए हैं। इन जैनों में भी चौरासी गच्छ बन गए हैं और वेदांतियों में भी कितने ही पंथ बन गए हैं। जैन धर्म तो किसे कहा है कि खुद पक्ष में नहीं पड़े और सामने वाला पक्ष डाल रहा हो तो उसके वहाँ जाए और उसे समझाए। खुद विस्तारपूर्वक सभी समझाकर मतभेद को टाले। सामने वाले का बिल्कुल निरा झूठ हो और खुद बिल्कुल सच्चा हो, तब भी वह सामने वाले के पास खुद जाए। कईयों को ऐसा लगता है कि 'ऐसा तो कहीं होता होगा? आप सच्चे हो फिर भी क्यों जा रहे हो?' फिर भी जैन धर्म वाला कहेगा, 'मैं जैन हूँ, इसलिए खुद मुझे ही जाना चाहिए।' जैन तो निराग्रही होते हैं। जैन तो किसे कहते हैं? वह ऐसा नहीं होता कि किसी की न सुनें। सब का सुनें और आवरण नहीं लाएँ। 'तेरा गलत और मेरा सही' ऐसे कपट का उपयोग न करें। यदि आत्मा कबूल करे ऐसी बात हो, तब तो सुननी चाहिए न?

महावीर भगवान कैसे थे कि अगर कोई विधर्मी बात सुनाने आए, तब भी सुनते थे। यह तो, भगवान महावीर के ही धर्म में कितने ही पक्ष बन गए हैं!

आज तो साधु महाराज भी पक्ष में पड़ गए हैं! संप्रदाय के साधुओं में और भगवान के, वीतराग के साधुओं में फर्क क्या है? संप्रदाय के साधु पक्षपात वाले होते हैं, झगड़े वाले होते हैं, इन सांसारिक लोगों में जैसे भाई-भाई झगड़े करते हैं, उसी तरह ये झगड़े करते हैं, जबकि वीतराग के साधु तो निष्पक्षपाती होते हैं, दखल ही नहीं होती। जो एक भी पक्ष में नहीं पड़े हैं, वीतराग के ऐसे साधुओं को अपने नमस्कार। फिर भले वे दिगंबर हों या श्वेतांबर हों। यह तो कैसा है कि एक संप्रदाय के महाराज की बात दूसरे संप्रदाय के लोग नहीं सुनते। ऐसे, पक्षपात से मोक्ष होता होगा? सही बात तो भले ही किसी के भी घर की हो, फिर भी स्वीकार करनी चाहिए। लेकिन आज सही बात रही ही कहाँ है?

भगवान को नग्न रखना या कपड़े पहनाना, इसके लिए कुछ संप्रदायों में झगड़े चले। नग्न रखने को कहा, वह किसलिए? भगवान की आँगी करना, वह तो बालधर्म है। जिससे कि भगवान की आँगी के नाम पर ही सही, भगवान के दर्शन तो करेगा न? जबकि आगे की बात तो ज्ञान-जीवों के लिए है। लेकिन आज कल तो बात ही बदल गई है! एक संप्रदाय के महाराज मुझे मिले थे। उन्होंने मुझसे कहा कि, 'मोक्ष तो हमारा ही होगा न!' मैंने पूछा, 'ऐसा किसलिए कह रहे हो?' तब उन्होंने कहा, ''क्यों? भगवान ने नहीं कहा कि '*नग्गाए मोक्ख मग्गा*'?'' मैंने कहा, ''आपकी बात तो सच है। भगवान ने कहा है, वह सही कहा है कि '*नग्गाए मोक्ख मग्गा*', लेकिन आप समझे हो उल्टा। भगवान ने आत्मा नग्न करने का कहा है, न कि देह।'

यह तो नासमझी उत्पन्न हो गई है। आत्मा के ऊपर तीन कपड़े हैं, मन के, वाणी के और काया के, वे कपड़े निकालने हैं। जो उन्हें निकाल दे और आत्मा को नग्न करे, वह सच्चा दिगंबर। मन-वचन-कायारूपी कपड़े निकालने हैं। वही सब से बड़ा परिग्रह है, इसलिए उसे निकालना है।

यह पक्षपात किसके जैसा है, वह कहूँ? खुद, खुद को सुंदर नहीं लगे, क्या ऐसा होता है? नहीं, तब तो दर्पण के साथ बनेगी ही नहीं न! लेकिन यह तो बनती है, इसका कारण यह है कि खुद पक्षपाती है! रूप तो किसे कहते हैं कि जो याद आता रहे। लेकिन ये तो पक्षपाती हैं। निष्पक्षपाती हों तो साथ वाले को भी सुगंध आती है। और पक्ष वाले तो जहाँ जाएँ, वहाँ दुर्गंध उठती है, घर में भी सिर्फ बदबू ही!

कुछ लोग हमें कहते हैं कि, 'आप जैन हैं?' कुछ कहते हैं कि, 'आप वैष्णव हैं?' 'अरे, हम तो कहाँ के जैन और कहाँ के वैष्णव? हम तो वीतराग हैं। इसमें सभी धर्म समा जाते हैं!' हमें जैन कहकर या वैष्णव कहकर सामने वाला अपने लिए अंतराय डालता है। हमें पक्षपाती मानता है। लेकिन एक बार हमें इन रामचंद्र जी के दर्शन करते हुए तो देख न! एक बार रामचंद्र जी के दर्शन करते हुए हमें देखे तो उसकी सभी मान्यताएँ टूट जाएँ। लेकिन वैसा पुण्य जागना चाहिए न?

संसार स्वरूप : वैराग्य स्वरूप

पूरा संसार दगा है। इसमें कोई अपना सगा नहीं है। ऐसे इस संसार की विकरालता यदि समझ में आ जाए तो मोक्ष की इच्छा तीव्र हो जाए। संसार की विकरालता, वह तो मोक्ष के लिए काउन्टर वेट है।

आज विकरालता लगती है, फिर भी मूर्च्छा से आंतरिक मार खाता है। वापस लगता है कि 'होगा भाई, कल सुधर जाएँगे'। पीतल सुधरकर सोना बनेगा क्या? ना, वह तो कभी भी सोना नहीं बन सकता। इसलिए ऐसे संसार की विकरालता समझ लेनी है। यह तो ऐसा ही समझता है कि इसमें से मैं कुछ सुख ले आता हूँ। ऐसा करूँगा तो उससे कुछ सुख मिलेगा। लेकिन वहाँ भी मार खाता है।

यदि 'ज्ञानी पुरुष' इस संसार की विकरालता का मात्र वर्णन ही करें तो उसे हो ही जाता है कि, 'संसार ऐसा अति कठिन है? इसमें से तो छूटा जा सके ऐसा नहीं है। इसलिए यह पूरा केस ही एक तरफ रख दो।' 'हाँ बाप! हाँ बाप!' करके हल लाना है। 'समभाव से *निकाल*' करने जैसा है जगत्!

यह हमारी सूक्ष्म (गहन) बात है। मोटी बातों से तो संसार कायम है!

दही का बर्तन हो और उसका मुँह सँकरा हो और नीचे रखा हुआ हो, तब बिल्ली को उसकी सुगंध आती है। वह बर्तन हिलाकर दही खा जाती है। फिर थोड़ा दही अंदर रहा हो तो उसके लालच में

बिल्ली मुँह ज़ोर से अंदर घुसा देती है, तब उसका मुँह अंदर फँस जाता है। फिर तो अंदर अंधेरा। तब बिल्ली इधर से दौड़ती है और उधर से दौड़ती है। अब ऐसे फँसाव में फँसने के बाद छूटे कैसे? उसी तरह यह पूरा जगत् यों फँस गया है! अब खुद, खुद से छूटे कैसे? बिल्ली को छूटना हो तो उसे कोई छुड़वा दे, तभी छूट पाएगी। उसी तरह इस जगत् के फँसाव में से सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही छुड़वा सकते हैं, और कोई नहीं छुड़वा सकता। अपने आप तो खुद कभी भी नहीं छूट सकता, बल्कि अधिक फँसता जाएगा।

बचपन में हमने बिल्ली का ऐसा सब निरीक्षण किया था। मैं खुद दही का बर्तन रखकर चुपचाप देखता रहता था। दही बिगड़े उसकी पड़ी ही नहीं थी। लेकिन देखने और जानने को तो मिलता था न! ऐसा प्रत्यक्ष फँसाव जानने के बावजूद भी वापस फँसे ऐसा मूर्ख कौन होगा? इस बिल्ली को कैसा है कि एक बार मुँह फँस चुका हो, फिर भी वापस दूध के बर्तन को देखे न, तो फिर भूल जाती है और छोड़ती नहीं है। फिर से फँसती है। फिर वह बहुत ही पछताती है। लेकिन फँस जाने के बाद क्या हो? एक बार वह फँस चुकी हो, उसके बाद उसे याद रहता होगा कि ऐसा फिर नहीं करना चाहिए? नहीं, उसे तो अगर दंड दिया हो तब भी भूल जाती है। ये इंसान भूल जाते हैं, तो फिर जानवर की क्या बिसात? यह देह अपनी नहीं हो सकती, और सब ऐसा कहते हैं, 'यह मेरा, यह मेरा'। अरे! यह देह ही तेरी नहीं है तो फिर और कोई तेरा कैसे हो सकता है?

हमें कलकत्ता से आते हुए अच्छे आम दिखे हों, और वहाँ मज़दूर नहीं मिलें, टोकरियाँ नहीं मिलें, फिर भी संभालकर यहाँ तक ले आते हैं। और यहाँ लाने के बाद आम खाते हैं और खा लेने के बाद गुठलियाँ और छिलके फेंक देते हैं। अरे, इतनी मेहनत करने के बाद भी फेंक दिया? तो कहे कि, 'हाँ, मात्र रस की ही ज़रूरत थी। वैसे ही जब इन लोगों की भी सिर्फ गुठलियाँ और छिलके बचते हैं, रस नहीं रहता, तब संतानें भी लात मारती हैं!

हमारे वहाँ पड़ोस में एक अँधी बुढ़िया और उनका बेटा रहता था। बुढ़िया सारा दिन घर संभालती और काम किया करती थी। उस व्यक्ति के घर एक दिन उसके साहब आए। ये घर के साहब और वे ऑफिस के साहब! दोनों घर आए। तो उस भाई को लगा कि 'मेरी अँधी माँ को मेरे साहब देखेंगे तो मेरी आबरू चली जाएगी'। उसने साहब के सामने खुद की माँ से कहा कि, 'अँधी उठ न, मेरे साहब आए हैं!' माँ को लात मारी और साहब के पास खुद की आबरू ढंकी। जैसे खुद बहुत बड़ा साहब नहीं हो! यह आबरू का बोरा! माँ की आबरू संभालनी होती है या साहब की?

ये आम किसलिए लाते हो? तब कहता है कि 'रस के लिए, स्वाद के लिए।' यह तो स्वार्थ वाला जगत् है! इसलिए अपने भीतर वाले भगवान सच्चे, और मोक्ष में गए तो काम हो गया, वर्ना ये तो 'उठ अँधी' ऐसा कहते हैं!

फिर कोई कहेगा कि मेरे यहाँ बच्चे नहीं हैं। इन बच्चों का क्या करना है? ऐसे बच्चे हों, वे परेशान करें, वे किस काम के? इससे अच्छा तो सेर मिट्टी नहीं हो तो अच्छा, और कौन से जन्म में तेरे यहाँ सेर मिट्टी नहीं थी? ये कुत्ते, बिल्ली, गधे, गाय, भैंस उन सभी जन्मों में बच्चों को ही गले से लगाकर फिरे हैं न? यह एक मनुष्य जन्म महामुश्किल से मिला है। वहाँ तो सीधा मर न! और मोक्ष का कुछ साधन ढूँढ निकाल, और काम निकाल ले। बेटा परेशान करे तब बुढ़िया कहेगी, 'भाड़ में जाए यह संसार, कड़वे ज़हर जैसा है।' तब हम कहें कि, 'माँ जी, क्या यह संसार पहले कड़वा नहीं था?' वह तो हमेशा से कड़वा ही है। लेकिन मोह के कारण, मूर्च्छा के कारण मीठा लगता था। बेटा परेशान करे, उतने समय तक मूर्च्छा चली जाती है और संसार कड़वा लगता है। लेकिन फिर वापस मूर्च्छा आ जाती है और सबकुछ भूल जाता है! अज्ञानी तो एट ए टाइम घर जाकर सब भूल जाता है। जबकि ज्ञानी को तो एट ए ग्लान्स सब हाज़िर रहता है। उन्हें तो यह जगत् जैसा है वैसा निरंतर दिखता ही रहता है। तब फिर मोह रहे ही कहाँ से? यह तो उसे भान नहीं है, इसलिए मार खाता है।

जब सास से काम नहीं हो पाता, तब बहू सास से क्या कहती है कि 'एक तरफ बैठो'। नहीं तो सास को चक्की पीसने बिठा देती है। सास से कहती है कि 'आप पीसो, ताकि बीच में नहीं आओ।' जबकि माँ तो क्या समझती है कि 'बेटा बड़ा होगा, तब मेरी चाकरी करेगा।' अब वह तो चाकरी करेगा या भाखरी(एक तरह की रोटी) वह बाद में पता चलता है! बंधे हुए हों तो मुक्त हो पाएँ, ऐसा नहीं है और मुक्त हो चुके हों तो बाँधा जा सके, ऐसा नहीं है! यदि 'स्वरूप का ज्ञान' मिला हो, तो इस फँसाव में से छूटा जा सकता है!

बचपन में मैंने अपनी नज़रों से देखा है, वह बताता हूँ आपको। एक अँधे वृद्ध थे, जब वे खाना खाते थे, तब बच्चे उनकी थाली में कंकड़ डाल आते थे। वे परेशान होकर चिढ़ते और चिल्लाते थे। तब वे बच्चे खुश हो जाते, फिर और ज़्यादा कंकड़ डालते! ऐसा है यह जगत्! और वापस ऐसे कितने जन्म होने वाले हैं, उसका ठिकाना नहीं! मोक्ष का सिक्का लग चुका हो तो शायद दो-तीन जन्मों में ठिकाना पड़ जाएगा। लेकिन ऐसा सिक्का नहीं लगा है, फिर भी लोगों को इस जगत् पर कितना मोह है!

बिल्ली लालच के मारे मुँह ज़ोर से बर्तन में डाल देती है, फिर निकल नहीं पाती! वह मुँह क्यों डालती है? स्वार्थ और लालच की वजह से ही न? वह स्वार्थ और लालच ही अज्ञान है! इसलिए हमें क्या सीखने की ज़रूरत है कि,

हम कौन हैं?

इनसे हमें क्या लेना-देना है?

ये मेरे बनेंगे या नहीं?

पैंसठ सालों से इन दाँतों को घिस रहे हैं, फिर भी वे साफ नहीं होते! तो क्या हमारी समझ में नहीं आना चाहिए कि चीज़ सच्ची है या झूठी? सारी ज़िंदगी इस जीभ का मैल उतारा, फिर भी मुई साफ नहीं हुई। रोज़ दाँत की कितनी संभाल की, घिसते रहे फिर भी वह

भी अंत में सगा तो नहीं ही हुआ न? आज यह दाढ़ दुःखने ही लगी न? ऐसा है यह जगत्। यह संसार है ही ऐसा कि खरे टाइम पर कोई सगा नहीं रहता। बहू रोज़ सास के पैर दबाती हो और एक दिन बहू के पेट में दुखे तो सास कहेगी कि अजवायन फाँक ले। ऐसा तो सब कहेंगे। पर क्या सास बहू का दुःख ले लेगी? अरे! पति या बच्चों में से कोई ले लेगा? यह जगत् कैसा है कि जब तक यह बैल लंगड़ा नहीं हो जाए, तब तक काम करवाते हैं। लेकिन जब वह चलना बंद कर दे, तब बूचड़खाने में छोड़ आते हैं! जब पिता जी कमाकर ला रहे हों या काम कर रहे हों तो पापा अच्छे लगते हैं, लेकिन यदि काम करना बंद कर दें तो घर में सब क्या कहेंगे कि 'आप अब ऐसे इस तरफ बैठो। आप में अक्ल नहीं है!' ऐसा है यह जगत्! पूरा संसार दगा है! यदि थोड़ा सा भी सगा होता तो क्या ये 'दादा' आपको बताते नहीं कि इतना रिश्ता सच्चा है? लेकिन यह तो संपूर्ण दगा ही है। कभी भी सगा नहीं हुआ। जीवित लट्टू चैन नहीं लेने देता। अरे, यहाँ सत्संग में आना हो, सिर्फ दर्शन करने आना हो, तो भी नहीं आने दें। ये आने देते हैं, वह तो बहुत अच्छा है।

शुद्धात्मा ही सच्चा सगा

दादाश्री : ये रात को दो बजे आप उठते हो, तब सब से पहले क्या लक्ष्य में आता है?

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह और फिर 'दादा' दिखते हैं।

दादाश्री : यह जो 'हम' स्वरूप का ज्ञान देते हैं, उसके बाद आपको 'शुद्धात्मा' का लक्ष्य कितने समय तक रहता है दिन में?

प्रश्नकर्ता : निरंतर रहता है, दादा।

दादाश्री : यह जो 'शुद्धात्मा' का लक्ष्य रहता है, यही अपना है। यही हमारी खबर रखता है। दूसरा कोई रात में हमारी खबर नहीं रखता। हम पीने का पानी माँगें, तो भी कोई नहीं उठे। खुद लेने जाना पड़ता है। हम पानी माँगें और वह सो रहा हो, तब तो उठ जाता है,

लेकिन जाग रहा हो वह नहीं उठता। ये सारे हिसाब हमें एट ए टाइम दिखते ही रहते हैं। बिल्कुल दगा है यह संसार। कभी भी सगा नहीं हो सकता!

दादाश्री : बहन, कितने बच्चे हैं आपके?

प्रश्नकर्ता : चार हैं।

दादाश्री : तो पिछले जन्म के बच्चे अभी कहाँ हैं?

प्रश्नकर्ता : वह तो क्या पता, दादा!

दादाश्री : एक-एक जन्म में भयंकर मार खाई है, लेकिन पिछली खाई हुई मार भूलता जाता है और नई मार खाता जाता है। पिछले जन्म के बच्चे छोड़कर आता है और नए इस जन्म में गले से लगाता जाता है।

'खुद' की चीज़ हो तो लुटेगी नहीं और जो लुट गया, वह 'खुद' का नहीं है। यह इकलौता बेटा हो, फिर भी नहीं रहता।

इस जगत् में कौन सा व्यक्ति मोह करने जैसा है? ये गंध मारते हैं, उन पर मोह क्या करना? बदबूदार आम पर तो कहीं मोह किया जाता है? सुगंधी वाले लोग तो सत्युग में थे। लेकिन सत्युग का चोकर त्रेता में बचा, त्रेता का चोकर द्वापर में बचा और द्वापर का चोकर इस कलियुग में बचा! यानी निरे कंकड़ (बचा-खुचा माल) जैसे लोग ही बचे हैं इस काल में! उनकी खुराक वैसी, बुद्धि वैसी और विचार भी वैसे। इसमें क्या सुख मिलने वाला है? इससे तो 'खुद की आत्मा की गुफा' में घुस जा। और बाहर सुपरफ्लुअस रह न! इसमें से क्या सुख लेना है, जहाँ सभी कुछ गंध मार रहा है, वहाँ? 'स्वरूप का ज्ञान' नहीं हो तो सब तरफ उमस ही है और 'स्वरूप का ज्ञान' मिल गया तो 'खुद की गुफा' में बैठे रहना है और अन्य जगह नाटकीय रहना है। बहुत अच्छे हों तो हमें फिसला देते हैं। चाय-नाश्ता करवाते हैं, घूमने ले जाते हैं। नहीं है कुछ भी लेना या देना, फिर भी फिसलवा देते हैं।

ये सब बही खाते के हिसाब से मिलते हैं। एक पेड़ पर पक्षी बैठे हों और उड़ जाएँ, वैसा है! इसे तो छोड़ ही देना है न, कभी न कभी। चक्रवर्ती राजा तेरह सौ रानियाँ, राजपाट और वैभव छोड़कर ज्ञानी के पीछे दौड़े थे और आज एक रानी को भी नहीं छोड़ता। और ऐसे कलियुग के काल में रानी भी कैसी होती है कि सुबह-सुबह इतनी बड़ी सुनाए कि, 'सुबह में किसलिए चाय ढकोसते हो?'

यह तो सब भठ्ठी है। शक्करकंद भुनने की जगह, वह है यह संसार।

इसमें सुख होता तो अखबारों में रोज़ आता कि फलाँ-फलाँ सेठ सुखी है। लेकिन कोई सुखी नहीं है। शक्करकंद भठ्ठी में भूने जा रहे हों, वैसे सब भुन रहे हैं। इस सेठानी का बीमा भी नहीं है और कितने ही बंगले खत्म हो गए। किसमें सुख है? लक्ष्मी में सुख होता, तब तो ये सेठ रात में सोते-सोते करवटें नहीं बदलते। लेकिन यह तो पलंग भी चूँ-चूँ करते हैं! इसमें क्या सुख है? चक्रवर्तियों की भी तैरह सौ रानियाँ होती थीं, उनमें से कइयों के मुँह चढ़े हुए होते थे रोज़!

एक बनियाभाई थे, रोज़ मेरे साथ उठने-बैठने वाले। उनसे मैंने पूछा, 'क्यों कैसा चल रहा है आपका पत्नी के साथ? यदि पत्नी मर जाए तो क्या होगा आपका?'

तब उन्होंने कहा, 'मैंने तो मेरी पत्नी से कह दिया है कि मैं विधुर हो जाऊँगा, लेकिन तुझे विधवा नहीं होने दूँगा।' धत् तेरे की! 'ये बनिये तो बहुत पक्के। इससे तो पत्नी को अच्छा लगे और पति अधिक जीए! स्त्री से कहता है कि, 'तू सौभाग्यवती होकर जाना, लेकिन मैं तो विधुर होऊँगा।' यह तो पुरुषों के बनाए हुए नियम हैं और इस कारण से पक्षपात वाले नियम होते हैं। स्त्री और पुरुष में जो नैचुरल भेद है, वही भेद। बाकी तो, वह भी 'शुद्धात्मा' ही है न?

एक बनियाभाई तो ऐसे शूरवीर थे, कि मुहल्ले के नुक्कड़ पर चोरियाँ हो रही थीं और वहाँ शोर मच रहा था। उन्हें पता चला कि

चोर मुहल्ले में आए हैं, इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि, 'तू मुझे गद्दे ओढ़ा दे!' ऐसे शूरवीर लोग हैं।

शादी की, शादी के फल चखे, अब 'वीतराग' रहना है। यह तो आम के फल चखे कि खट्टे हैं तो फिर हमेशा के लिए नीचे बैठे रहना है कि अगले साल आम मीठा होगा? ना, वह तो हमेशा के लिए खट्टा ही रहेगा। ऐसे ही यह संसार, वह खट्टा ही है, लेकिन मोह के कारण भूल जाता है। मार खाने के बाद वापस मोह चढ़ जाता है। वही भूल-भुलैया है। यदि स्वरूप अज्ञान गया और 'स्वरूप ज्ञान' मिल जाए तो वह भूल-भुलैया परेशान नहीं करती। 'ज्ञानी पुरुष' आत्मज्ञान दे दें, तब फिर भूल-भुलैया से छूटते हैं और मोक्ष का सिक्का लग जाता है!

यह तो अगर खाट में मरणासन्न पड़ा हो, तब भी छोटी बेटी की चिंता करता है कि इसकी शादी करनी रह गई। उस चिंता में और चिंता में ही मर जाता है, इसलिए फिर जानवर बनता है। जानवर का जन्म दुत्कार से भरपूर है। लेकिन मनुष्य जन्म में भी सीधा नहीं रहे, तब फिर क्या हो? 'ज्ञानी पुरुष' तो कहते हैं कि 'माँग, माँगे वह दूँ' लेकिन ठीक से माँगता भी नहीं।

स्टीमर डूब रहा हो, तब पहले से उसका पता चल जाता है। इसीलिए जब सभी को नावों में उतार रहे हों, तब वह बूढ़ा जल्दबाज़ी करता है। लेकिन तू तो मरने को है, अब बच्चों को पहले उतरने दे न!

लोग समझते हैं कि यह दुनिया सुंदर है! ना, यह तो मरने का कारखाना है। बैंगन बूढ़े हो जाएँ, यानी मरने वाले ही हैं। यह तो जितना काम निकाल ले उतना खुद का!

यह पालघर का स्टेशन आए, तब कोई बिस्तर बिछाए तो लोग क्या कहेंगे? पागल ही कहेंगे न? मुंबई नज़दीक आया और बिस्तर बिछा रहा है? वह तो मूर्ख ही कहलाएगा। कितने तो, जब बोरीवली आए, तब ताश खेलने बैठ जाते हैं। अब तो उठ, यह अंतिम स्टेशन

नज़दीक आया। तो अब बिस्तर बाँधने लग न? अब तो चेत। जितना सचेत हुआ, उतना उसके बाप का।

सिर्फ भय वाला है यह संसार, घिन से कँपकँपी छूटे ऐसा और वह भी फिर निरंतर! उसमें लोगों को राग किस तरह आता है, वह भी आश्चर्य है न?

यह तो मोह या मार?

यह मोह किसके ऊपर? झूठे सोने पर? सच्चा हो तो मोह रखा जाए। यह तो ग्राहक-व्यापारी जैसा संबंध है। माल अच्छा मिले तो ग्राहक पैसा देता है, ऐसा यह संबंध है। यदि एक ही घंटा पति के साथ झगड़ा करे तो संबंध टूट जाता है, ऐसे संबंध में मोह क्या रखना?

सेठ कहे कि हम क्या करें? हमें तो जायदाद बेटे को देनी है। चार सौ बीसी करके कमाई की और वह कमाई भी फिर परदेस में की और फिर बेटे को देगा? बेटा तो रिलेशन वाला हैं, रिलेटिव संबंध और फिर अहंकारी। कोई साक्षात् संबंध हो, रियल संबंध हो और कमाई करके दे रहा हो, तब तो अच्छा है। यह तो समाज के कारण दबाव में आकर ही संबंध बचा है और उसमें भी कभी बाप-बेटा लड़ते हैं, झगड़ते हैं और ऊपर से कोर्ट में दावा करते हैं। कुछ बेटे तो कहते हैं कि बाप को वृद्धाश्रम में छोड़ आना है! जैसे इस बैल को पशुशाला में नहीं छोड़ आते? वैसे ही बूढ़ों का घर! कैसा सुंदर नाम निकाला है! इस सगाई में क्यों बैठे हुए हो, वही मुझे समझ में नहीं आता। यदि इस रिलेटिव संबंध में अहंकार नहीं हो, तब तो वह चला लेने जैसा संबंध है। आप क्या नहीं जानते कि बाप को कैद में डालकर राजगद्दियाँ ले ली थीं!

सारा जगत् कोल्हू जैसा है। पुरुष बैल की जगह पर हैं और स्त्रियाँ तेली की जगह पर हैं। उसमें तेली गाता है और यहाँ स्त्री गाती है, और बैल आँख पर पट्टियाँ बाँधकर अपनी धुन में चलता है। वह समझता है कि काशी तक पहुँच गया होऊँगा! जब पट्टियाँ खोलकर

देखे तो भाई वहीं के वहीं! और फिर जब तेली बैल को खली का टुकड़ा खिलाता है तो बैल खुश। वैसे ही इसमें जब पत्नी हाँडवे (गुजराती व्यंजन) का टुकड़ा दे दे, तब भाई आराम से सो जाता है!

अस्पताल में जाए तो उसका मोह उतर जाए। लेकिन वह लक्ष्य में नहीं लेता, नहीं तो अभाव आ जाएगा। अगर मुँह पर एक फुँसी हो गई हो न, तो भी देखना अच्छा नहीं लगता। घूमने जाए तो भी कहेगा कि 'ये लोग देखेंगे तो कैसा लगेगा?' ये सब आम ही हैं न? वे झुर्रियाँ पड़ने के बाद अच्छे नहीं लगते। इन लोगों को मैं आम कहता हूँ, क्योंकि वे सड़ जाते हैं, जिनमें झुर्रियाँ पड़े वे सब आम ही हैं! इन आमों पर यदि झुर्रियाँ नहीं पड़ती हों न और वैसे के वैसे ही रहें तो काम के, लेकिन यह तो, जब से आम लाएँ उसी घड़ी से झुर्रियाँ पड़नी शुरू हो जाती हैं। ये चाचा-चाची हैं, वे शादी करके आए थे तब कितने सुंदर दिखते थे और अब बूढ़े हो गए तो बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता, लेकिन करें क्या? यह तो इन्डिया है! आम ताज़ा हो तो अंग-उपांग सुंदर होते हैं, लेकिन झुर्रियाँ पड़ने के बाद कैसे दिखते हैं? अबुध को ऐसी चल जाए, लेकिन बुद्धि वाले की क्या दशा हो? यह तो सिर्फ फँसाव है! शादी के समय तो उसे 'वह' अच्छी लगती है, लेकिन फिर झुर्रियाँ पड़े तो अच्छी नहीं लगती, लेकिन यह तो इन्डिया है, इसलिए निभाना पड़ता है!

इस देह का कैसा है? बचपन में जितनी खुशियाँ देती थी, उतना ही अभी बुढ़ापे में परेशान करती है। कहलाता क्या है कि यह देह मेरी खुद की है, लेकिन खुद की होकर दुःख देती है। दाँत को रोज़ चमकाते हैं, रोज़ मालिश करते हैं, फिर भी वे दुःखते हैं! ये आँखें दुःख देती हैं, कान दुःख देते हैं, सभी दुःख देते हैं। जो खुद का है वही दुःख देता है, ऐसा है यह संसार है!

सब सब की संभालो

यह तो भारी फँसाव वाला जगत् है, और उसमें तिल भर भी

खुद का नहीं है। अपना घर हो तो उसका किराया दें तो खुद का, मेरा घर हो जाता है। इस घर में अगर चिड़िया रह रही हो तो क्या वह जानती है कि 'इस भाई की मालिकी का घर है?' नहीं, वह तो खुद रहती है, इसलिए उसी की मालिकी की जगह है। यह तो, अगर घर में छिपकली रह रही हो तो वह भी समझती है कि मैं मेरी मालिकी की जगह में रह रही हूँ। यह तो हर किसी की मालिकी का जगत् है।

भगवान ने क्या कहा कि, 'सब सब की संभालो, मैं मेरी फोड़ता हूँ!' एक आदमियों की टोली थी। वे अपनी-अपनी खिचड़ी पकाकर खाते थे। ये सभी आदमी, एक मैदान में रुके थे। सब ने अपनी-अपनी खिचड़ी तीन पत्थर रखकर हाँडी में रखी। फिर सब गाँव में व्यापार करने गए। एक आदमी को ध्यान रखने के लिए छोड़कर गए। फिर शाम को वापस आए। उसमें से एक को क्या हुआ कि उसे खुद की हाँडी मिली ही नहीं। उसे चिंता हुई कि मेरी यह है या वह है? इस पेड़ के नीचे वाली या उस पेड़ के नीचेवाली? और फिर वह सोचने लगा कि किसी और की लूँगा तो सब मुझे पागल कहेंगे। इसलिए उसने एक उपाय ढूँढ निकाला। एक बड़ा पत्थर लिया और ज़ोर से बोलने लगा, 'मैं मेरी हाँडी फोड़ रहा हूँ, सब अपनी-अपनी संभालो', तब तुरंत सब ने अपनी-अपनी हाँडी पकड़ ली और उसे उसकी हाँडी मिल गई!

ये तो अपनी हाँडी संभालकर चलने जैसा है। ये तो नाव में इकट्ठे हुए लोग हैं, वे तो, जब उनका किनारा आएगा तब उतर पड़ेंगे। और यह तो कहेगा कि, 'मुझे उसके बगैर नहीं चलेगा।' 'उसके बगैर नहीं चलेगा', ऐसा कैसे चलेगा? यह तो ऋणानुबंध है। ऐसा तो कब तक चलेगा? यह क्या दखल? नहीं लेना, नहीं देना, चुटकी भर खाना और पूरे गाँव को सिर पर लेकर फिरना और पैर दुःखे तो कोई देखने भी नहीं आता। अकेले अपने आप ही सहलाते रहना पड़ता है। क्या आप नहीं जानते थे कि यह सब रिलेटिव सगाई है? रियल हो, तब तो हम सबकुछ कर लें। लेकिन यह तो रिलेटिव संबंध, वह कब फ्रैक्चर हो जाए, उसका कोई ठिकाना नहीं। यदि रियल सगाई हो तो

बाप मरे, माँ मरे तो बेटा साथ में मर ही जाए। इस मुंबई शहर में ऐसा कोई मरता है? ना, कोई नहीं मरता। तब फिर हम पहले से ही नहीं जान लें कि यह रिलेटिव संबंध हैं? और रिलेटिव संबंध में खेंच नहीं रखनी चाहिए। रियल हो तब तो हम ही पकड़कर बैठे रहें लेकिन जो घड़ी भर में फ्रैक्चर हो जाए, ऐसी सगाई में क्या ज़िद पकड़नी? इसलिए पहले से ही जान लेना कि यह तो रिलेटिव है और फिर 'मैं मेरी फोड़ता हूँ', करना है।

जिसका विनाश हो जाए, उन्हें कपड़े कहते हैं। ये कपड़े दूसरे दिन निकाल देते हैं और 'वे कपड़े' साठ साल में निकालते हैं। यह तो कपड़ों में 'मैं पन' माना, उसके दुःख हैं। खुद को खुद का 'ज्ञान' नहीं हुआ इसलिए पराई चीज़ों में भटका। 'मैं चंदूलाल हूँ' मानकर इस चंदूलाल के नाम पर व्यापार होता है और अंतिम स्टेशन पर खुद जाता है और चंदूलाल यहीं रह जाता है! और गुत्थियाँ साथ में ले जाता है! आत्मा की प्राप्ति का मार्ग अत्यंत दुर्लभ मार्ग है!

इस संसार में तो भीतर ही धड़ाका होता है। घड़ी भर शांति नहीं और फिर रहते तो हैं दो-दो लाख के फ्लेट में। किस तरह जीते हैं, वह भी आश्चर्य है न! लेकिन करे क्या? क्या समुद्र में गिर जाए? वह भी सरकारी गुनाह है। भुगते बिना चारा ही नहीं है न! जैसे शकरकंद भट्ठी में भुनता है, वैसे ही लोग चारों ओर से रात-दिन भुनते रहते हैं। वे इस भट्ठी में से भागकर जाएँ कहाँ? 'ज्ञानी पुरुष' के पास बैठने से अग्नि शांत होती है और काम हो जाता है। संसार तो प्रत्यक्ष अग्नि है। किसी को जलन होती है तो किसी को आँच लगती है। इसमें कहीं सुख होता होगा? इसमें यदि सुख होता तो चक्रवर्ती राजा तेरह सौ रानियाँ छोड़कर भाग नहीं गए होते! उनका ही तो भारी त्रास था उन्हें! इसीलिए तो राजपाट वगैरह सब छोड़कर भाग गए।

देवों को भी दुःख?

देवों में बचपन नहीं होता, माँ की कोख से जन्म नहीं लेना

होता। वे सब दु:ख नहीं हैं, बचपन के दु:ख भी नहीं हैं। उन्हें संडास नहीं जाना होता। उनके पास तो वैराग्य आए, वैसे साधन ही नहीं होते। उन्हें तो जन्म से ही जवानी और मरना भी जवानी में ही। तो फिर उन्हें कौन से दु:ख होंगे? देवों में स्पर्धा के बहुत दु:ख हैं। इनसे ये बड़े और उनसे बड़े वे! इस प्रकार स्पर्धा से राग-द्वेष होते हैं। उनका बहुत दु:ख लगता रहता है उन्हें। इसीलिए तो उन्हें भी 'ज्ञानी पुरुष' कब मिलें, ऐसी इच्छा होती है! लेकिन उनकी मृत्यु बीच में ही नहीं हो जाती, आयुष्य बीच में नहीं टूटता। उनके वहाँ इन्द्रिय सुख भरपूर हैं, फिर भी वहाँ उन्हें जेल जैसा लगता है! वहाँ पर *अजंपे-कढ़ापे* के दु:ख हैं।

कलियुग के रेगिस्तान में उद्यान जैसा सुख

सुख तो मोक्ष में ही है और मोक्ष के लिए राग-द्वेष नहीं, लेकिन अज्ञान निकालने की ज़रूरत है। जिस फल में सुख का रस ही नहीं है, रस है, लेकिन वह *शाता-अशाता* (सुख-परिणाम, दु:ख-परिणाम) का ही है और उसमें भी *अशाता* का ही अपार रस है, उसमें तो सुख कैसा? पूरे दिन कड़वा पिलाते हैं और एक पाव मीठा पिलाते हैं, इससे तो पूरा ही कड़वा नहीं पी लें हम? यह तो हमें मूर्ख बना जाते हैं तो कैसे पुसाए? आधा दु:ख हो और आधा सुख हो, पचास-पचास प्रतिशत हो, तब भी चलेगा। तब हमने यहाँ तक कहा है कि पचपन प्रतिशत दु:ख और पैंतालीस प्रतिशत सुख होगा तब भी चलेगा। लेकिन इतना कहा और दु:ख तो बढ़ने लगा और पाँच प्रतिशत सुख और पँचानवे प्रतिशत दु:ख हो गया, यानी चटनी जितना ही सुख मिलता है, ऐसा लालच हमें नहीं पुसाएगा। भीतर असीम सुख पड़ा है। यदि बाहर का मच्छर तक याद नहीं आए न, तो 'वह सुख' बरतता ही रहेगा। यह तो बाहर की याद सुख छीन लेती है।

यह काल विचित्र है, यह तो करेले मीठे हो जाएँ, उस जैसा है! यह तो हर एक में भगवान के दर्शन करके पैकिंग से दूर ही रहने जैसा है। भले ही कितना भी सड़ा हुआ पैकिंग हो, लेकिन भगवान

के दर्शन करके दूर रहने जैसा है, और हीरे का पैकिंग हो, तब भी वह पैकिंग कल चिता में जल जाने वाला है। लोग कहते हैं कि ये इंसान देवता जैसे लगते थे, लेकिन वे भी चिता में ही जाते हैं। कदाचित् जलाने के लिए चंदन की लकड़ियाँ मिलें। मरने के बाद उस देवता जैसे इंसान के साथ सो जाने को कहें, तो वह मना करेगा। भीतर भगवान बैठे थे, वे स्व-पर प्रकाशक हैं और उसी से उसका रूप था!

ये स्त्रियाँ बालों में फूल किसलिए डालती होंगी! शरीर की बदबू उड़ जाए, इसलिए। इस कलियुग में सिर, शरीर गंध मारते हैं, इसलिए ही तो वे फूल पहनती हैं, उनकी सुगंध आती है। पहले तो पद्मिनी स्त्रियाँ होती थीं, वे रसोईघर में खाना बनाती हों, तब भी यहाँ बैठे उनकी सुगंध आती थी! वे भी भोजन करती थीं और ये भी भोजन करती हैं। पहले के पुरुषों में सुगंध नहीं आती थी, लेकिन दुर्गंध तो आती ही नहीं थी। आज तो 'बाँद्रा की खाड़ी जैसा' हो गया है! आज तो अत्याधिक सेंट और इत्र उड़ते हैं। यह किसके जैसा है कि बदबूदार आम को सुगंध चुपड़कर फिर उसे खाएँ, लोग ऐसे हो चुके हैं! इसे भगवान ने कहा है कि 'अभोग्य भोक्ता।' यानी कि जो आत्मा को भोगने के लिए अयोग्य है, उसका तू भोक्ता बना। भोगने के लिए खुद का अनंत सुख है, लेकिन वह भोगता नहीं है। किस तरह भोगे? यह तो सब तरफ काँव-काँव मची है। सब जगह ये कौए शोर मचाते हैं और दूसरी तरफ मुर्गे बोलते हैं!

जो विचारवान हो, वह तो लक्ष्य में रखता है कि यह संसार मार्ग आराधन करने जैसा है या आराधन करने जैसा नहीं है? आराधन करने जैसा नहीं हो तो 'ज्ञानी पुरुष' को ढूँढकर अनके पास से मोक्षमार्ग प्राप्त कर ले। सिर के बाल जितने अन्य मार्ग हैं! उनमें एक ही पगडंडी है जो मोक्ष की पगडंडी है! और ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' जो समर्थ हों, सिर्फ वे ही बता सकते हैं! मोक्षमार्ग ओर्नामेन्टल नहीं होता और बाकी के सभी मार्ग ओर्नामेन्टल होते हैं, बड़ी-बड़ी गगनचुँबी होटलें होती हैं!

❖❖❖❖❖

संसरण मार्ग

संसार तो संसरण (प्रवाहित होता हुआ) मार्ग है। इसमें हर एक मील पर, हर एक फर्लांग पर रूप बदलते हैं। इन रूपों में मनुष्य को तन्मयता रहती है और इसलिए मार खाता रहता है। पूरा संसार सहजमार्गी है, मात्र मनुष्य के जन्म में ही मार खाता है। ये कौए, कबूतर, मछलियाँ इन सब के हैं कोई अस्पताल या फिर है उन्हें कुछ नहाना या धोना? फिर भी कैसे सुंदर दिखते हैं! उन्हें है कुछ संग्रह करने का? वे सब तो भगवान के आश्रित हैं। जबकि ये मनुष्य अकेले ही निराश्रित हैं। सभी, फिर वे साधु हों, सन्यासी हों या चाहे जो हों। जिसे कभी भी ऐसा हो कि मेरा क्या होगा, वे सभी निराश्रित! जो भगवान पर आसरा नहीं रखें और संग्रह करें, वे सभी निराश्रित और इसीलिए तो चिंता-*उपाधि* हैं।

इस संसार में तो अनंत जन्मों की भटकन है। किसी भी जीव को बंधन पसंद नहीं है। हर एक को मुक्ति की ही इच्छा रहा करती है, लेकिन मुक्ति का मार्ग नहीं मिले तो क्या करे? कौन से जन्म में साधु नहीं हुए थे? वैष्णव में जाएँ या जैन में जाएँ, वहाँ भी साधु बने और साधुपन से ऊब गए तब सोचते हैं कि इससे तो संसारी होता तो अच्छा था! तब अगले जन्म में संसारी बनता है और संसारी बने वहाँ बीवी-बच्चों से परेशान होकर वापस सोचता है कि इससे तो साधु हो जाना अच्छा! तो वह अगले जन्म में साधु बनता है। ऐसे

ही अनंत जन्मों से भटकन चल रही है! लेकिन यदि स्वरूप का ज्ञान मिले तो मुक्ति मिल जाए। लेकिन 'ज्ञानी पुरुष' मिलें और सारे पापों को वे भस्मीभूत कर दें, उसके बाद शुद्ध बनाएँ, तभी 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा बोल सकते हैं। यों ही शुद्धात्मा हुए बगैर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' नहीं बोल सकते, वह तो शब्दज्ञान कहलाता है, उससे बल्कि दोष लगेगा।

अनंत जन्मों का सार है यह! फिर भी अनुभव बेकार नहीं जाते, वे तो कभी काम आते हैं। एक बार गड्ढे में गिरा, उसके बाद गड्ढा आए तो वह अनुभव तुरंत ही चेतावनी देता है। अनुभव तो उपदेश देकर जाता है।

इसमें से तो काम निकालकर मोक्ष में जाना है। यह देह ही 'अपनी' नहीं हुई, तो और कोई अपना कैसे हो सकेगा? यह देह यदि ज्ञानी के काम में आई, तो सगी है, और संसार के काम में गई, तो वह दगा है। ये सब देह के सगे हैं। आत्मा का कोई सगा नहीं है। आत्मा का सगा होता ही नहीं है। इसलिए यह बात समझ लेनी है। वीतराग समझकर बैठे हैं कि इसमें 'अपना' काम नहीं है। उन्हें यह दगा-वगा पसंद नहीं है। हमें भी उसे पूरा-पूरा समझकर अपना काम निकाल लेना है।

जगत् छः तत्वों में से उत्पन्न हुआ है। संसार छः तत्वों का प्रदर्शन है! और इन तत्वों का निरंतर परिवर्तन होता रहता है और उन तत्वों का मिलन होने से संसार है। तत्व 'सत्' स्वरूप से हैं। 'सत्' यानी गुण और अवस्था सहित होता है, ये जो दिखती हैं, वे विभाविक अवस्थाएँ हैं, प्राकृत अवस्थाएँ उत्पन्न हुई हैं। इन विभाविक अवस्थाओं में भ्रांति खड़ी हो गई है कि यह 'मैं हूँ', उसी से यह सब खड़ा है, बाकी का कुछ भी नहीं बिगड़ा है। तत्वों के मिलन से उत्पन्न हुआ है। जड़ और चेतन के संयोग संबंध मात्र से चल रहा है, जड़ और चेतन मिक्सचर के रूप में हैं, कम्पाउन्ड के रूप में नहीं हैं।

बोझा सिर पर या घोड़े पर?

एक बार मैं अचानक अपने मित्र के घर पहुँच गया था। वे अपनी पत्नी से बातचीत कर रहे थे। मेरे मित्र ने अपनी पत्नी से पूछा, 'कौन सी सब्ज़ी लाई है?' पत्नी ने कहा, 'भिंडी।' मित्र ने पूछा, 'किस भाव से लाई है?' पत्नी ने कहा, 'बारह आने किलो के भाव से।' मित्र ने पूछा, 'इतनी महँगी सब्ज़ी लाई जाती होगी? तुझे कुछ अक़्ल-वक्ल है या नहीं?' अब यह मेरे सुनने में आया। मैंने उससे कहा, 'क्यों यह सिर पर दो मन का वजन लेकर फिर रहे हो?' आपका मुँह अरंडी का तेल पिया हो, ऐसा दिख रहा है! ऐसा किसलिए? बारह आने की सब्ज़ी ली, उसका संसारी बोझा संसाररूपी घोड़े पर रखना होता है। उसे सिर पर लोगे तो भी घोड़े पर ही जाएगा। हमें सिर पर नहीं लेना है। ये अपने सिर पर लेते हैं इसीलिए अपना मुँह अरंडी पिए हुए जैसा, और घोड़े का मुँह भी अरंडी का तेल पिया हो, वैसा दिखता है।

एक भाई थे। वे अपने टट्टू पर बैठकर जा रहे थे। भाई वज़नदार और टट्टू छोटा और कमज़ोर, इसलिए बेचारे की कमर भार से मुड़ी जा रही थी। ऐसे ही चले जा रहे थे, वहाँ रास्ते में एक खानसाहब मिले। उन्होंने भाई से कहा कि यह हरी घास है, यह आपके घोड़े के लिए ले जाओ न! तब भाई ललचाए कि मुफ्त में एक मन घास मिल रही है! लेकिन फिर लगा कि घोड़ा यह भार किस तरह उठाएगा? लेकिन वे कच्ची समझ के, इसलिए उन्होंने मन में नक्की किया कि घास मेरे खुद के सिर पर रखूँगा तो थोड़े ही इसे उठाना पड़ेगा! वे तो घास का भार सिर पर रखकर टट्टू पर बैठकर जाने लगे! रास्ते में एक बनिये ने यह देखा और उसने उनसे कहा कि, 'भाई, भार तेरे सिर पर उठाया है, लेकिन वज़न तो घोड़े पर ही जा रहा है, इसलिए आप दोनों के मुँह अरंडी का तेल पिया हो, ऐसे दिख रहे हैं!'

संसार, वह तो घोड़े जैसा है। संसारी घोड़े पर बैठे हुए उस घुड़सवार जैसे हैं। घोड़े को दुर्बल समझकर घुड़सवार साँस रोककर

बैठता है, उस घोड़े के सुख के लिए। लेकिन यह गणना गलत है। भार तो अंत में घोड़े पर ही आता है। उसी तरह आप सब अपना बोझा संसाररूपी घोड़े पर ही डालो। संसाररूपी घोड़े पर साँस रोककर मत बैठना, साँस रोककर मत जीना। यह तो जो खुद 'क्षेत्रज्ञ पुरुष' है, वह 'परक्षेत्र' में बैठा है। पूरा ही जगत् मूर्ख बना है। सिर्फ वीतराग ही समझ सके कि संसार में दिमाग़ पर बोझा किसलिए है? वे तो घोड़े पर ही जाते हैं। वीतराग तो बहुत पक्के (मोक्ष के लिए पक्के) गणित वाले, इसीलिए तो उन्हें रास आ गया और अंकगणित वाले भटक मरे!

संसारवृक्ष

कवि क्या गाते हैं : '*अहा! अक्रमज्ञान कदी ना सुणियुं, एणे खोदियुं धोरी वृक्ष मूळियुं।*'

यह संसार एक वृक्ष है। अनंतकाल से यह वृक्ष सूख ही नहीं रहा है। लोग पत्तियाँ काटकर पेड़ को सुखाना चाहते हैं, लेकिन पत्ते फिर से फूट निकलते हैं। कुछ धर्म वाले कहते हैं कि पत्ते काट डालेंगे तो संसारवृक्ष सूख जाएगा, लेकिन फिर से पत्ते फूट निकलते हैं। कुछ ऐसा कहते हैं, बड़ी-बड़ी डालियाँ काट डालोगे तो वृक्ष सूख जाएगा। लेकिन फिर भी वह वृक्ष सूखता नहीं है, डालियाँ फिर से उग निकलती हैं। कुछ लोग तने को काट डालने को कहते हैं, फिर भी वापस उग जाता है। कुछ उससे भी आगे जाकर जड़ें काट डालने को कहते हैं, लेकिन फिर भी वापस वृक्ष उग जाता है। संसाररूपी वृक्ष को निर्मूल करने का यह सही उपाय नहीं है। यह संसारवृक्ष किससे खड़ा हुआ है? इस वृक्ष की जड़ें तो बहुत सारी होती हैं, जमीन में वे सब जड़ें तो पेड़ को पकड़ने के लिए होती हैं और एक जड़ ऐसी होती है कि जो खुराक-पानी लेने के लिए होती है, उसे मूसला जड़ कहते हैं। सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही संसार वृक्ष की मूसला जड़ को जानते हैं और वे उसमें चीरा लगाकर दवाई डाल देते हैं! 'ज्ञानी पुरुष' बस इतना ही करते हैं, और कुछ नहीं करते। पत्तियों को, डालियों को, तने को या और किसी भी जड़ को हाथ ही नहीं लगाते। सिर्फ मूसला जड़ में

ही दवाई दबा देते हैं, उससे संसारवृक्ष धीरे-धीरे अपने आप ही सूख जाता है। फिर वापस नया पत्ता नहीं फूटता।

संसार एकदम उद्दंडता से उपयोग करने जैसा नहीं है, लेकिन उसका हिसाब रखना है। बहीखाते में कहाँ-कहाँ पर खोट है, कहाँ-कहाँ बहीखाते में संसारसुख है, वह भी ढूँढ निकालना पड़ेगा न? व्यापार में बहीखाता रखते हैं, लेकिन संसार में बहीखाता नहीं रखते!

सत्‌देव : सद्‌गुरु : सत्‌धर्म

सत्‌देव, सद्‌गुरु और सत्‌धर्म, वे जो कहलाते हैं, वे वास्तव में कौन हैं?

सत्‌देव कौन? सत्‌देव जिनालय वाले या मंदिर वाले नहीं हैं, आपके भीतर हैं। वे भीतर वाले सत्, लेकिन जब तक ये 'भीतर वाले' सत्‌देव नहीं मिल जाते, तब तक जिनालय या मंदिर की मूर्ति, वही सत्‌देव।

सद्‌गुरु कौन? अंतिम गुरु, वे 'ज्ञानी पुरुष' हैं। जब तक 'ज्ञानी पुरुष' नहीं मिलते, तब तक जो कोई थोड़े जप-तप दें, थोड़ा समझाएँ, वे सद्‌गुरु हैं। और अपने यहाँ 'इस' मार्ग में सत्‌देव, सद्‌गुरु और सत्‌धर्म कुछ अलग हैं। सत्‌देव तो 'भीतर वाले' जो सत् हैं, वही। वे तुरंत ही फल देते हैं, कैश देते हैं, उधार-वुधार नहीं। सारी ज़िंदगी धर्म किए हैं, लेकिन ठंडक नहीं होती और कलेजा ठंडा नहीं पड़ता। अंदर हमेशा खौलता ही रहता है। और यहाँ तो बात ही अलग है, जितना पीना आ गया उतना लाभ होता है।

धर्म तो बहुत मिल जाते हैं, लेकिन ज्ञानी नहीं मिलते! और तब तक छुटकारा प्राप्त नहीं होता, भटकते रहना है तब तक। सत्‌धर्म, सद्‌गुरु नहीं मिलें, तब तक सत्‌देव हाज़िर नहीं होते और तब तक कषाय काटते रहते हैं भीतर।

संसार का मार्ग रिलेटिव कहलाता है। उसमें व्यवहार और सिर्फ

व्यवहार ही होता है। भ्रांति वाले को भगवान ने कहा है कि, 'सत्‌देव, सद्‌गुरु और सत्‌धर्म की स्थापना करो।' जब तक 'ज्ञानी पुरुष' नहीं मिलते, तब तक व्यवहार है। तब तक रिलेटिव सत्‌देव की स्थापना करनी पड़ती है।

प्रश्नकर्ता : रिलेटिव सत्‌देव यानी क्या? मूर्ति?

दादाश्री : हाँ, मूर्ति की स्थापना यानी आरोपित भाव। यानी हम आरोपित, वे भी आरोपित और धर्म भी आरोपित! तीनों आरोपित। अपने यहाँ आत्मा, वह, दरअसल सत्‌देव है। 'ज्ञानी पुरुष' की जो वाणी निकली है, वह दरअसल सत्‌धर्म है और 'ज्ञानी पुरुष', वे दरअसल सद्‌गुरु हैं। ये तीनों दरअसल कहलाते हैं जबकि वे तीनों लौकिक कहलाते हैं! लौकिक का फल क्या है? तो कहते हैं, पुण्य बंधता है और धीरे-धीरे आगे बढ़ता हैं, जबकि यह दरअसल चीज़, अलौकिक सत्‌देव, सद्‌गुरु और सत्‌धर्म, वे मोक्ष देते हैं। वर्ना सत्‌देव मिलने के बाद भटकना क्यों पड़े? तब फिर हकीकत क्या है? तो कहते हैं, 'सत्‌देव मिले हैं, लेकिन वे आरोपित मिले हैं, सच्चे नहीं मिले हैं।' आरोपित का मतलब क्या कि महावीर हैं तो सही, लेकिन वे मूर्ति वाले, आरोपित हैं। जबकि सच्चे सत्‌देव तो जो भीतर वाले 'शुद्धात्मा' हैं, वे हैं। 'शुद्धात्मा' ही यथार्थ महावीर हैं, लेकिन 'शुद्धात्मा' का लक्ष्य बैठने के बाद भी जब तक उसका अनुभव नहीं हुआ, तब तक 'ज्ञानी पुरुष' ही खुद का आत्मा है।

सत्‌धर्म, वह शास्त्र में से नहीं होना चाहिए, ज्ञानी के मुख से होना चाहिए। सत्‌धर्म, सत्‌देव और सद्‌गुरु, वे दरअसल होंगे, तभी मोक्ष होगा। लेकिन दरअसल नहीं मिलें तो नकली रखना। सच्चे मोती नहीं मिलें तो कल्चर्ड, लेकिन मोती पहनना!

वीतरागों ने सत्‌देव, सद्‌गुरु और सत्‌धर्म कहा है, इसलिए अपने आचार्य और महाराज वगैरह सब मान बैठे कि महावीर देव, वे ही सत्‌देव हैं और शास्त्रों के अनुसार जो भी करते हैं, वही सत्‌धर्म है।

लेकिन यह समझ में नहीं आया कि मूर्ति तो आरोपित देव हैं, नहीं हैं वे सच्चे महावीर! और महाराज आप भी आरोपित हैं। यानी गुरु भी आरोपित, देव भी आरोपित और धर्म भी आरोपित! पुस्तक में लिखे जाने के बाद, वह आरोपित धर्म कहलाता है और 'ज्ञानी पुरुष' का सीधा सुने वह सत्‌धर्म कहलाता है। 'ज्ञानी पुरुष', वे सद्‌गुरु कहलाते हैं और वे कैसे होते हैं? सामने वाले को खुद का 'शुद्धात्मा' प्राप्त करवाएँ ऐसे होते हैं, और 'शुद्धात्मा', वे सत्‌देव कहलाते हैं। और 'ज्ञानी पुरुष' के मुँह से जो वाक्य निकलें, उतने ही सत्‌धर्म। जो मोक्ष दिलाए, वही सत्‌धर्म है। बाकी सब तो आरोपित धर्म कहलाते हैं। सत्‌धर्म कैसा होता है? सत् और असत् को निरंतर अलग ही रखे, वह। और आरोपित धर्म में तो शुभाशुभ होता है। ऐसा करो और वैसा करो, जप करो और तप करो, फलाँ करो। हम पूछें कि 'आरोपित क्यों करवा रहे हो? आत्मा का करवाओ न?' तो वे कहेंगे कि, 'आत्मा का तो आत्मा प्राप्त होने के बाद ही करना होता है। अभी तो यह करो', ऐसा कहेंगे।

हम पूछें कि, 'ये सत्‌देव हैं?' अरे! नहीं हैं ये सत्‌देव। सभी इस आरोपित देव को सत्‌देव मान बैठे हैं। पूरी बात ही आरोपित हैं!

सच्चे सत्‌देव, सत्‌धर्म और सद्‌गुरु मिल जाएँ तो काम हो जाएगा! एक घंटा ही मिल जाएँ, तो भी काम निकाल दें। एक घंटा ही यदि ये तीन चीज़ें मिल जाएँ, तो ठेठ तक का काम निकाल दें!

मूर्तिधर्म : अमूर्तधर्म

प्रश्नकर्ता : आत्मा जगाने के लिए मूर्ति की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : मूर्ति की बहुत ज़रूरत है। भगवान ने साफ-साफ कहा है कि सत्‌देव, सत्‌धर्म और सद्‌गुरु की ज़रूरत है। लेकिन जब तक समकित नहीं हुआ है, सच्चे सत्‌देव, सत्‌धर्म और सद्‌गुरु प्राप्त नहीं हुए हैं, तब तक व्यवहार के देवताओं की ज़रूरत है। 'स्वरूप ज्ञान होने के बाद निश्चय के देवता की ज़रूरत है। फिर कोई कहे कि देवता की ज़रूरत नहीं है तो वह नहीं चलेगा। व्यवहार के देवता मूर्ति स्वरूप से हैं, निश्चय के देवता अमूर्त हैं।

प्रश्नकर्ता : मूर्ति आत्मा का कल्याण नहीं कर सकती?

दादाश्री : जब तक आत्मा का भान नहीं हुआ है, तब तक मूर्ति के पीछे पड़ो, वह मूर्ति समकित तक ले जाएगी। मूर्ति का तिरस्कार मत करना, क्योंकि वीतरागों के नाम पर हैं। वहाँ वीतरागों की स्थापना हुई है और मूर्ति के पीछे शासन देवी-देवता रहे हुए हैं।

एक संप्रदाय के महाराज मिले थे। उनसे मैंने कहा, 'महाराज एक बात कहूँ? आपको पसंद आएगी? आपको नापसंद हो ऐसी बात कहूँ? आप त्यागी बन गए हैं तो नापसंद बात सुनने की शक्ति उत्पन्न हो चुकी है आप में?' तब महाराज ने कहा, 'कहो न बात? बात में क्या हर्ज है?' इसलिए फिर मैंने महाराज से कहा, 'महाराज यह मुँहपत्ती

किसलिए रखी है? कषाय जाने के बाद की क्रिया है यह, और वह तो सहज क्रिया है। और कषाय जाने के बाद ही आप मूर्ति छोड़ सकते हैं। आप मूर्ति को जड़ कहते हैं, उस मूर्ति को जड़ नहीं कहना चाहिए। आप सब भी जड़ ही हैं न? चेतन को जाना नहीं, चेतन को पहचानते नहीं, फिर बचा क्या? यह चेतन आपने कहाँ देखा है? वह आप मुझे बताइए। अमूर्त को पहचाने नहीं, तब तक आप भी मूर्ति ही हैं न! यह नवकार मंत्र मूर्ति है। यह आप बोलते हैं, वह मूर्ति है, और आप भी मूर्ति हैं!'

मूर्ति, वह तो परोक्ष प्रमाण है, परोक्ष भजना है। जब तक मूर्त में बसे हों, तब तक मूर्ति को भजो। जब तक अमूर्त प्राप्त नहीं हुआ, तब तक मूर्ति को जड़ नहीं कह सकते। मूर्ति को जड़ कहने वाला वर्ल्ड में कोई पैदा ही नहीं हुआ है। सिर्फ मुस्लिम ही ऐसा कहते हैं, फिर भी वे पैगंबर साहब या दूसरी सब कब्रों को पूजते हैं। वह भी मूर्ति ही है न? कब्रें भी मूर्ति ही कहलाती हैं। जो-जो आँखों से दिखें, वे सब मूर्तियाँ हैं। मुस्लिम मूर्ति नहीं रखते लेकिन गोख (झरोखा, गवाक्ष) रखते हैं, तो वह भी मूर्ति ही है न! जगत् में जो सब मूर्त है, वही दिखता है, अमूर्त कुछ भी नहीं दिखता।

महाराज से कहा कि, 'आपको चेतन कहाँ पर दिखता है कि इसे जड़ कहते हैं? आपको बुरा लग रहा हो तो महाराज मेरी बात बंद कर दूँ।' तब महाराज ने कहा कि, 'नहीं, बुरा नहीं लग रहा है, लेकिन यह हमारा सिद्धांत हमने ऐसा रखा है न!' तब मैंने कहा, 'महाराज, आपका सिद्धांत आप रखिए, लेकिन लोगों को किसलिए ऐसा उपदेश देते हैं? आपका सिद्धांत हो तो आप स्वतंत्र प्रकार से अपने पास रखिए, लेकिन लोगों को क्यों उपदेश देते हैं? लोगों को ज़रा रास्ते पर आने दीजिए। अनंत चौबीसियाँ चली गईं, फिर भी मूर्तियाँ रखी हुई थीं पहले से ही। क्योंकि बालजीव कहाँ जाएँगे? मूर्तियाँ, वे बालजीवों के लिए हैं। जिन्हें समझ नहीं है, ऐसे बालजीवों के लिए हैं। वे ज्ञानजीवों के लिए नहीं हैं। मूर्ति से तो चित्त एकाग्र होता है।

मूर्ति तो वीतराग भगवान की है और वे लोकमान्य हैं। और साथ में उन पर शासन देवताओं का ज़बरदस्त बल है। वे शासनदेव रक्षण करने वाले हैं। उनकी तरफ उँगली उठाने जैसा नहीं है। भीतर भगवान की स्थापना की हुई है।' फिर कोई महावीर का सिर्फ नाम ही ले तो भी बहुत है क्योंकि वीतराग भगवान का नाम है। किसी इंसान का नाम ले, उससे तो भगवान का नाम ले, वह अच्छा है न? नाम के साथ, भगवान कौन हैं, कैसे हैं, वह जानना है। पहले, काल की विचित्रता के कारण लोगों का गुरु के प्रति महात्म्य कम होता जा रहा था और मूर्ति पर बढ़ता जा रहा था, इसलिए एक आचार्य, गुरु का महात्म्य बढ़ाने और समझाने गए कि जिन लोगों की एकाग्रता मूर्ति में हो गई है, वे भले ही स्थापना में रहें लेकिन गुरु के पास रहें। लेकिन यह तो, मूर्तिपूजा पूरी तरह गायब हो गई और मात्र गुरु पूजन का धार्मिक पंथ बन गया।

अरे! क्या ऐसा कहना चाहिए कि 'जड़ की शोभायात्रा निकाली?' जिस मूर्ति पर लोगों को ज़बरदस्त पूज्य भाव है, क्या उसका तिरस्कार करना चाहिए? लेकिन गुरु के प्रति जागृति रहे उसके लिए आपको मूर्ति हटा देनी पड़ी। लेकिन जिसे मूर्ति के प्रति भी एकाग्रता नहीं हुई, उसके लिए तो मूर्ति ही ठीक है। जिसने अमूर्त को जाना नहीं है, अमूर्त को देखा नहीं है, अमूर्त सुना तक नहीं है, अमूर्त उसके भान में भी नहीं है, वे लोग कहाँ जाएँगे? वे बालजीव कहाँ जाएँगे?

'महाराज, इस मूर्ति को आप जड़ कहते हैं तो आपने देखा हो वैसा एक चेतन मुझे बताइए। आपने चेतन कहाँ देखा कि मूर्ति को जड़ कहते हैं? आप खुद ही जड़ हैं न? आप खुद ही मिकेनिकल आत्मा हैं।'

महाराजने कहा, 'गुरु, वे तो चेतन कहलाते हैं न?'

मैंने कहा, 'ना, इन पाँच इन्द्रियों से जो-जो दिखता है, सुनाई देता है, वह सब अचेतन ही है। यह आप नवकार मंत्र बोलते हैं, वह

भी मूर्ति ही है न? इन वीतराग भगवान की मूर्ति के प्रति तो लोगों के कैसे ग़ज़ब के भाव हैं! इसलिए उन्हें द्वेष से मत देखना।'

महाराज ने कहा, 'लेकिन हमारा सिद्धांत मूर्ति को नहीं मानता।'

मैंने कहा, 'महाराज ज़रा सोचिएगा। मेरी बात गलत हो तो मैं बात को स्वीकार लेता हूँ। आपको दुःख होता हो तो प्रतिक्रमण करते हैं आपका। लेकिन कुछ तो सोचिए। इन बालजीवों को बाद में तो अच्छी तरह चलने दो। आपको जैसा अनुकूल आए वैसा कीजिए। स्थानकवासी तो किसे कहते हैं? जिसे मूर्ति यहाँ (दो भ्रमर के बीच में) पर धारण हो चुकी हो, मानसिक धारणा हो चुकी हो, तब!'

महाराजने कहा, 'मुझे आपकी बात स्वीकार नहीं होती।'

मैंने कहा : 'महाराज, मेरी बात आपको किस तरह मानने में आए? मेरी बात गलत होगी, आपको ऐसा लग रहा है, वह बात मैं भी कबूल करता हूँ। क्योंकि जो व्यक्ति जो चीज़ कर रहा होता है, उसे वह सच ही लगती है। कसाई होता है न, उसे भी वह जो करता है, उसमें पाप है, ऐसा नहीं लगता। क्योंकि जो कार्य करे उसका आवरण आ जाता है, उसमें सत्-असत् का विवेक चला जाता है। फिर क्या हो? जहाँ सत्-असत् का विवेक चला जाए, फिर चाहे कुछ भी करने से, लाख जन्मों तक भी कभी सत्य समझ में नहीं आएगा।' इन गच्छ वाले महाराजों से विनती करके कहता हूँ कि, 'महाराज, क्या आप मोक्ष में जाने के लिए यह तप कर रहे हैं?' अगर बुरा लगे तो गालियाँ देना!

महाराज : 'हाँ। और किसके लिए करते हैं?'

मैंने कहा : ''भगवान ने कहा है कि मोक्ष में जाने के लिए किए जाने वाला तप तो अदीठ होता है, कोई देख नहीं सकता। आपके तप तो व्यायामशाला जैसे हैं। क्या आप 'व्यायाम' करते हो? मोक्ष में जाने के लिए ऐसे तप नहीं होते हैं।'' भगवान ने ऐसे तप के लिए

मना किया है। भगवान ने कहा है कि जब तक देह सहज नहीं होगी, तब तक सहज आत्मा प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब देह सहज होगी या फिर आत्मा सहज हो जाए यानी कि देह और आत्मा दोनों में से एक सहज हो जाए तो दोनों सहज हो जाएँगे। तब जाकर काम होगा।

इन लोगों ने मूर्ति को क्यों हटा दिया? मूर्ति को भजने से प्रमाद आ जाता है। मूर्ति तो डाँटती नहीं है न? मूर्ति ऐसा तो नहीं कहती न कि आपने सामायिक क्यों नहीं की? और गुरु हों, तो डाँटते तो हैं ही। लेकिन यह तो अनर्थ हो गया और मूर्ति को जड़ कहने लगे! मूर्ति, मंदिर सभी की ज़रूरत है। जब तक अमूर्त नहीं मिलें, तब तक यह डोरी छोड़नी नहीं चाहिए। यह तो भारत का साइन्स है! यह तो मूर्ति हो तो मंदिर बनते हैं और मंदिर बनें तो उसे पुजारी-वुजारी सब मिल जाते हैं।

भगवान ने कहा है कि जब तक आर्तध्यान और रौद्रध्यान हों, तब तक मूर्ति के दर्शन करना। क्योंकि तब तक अमूर्त के दर्शन नहीं हो सकते। जो अमूर्त हैं, ऐसे भगवान के दर्शन, शुद्धात्मा के दर्शन नहीं हो पाते।

प्रश्नकर्ता : यह मूर्ति तो पत्थर है, उसके दर्शन से क्या मिलेगा?

दादाश्री : लेकिन वह दूसरे लोगों के लिए काम की हैं न? भगवान ने एकांतिक दृष्टि नहीं रखने को कहा है। सामुदायिक दृष्टि रखो। अनेकांत, मतलब छोटा बच्चा नंगा फिर रहा हो तो उसे कोई नहीं डाँटता, उसे कोई उलाहना नहीं देता लेकिन अगर पचास साल का आदमी नंगा घूम रहा हो तो उसे उलाहना देते हैं। तब अगर वह पचास साल वाला कहे कि 'मुझे क्यों उलाहना दे रहे हो? इस छोटे बच्चे को क्यों नहीं देते?' तब हम उसे कहें कि, 'अरे भाई, तेरी उमर ज़्यादा हो गई है। इस छोटे बच्चे की उमर के अनुसार उसका धर्म ठीक है और तेरी उमर के अनुसार तेरा धर्म गलत है।' इस तरह सभी को सामुदायिक तरीके से देखना ज़रूरी है।

कबीर साहब मुस्लिम मुहल्ले में मस्जिद के पास ही रहते थे। वे लोग बाँग लगाते थे, वे लोग कान में उँगली डालकर पुकारते हैं या नहीं? उसे क्या कहा जाता है? अज़ान। अब उस अज़ान के लिए कबीर साहब ने, वे तो बहुत जाग्रत इंसान थे, उन्होंने कहा, 'अल्लाह कोई बहरे थोड़े ही हैं, जो इतनी ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हो? वह सब सुनता है, वह तो, अगर चींटी के पाँव में झांझर लगा दो, तो वह भी सुन लेगा, तो फिर आप क्यों इतना ज़ोर से चिल्लाते हो? हमारे कानों को बहुत खराब लगता है।' 'हमारे भगवान की, हमारे धर्म की टीका करता है?' ऐसा कहकर मुस्लिम लोगों ने कबीर साहब को खूब मारा।

अब कबीर साहब ने मुझे पूछा होता कि, 'ये तो गलत कर रहें हैं फिर भी मुझे मारा।' तो मैं कहता, 'ये जो करते हैं, वह ठीक है। भूल आपकी है। सामने वाले के व्यू पोइन्ट को जानकर बोलो। सामने वाले का व्यू पोइन्ट जाने बिना बोलना और सब को खुद की एक सरीखी दृष्टि से नापना भयंकर गुनाह है। खुद की एक सरीखी दृष्टि से यानी जैसी मेरी दृष्टि है वैसी ही इनकी होगी, ऐसा मानना, वह सब गुनाह कहलाता है।' फिर कबीर साहब को मैं समझाता कि, 'ये लोग जितना ज़ोर से बोलेंगे उतना ही अंदर पर्दा टूटेगा और तब अंदर अल्लाह सुनेंगे। उनकी इतनी बड़ी मोटी परत, आवरण होता है, और आपकी परत है, वह कपड़े जैसी पतली है। इसलिए आप मन में बात करोगे, तब भी उनको पहुँच जाएगी और इन लोगों के आवरण तो मोटे हैं, इसलिए हुँकारकर जितना ज़ोर से बोला जा सके, उन्हें तो उतना बोलना चाहिए। यह सब उनके लिए ठीक है, करेक्ट है। अब ऐसा अज़ान क्राइस्ट के भक्त लगाएँ तो उनका बिगड़ जाएगा। उन्हें तो बिल्कुल शांति चाहिए। बोलना ही नहीं, शब्द ही नहीं। हर एक की भाषा में अलग-अलग है। यानी वे उनकी भाषा में बात कर रहे हों, और उन्हें हम कहें तो कबीर साहब जैसी दशा हो जाए। जो अनेकांत को नहीं समझते, वे कबीर साहब की तरह मार खाते हैं। खुद, खुद की भूलों की मार खाते हैं।

कबीर साहब बहुत जाग्रत इंसान थे। भक्त तो बहुत सारे हो गए, उनमें भी कबीर जी बहुत-बहुत जाग्रत थे। ऐसे पाँच-सात भक्त हो चुके हैं कि जो बहुत जाग्रत थे, अत्यंत जाग्रत। उन्हें मात्र मोक्षमार्ग नहीं मिलने के कारण अटका हुआ था। उन्हें मार्ग नहीं मिला था। उन्हें यदि मार्ग मिल गया होता तो बहुत कुछ काम निकाल लेते, ऐसे थे वे!

कबीर साहब के समय में ब्राह्मण गाँव में यज्ञ कर रहे थे। उन्होंने यज्ञ में बलि देने के लिए बड़ा बकरा लाकर खड़ा किया था। कबीर जी ने यह देखकर ब्राह्मणों से कहा, 'आपने यह बकरा यहाँ पर क्यों खड़ा रखा है?' तब ब्राह्मणों ने कबीर जी से कहा, 'तू क्यों यहाँ आया है? चला जा यहाँ से। तुझे इससे क्या मतलब है?' तब कबीर जी समझ गए और बोले, 'यह बकरा जीवित है, अच्छा है। इसे किसलिए आप यज्ञ में होम रहे हो? इसे कितना अधिक दुःख होगा?' तब ब्राह्मणों ने कहा, 'इसे यज्ञ में होम देंगे, तो उससे इसे स्वर्ग मिलेगा।' तब कबीर जी फट से बोले, 'इस बकरे को क्यों स्वर्ग में भेज रहे हो? इसके बदले तो आपके पिता जी बूढ़े हो गए हैं, उन्हें यज्ञ में होम दो न ताकि उन्हें स्वर्ग मिले!' अब यह कैसा सिर घुमा दे ऐसा वाक्य है! उन ब्राह्मणों ने खूब मारा उन्हें, यानी हर कहीं पर मार खाते थे। जो भगवान का अनेकांत समझे बिना बोले, वह हर कहीं पर मार खाता है! बाकी, कबीर जी जैसा भगत तो कोई हुआ ही नहीं! बहुत सुंदर में सुंदर! जिसने जगत् की स्पृहा ही छोड़ दी थी। जगत् के किसी विषय की स्पृहा उन्हें नहीं थी, ऐसे निस्पृह हो गए थे।

अंग्रेज शांति से चर्च में खड़े रहते हैं, वह करेक्ट है। मुस्लिम अज़ान देते हैं, वह भी करेक्ट है और हिन्दू मन में धीरे-धीरे बोलते हैं, वह भी करेक्ट है। कोई हिन्दू ज़रा जोर से बोल रहा हो या बिल्कुल नहीं बोल रहा हो, जड़ जैसा हो उसे कहना कि, 'ज़रा जोर से बोलना।' ज़रा जड़वत् जैसा हो तो उसे कहना कि, 'अरे! नवकार मंत्र मन में क्या गाता रहता है? बोल ज़ोर से ताकि यहाँ पर आवाज़ हो, भीतर घंट बजें ऐसा बोल।' यानी हर एक की दवाई अलग-अलग होती है।

मनुष्य मात्र को अलग-अलग रोग होते हैं, उनकी अलग-अलग दवाइयाँ होती हैं। जीव मात्र को अलग-अलग रोग होते हैं। अब आप कहो कि इन सभी को उल्टी की दवाई दे दो दादा, तो क्या होगा?! यानी यह जगत् ऐसा है, इसलिए भगवान ने अनेकांत रखा हुआ है, स्याद्वाद, ताकि किसी जीव के साथ मतभेद ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : मंदिर में घंट रखने का अर्थ क्या है?

दादाश्री : मूर्ति को घंट की कोई ज़रूरत ही नहीं है। दर्शन करने आने वाले का चित्त एकाग्र हो, उसके लिए घंट है। बाहर का कोलाहल सुनाई न दे। धूप, अगरबत्ती, वगैरह भी, एकचित्त, एकध्यान हो जाए, उसके लिए होता है।

जिनमुद्रा

वीतराग क्या कहते हैं? हम कुछ भी स्वीकार नहीं करते हैं और तू जो देगा वह तुझे रिटर्न विथ थेन्क्स। तू चार आने डालेगा तो तुझे अनेक गुना मिलेगा। फूल चढ़ाएगा तो अनेक गुना फूल मिलेंगे और गालियाँ देगा तो वे भी तुझे अनेक गुना मिलेंगी। एक बार वीतराग के लिए मन-वचन-काया की एकता से खर्च करके तो देख! इन वीतरागों की ही ऐसी मूर्ति होती है, और किसी की ऐसी मूर्ति देखी है? यह तो वीतराग मुद्रा कहलाती है! जैसी जिनकी मूर्ति, वैसा उनका डेवेलपमेन्ट।

वीतराग भगवान की मूर्ति क्या कहती है? यदि तुझे मोक्ष में जाना हो तो इस एक जन्म के लिए हाथ-पैर समेटकर बैठे रहना यानी कि, मशीनरी बंद करके बैठे रहना फिर भी तेरा सबकुछ चलेगा, ऐसा है!

मूर्ति में देखने जैसा क्या है? क्या पत्थर देखने जैसा है? आँखे देखने जैसी हैं? यह तो आंतरिक भाव लाने के लिए हैं कि यह भगवान महावीर की मूर्ति है! कैसे थे भगवान महावीर! कैसे वीतरागी! अभी तो अब आंतरिक भाव नहीं हो पाते, इसलिए फिर मूर्ति पर आँगी की!

उस सुंदर आँगी से चित्त एकाग्र होता है, और फिर भी चित्त एकाग्र नहीं हो तो घंटे बजाते हैं ताकि बाहर से गीत आ रहे हों या झगड़ा हो रहा हो, फिर भी चित्त वहाँ पर नहीं जाए। और फिर धूप जलाते हैं, उस सुगंध में तन्मयाकार रहते हैं। यह तो किसी भी रास्ते पाँच इन्द्रियों को यहाँ एकाग्र रखते हैं। जिससे कि सेकन्ड के छोटे से छोटे भाग में भी एकाग्र रहे, तब भी उतना तो कमाया न!

यह तो क्या कि ज़रा कहासुनी हो जाए, अरे कोई धूल उड़ाए तो भी लोग इकट्ठे हो जाते हैं! किसलिए? कहीं भी चित्त एकाग्र नहीं होता है, इसलिए जब कुछ नया देखने जैसा मिले तो चित्त एकाग्र होता है। यह तो भगवान की मूर्ति के पास भी चित्त एकाग्र नहीं हो पाता तो और कहाँ पर चित्त एकाग्र होगा? अंदर अत्यंत जलन है। इसलिए कहीं भी एकाग्रता नहीं हो पाती। यह तो, अड़ियल घोड़े के पास बंदूकची पटाखा फोड़ता है, लोग वैसे हो गए हैं! करुणा रखने लायक लोग हैं। इसलिए सिर्फ करुणा रखने जैसा है!

प्रतिमा में प्राण डालें ज्ञानी

प्रश्नकर्ता : मंदिरों में मूर्तियों में प्राण प्रतिष्ठा की जाए तो क्या मूर्तियों की शक्ति बढ़ जाती है?

दादाश्री : हाँ, बढ़ती है न। हुक्के में प्राण प्रतिष्ठा करूँ, तब उसमें भी शक्ति बढ़ जाए और मूर्ति में तो सभी लोगों के आरोपित भाव हैं। वहाँ प्राण प्रतिष्ठा करने से फल देती है। लेकिन इस काल में सच्ची प्राण प्रतिष्ठा होती नहीं है। 'हम' सच्ची प्राण प्रतिष्ठा करते हैं, लेकिन उदय के बिना 'हम' नहीं करते। लोगों का कल्याण हो, उसके लिए हम प्रतिष्ठा करते हैं। लोगों में जितनी शक्ति होती है, उसके अनुसार प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। और ये कैसे भाव से प्रतिष्ठा करते हैं? कलुषित भाव से। कलुषित भाव निकले नहीं होते और प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। अंदर ग़ज़ब का कलुषित भाव हाज़िर रहता है। छेड़ा जाए तो फन फैलाते हैं, ऐसी प्रतिष्ठा करेंगे तो कैसा फल देगी? प्राण प्रतिष्ठा

करने का अधिकार किसे हैं? जिनके कलुषित भाव पूर्ण रूप से निकल गए हैं, उतना ही नहीं लेकिन उनके निमित्त से किसी को भी कलुषित भाव नहीं होता हो। वे तो 'पंच परमेष्टि' में गिने जाते हैं, और ऐसे व्यक्ति के हाथों से प्राण प्रतिष्ठा होनी चाहिए। फिर भी, 'मामा हों ही नहीं उसके बजाय तो मुँह बोले मामा अच्छे।' बाकी, प्रतिष्ठा तो ऐसी होनी चाहिए कि मूर्ति बोल उठे, हँस उठे! हम जहाँ-जहाँ प्रतिष्ठा करते हैं, वहाँ-वहाँ मूर्ति बोल उठती है, हँस उठती है! हमारी इच्छा तो बहुत होती है कि सभी जगह मंदिरों में प्रतिष्ठा हो, लेकिन सत्ता हमारी नहीं है न? 'व्यवस्थित' के हाथ में है सब, इसलिए हम उदय के अनुसार करते हैं।

यह आपके अंदर भी 'हमने' प्रतिष्ठा ही की है। इसीलिए तो आप 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा बोल उठते हो! मूर्ति में प्रतिष्ठा 'ज्ञानी पुरुष' करते हैं। जड़ मूर्ति में 'ज्ञानी पुरुष प्रतिष्ठा करें तब भी फल देती है, तो जीवंत मूर्ति में प्रतिष्ठा करें तो क्या फल नहीं देगी?

यह सभी तो तालियाँ बजाएँगे और भगवान को 'तू' और 'मैं' गाएँगे और यदि मूर्ति को भजेगा तो मूर्ति मिलेगी। देह अच्छी मिलेगी, मोटर, बंगले मिलेंगे, लेकिन जब तक अमूर्त के दर्शन नहीं हो जाएँ, 'ज्ञानी पुरुष अमूर्त के दर्शन नहीं करवा दें, तब तक मूर्ति की उपासना करना, और जब अमूर्त की उपासना करेगा तब मोक्ष होगा। मूर्ति की उपासना तो अनंत जन्मों से करते ही आए हैं न? 'ज्ञानी पुरुष में तो अमूर्त है और मूर्ति भी है। 'ज्ञानी पुरुष मूर्तामूर्त हैं, इसलिए उनकी उपासना करने से मोक्ष होता है!

अक्रममार्ग : ग्यारहवाँ आश्चर्य!

मोक्षप्राप्ति के लिए दो मार्ग हैं:

प्रथम 'क्रमिक मार्ग। उसमें क्रमपूर्वक त्याग करते-करते आगे बढ़ना है, सीढ़ी दर सीढ़ी ऊपर चढ़ना है। दूसरा है 'अक्रम मार्ग'। यह दस लाख सालों में प्रकट होता है, जो वर्ल्ड का आश्चर्य है! लिफ्ट में बैठकर मोक्ष में जा सकते हैं। उसमें ग्रहण या त्याग कुछ भी नहीं होता। वह बिना मेहनत का मोक्षमार्ग है, लिफ्ट मार्ग है। जो महापुण्यशाली हैं, उनके लिए 'यह' मार्ग है। इसमें तो ज्ञानी मुहर लगाएँ और मोक्ष हो जाता है। 'यह' तो नकद मार्ग है, उधार कुछ भी नहीं रखते। नकद चाहिए, वैसा 'यह' नकद मार्ग प्रकट हुआ है। दिस इज़ द ऑन्ली कैश बैंक इन द वर्ल्ड।

'क्रमिक मार्ग में सत्संग मिला हो तो पाँच सौ सीढ़ियाँ चढ़ जाता है और एकाध कुसंग से हज़ार सीढ़ियाँ उतर भी पड़ता है। उसमें ठिकाना नहीं है, अत्यंत कष्ट पड़ते हैं और यह 'अक्रम मार्ग तो सेफसाइड मार्ग है। लिफ्ट में से गिरने का भय ही नहीं है और संसार में रहकर मोक्ष में जाया जा सकता है। चक्रवर्ती भरत राजा गए थे उस तरह से, लड़ाइयाँ लड़ते हुए, राज्य भोगते हुए मोक्ष!

ऋषभदेव दादा भगवान के सौ पुत्र, उनमें से निन्यानवे को उन्होंने दीक्षा देकर मोक्ष दिया था। सब से बड़े पुत्र, वे भरत चक्रवर्ती। उन्हें राज्य चलाने के लिए सौंपा। भरत राजा तो लड़ाइयाँ लड़ते-लड़ते और

महल में तेरह सौ रानियों से ऊब गए। वे भगवान के पास गए और उन्होंने भी दीक्षा माँगी और मोक्ष माँगा। भगवान ने कहा कि, ''यदि तू भी राजपाट छोड़ देगा तो फिर राज्य कौन संभालेगा? इसलिए तुझे तो राज्य संभालना पड़ेगा, लेकिन साथ-साथ मैं तुझे ऐसा 'अक्रमज्ञान' दूँगा कि लड़ाइयाँ लड़ते हुए, राज्य भोगते हुए और तेरह सौ रानियों के साथ रहकर भी तेरा मोक्ष नहीं जाएगा।'' तो वैसा अद्‌भुत ज्ञान दिया! वही 'अक्रमज्ञान'। वही ऋषभदेव दादा भगवान का ज्ञान 'हम' आपको घंटे भर में ही नकद दे देते हैं। फिर आपको अपना संसार व्यवहार चलाना, बच्चों की शादी करवानी, सभी करना है। पुराना कुछ भी छोड़ना नहीं है या नया ग्रहण नहीं करना है। छोड़ने की चीज़ हम आपसे छुड़वा देते हैं, अहंकार और ममता छुड़वा देते हैं और 'शुद्धात्मा' ग्रहण करवा देते हैं। फिर त्याग-ग्रहण किसी भी चीज़ का, कुछ करना बाकी नहीं रहता। 'मैं चंदूलाल', वह अहंकार उठा लेते हैं और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह ग्रहण करवाते हैं। बस, इसमें ग्रहण-त्याग सभी आ जाता है!

भरत राजा को तो चौबीसों घंटों के लिए नौकर रखने पड़ते थे। वे हर पंद्रह मिनट बाद घंट बजाकर कहते थे, 'भरत सावधान, सावधान, सावधान।' ताकि यदि भरत राजा ग़ाफ़िल हो गए हों तो उसे सुनकर वापस जागृत हो जाएँ। जबकि आज तो आप ही डेढ़ सौ की नौकरी करते हो, वहाँ आपको वैसा नौकर किस तरह पुसाए? इसलिए 'हम' आपके भीतर ही चौबीसों घंटे का नौकर बिठा देते हैं! वह आपको प्रतिक्षण सावधान करता रहता है! हम अंदर ऐसी प्रज्ञा बिठा देते हैं कि निरंतर ज्ञान और अज्ञान को अलग-अलग ही करती रहती है।

'मैं कौन हूँ' वह समझ में नहीं आता। अस्तित्व का भान है, लेकिन वस्तुत्व का भान नहीं है कि मैं कौन हूँ। लेकिन यदि वस्तुत्व का एक अंश भी भान हो जाए तो पूर्णत्व तक पहुँचे। वस्तु सहज है। मार्ग सरल है। लेकिन ज्ञान के लिए 'ज्ञानी' का निमित्त चाहिए और तभी ज्ञान प्राप्त होता है। 'ज्ञानी' खुद छूट चुके होते हैं और छुड़वाने में सक्षम होते हैं, वे तरणतारण कहलाते हैं। और इस काल में यह

'अक्रम मार्ग, वह तो ग़ज़ब का कुदरती ही प्रकट हो गया है! यह तो लिफ्ट मार्ग निकला है! इसलिए पकोड़ियाँ और जलेबियाँ खाते हुए, तप-त्याग किए बगैर निरंतर मोक्षसुख में ही रहा जाता है। 'क्रमिक मार्ग' में क्रमानुसार तप-त्याग करते-करते, अहंकार को शुद्ध करते-करते आगे बढ़ना है। अहंकार को इतना अधिक शुद्ध करना है कि मान दे तो भी छूए नहीं। जब अहंकार इतना शुद्ध हो जाए तब आत्मा प्राप्त होता है। अहंकार शुद्ध करते-करते इतना अधिक शुद्ध हो जाता है कि शुद्ध अहंकार और शुद्ध आत्मा दोनों एकाकार हो जाते हैं! मान और अहंकार ये दो अलग चीज़ें हैं। स्वक्षेत्र में, 'खुद' जहाँ है खुद को वहाँ माने, वह अहंकार नहीं है। जहाँ खुद का अस्तित्व नहीं है वहाँ 'मैं हूँ' मानना, वह अहंकार कहलाता है। जब क्रोध-मान-माया-लोभ एक भी नहीं रहे, तब अहंकार संपूर्ण शुद्ध हो जाता है। 'क्रमिक' में त्याग करते-करते अगले पद का उपादान करते हैं और पिछले पद का त्याग करते जाते हैं। क्रमिक में ये दोनों साथ में ही रहते हैं और त्याग करते हैं, तब भी फिर अहंकार तो रहता ही है! और फिर 'मैंने त्याग किया', उसका कैफ़ चढ़ता है। पूरा जगत् जिस मार्ग पर चला है, वह 'क्रमिक मार्ग' है। स्टेप बाइ स्टेप जाना है उसमें, और उसमें कुछ छोड़ते जाना और कुछ ग्रहण करना होता है। और उसमें कोई कुसंग मिले तो केन्टीन में ले जाएगा और कहेगा, 'चलो, मैं पैसे खर्च करूँगा।' वह खुद के पैसे खर्च करके केन्टीन में ले जाता है! ऐसा जोखिम वाला है 'क्रमिक मार्ग'। इसीलिए तो यह अनंत जन्मों से भटक मरे हैं!

हम यहाँ सभी महात्माओं में अहंकार देखते हैं, लेकिन वह ड्रामेटिक होता है, क्योंकि 'फाइलें' रही हैं, उनका *निकाल* करना पड़ता है। इसलिए चंदूलाल का ड्रामा रहा। नफा हो तो असर नहीं और नुकसान हो तब भी असर नहीं। मात्र चंदूलाल का नाटक समभाव से पूरा करके छूट जाना है।

'क्रमिक मार्ग' में आरंभ और परिग्रह, अहंकार और ममता कम करते-करते जाना होता है। त्याग करें, तब परिग्रह कम होता है और

उससे ममता कम होती है। ऐसे आगे बढ़ते जाना और अंत तक यदि कुसंग प्राप्त नहीं हो तो ठेठ तक पहुँच जाता है! नहीं तो एक ही कुसंग फिर कितनी ही सीढ़ियाँ उतार देता है! 'क्रमिक मार्ग में तो अंतिम जन्म तक आरंभ-परिग्रह रहता है, लेकिन जितना आरंभ-परिग्रह कम होता जाए उतने अंशों में क्रोध-मान-माया-लोभ कम होते जाते हैं। फिर भी, अंदर बेचैनी रहा करती है, ठेठ तक रहा करती है। और 'अक्रम मार्ग' में क्रोध-मान-माया-लोभ रहते ही नहीं और फिर भी जो असर दिखाई देता है, वह क्रोध नहीं है, वह तो प्रकृति की उग्रता का गुण है। उसमें आत्मा एकाकार हो, 'तन्मयाकार हो जाए तो वह क्रोध कहलाता है। दोनों मिल जाएँ उसके बाद सुलगता है। और 'हमने' आपको जो आत्मा दिया है वह अलग ही रहता है। इसलिए उग्रता का तूफान आदि सब होता है, लेकिन तंत नहीं रहता। जिसमें तंत नहीं रहे, उसे क्रोध नहीं कहा जाता।

लोभ, वह परमाणुओं का आकर्षण और विकर्षण का गुण है, प्रकृति का आकर्षण और विकर्षण का गुण है। उसमें आत्मा एकाकार हो जाए तो राग-द्वेष हैं और यदि आत्मा एकाकार नहीं हो तो लेना नहीं और देना भी नहीं! अपने शरीर में इलेक्ट्रिकल बॉडी है, इसलिए लोहचुंबकत्व रहता है और इसलिए लोहचुंबकत्व के कारण यह देह खिंचती है। उसे वह कहता है, 'मैं खिंचा!' तेरी इच्छा नहीं फिर भी तू क्यों खिंच जाता है?

'हम' स्वरूप का ज्ञान दें, उसके बाद फिर क्रोध-मान-माया-लोभ रहते ही नहीं हैं। लेकिन आपको यहाँ पर उन्हें पहचान लेना पड़ेगा! क्योंकि जो निर्मल आत्मा आपको दिया है, वह कभी भी तन्मयाकार नहीं होता है। फिर भी खुद को समझ नहीं आने से खुद का व्यक्तित्व छोड़ने से, थोड़ी दखल होने से बखेड़ा खड़ा हो जाता है। 'जगह' छोड़ने से ही बखेड़ा होता है। ''खुद का स्थान नहीं छोड़ना चाहिए। 'खुद का स्थान' छोड़ने से नुकसान कितना है कि, 'खुद का सुख' रुक जाता है और दखल जैसा लगता है। लेकिन 'हमारा' दिया

हुआ आत्मा, ज़रा सा भी इधर-उधर नहीं होता, वह तो वैसे का वैसा ही रहता है, प्रतीति के रूप में!

यह 'ज्ञान' देने के बाद *ताँता* गया, तंत गया। तंत को ही क्रोध-मान-माया-लोभ कहते हैं। जिसका तंत गया उसका क्रोध-मान-माया-लोभ सबकुछ गया! क्योंकि हम उसका आधार ही निकाल देते हैं। इसलिए वे सभी निराधार हो जाते हैं। भगवान क्या कहते हैं कि, 'जगत् किस आधार पर खड़ा है?' अज्ञान के आधार पर जगत् खड़ा है। क्रियाएँ अच्छी हैं या बुरी? तो भगवान कहते हैं कि, 'क्रियाएँ अच्छी भी नहीं हैं और बुरी भी नहीं हैं। लेकिन अज्ञान यदि निकल जाए तो बाकी का सब भी गिर जाएगा। तू अच्छी आदतों को रखने का प्रयत्न करेगा और बुरी आदतों को निकालता रहेगा। लेकिन वे अच्छी और बुरी आदतें उनके खुद के आधार पर नहीं खड़ी हैं, अतः उनके आधार को अगर निकाल दिया जाए तो वे अच्छी और बुरी आदतें अपने आप झड़कर गिर जाएँगी।' इस जगत् के लोग अच्छी आदतों को आधार देते रहते हैं और बुरी आदतों को निकालते रहते हैं, यानी कि आधार तो रहा ही। और जब तक आधार रहे तब तक संसार है। और इस संसार में तो अनंत चीज़ें हैं। अगर वह 'खुद' नहीं हटेगा तो एक-एक चीज़ को कब तक हटाता रहेगा? लेकिन आधार गया तो सबकुछ गया। घर में बारह व्यक्तियों में से कमाने वाला मर जाए तो लोग कहेंगे कि हमारा आधार गया। इस 'निश्चय' में भी ऐसा ही है। इस संसार में एक-एक बाल का लुंचन करें, तब भी कुछ हो सके ऐसा नहीं है। अनंत चीज़ें हैं। तो इसके बजाय तो तू ही खिसक जा न! फिर सिर पर बाल हों या गंजा हो, फिर भी उसमें क्या हर्ज है?

इस 'अक्रम मार्ग' में पहले अज्ञान को निराधार किया जाता है। इसलिए मैं कहाँ आपको कुछ छोड़ने का कहता हूँ? 'क्रमिक' में 'ज्ञानी पुरुष' सारी ज़िंदगी में दो शिष्यों से त्याग करवा सकते हैं! और साथ-साथ उसे खुद को भी त्याग करना पड़ता है। नई सीढ़ी ग्रहण करनी होती है और पुरानी का त्याग करना होता है। और यहाँ अक्रम में तो

आत्मा ग्रहण करना था, सो हो गया और अहंकार और ममता का त्याग हो गया। और काम हो गया! न तो *केश लुंचन* या न ही तप-त्याग या उपवास! 'क्रमिक मार्ग' में वह खुद तप का आधार बनता है! और उसमें 'मैं' और 'शुद्धात्मा' अलग होते हैं। किसी ने उनके शास्त्र के पन्ने फाड़ दिए हों तो उन्हें अंदर खेद हो जाता है कि 'इसने मेरी किताबें फाड़ डालीं!' बाहर तो, सब के सामने (ज़ाहिर में) तो ज्ञानी हों, वैसा पद रखते हैं लेकिन अंदर सूक्ष्म रूप से 'मैं-पन' बरतता रहता है। उनमें 'मैं' और 'शुद्धात्मा' अलग रहते हैं। उन्हें ठेठ तक 'मैं' रहता है। वह 'क्रमिक मार्ग क्या है? अहंकार को शुद्ध करो। विभाविक अहंकार है, उसे शुद्ध करना होता है उन्हें।

खुद मुक्त ही है, लेकिन उसे भान नहीं हो पाता। यह तो रोंग बिलीफ़ और रोंग ज्ञान है और इसलिए रोंग वर्तन होता है। राइट ज्ञान-दर्शन खुद अपने आप नहीं हो सकता और उसमें भी यह रोंग बिलीफ़ तो किसी भी प्रकार से टूटती नहीं है। उसके लिए तो साइन्टिस्ट चाहिए, 'ज्ञानी पुरुष' चाहिए और वे संपूर्ण 'ज्ञानी पुरुष' भी फिर संपूर्ण होने चाहिए तभी अपना काम हो सकता है।

वीतराग भगवान ने, जिसे शोर्ट मार्ग चाहिए उसे शोर्ट मार्ग बताया और जिसे लोंग मार्ग चाहिए, उसे लोंग मार्ग बताया है और जिसे देवगति चाहिए, उसे वह मार्ग बताया है। मोक्ष का मार्ग तो खिचड़ी बनाने से भी अधिक आसान है। जो कठिन हो, कष्टसाध्य हो तो वह मोक्ष का मार्ग ही नहीं है, अन्य मार्ग है। 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ, तभी मोक्ष का मार्ग आसान और सरल हो जाता है। खिचड़ी बनाने से भी आसान हो जाता है। करोड़ों योजन लंबा, करोड़ों जन्मों में भी प्राप्त नहीं हो, ऐसा मोक्षमार्ग एकदम शोर्टकट रूप में प्रकट हुआ है! यह 'ज्ञान' तो, उन्हीं वीतरागों का है, सर्वज्ञों का है। मात्र तरीक़ा ही 'अक्रम' है। दृष्टि ही पूरी बदल जाती है। घंटे भर में ही आत्मा का लक्ष्य बैठ जाता है। नहीं तो क्रमिक मार्ग में कोई ठेठ तक लक्ष्य प्राप्त नहीं करता है। आत्मा का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए लोगों ने कैसे-कैसे पुरुषार्थ

किए हैं! एक क्षण के लिए भी आत्मा का लक्ष्य प्राप्त हो जाए, उसके लिए लोगों ने भयंकर तप किए थे। 'क्रमिक मार्ग' के ज्ञानियों को 'शुद्धात्मा' का लक्ष्य अंत तक नहीं बैठता, लेकिन जागृति बहुत रहती है। जबकि आप सब को अभी यहाँ पर कितना सरल हो गया है कि आपको घंटे भर में आत्मा दिया, उसके बाद कभी भी चूकते नहीं हैं और निरंतर आत्मा लक्ष्य में ही रहता है।

'रात को दो बजे नींद में से उठते हो, तब माँ जी आपको सब से पहले कौन सी चीज़ याद आती है?'

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', यही याद आता है।

दादाश्री : नहीं तो लोगों को तो इस जगत् की कोई भी सब से प्रिय चीज़ हो, वही पहले याद आती है लेकिन आपको तो 'शुद्धात्मा' ही पहले याद आता है। अलख का कभी भी लक्ष्य नहीं बैठता है। इसीलिए तो आत्मा को अलख निरंजन कहा है! लेकिन यहाँ एक घंटे में आपको लक्ष्य बैठ जाता है! यह 'अक्रम-ज्ञानी' की सिद्धियाँ-रिद्धियाँ, देवी-देवताओं की कृपा, उन सब के कारण एक घंटे में ग़ज़ब का पद आपको प्राप्त हो जाता है!

खरा मोक्षमार्ग प्रकट हुआ है। लेकिन अगर समझ में आए तो काम हो जाए, और समझ में नहीं आया तो भटक मरा!

वह 'क्रमिक विज्ञान' है और यह 'अक्रम विज्ञान' है। यह ज्ञान तो 'वीतरागों' का ही है। 'ज्ञान' में फर्क नहीं है। हम 'ज्ञान' देते हैं, उसके बाद आपको आत्मानुभव हो जाता है, फिर क्या काम बाकी बचा? 'ज्ञानी पुरुष' की आज्ञा पालनी है। आज्ञा वही धर्म और आज्ञा वही तप। और 'हमारी' आज्ञा संसार में बिल्कुल भी बाधक नहीं होती। संसार में रहने के बावजूद भी संसार स्पर्श नहीं करे, ऐसा यह अक्रम विज्ञान है।

अपने यहाँ पर 'यह' 'अक्रम मार्ग' बहुत आसान, सरल, छोटा सा और भगवान के एक-एक शब्द जिसमें समाये हैं, ऐसा है! नकद

मोक्षमार्ग है, इसलिए आपसे जितना इसके पीछे पड़ा जा सके उतना कम है, ऐसा समझना। नहीं तो मन की ग्रंथियाँ विलय हो जाएँ, ऐसा रास्ता तो कहीं होता होगा? मन को स्थिर किया जाए ऐसे रास्ते तो बाहर होते हैं, लेकिन वह विलय नहीं हो पाता। मन को स्थिर करने की दवाई एकाग्रता है, लेकिन उससे अहंकार बढ़ता है। अपने यहाँ तो मन स्थिर हो जाता है, ग्रंथियाँ पिघलती हैं और अहंकार का बीच में दखल ही नहीं न! जैसे अहंकार को पेन्शन नहीं दे दिया हो, वैसा!

'क्रमिक मार्ग' में तो कुछ भाता हो और अधिक खा जाएँ तो उपाधि और हमें तो कोई उपाधि ही नहीं है न! और हमें तो धर्म, धर्म बनकर परिणामित होता है और अंदर सुख छलकता है।

अपने यहाँ तो गुरु-शिष्य का भेद रखा ही नहीं है। आपको हमारे साथ ही बैठाया है। निश्चय से बारहवें गुणस्थानक में हमारे साथ ही बैठाया है और वह भी शुक्लध्यान में। अपना यह किस आधार पर निश्चय से बारहवाँ गुणस्थानक कहलाता है? क्योंकि शुक्लध्यान उत्पन्न हुआ है! शुद्धात्मा का लक्ष्य बैठ गया है! शुद्धात्मा का लक्ष्य बैठना और प्रतीति बैठनी, उसे शुक्लध्यान कहा जाता है। 'क्रमिक मार्ग' में प्रतीति के जाले बनते हैं और थोड़ी प्रतीति बैठती है। प्रतीति बैठे और जब वह पूर्ण हो जाए तब क्षायक समकित होता है और तब 'शुद्धात्मा' का लक्ष्य बैठता है, जबकि इस अक्रम मार्ग में तो पहले लक्ष्य बैठा देते हैं और उसके बाद प्रतीति तो रहती ही है! यह 'अक्रम मार्ग' है न, इसीलिए लक्ष्य पहले बैठ जाता है। 'क्रमिक मार्ग' में तो जिसे प्रतीति बैठी हुई हो, उसे भी शुक्लध्यान नहीं रहता। क्योंकि इस काल में 'क्रमिक मार्ग' में कोई सातवें गुणस्थानक से आगे नहीं जा सकता।

'अक्रम मार्ग में 'ज्ञानी पुरुष क्षायक समकित का तंत डाल देते हैं, इसलिए उन कषायों का तंत नहीं रहता। 'यह' (समकित का) तंत हो तो वह (कषायों का) नहीं रहता और वह तंत हो तो 'यह' नहीं रहता!

'क्रमिक मार्ग' में पहले *गाढ़* समकित, शुद्ध समकित होता है

और उसके बाद दो भाग पड़ जाते हैं। दर्शन मोहनीय बंद हो जाता है और फिर व्यवसाय आदि सब रहता है। वह चारित्र मोहनीय रहता है। उस चारित्र मोहनीय को खपाता रहता है। लेकिन अभी तो ये लोग क्या करते हैं? दर्शन मोहनीय निकाले बिना चारित्र मोहनीय को मारकर निकालना चाहते हैं, वह किस तरह जाए?

अपने यहाँ पर 'अक्रम मार्ग' में चारित्र मोहनीय का निकाल करते हैं। हम 'ज्ञान' देते हैं, तब दर्शन मोहनीय उड़ा देते हैं और चारित्र मोहनीय को नीरस कर देते हैं और उससे नया रस उत्पन्न नहीं होता और नया दर्शन मोह रहता ही नहीं। रस उत्पन्न होता है इसीलिए तो दर्शन मोहनीय खड़ा है, नीरसता की वजह से चार्ज बंद होता है।

'क्रमिक' वालों को चारित्र मोहनीय नीरस करना पड़ता है। इसीलिए तो भारी तप-त्याग करने पड़ते हैं। उससे चारित्र मोहनीय नीरस हो जाता है। 'क्रमिक' वालों को उसके लिए बाह्य तप करने पड़ते हैं। जबकि अपने यहाँ 'अक्रम' में आंतरिक तप होता है। उससे हृदय तपकर 80 डिग्री, 85 डिग्री, 90 डिग्री, 95 डिग्री पर पहुँच जाता है और उसे हम जानते हैं कि 99 डिग्री से आगे बढ़ने वाला नहीं है। क्योंकि ये थोड़े ही अंगारे हैं कि सुलग जाएँगे?! वह धीरे-धीरे वापस ठंडा हो जाता है, तपना शुरू हो तब से लेकर जब वह ठंडा हो जाए, तब तक हमें सभी को सभी अवस्थाओं को जानना है। इसलिए महात्माओं में अंतरतप रहता है। उससे चारित्र मोहनीय का निकाल हो जाता है।

इस 'अक्रम मार्ग' से एकावतारी हुआ जा सके, इतनी सत्ता होती है, इसके बाद एक ही जन्म बाकी रहता है। लेकिन पंद्रह से ज़्यादा, सोलहवाँ जन्म नहीं होता है इस ज्ञान के बाद! मैं तो कहता हूँ कि दस बाकी रहे हों, फिर भी क्या हर्ज है? और वे ऐसे वैभव वाले जन्म होंगे! ऐसे खराब नहीं होंगे। इस सत्संग में आए और 'ज्ञानी पुरुष' की कृपा से मोक्ष का सिक्का लग गया तो कैसे वैभव वाले जन्म होंगे! और यह जन्म भी वैभव में बीतेगा। ऐसा यह 'अक्रम मार्ग' है।

एक संसार मार्ग और एक अध्यात्म मार्ग - दो ही मार्ग हैं।

संसार मार्ग में डॉक्टर का वकील से नहीं पूछ सकते और वकील का डॉक्टर से नहीं पूछ सकते। और यहाँ तो अध्यात्म मार्ग है, इसलिए हमारे पास सभी कुछ पूछा जा सकता है। यहाँ जो पूछना हो वह पूछा जा सकता है और सारे ही स्पष्टीकरण-खुलासे मिलें, वैसा है। आपको कहना है कि, 'हम आपके पास आए हैं और आपके पास जो है, वह हमें नहीं मिले तो उसका अर्थ क्या?' संसार से निस्पृह होकर जो एक मात्र सच्चा ढूँढने निकले हों, उन्हें यहाँ पर 'हमारे' पास से सबकुछ मिले ऐसा है! 'माँगो, जो माँगो वह दूँ ऐसा है यहाँ पर। लेकिन आपको माँगना भी नहीं आता। ऐसा माँगना कि जो कभी भी आपके पास से जाए नहीं। परमानेन्ट वस्तु माँगना। टेम्परेरी माँगोगे तो वह कहाँ तक पहुँचेगा? ऐसा कुछ माँगो कि जिससे आपको शाश्वत शांति हो जाए, चिंता-*उपाधि* से हमेशा के लिए मुक्ति मिल जाए। यहाँ तो मोक्ष मिलता है। यहाँ बुद्धि का उपयोग नहीं करोगे तो 'यह' प्राप्त करोगे। हमारा सत्संग दस-दस सालों से चल रहा है। उसमें वाद होता है लेकिन विवाद नहीं होता। यही एक स्थल है कि जहाँ बुद्धि काम नहीं करती।

यह 'अक्रम मार्ग' है इसलिए खुल्लम खुल्ला होता है, सभी बातों का तुरंत स्पष्टीकरण मिल जाता है। जबकि 'क्रमिक मार्ग' में कैसा होता है? यह ज़री-कसब बुनते हैं न, तो उसमें एक मन रूई में से बुने हुए सूत में एक तोला सोना पिरोते हैं। वैसे ही जो महावीर भगवान ने कहा, वह सभी गौतम स्वामी सूत्रों में पिरोते रहे। लेकिन इस काल के लोग एक मन सूत में से एक तोला 'सोना' कैसे निकाल सकेंगे? ऐसी किसी की बिसात ही नहीं है न! 'हमने' तो यह सीधा 'सोना' ही दिया है। 'हमने' अज्ञान से केवलज्ञान तक के सभी स्पष्टीकरण दे दिए हैं। चार्ज किस तरह होता है? डिस्चार्ज किस तरह होता है? यह सारा, जगत् किस तरह चलता है? कौन चलाता है? आप कौन हो? ये सब कौन हैं? इन सभी का स्पष्टीकरण हम यहाँ पर देते हैं।

'यह' श्रुतज्ञान कैसा कहलाता है? अपूर्व! पूर्व में जो नहीं सुना था, वैसा अपूर्व! क्या यह श्रुतज्ञान वीतरागों का नहीं है? वही है।

वीतराग जिस स्टेशन पर ले जाते थे, उसी स्टेशन पर 'यह' भी ले जाता है। लेकिन रास्ता निराला है! वह रास्ता 'क्रमिक' और यह 'अक्रम'। यह तो काम निकाल लेने की जगह है। 'यह' किसी धर्म का स्थल नहीं है। खुद का सभी प्रकार का काम हो जाता है। जहाँ पर मोक्ष हाथ में आ जाए, वहाँ पर काम पूर्ण होता है। जहाँ सर्व समाधानकारी ज्ञान है, जो किसी भी संयोग में, किसी भी स्थिति में समाधान देता है। समाधान होना ही चाहिए। यदि यह ज्ञान समाधान नहीं करवाए तो उसका अर्थ यह है कि आपको समाधान करना आता नहीं है। नहीं तो समाधान अवश्य होना ही चाहिए। हमारी आज्ञा में रहे तो समाधान होता ही है। यहाँ निपुणता, अनिपुणता देखी नहीं जाती। निपुणता वालों को निपुणता की खुमारी रहती है। पंडितों को पंडिताई की खुमारी रहती है, त्यागी को त्याग की खुमारी रहती है, तपस्वी को तप की खुमारी रहती है, वही तो बड़ा रोग, महारोग है! वह महारोगी दूसरों का रोग निकालने जाए तो दूसरों का रोग जाएगा कैसे? यह डायरेक्ट वीतरागों की बात है। यहाँ एक भी शब्द इनडायरेक्ट नहीं है! चौबीसों तीर्थंकरों की बात यहाँ होती है। ये उपदेश सर्वकाल का अनुसरण करके निकलते हैं, यानी कि यह चौबीसों तीर्थंकरों का संयुक्त उपदेश है! साधु-सन्यासियों को खुमारी चढ़ती है, वह तो रोग, 'क्रोनिक रोग' कहलाता है। ऐसे कष्टसाध्य रोग की दवाइयाँ नहीं होतीं। यह तो हमें कड़क शब्दों से ऑपरेशन करना पड़ता है। यहाँ किसी को बुरा नहीं लगता, क्योंकि सभी समभाव से *निकाल* करने वाले महात्मा हैं और दस-बारह सालों से ये महात्मा यहाँ हैं। लेकिन सभी का एक ही मत और एक ही अभिप्राय। कभी भी मतभेद ही नहीं। यात्रा में जाएँ, तब भी एक भी मतभेद नहीं। विभक्त नहीं, अविभक्त! 'हम' औरंगाबाद सत्संग के लिए जाते हैं, तब एक ही मकान में अस्सी से सौ लोग होते हैं, फिर भी किसी की एक आवाज़ तक नहीं होती। एक मतभेद नहीं होता। सभी साथ में खाते-पीते हैं, लेकिन किसी को पता नहीं चलता कि घर में कितने लोग हैं! और चलता है बढ़िया, रेग्युलर। ऐसा तो देखा ही नहीं होगा न! वर्ल्ड में किसी जगह पर

ऐसा देखने का स्थान ही नहीं मिलेगा! ऐसा स्थूलभाव से देखने को मिले तो भी कल्याण हो जाए। और वापस एक भी लॉ (नियम) नहीं। जहाँ लॉ है वहाँ 'वीतरागी ज्ञान' नहीं होता। जहाँ लॉ है वहाँ संपूर्ण वीतरागी ज्ञान नहीं होता, फिर भी यहाँ पर सबकुछ संपूर्ण विनय के साथ चलता रहता है। जिसे पैसे खर्च करने हों वह खर्च करता है, फिर भी किसी को ऐसा नहीं लगता कि यह बड़ा है और यह छोटा है। सभी को समानता रहती है। यह तो ग़ज़ब का मार्ग है, आश्चर्य मार्ग है, इसलिए काम निकाल लेना है। यहाँ दस सालों से हमारी वाणी का लेखन होता है। फिर भी न तो ऑफिस है, न ही सेक्रेटरी है और न ही नियम है। भले कहीं भी बोला गया हो, लेकिन लिख लिया जाता है और फिर सब ठिकाने पर ही रहता है। जबकि ऑफिस वालों के काग़ज तो तितर-बितर रहते हैं।

'क्रमिक मार्ग' के ज्ञानियों का नियम ऐसा होता है कि ज्ञानी 80 प्रतिशत तक पहुँचे हुए हों तो वे 78 प्रतिशत वाले ज्ञानी के पास पैर छूने नहीं जाते, 82 प्रतिशत वाले के पास ही जाते हैं। जबकि 'अक्रम मार्ग' के ज्ञानी का कैसा है? 'हम' सौ प्रतिशत वाले हैं, फिर भी पाँच प्रतिशत वाले के पास जाकर हम पैर छूते हैं। जिसका कैफ़ उतर गया है, उसे क्या आपत्ति होगी। हमें तो आत्मा की ही दृष्टि होती है। हम कम प्रतिशत वालों के पैर क्यों छूते हैं? उसे सयाना बनाने के लिए कि, 'महाराज, यह आपका सही नहीं है।' हमें तो कैफ़ नहीं चढ़ता लेकिन उनका कैफ़ बढ़ जाता है इसलिए हम अकारण नहीं जाते, नहीं तो उनका रोग बढ़ता है।

ऋषभदेव भगवान के समय से अभी तक 'क्रमिक मार्ग' के ज्ञानी हों, उनके दो या तीन शिष्य होते थे। वे तीन शिष्यों को संभालते थे और खुद तप-त्याग करते थे और उन शिष्यों से भी करवाते थे। तीन से अधिक नहीं होते थे, ऐसा इतिहास कहता है। जबकि इन पुण्यानुबंधी पुण्यशालियों के लिए दस लाख सालों के बाद भी ऐसा मार्ग निकलता है न! प्रत्यक्ष के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। 'वीतराग विज्ञान प्रत्यक्ष

के बिना काम आए ऐसा नहीं है। और यह तो 'अक्रम विज्ञान है, उसमें तो कैश डिपार्टमेन्ट है, कैश बैंक और क्रमिक में तो त्याग करता है, लेकिन कैश फल नहीं आता और यह तो कैश फल!

ऐसा ज्ञान इस साढ़े तीन अरब की आबादी में किसे नहीं चाहिए? सभी को चाहिए। लेकिन यह ज्ञान सब के लिए नहीं है। यह तो महापुण्यशालियों के लिए है। यह 'अक्रम ज्ञान' प्रकट हुआ, उसमें लोगों के कुछ पुण्य होंगे न? एक, सिर्फ भगवान पर आश्रय वाले, भटकते भक्तों के लिए और जिनके पुण्य होंगे न, उनके लिए यह मार्ग प्रकट हुआ है। यह तो बहुत पुण्यशालियों के लिए है और यहाँ पर जो सहज ही आ जाएँ और सच्ची भावना से माँगे, उन्हें दे देते हैं। लेकिन लोगों को इसके लिए कुछ कहने जाना नहीं पड़ता। इन 'दादा' की और उनके महात्माओं की हवा से ही जगत् कल्याण हो जाएगा। मैं निमित्त हूँ, कर्ता नहीं हूँ। यहाँ तो जिसे भावना हुई और 'दादा' के दर्शन किए तो वह दर्शन 'ठेठ' को पहुँचते हैं। 'दादा' इस देह के नज़दीकी पड़ोसी की तरह रहते हैं और यह बोलता है, वह रिकॉर्ड है। यह 'अक्रम ज्ञान' तो कुछ ही बहुत पुण्यशाली लोग होंगे उनके लिए है। अन्य सभी के लिए 'अक्रम' मोक्ष नहीं है। अन्य सभी लोगों के लिए तो उसके 'क्रमिक मार्ग' का बोध देकर, वह जो करता हो, उसी में उसे सुगम रास्ता दिखाऊँगा। उससे वह ठेठ तक पहुँच जाएगा! यहाँ तो जो सहज रूप से आ जाए और अपने पुण्य का पासपोर्ट ले आए, उसे हम ज्ञान दे देते हैं। जो 'दादा' की कृपा प्राप्त कर गया, उसका काम हो गया!

यहाँ आए हुए सभी लोग असर वाले ही होते हैं। किसी को पाँच प्रतिशत तो किसी को पच्चीस प्रतिशत होता है लेकिन एक ही प्रकार का इफेक्ट है। लेकिन साथ में पुण्य कैसा सुंदर लाए हैं। 'दादा' की लिफ्ट में बैठकर मोक्ष में जाना है! कोटि जन्मों के पुण्य जमा हों, तभी 'दादा' मिलते हैं! और फिर भले ही कैसा भी डिप्रेशन होगा, वह चला जाएगा। डिप्रेशन निकालने के लिए ही यह स्थान है। डिप्रेशन

वालों के लिए, सभी प्रकार से फँसे हुओं के लिए 'यह' स्थान है। अपने यहाँ तो क्रोनिक रोग भी मिटे हैं।

'यह' हमारा 'अक्रम मार्ग' पाँच सौ सालों बाद भी गाया जाएगा। इन कवि नवनीत के पदों की बाद में ग़ज़ब की कीमत होगी! अभी तो लोग गोल झूलों में चढ़े हुए हैं न! लोग फिर उसे ढूँढ़ेंगे! झूले में बैठे हुए को कैसा दिखता है? ऐसे को, हम 'अक्रम मार्ग' दिखाएँ तो कहेगा, 'यह सब तो मैं जानता हूँ' और पूछें कि, 'भाई, तुझे चिंता-विंता होती है?' तो वह कहेगा कि, 'चिंता तो सभी को होती ही है न!' यदि चिंता होती है तो फिर तूने जाना क्या? जानने का नाम प्रकाश। उजाले में तो कहीं ठोकर लगती है? यह तो पग-पग पर ठोकर लगती है और कहता है कि 'मैं जानता हूँ', तो तेरा कब हल आएगा? और वह भी 'ज्ञानी पुरुष' के सामने 'मैं जानता हूँ'- का कैफ़ लेकर आए तो मैं कहूँ कि, 'भाई, तेरा घड़ा भरा हुआ है। उसमें मेरा अमृत डालने की क्या ज़रूरत है? डालूँगा, तो भी उसमें से छलककर नीचे गिर जाएगा। यदि तेरा घड़ा खाली हो, तभी मैं मेरा अमृत उसमें डालूँ और तब वह तेरे काम आएगा।'

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके बाद यह 'अक्रम मार्ग' चलता रहेगा?

दादाश्री : 'अक्रम मार्ग' तो हमारे बाद एकाध-दो पीढ़ी तक टिकेगा। फिर तो वही का वही। लेकिन हमारे निमित्त से 'क्रमिक मार्ग' ऊँची स्टेज पर आएगा। नए ही शास्त्र और नया ही सबकुछ होगा। जैसा अभी बिगड़ा हुआ है, वैसा नहीं रहेगा।

यह तो 'अक्रम-मार्ग' है। इसलिए ज्ञानी सिर्फ एक घंटे में जगत्निष्ठा उठाकर ब्रह्म में बैठा देते हैं। इसीलिए तो कवि ने लिखा है न –

'दस लाख वर्षमां आवा ज्ञान नथी थयां,
निश्चय ते विस्मय आवा ज्ञानी अकथ्यां।'

ऐसा कभी हुआ ही नहीं! इसीलिए तो आश्चर्य है न! और उसमें

यदि मोक्ष की टिकट मिल गई, तो फिर उसका काम ही हो गया न! यह तो पुण्यशालियों के लिए है। अभी तो सास के कई चाबुक खाएगी, पति के चाबुक खाएगी, तब भी ठिकाना नहीं पड़ेगा! मोक्ष इतना आसान नहीं है! वह तो यहाँ पर उसको 'ज्ञानी पुरुष' मिल गए, इसलिए खिचड़ी बनाने से भी अधिक आसान हो गया है। मोक्षदाता 'ज्ञानी पुरुष' के निमित्त की तो शास्त्रकारों ने भी प्रशंसा की है।

'हम' जगत् कल्याण के स्वामी नहीं हैं, निमित्त हैं। जो पुण्यशाली होते हैं, वे तो घर बैठे लाभ ले जाते हैं! पुण्यशालियों का फल, यह 'अक्रम मार्ग' है! वर्ना अक्रम तो होता होगा? यह तो बाद में जब इतिहास रचा जाएगा तब लोग पछताएँगे और सोचेंगे कि उस काल में मैं था या नहीं? फिर हिसाब निकालेंगे तो पता चलेगा कि उस दिन वह पैंतीस मंज़िल के फ्लेट बनाने के काम में पड़ा हुआ था! सभी संयोग मिल जाएँगे, लेकिन इस 'अक्रम ज्ञान' का संयोग मिले ऐसा नहीं है। यहाँ 'सत् संयोग' है। वह तो ज्ञान मिलने के बाद दूसरे ही दिन से उसे खुद को ही अनुभव होता है, तभी समझ में आता है।

महावीर भगवान के निर्वाण को 2500 साल पूरे हो रहे हैं। तब साधन भी कैसे ग़ज़ब के प्रकट हुए हैं! वर्ना 'अक्रम मार्ग' तो कहीं होता होगा? भगवान के 2500 साल पूरे होंगे, तब साधन भी आ मिलेंगे और यह परिवर्तन होगा। भगवान से कहा गया था कि, 'भस्मक ग्रह के असर में से लोगों को बचाने के लिए थोड़ा आयुष्य बढ़ाइए।' तब भगवान ने कहा था, 'नहीं, उसे तो लोग चैन से भोगेंगे और ठेठ अंतिम भ्रष्टाचार तक ले जाएँगे, और जब वह पूरा हो जाएगा तब उसका भी फल मिलेगा।' अब यह विषम काल पूरा होने वाला है। उसका फल, 'अक्रम' आया है! वर्ना 'अक्रम' तो होता होगा?

कभी, किसी ही समय दस लाख सालों में ऐसे ग़ज़ब के पुरुष प्रकट होते हैं, और तब उन्हें खुद को ही कहना पड़ता है। यह तो गारन्टी के साथ कहता हूँ कि आपका कोई *ऊपरी* नहीं है और यह ऊपर तेरा कोई बाप भी नहीं है। फिर रहेगा कोई भय या डर?

जिसकी आकुलता-व्याकुलता मिटी, उसे अंतरंग पच्चक्खाण ही है। वह तो 'क्रमिक मार्ग' के ज्ञानी को आकुलता-व्याकुलता रहती है। 'क्रमिक मार्ग' ही आकुलता-व्याकुलता का कारखाना है! यह तो 'अक्रम मार्ग' है इसलिए जब यहाँ पर कहीं भी इसका उपयोग करेगा, तब वहाँ पर तुरंत ही नकद फल देगा!

अब तो नए अनुभव होंगे! जिस हिल (पहाड़ी) पर चढ़े हो, उसका एक कोना भी अभी तो पूरी तरह से नहीं देखा है। लेकिन अब हिल पर चारों तरफ देखो, घूमो। ग़ज़ब का है! जितना लाभ उठाना हो उतना उठा लेना। अपनी योग्यता और अपनी समझ से लाभ उठाते हैं। उससे सिर पर नहीं उठाया जाए तो हम उसे सिर पर उठवा देते हैं। यह तो और ही तरह का हो गया है, इसलिए काम निकाल लेना है।

'सकळ ब्रह्मांड झंखे ते ज्ञान वर्षा ने असह्य उनाळे।'

– नवनीत

पूरा ब्रह्मांड जिस 'ज्ञान' की बरसात की इच्छा करता है उस 'ज्ञान' की बरसात हुई तो हुई, लेकिन वह भयंकर ग्रीष्म काल में हुई! भयंकर दूषमकाल में 'ज्ञान वर्षा' हुई। जहाँ मनुष्यमात्र, साधु, आचार्य, बाबा सब तड़फड़ाते हैं, ऐसे काल में! चौमासे में बरसात हो, तो वह तो नियमानुसार कहलाती है। लेकिन यह तो दूषमकाल की गर्मी में जो नहीं होना था, वह हो गया है। नहीं होने वाली बरसात हो गई है। तो वहाँ काम निकाल लेना है।

वीतरागों के दो प्रकार के ज्ञान हैं : एक 'क्रमिक' और दूसरा 'अक्रमिक', कि जो आज यहाँ 'हमारे' पास प्रकट हुआ है!

प्रकृति

एक आत्मा में अनंत शक्ति है! अनंत आत्माएँ हैं और अनंत प्रकृतियाँ हैं!

हर एक के अंदर दो चीज़ें हैं, वस्तु 'पुरुष' है और अवस्तु 'प्रकृति' है। प्रकृति में रहता है इसीलिए 'वह' अबला है और यदि खुद 'पुरुष' बन जाए तो 'खुद' ही 'परमात्मा' है। पूर्ण 'पुरुष' को नहीं पहचानता, इसीलिए क्रोध-मान-माया-लोभ, वे सभी निर्बलताएँ घेर लेती हैं!

हम सभी आत्मस्वरूप से एक ही स्वभाव के हैं, लेकिन प्रकृति से अलग-अलग हैं। खारी, तीखी, खट्टी, फीकी प्रकृति, वे सारे प्राकृतिक दोष हैं। यह प्रकृति त्याग करवाती है, तब त्याग होता है और यह प्रकृति जब ग्रहण करवाती है, तब ग्रहण होता है। यह तो प्रकृति का नचाया नाचता है, लेकिन तब कहता है कि, 'मैं नाचा'। इसी का नाम भ्रांति है न? यह आश्चर्य है न? उदय कर्म के आधार पर हुआ तो ऐसा कहता है कि 'मैंने किया, यह मैंने किया।' इसी का नाम भ्रांति। तब तक लट्टू कहलाता है, जब तक 'खुद' पुरुष नहीं बना है। 'खुद' का भान नहीं हुआ, तब तक 'मैंने किया!' ऐसा कैसे कह सकता है? करने वाला कौन है? तू कौन है? यह तो जानता नहीं। फिर कैसे कहा जा सकता है कि 'मैंने किया'? यह तो जब प्रकृति रुलाती है तब कहता है, 'मैं रो रहा हूँ।' प्रकृति हँसाती है, तब कहता है 'मैं हँस रहा हूँ'। प्रकृति गुस्सा करवाती है तब गुस्सा करता

है। यह तो प्रकृति जबरन करवाती है, तब 'मैं कर रहा हूँ' ऐसा कैसे कहा जा सकता है? फिर भी लोग ऐसा ही कहते हैं, वह आश्चर्य है न?

प्राकृत अवस्था टेम्परेरी है। इन पंचेन्द्रियों से जो दिखती हैं, वे अवस्थाएँ प्राकृत हैं। इस जगत् में जो तत्व हैं, वे सभी तत्व अपने-अपने गुणधर्म सहित हैं और अवस्था सहित भी हैं। तत्व परमानेन्ट हैं। मात्र प्राकृत अवस्थाएँ टेम्परेरी हैं।

प्रकृति प्रसवधर्मी स्वभाव की है, इसलिए अनंत गुना उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति प्रसवधर्मी है यानी क्या?

दादाश्री : मैं समझाता हूँ आपको। ये यहाँ पर आसपास काँच जड़े हुए हों तो उनमें डेढ़ सौ लोग दिखाई देते हैं। तो क्या कोई डेढ़ सौ लोग बनाने गया था? यह तो एक में से अनंत खड़े हो जाते हैं, वैसा है। इससे फिर मार खाता है। यह तो सब स्पंदन स्वरूप है। एक स्पंदन उछाले, तो फिर नए स्पंदन खड़े होते हैं। लेकिन यदि तू स्पंदन बंद कर दे तो तुझ पर फिर कितने स्पंदन आएँगे? वे तो फिर बंद हो जाएँगे!

प्रकृति के गुण 'पर' हैं, आत्मा के नहीं हैं। जगत् 'पर' के गुणों को 'स्वगुण' कहता है। लोग कहते हैं कि, 'ये भाई बहुत अच्छे हैं।' लेकिन बुख़ार चढ़े और सन्निपात हो जाए, तब सभी कहेंगे कि, 'ये अच्छे नहीं है' अरे, प्राकृत गुण तो एक घंटे में लुप्त हो जाएँगे। भगवान ने क्या कहा है कि, 'संसार में भले ही कैसे भी ऊँचे गुण प्राप्त किए हों, क्षमा रखता हो, गुस्सा नहीं करता हो, फिर भी वे सारे प्रकृति गुण हैं। वे कब फ्रेक्चर हो जाएँगे, उसका पता नहीं चलेगा।' प्रकृति खुद कफ, पित्त और वायु की बनी हुई है। वे तीनों बिगड़ जाएँगे तो सन्निपात हो जाएगा, तब वह क्या बोलेगा, उसका भी भान नहीं रहेगा। इसलिए भगवान ने कहा है कि, "आप अपने 'खुद' के गुणधर्म में

रहना।'' यह तो कढ़ी ज़रा ज़्यादा खा ली हो तो पित्त बढ़ जाता है। वे पराये गुण कब फ्रेक्चर हो जाएँगे, यह कहा नहीं जा सकता। जबकि 'खुद' के गुण तो कभी भी नहीं बदलते।

इस प्रकृति का साइन्स ग़ज़ब का है! यह समझने जैसा है। एक वैद्य एक मरीज़ से कह रहा था कि, 'केले मत खाना, ठंडे पड़ेंगे।' तो दूसरा कोई बीच में सुनने वाला घर जाकर कहेगा कि, 'केले मत खाना, ठंडे पड़ेंगे।' ये बिना भान के लोग, कहाँ का कहाँ लगा देते हैं। उस मरीज़ के लिए केले नहीं खाना बहुत लाभदायी होता है और दूसरे के लिए वे अनुकूल होते हैं। लेकिन वह दूसरे को भी उल्टा भरमा देता है। यह ज्ञान कहाँ से ले आया? तो कहे कि, 'वे वैद्य कह रहे थे।' अरे वह तो उस व्यक्ति की प्रकृति को माफिक नहीं आ रहा था, लेकिन तू क्यों उसे पकड़ बैठा? तेरी प्रकृति के लिए तो अनुकूल था।

हर एक में प्लस-माइनस होते हैं, इसलिए किसी की प्रकृति को माफिक आता है और दूसरे को माफिक नहीं आता है, लेकिन वह ज्ञान किसी और को नहीं कहना होता।

आप चाय पीते हो?

प्रश्नकर्ता : नहीं पीता।

दादाश्री : चाय क्यों नहीं पीते?

प्रश्नकर्ता : मुझे भाती नहीं। मुझे कॉफी अच्छी लगती है, इसलिए मैं कॉफी पीता हूँ।

दादाश्री : चाय क्यों नहीं भाती है, उसका कारण है। यदि तुझे चाय दें तो भी तेरी प्रकृति को वह माफिक नहीं आती। अतः प्रकृति के सामने चाय आए, तो भी चाय पसंद नहीं करता है, और तेरी प्रकृति को कॉफी माफिक आती है, इसलिए कॉफी पी लेता है। इस प्रकृति को माफिक आए तब कहता है, 'मुझे भाता है।' और नहीं माफिक आए तब कहता है, 'मुझे नहीं भाती।' हम पूछें 'यह सब तूने जाना

तो है, लेकिन वह तो रिलेटिव में जाना, लेकिन वास्तविक क्या है?' तो कहेगा, 'वह तो मैंने जाना नहीं।' वह वास्तविक क्या है? 'वही आत्मा है।' रिलेटिव व्यू पोइन्ट तो सभी जानते हैं, लेकिन रियल व्यू पोइन्ट भी जानना तो पड़ेगा न? दोनों व्यू पोइन्ट्स को जाने वह प्रज्ञा वाले भाग में आता है और एक व्यू पोइन्ट जाने उसे बुद्धि कहते हैं।

यह जो कोई बीवी-बच्चों को छोड़कर भाग जाता है, वह कोई खुद छोड़कर नहीं भागता, लेकिन प्रकृति उससे जबरन छुड़वा देती है। प्रकृति त्याग करवाती है, प्रकृति तप करवाती है, तब खुद अहंकार करता है कि, 'मैंने त्याग किया', 'मैंने तप किया', 'मैंने सामायिक की', जब तक 'खुद' पुरुष नहीं बन जाता, तब तक यह प्रकृति ही चलाती है। ये जो शास्त्र पढ़ते हैं, ध्यान करते हैं, सामायिक करते हैं, वह सब प्राकृत ज्ञान है, 'आत्मज्ञान' नहीं है। जगत् में सर्वत्र प्राकृतज्ञान है। ये बड़े-बड़े साधु, सन्यासी, आचार्य-वाचार्य सभी प्राकृतज्ञान में हैं। उनके पास आत्मज्ञान की बात नहीं होती, वे जो कुछ जानते हैं वह प्राकृतज्ञान है, आत्मज्ञान नहीं जानते। यदि तुझे आत्मा चाहिए तो 'ज्ञानी पुरुष' के पास जा। ज्ञान तो 'ज्ञानी पुरुष' के पास ही होता है, और कहीं भी नहीं होता।

ये लोग तो प्रकृति के गुणों को छुड़वाते हैं। अरे! इसका कब पार आएगा? हम तो कहते हैं कि, अच्छी आदतों और बुरी आदतों से शुद्ध चेतन सर्वथा मुक्त ही है! हम सब तो इस दुकान में से उतर गए और कहा कि, 'यह दुकान मेरी नहीं है!' अगर दुकान में से एक-एक चीज़ खाली करें तो कब अंत आए? इसके बजाय तो 'नहीं है यह मेरी दुकान' करके निकल गए तो हो गया पूरा!

सहज प्रकृति - सहज आत्मस्वरूप

इस काल में प्रकृति सहज हो सके ऐसा नहीं है। इसलिए 'हम' सहज आत्मा दे देते हैं और साथ-साथ प्रकृति की सहजता का ज्ञान दे देते हैं। फिर प्रकृति सहज करनी बाकी रहती है। आत्मा सहज

स्वभाव में आ जाए, तब प्रकृति सहज स्वभाव में आ जाती है, ऐसा इस काल में है।

इस गुलाब के फूल को क्या कोई निकाल करना पड़ता है? ना, वह तो सहज स्वभाव में ही रहता है। ये अकर्मी खुद ही असहज हो जाते हैं। सभी चीज़ें सहज स्वभाव वाली हैं, आत्मा भी सहज स्वभाव वाला है। सिर्फ मनुष्य की ही प्रकृति विकृत है। इसलिए आत्मा का भी ऐसा विकृत फोटो दिखता है। यानी खुद विकृत होता है, तब प्रकृति भी विकृत हो जाती है। इसलिए खुद को सहज होने की ज़रूरत है। लेकिन असहज हो जाता है! प्रकृति सो जाने को कहे, तब ज़बरदस्ती जागता है। अरे! सहज हो जा न! सहज यानी प्रकृति जैसी प्रेरणा दे, वैसे चले। प्रकृति विषयी नहीं है, विषयी होती तो इन जानवरों में भी वह दिखाई देती। विषय, वह खुद का विकृत स्वभाव है। प्रकृति तो सहज स्वभाव में है। उसे खाने-पीने के लिए दाल-चावल चाहिए। वह कोई ढोकले नहीं माँगती। षट्(छः)रस माँगती है। वे सहज रूप से मिल जाएँ, ऐसा है, जबकि यह तो आलूबड़े माँगता है। सहज में कोई दोष नहीं है, विकृत में दोष है। 'ज्ञानी पुरुष' खुद अपने स्वभाव में रहते हैं और प्रकृति को प्रकृति में रखते हैं।

घर-प्रकृतियों का बगीचा

इस जगत् में जो कुछ भी हो रहा है, वह प्रकृति के गुणों से हो रहा है, आत्मा के गुणों से नहीं हो रहा है। इसलिए प्रत्येक प्रकृति के गुणों को पहचान लेना चाहिए। प्रकृति के दोषों की वजह से सामने वाला दोषित लगता है। हमें खुद प्रकृति के गुणों को ही देखना है। इससे क्या होता है कि 'उन' दोषों को मज़बूत होने का अवकाश ही नहीं मिलता।

हमारे इतने सारे, हज़ारों महात्मा हैं, फिर भी क्यों सब के साथ रास आता है? क्योंकि सभी प्रकृतियों को हम पहचानते हैं। उनके काँटों को हम नहीं छूते, हम तो उनके फूलों को ही देखते हैं!

यदि चंपा, गुलाब की भूल निकाले कि, 'तुझ में काँटे हैं, तुझ में कोई बरकत नहीं', तो गुलाब उससे कहता कि, 'तू तो सूखे ठूँठ जैसा दिखता है' और झगड़ा हो जाता। बगीचे में यदि ये प्रकृतियाँ बोल सकतीं तो पूरे बगीचे में लड़ाई-झगड़ा हो जाता। उसी तरह यह संसार भी बगीचा ही है। यह(मनुष्य) प्रकृति बोलती है, इसलिए औरों की भूल निकालने से लड़ाई-झगड़े हो जाते हैं।

मनुष्यों की प्रकृतियाँ तरह-तरह की होती हैं। पहले सत्युग में घर के सभी लोग गुलाब जैसे होते थे। अभी तो एक मोगरा, एक चंपा, एक गुलाब, ऐसे अलग-अलग इस कलियुग में इकट्ठे होते हैं। सभी अलग-अलग प्रकृतियाँ इकट्ठी हो जाती हैं। वैसे ही ये छोटे-बड़े सब लोग इकट्ठे हो जाते हैं। उसमें बाप को होता है कि सब मेरी तरह गुलाब बन जाएँ। लेकिन यदि चंपा बन जाए, तो बाप कहेगा कि, 'नहीं चलेगा, सब गुलाब ही चाहिए।' अरे! यह प्रकृति का बगीचा तो देख! सभी गुलाब हो जाएँगे तो बगीचा कैसे कहलाएगा? वह तो गुलाब का खेत कहलाएगा! तुझे बगीचा बनाना है या खेत?

कलियुग में बाप कंजूस हो, माँ कंजूस हो और बेटा ऐसा हो कि फ़िज़ूल खर्चा करे तो माँ-बाप, बेटे को फ़िज़ूलखर्च कहते हैं। अरे! ज़रा धीरज तो रख। इस फ़िज़ूलखर्च वाली प्रकृति में फूल खिलेंगे। यह 'दादा' की दृष्टि मिल जाए तो प्रकृतिभेद नहीं पड़ेंगे और झगड़े नहीं होंगे। हर एक प्रकृति में फूल आएँगे, इसलिए इंतज़ार करो। यह तो लोग क्या करते हैं कि गुलाब में फूल आए हों और चंपा में नहीं आए हों, तो चंपा की डाली काट देते हैं। लेकिन धीरज रखे तो फूल सूंघने को मिलेंगे। हर एक की प्रकृति में फूल आएँगे। इस गुलाब के पौधे को देखे और फूल नहीं देखे तो कहेगा कि 'यह काँटे वाला पौधा है, इसलिए उखाड़ डालो।' अरे नहीं, ये काँटें हैं तो उसके सामने कोई अच्छा गुण होगा, ऐसा कुदरत में नियम है। इसलिए राह देखो। धीरज से देखो उस काँटे के पौधे में से गुलाब निकलेंगे।

एक बाप अपने बेटे को मार रहा था। अरे, नहीं मारते। अगर

ऐसा हो कि डाँटने पर वह सुन ले तभी डाँटा जा सकता है। नहीं तो कलियुग में डाँटने जाएँ तो बच्चे उल्टे रास्ते चले जाते हैं। उन्हें तो (प्रेम से) मोड़ने के प्रयत्न करने चाहिए।

अपने में बरकत होगी तो *'हाथिआ थोरमांय प्रगटे सुहास।'* (कँटीले पौधे में भी सुगंध प्रकट होगी।) प्रकृति एक ओर खराब हो तो दूसरी ओर उच्च प्रकार की होती है, ऐसा है।

यह तो ऐसा है न कि बैन्ड में यदि सिर्फ रामढोल ही हो तो उसे बैन्ड कैसे कहेंगे? उसमें तो एक रामढोल, एक पिपूड़ी वाला, एक बाजे वाला, ऐसे अलग-अलग बजाने वाले चाहिए। तभी वह बैन्ड शोभा देगा। कब कौन सी प्रकृति में कैसे फूल आएँगे, वह कहा नहीं जा सकता। इसीलिए धीरज धरना पड़ेगा।

सभी में अलग-अलग प्रकार की शक्तियाँ होती हैं और कमियाँ भी अलग-अलग प्रकार की होती हैं। सत्युग में कैसा था कि यदि घर में एक तीखी प्रकृति होती थी, तो घर के सभी लोग तीखे होते थे। अभी कलियुग में एक तीखा, दूसरा खट्टा और तीसरा कड़वा ऐसे अलग-अलग प्रकृति के व्यक्ति होते हैं, इसीलिए एडजस्टमेन्ट ही नहीं हो पाता। पति जल्दी उठे और पत्नी देर से उठे, तो फिर सुबह-सुबह ही कलह खड़ी हो जाती है। और इस तरह संसार खारा कर देते हैं। लेकिन यदि प्रकृति को एडजस्ट होना आ जाए, तो काम हो जाए।

'पकौड़ी अच्छी बनी हैं', ऐसा तो बोल सकते हैं, लेकिन नाटकीय भाषा में, वह भी सामने वाले को अच्छा लगे इसलिए कहना है। कढ़ी खारी बनी हो, लेकिन ऐसा कहें कि, 'खारी हो गई है' तो सामने वाले के अहम् को ठेस लगती है। यदि कहना आए तो कहो, नहीं तो दूसरा रास्ता निकालो। धीरे से पानी डालकर कढ़ी पी लो। यह तो ज्ञान है, इसलिए जगत् जो दे, वह सब घोलकर पी लेना है। ऐसा है कि अंदर तो ग़ज़ब की शक्ति पड़ी हुई है। कढ़ी खारी हो तो प्रकृति तो खारी कढ़ी भी पी लेगी। 'हम सब' तो 'जानने वाले' हैं। प्रकृति से बाहर

कोई मनुष्य चल ही नहीं सकता। हमें 'ज्ञान' होने से पहले भी सारे एडजस्टमेन्ट्स का ज्ञान हाज़िर रहता था कि यहाँ क्या करने योग्य है। ऐसा ऑन द मोमेन्ट हाज़िर रहता था।

जगत् है, इसलिए इसमें सभी कुछ है। कंकड़ अच्छे नहीं लगते तो क्या गेहूँ नहीं लाएँगे? ना, गेहूँ तो लाने हैं और कंकड़ बीन लेने हैं। जहाँ पर प्रकृति को अंतराय होते हैं, वहाँ ऑब्स्ट्रक्ट(रुकावट) होती है। इसलिए प्रकृति को जहाँ-जहाँ अंतराय आएँ, वहाँ-वहाँ टॉर्च लाइट रखनी पड़ती है, और देख लेना है! खुद की भूलें तो सेन्ट परसेन्ट दिखनी चाहिए। महावीर भगवान भी मात्र खुद की ही प्रकृति को देखते रहते थे कि प्रकृति क्या-क्या करती है और क्या-क्या नहीं करती।

जो व्यवहार हमें एक बार भी नहीं करना हो फिर भी करना पड़े, तो जान लो कि, अपनी इच्छा नहीं हैं, फिर भी हो रहा है। यानी कि प्रकृति हम पर सवार होकर बैठी है। यह तो, प्रकृति को सवार नहीं होने देना है, इसीलिए हम प्रकृति को घोड़ा बनाएँ और हम उसके ऊपर सवार हो जाएँ। प्रकृति-घोड़ा नहीं चले न तो हंटर मारें, कहें कि 'चल', तब फिर वह चलेगी। यह तो अनंत जन्मों की बुरी आदत पड़ी हुई है, *अटकण* (जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे) पड़ी हुई है। इसलिए प्रकृति सवार हो बैठती है। लेकिन आत्मा वैसा नहीं है। यह तो, प्रकृति खुद कहती है कि, 'भगवान, आप ऊपर बैठिए।' लेकिन ऐसा समझ में नहीं आने के कारण प्रकृति को सिर पर चढ़ाते हैं।

रुपये दो हज़ार का विक्टोरिया गाड़ी का घोड़ा हो, लेकिन कब्र का हरा कपड़ा देखे कि रुक जाता है, वह *अटकण* है। ऐसे ही लोग *अटकण* वाले हो गए हैं। *अटकण* तो निकालनी पड़ेगी न?

प्रकृति को सवार नहीं होने देना है। प्रकृति को सवार होने देना, वह कोई तरीक़ा है? इसके बदले तो आराम से आप उस पर सवार हो जाओ न!

हमें कोई कहे कि चलो अंतिम स्टेशन पर, तो हम तैयार, और कहे कि चलो शादी में, तो भी हम तैयार। अपनी प्रकृति तैयार रहनी चाहिए। यह तो घंटे भर तक नक्की करता है कि, 'नहीं करना है यह काम।' लेकिन यदि बाद में करना ही पड़ेगा, तो इसके बजाय तो सरल बन जा न। यह 'व्यवस्थित' छोड़े ऐसा नहीं है। इसलिए सरल बन जा।

कवि ने क्या कहा है कि,

'अटकण थी लटकण, लटकण थी भटकण,
भटकणनी छटकण पर छांटो चरण-रज कण।'

'यह' *अटकण* है। यदि ऐसा हम जान लें, तो फिर वह *अटकण* टूटती जाएगी। प्रकृति तो अद्‌भुत है! लेकिन भान नहीं रहा कि किस तरह काम निकालें। खुद प्रकृति स्वरूप हो गया! इसलिए यदि घोड़ा ऐसे भागे तो खुद को भी वैसे ही भागना पड़ता है। इसके बजाय तो प्रकृति पर लगाम डालकर आराम से घूमो न!

प्रकृति नियम वाली है। मन का स्वभाव अनियम वाला है। किसी की जेब काटकर तीस रुपये हाथ में आएँ तो पाँच रुपये 'कोढ़ी' को दान दे देता है और पच्चीस रुपये बहन को दे देता है। ऐसा है! मन का स्वभाव, घड़ी भर में दान देता है और घड़ी भर में चोरी करता है। मन का स्वभाव विरोधाभास वाला है। प्रकृति नियम वाली है। प्रकृति को पहचान ले तो वश में हो सके, ऐसी है। इसलिए प्रकृति को पूरी तरह से पहचान लेना चाहिए।

प्रकृति में यदि लोकनिंद्य कार्य नहीं हैं, तो उसमें आपत्ति नहीं है। यह चाय-पानी, नाश्ता करना, वह लोकनिंद्य नहीं है। जो प्रकृति लोकनिंद्य होती है, उसमें आपत्ति है। इस तरह की प्रकृति देखते रहने से हलकी पड़ती जाती है। जैसे-जैसे देखते जाएँ, वैसे-वैसे विलय होती जाती है। कोई व्यक्ति तलवार लेकर लड़ने आया हो, वह अगर आँखों से देखने से नरम पड़ जाता हो तो फिर से देखने पर वह वापस नहीं आएगा। यदि वह बलवान हो और अपना ज़ोर नरम पड़े, तो वह

चढ़ बैठेगा। लेकिन यहाँ अपने पास तो 'दिव्यचक्षु' हैं। चर्मचक्षु से सामने वाले का ज़ोर नरम पड़ जाता है, जबकि ये तो 'दिव्यचक्षु' हैं। इसलिए मात्र दृष्टि से ही प्रकृति पिघलने लगती है।

मोक्ष जाने के लिए कोई मनाही का हुक्म नहीं है, सिर्फ 'खुद' को 'खुद' का भान हो जाना चाहिए। कोई त्यागी प्रकृति होती है, कोई तप वाली प्रकृति होती है, कोई विलासी प्रकृति होती है, जो भी हो वह, मोक्ष में जाने के लिए मात्र प्रकृति खपानी होती है!

भगवान तो आत्मा प्राप्त होने के बाद सिर्फ प्रकृति को ही देखा करते थे। प्रकृति का साइन्स देखते रहते थे कि यह साइन्स कैसा है?! भगवान अन्य कुछ भी नहीं देखते थे। भगवान तो सिर्फ खुद के *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) को ही देखते थे।

प्रकृति *पूरण-गलन* स्वभाव की है और खुद *अपूरण-अगलन* स्वभाव का है।

प्रकृति भी भगवान स्वरूप

प्रकृति जब भगवान जैसी दिखने लगेगी तब मोक्ष में जा पाओगे। जब जेब काटने वाले की प्रकृति भगवान जैसी लगेगी, तब मोक्ष में जा सकेंगे। वह जेब काटता है, वह तो उसकी प्रकृति है। वह प्रकृति, वह भगवान ही है, लेकिन रिलेटिव भगवान है। जबकि आत्मा रियल भगवान है। प्रकृति भगवान है, लेकिन उस व्यू पोइन्ट को नहीं जानता, क्योंकि बुद्धि है न! इसलिए बुद्धि बताती है कि 'जेब काट गया, पैसे ले गया।' लेकिन दूसरे व्यू पोइन्ट को, रियल को नहीं जानता है। नहीं तो जेब काटने वाला तो खुद ही भगवान है, खुद ही परमात्मा है, लेकिन वैसी समझ ही नहीं है न! भगवान ने जेब काटने वाले को, दानेश्वरी, सती को, वैश्या को, गधे को, सभी को भगवान स्वरूप से देखा, सभी को एक सरीखा देखा।

लोगों को 'मैं-तू' दिखाई देता है और 'वीतराग' को सभी ओर

शुद्ध चेतन और प्रकृति स्वभाव दिखाई देते हैं। इस आम की टोकरी में से आम चखें तो 'यह खट्टा है' ऐसा उसका प्रकृति स्वभाव दिखता है। 'वीतराग' सभी की प्रकृति पहचान जाते हैं, लेकिन भेदभाव नहीं होता, इसीलिए उन्हें 'खट्टी है', 'मीठी है' ऐसी झंझट नहीं रहती, और 'खुद' सब के साथ 'वीतराग' रहते हैं। उनके लिए तो यदि दान देता है तो वह भी प्रकृति है, और जेब काटता है तो वह भी प्रकृति है। उन्हें 'यह ठीक है और यह ठीक नहीं है' ऐसा नहीं होता है। ऐसा कहा तो राग-द्वेष हो जाएँगे। और इसमें तो एक स्पंदन हुआ कि सबकुछ हिल गया। बाकी, इसमें अन्य कोई कर्ता है ही नहीं।

वीतराग कैसे थे? अंत में उन्होंने क्या देखा? खुद की ही प्रकृति देखी थी। खुद की ही प्रकृति को देखते रहते थे। प्रकृति सीधी चल रही है या टेढ़ी? वही देखते रहते थे। सभी जगह ज्ञाता-द्रष्टा ही रहते थे। औरों की प्रकृति देखने से ही यह संसार खड़ा हो गया है। वीतराग मात्र खुद की ही प्रकृति को देखा करते थे और जिसे देखे बिना चारा ही नहीं है। केवलज्ञान की अंतिम निशानी वही है कि खुद की ही प्रकृति को देखते रहें।

किसी का एक भी गुण मत भूलना। सौ अवगुण भूल जाना लेकिन किसी का एक भी गुण मत भूलना। वीतराग किसी के भी गुण नहीं भूले थे। जिस किसी का गुण भूले तो वह आपको ठेठ तक नहीं पहुँचने देगा। लेकिन अपना ज्ञान अनुपम है! इसलिए सबकुछ हो सके ऐसा है।

प्रकृति के प्रत्येक परमाणु को जो पहचान गया, वह छूट गया। भक्त तो धीरे-धीरे मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ते हैं। लेकिन यदि किंचित्मात्र सांसारिक इच्छा नहीं करे तो ज्ञानी मिल ही जाते हैं। ज्ञान और प्रकृति दोनों अलग ही हैं। लेकिन प्रकृति को जहाँ अंतराय पड़ते हैं, वहाँ ऑब्स्ट्रक्शन आ जाएगा, इसलिए टॉर्च डालकर देख लेना।

प्रकृति धर्म क्या कहता है? प्राकृत धर्म की रचना तो देखो! बड़े-बड़े ज्ञानियों को भी उसमें रहना पड़ा। प्राकृत धर्म तो पहचानना ही पड़ेगा। सिर्फ ज्ञाता-द्रष्टा ही आत्मा का धर्म है और बाकी के सभी

प्राकृत धर्म हैं। यह प्राकृत कैसा है? एक प्राकृत निर्भय बनाता है, जबकि दूसरा भयानक बनाता है। अनादि से प्रकृति का ही परिचय है। इस प्रकृति को अंत में भगवान रूप होना पड़ेगा। यह अपना ज्ञान ही ऐसा है कि प्रकृति भगवान रूप हो जाती है और परमानंद बरतता है!

प्रकृतिमय हुआ, इसलिए परवश हुआ। प्रकृति के अंतराय टूटे तब पुरुष हो गया, इससे ग़ज़ब की शक्ति पैदा होती है! ये लोग कहते हैं कि वह सब तो प्रकृति ही है। यह प्रकृति तो मूल अपनी भूल से ही खड़ी हो गई है, वह अब कैसे नचा रही है। जहाँ संयोग टिकने वाले नहीं हैं, वहीं पर शाश्वत संयोग मान बैठे हैं!

प्रकृति की विभाविकता

प्रश्नकर्ता : प्रकृति विभाविक हो जाती है वह... जब ग्रंथियाँ अधिक फूटती हैं उससे ऐसा होता क्या?

दादाश्री : हाँ, लेकिन उसे एविडेन्स आ मिलते हैं, इसलिए ही न? इंसान को जब चक्कर आएँ तब वह गिर नहीं जाता, लेकिन बहुत ज़्यादा चक्कर के एविडेन्स आ जाएँ तो वह गिर भी सकता है। 'ज्ञान' से पहले आप स्टेशन गए हों और वहाँ पता चले कि गाड़ी पाव घंटा लेट है। तब आप उतना इंतज़ार करते हो। फिर पता चले कि अभी आधा घंटा और लेट है, तब आप आधा घंटा और बैठते हो। बाद में फिर खबर आए कि अभी और आधा घंटा लेट है, तो क्या असर होगा आप पर?

प्रश्नकर्ता : अंदर खीजने लगता है और गालियाँ भी दे देता हूँ इन रेलवे वालों को!

दादाश्री : ज्ञान क्या कहता है कि गाड़ी लेट है, तो वह 'व्यवस्थित' है। 'अवस्था मात्र कुदरती रचना है जिसका कोई बाप भी रचने वाला नहीं है, और वह व्यवस्थित है', आप सिर्फ इतना ही बोलो, तो इन ज्ञान के शब्दों के आधार पर सहज रह पाओगे। प्रकृति अनादिकाल से असहज कर रही है, तब ज्ञान के आधार पर उसे

सहजता में लाना है। यह प्रकृति तो वास्तव में सहज ही है, लेकिन खुद के विभाविक भाव के कारण असहज हो जाती है। तो ज्ञान के आधार पर सहज स्वभाव में लानी है। रिलेटिव में दखलंदाज़ी गई, तो आत्मा सहज हो जाता है। यानी क्या कि खुद ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंद पद में रहता है।

यह ज्ञान हाज़िर रहे, तब ट्रेन आधा-आधा घंटा करते हुए सारी रात निकाल दे न, तो भी क्या हमें परेशानी होगी? और अज्ञानी तो आधे घंटे में कितनी ही गालियाँ सुना देता है। वे गालियाँ क्या ट्रेन को पहुँचने वाली हैं? गार्ड को पहुँचने वाली हैं? नहीं। वह कीचड़ तो वह खुद, अपने आप पर ही उछाल रहा है। ज्ञान हो तो मुश्किल में मुश्किल को देखता है और सुगमता में सुगमता को देखता है, उस का नाम ही सहज आत्मा। हमारा यह ज्ञान ऐसा दिया है कि थोड़ा सा भी *कंटाला* (उकता जाना, चिढ़ जाना) न आए। फाँसी पर चढ़ना हो, फिर भी एतराज़ न हो। फाँसी पर चढ़ना है, वह तो 'व्यवस्थित' है और रोकर भी चढ़ना तो है ही, तो फिर हँसकर क्यों न चढ़ें?

प्रकृति : स्वभाव से छुईमुई

प्रकृति का स्वभाव छुईमुई जैसा है। हाथ लगाएँ न, तो पत्ते सकुचा जाते हैं। हम घर में किसी बच्चे से कहें कि, 'तुझसे तो मैं परेशान हो गया हूँ', तो उसकी प्रकृति तुरंत ही सकुचा जाती है, छुईमुई की तरह। लेकिन उसे फिर से कहना चाहिए कि, 'ना भाई, मैं सचमुच में तुझसे परेशान नहीं हुआ हूँ।' इससे उसकी प्रकृति सकुचाएगी नहीं।

हम थक गए हों, फिर भी ऐसा नहीं बोलना चाहिए कि, 'मैं थक गया हूँ', नहीं तो अपनी प्रकृति सकुचा जाएगी। प्रकृति का स्वभाव लजीला है। अधिक खा लिया हो और अजीर्ण जैसा लगे तो बोलना नहीं चाहिए कि अजीर्ण जैसा हो गया है। नहीं तो प्रकृति सकुचा जाती है। हमें तो बोलना चाहिए कि, 'ना बाबा, अच्छी तरह पच गया है!'

पति वाइफ से ऊब जाए तो बोल देता है कि, 'तुझसे तो मेरा

दिमाग़ खिसक जाता है।' लेकिन तुरंत ही हमें अंदर बोलना पड़ेगा कि, 'ना भाई, जिनका दिमाग़ खिसके-विसके वे दूसरे, तुझसे तो मुझे कुछ भी नहीं हुआ है।' ताकि अपनी प्रकृति सकुचाए नहीं। वर्ना प्रकृति क्या कहेगी कि, 'आप बीच में अक़्ल लड़ाने वाले कौन?' इसलिए हमें सीधा बोलना है।

प्रकृति पलटे समझ से

यह ज्ञान मिला है, इसलिए अब एक क्षण के लिए भी प्रमाद का सेवन करने जैसा नहीं है। उसे डाँटना नहीं है, फटकार नहीं देना है। उसे कहना कि, 'तुझे जो भी खाना है वे सभी चीज़ें तुझे सप्लाई करेंगे, लेकिन तू इतना हमारा मान'। देह से कहना कि, 'तू हमारा इतना मान।' इगोइज़म बहुत उछलकूद कर रहा हो तो उसे कहें कि, 'मेरा इतना मान।'

प्रश्नकर्ता : यदि उसके विरोधी बन जाएँ तो, दादा? उसका विरोध करें तो क्या होगा?

दादाश्री : ना, प्रकृति का विरोध करेंगे तो वह भी विरोध करेगी। ऐसा ही तो उसे चाहिए। ऐसा ही तो उसे चाहिए कि विरोध करें और लपेट में ले लूँ। हमें विरोध नहीं करना है। हमें तो उसे समझा-पटाकर काम लेना है। और आखिर उसकी तो बालक अवस्था है। यह प्रकृति भले ही कितनी भी बड़ी हो, फिर भी उसकी बालक अवस्था है। कब उल्टा कर डाले, छोटे बालक जैसा कर ले, वह कहा नहीं जा सकता! वह बालक स्वभाव की है, इसलिए उसे समझा-पटाकर, गोलियाँ खिलाकर, लालच देकर, पकौड़ियाँ खिलाकर भी हल लाना है।

प्रश्नकर्ता : मतलब उसे बहला-फुसलाकर हल लाना है?

दादाश्री : ना, बहला-फुसलाकर नहीं, समझाकर। 'बहला-फुसलाकर', ऐसा अर्थ लगाना गलत है। उसे समझाना है। वह खुद यस करे, एक्सेप्ट करे, तब तक समझाना है। समझाए बिना काम नहीं

होगा। विरोधी नहीं होना है। विरोध करने से तो बल्कि वह अपनी गाड़ी को उलट देगी। इन बैलों को बहुत मारें तो वे गाड़ी को उलट देते हैं। जब मारें तब दौड़ते ज़रूर हैं। इसलिए हमें ऐसा लगता है कि मारने से ही दौड़ते हैं, चलते हैं, वैसी श्रद्धा बैठ जाती है, लेकिन कब वे गाड़ी को उलट दें, वह कह नहीं सकते। इसके बजाय तो उसे समझा-पटाकर काम करवाना। प्रकृति बालक स्वभाव की है। प्रकृति भले ही कितनी भी बड़ी हो जाए, भले ही कितने भी साल हो जाएँ, फिर भी स्वभाव से वह बालक है। भले ही पूरी ज़िंदगी वृद्ध का काम कर रहा हो, लेकिन कब बाल अवस्था में आ जाए, वह कहा नहीं जा सकता। रो उठती है, दीन हो जाती है, गिड़गिड़ाती है, सबकुछ करती है। करती है या नहीं करती?

प्रश्नकर्ता : करती है।

दादाश्री : प्रकृति बालक अवस्था कहलाती है तो फिर ऐसे बालक को समझाना, वह तो आसान चीज़ है। नहीं है आसान?

प्रकृति से समझा-पटाकर काम लेने जैसा है। समझाना तो अवश्य चाहिए। वह 'यस' नहीं कहे, तब तक सब बेकार है और वह यस कहे, ऐसी है।

यों छः महीने से मना कर रही होती है, लेकिन समझाएँ तो वही पाव घंटे में, यस कहे, ऐसा है। और फिर बालक जैसा है। और ज़िद पर चढ़े तो लाख सालों तक भी ठिकाने पर नहीं आए। हठ करें और समझाएँ, उन दोनों में बहुत फर्क है। समझाने के लिए बहुत तरकीब चाहिए। बच्चा भले ही कितना भी हठ पर चढ़ा हो, लेकिन यदि उसे समझाना आता हो, तो वह समझ जाता है। नहीं तो वह शोर मचा देता है, तूफान करके रख देता है। उसे समझाना आना चाहिए। अपने में आत्मा है और आत्मा प्राप्त हो जाने के बाद सभी कुछ आ जाता है। सभी कलाएँ सीख सकता है, यदि ढूँढे तो। खुद शोध करे और थोड़ी राह देखे तो अंदर से दर्शन में आ जाता है। लेकिन यदि

शोध करे तो। शोध नहीं करते, जानते ही नहीं हैं, और मारपीट करके ज़बरदस्ती करवाते हैं।

प्रकृति का स्वभाव कैसा है कि चीनी पर कंट्रोल आने वाला हो उससे पहले ही वह उछलकूद करती है कि, 'चीनी ले आएँ, चीनी ले आएँ। चीनी पर कंट्रोल आने वाला है', ऐसा कहती है। हम बहुत समझाएँ कि कंट्रोल आएगा तब थोड़ी-थोड़ी ले आएँगे, फिर भी वह कहती है, 'नहीं।' ऐसा है। प्रकृति तो बालक जैसी है। प्रकृति वृद्ध जैसी है और बालक जैसी भी है। समझाने के लिए बालक जैसी है। हम तो इसे गोलियाँ खिला-खिलाकर समझाते हैं।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति वृद्ध जैसी है वह किस दृष्टि से?

दादाश्री : वृद्ध जैसी है, उसका क्या कारण है कि चाहे कितनी भी बड़ी सेना आए, फिर भी वह नहीं छोड़ती, पकड़कर रखती है। और छोड़ दे तो सहज ही छोड़ देती है। वह 'हमने' देखा है। प्रकृति यदि जड़ होती तो वह छोड़ती ही नहीं, वह वीतरागी है। लेकिन प्रकृति को चेतन भाव प्राप्त है, मिश्रचेतन है।

मिश्रचेतन यानी क्या कि इस प्रकृति के ये जो सारे परमाणु हैं, इन्हें मिश्रसा कहा जाता है। मिश्रसा जब रस देकर जाते हैं, तब उसे विश्रसा कहा जाता है। शुद्ध परमाणुओं को विश्रसा कहा जाता है। भाव करने पर, उस समय वे प्रयोगसा हो गए। इस प्रकृति के परमाणुओं के गुणों को चेतन भाव प्राप्त है। इसलिए उसे कहा जा सकता है, समझाया जा सकता है। इस टैप रिकॉर्डर से कहें, चिल्लाएँ, समझाएँ, पटाएँ तो भी क्या समझा सकते हैं?

लोग आत्मा को नहीं जानते और उसके बिना चलता ही है न उन्हें? क्योंकि प्रकृति ऐसा मिश्रचेतन है। अपने बच्चे बड़े हों, सब को खूब परेशान कर दें वैसे हों, और ठगे जा सकें ऐसे नहीं हों, फिर भी वे आसानी से धोखा खा जाते हैं या नहीं? इसका क्या कारण है? 'यह प्रकृति है, इसे समझाने वाले चाहिए।'

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी समझाने से काम नहीं होता।

दादाश्री : उसका अर्थ यह है कि समझाना नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : कई बार प्रकृति को समझाने से काम नहीं हो पाता, तब उसे उलाहना देना ही पड़ता है। उदाहरण के लिए, डॉक्टर ने दो ही पूरियाँ खाने को कहा हो, लेकिन आम का रास हो तब तो प्रकृति कहेगी कि तीन खा। तब उसे समझाए तो वह नहीं मानती, तब उसे उलाहना देना ही पड़ता है। उस समय बहला-फुसलाकर नहीं हो पाता, हठ करनी पड़ती है।

दादाश्री : ऐसा है न, यदि समझाना आए तब तो बहुत ही अच्छा है। वह नहीं आता हो, तो उलाहना देना। लेकिन वह सेकन्डरी स्टेज कहलाती है। लेकिन वह देह की बात में चलता है, मन के बात में उलाहना देना अच्छा नहीं ही है। देह तो ज़रा जड़ है और उलाहना दें तो हर्ज नहीं। मूलतः जड़ स्वभाव की है और मन को तो समझाना पड़ता है।

देह को भी यदि समझाना आए तो समझाना अच्छा। देह भी मेरा कहा हुआ तो मानती है।

प्रश्नकर्ता : उसमें भी दादा, प्रकृति जितनी सहज हो गई है, वह उतनी ही आसानी से मान जाएगी, ऐसा ठीक है?

दादाश्री : हाँ, वह बात सही है। ये सारे परमाणु क्या कहते हैं? चेतन भाव प्राप्त किए हुए हैं, इसलिए वे कहते हैं कि हम आपका उलाहना सुनने नहीं आए हैं। उलाहना देने का फल आपको तुरंत ही मिल जाएगा। यह सब साइन्स है!

प्रश्नकर्ता : मैं पहले जब जैन साधुओं के साथ में था तब मेरे आहार को, आहार संज्ञा को मैं लकड़ी से मारता रहा, छः महीने हो गए तब जाकर तो उसने माना। लेकिन अब उसका रिएक्शन यह आया है कि पिछले आठ सालों से, एक पहर भी यदि भोजन नहीं मिले तो अंदर-बाहर शोर मच जाता है!

दादाश्री : देखो न, ये लोग कितने परेशान हो गए हैं! साधु, सन्यासी सभी कितने परेशान हो गए हैं? मन को दबाने जाते हैं, इसलिए! मन दबाने जैसी चीज़ नहीं है, वैसे ही छूट देने जैसी चीज़ भी नहीं है। लेकिन अगर छूट दें तो वह भी गुनाह है! दोनों ही गुनाह हैं!

प्रश्नकर्ता : क्या दोनों सही अनुपात में होने चाहिए?

दादाश्री : नहीं, अनुपात नहीं। जैसे कि यहाँ पर आपके बेटे की वाइफ आ जाए, तब उसके सामने मर्यादा रखनी होती है, आप लोगों में ऐसा होता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, होता है दादा।

दादाश्री : तो फिर उस बेटे की वाइफ यों ही आपके सामने से जा रही हो और आप कहो कि, 'नहीं, यहाँ पर खड़ी रहो, या अपना नाम बताओ, आप कहाँ तक पढ़ी हो, क्या करती हो?' अगर आप ऐसा करते हो तो वह नुकसानदायक है। यह तो मन को छूट दे दी! यह तो मन का रक्षण करने जैसी बात है। मन पर से 'अपना' प्रभाव टूट नहीं जाना चाहिए, उसके लिए पटाना है। लेकिन ऐसा नहीं करना चाहिए और विरोध भी नहीं करना चाहिए। अगर घर की स्त्रियों के साथ आप ऐसा करो तो क्या होगा? उन पर आपका प्रभाव नहीं रहेगा।

'भाभो भारमां तो वहु लाजमां' गुजराती में ऐसी कहावत है, उसके जैसा है। इसलिए इस मन के साथ बहुत सलीके से काम लेना चाहिए। इस 'मन' ने तो सभी का पतन कर दिया है। इसीलिए तो सभी साधु, आचार्य माथाफोड़ी में पड़े हुए हैं न! गुरु बन गए थे, वहाँ से उनका पतन हो गया, वे शिष्य के शिष्य और उसके भी शिष्य के शिष्य के ये शिष्य बनकर बैठे हुए हैं! क्योंकि मन पतन करवा देता है। ग़ज़ब की शक्तियाँ हैं इसमें। किसी भी चीज़ पर कंट्रोल हो, तब मन क्या करता है?

प्रश्नकर्ता : कंट्रोल से बाहर हो जाता है, फिर निरंकुश, बेकाबू हो जाता है।

दादाश्री : क्योंकि वह उसके स्वभाव से विरुद्ध है। मन क्या कहता है कि मुझे रोकना मत।

प्रश्नकर्ता : उसी समय गुरु की ज़रूरत है।

दादाश्री : हाँ, गुरु के बिना तो काम ही कैसे होगा? वह खुद कर ही कैसे सकता है?

प्रश्नकर्ता : मन की वृत्ति जब बहुत ज़ोर पकड़े, तब गुरु की ज़रूरत पड़ती है।

दादाश्री : गुरु के बिना कोई मोक्ष में नहीं गया है। सिर्फ तीर्थंकर जो कि स्वयंबुद्ध थे, वे गए हैं। लेकिन उन्हें पिछले किसी जन्म में गुरु मिले थे। उनके द्वारा उनको ज्ञानांजन का अंजन लग गया था, इसलिए उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई। लेकिन अन्य लोग तो गुरु के बिना मार खा जाते हैं। सिर पर कोई नहीं हो तो स्वच्छंद खड़ा हो जाता है। अब इस मन को मारना, वह भी स्वच्छंद है, और मन को बहलाते-फुसलाते रहना, वह भी स्वच्छंद है!

मन पर तो प्रभाव पड़ना चाहिए। यह किसके जैसा है, वह आपको समझाऊँ। इन भाई को यदि कोई व्यक्ति यहाँ मारने आया हो, लेकिन तब मुझे देखकर उसकी बोलती बंद हो जाती है, चुप हो जाता है, उसका क्या कारण है? तब कहे, प्रभाव। मुझे कुछ भी नहीं कहना पड़ता। वह तो प्रभाव काम करता है। उसी तरह 'अपना' मन पर प्रभाव पड़ना चाहिए। जब हमें गलत काम करना हो, तब जिस मन से हैल्प लें, तो फिर उस मन पर अपना प्रभाव किस तरह पड़ेगा? हो सके तब तक मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार पर अपना ऐसा प्रभाव पड़ना चाहिए कि यह चोर नहीं है। लेकिन अगर हमें कोई गलत काम करना हो, तब मन की हैल्प लें तो वह हमें चोर समझता है। अपना यदि प्रभाव हो तो घर वाले विरोध करते हैं या नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : नहीं करते।

दादाश्री : उसी प्रकार मन पर अपना प्रभाव पड़ना चाहिए। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सब के ऊपर अपना प्रभाव पड़ना चाहिए। अपने बोलने से पहले मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार पर, साँप जिस तरह मुरली बजते ही फन फैलाकर खड़ा रहता है, वैसा होना चाहिए, वैसा प्रभाव पड़ना चाहिए। वे सब परमाणुओं से बने हुए हैं। उन बेचारों को भी कुछ *शाता* (सुख-परिणाम) चाहिए। प्रभाव से *शाता* उत्पन्न होती है। लेकिन यदि हम ही उनसे कोई गलत काम करवाएँ तो अपना प्रभाव टूट जाएगा।

यह सब जो आप खाते हो, पीते हो, वह सब प्रकृति है। आत्मा है और अनात्मा है। उन दोनों के बीच प्रकृति है। दिखता चेतन है, लेकिन मूलतः स्वभाव से वह जड़ है, मिश्र चेतन है, 'सच्चा चेतन' नहीं है। इन साधु-सन्यासियों को यह चेतन जैसा दिखा, उसी को रियल चेतन मान लिया। लेकिन वह आत्मा नहीं है। वे जो मानते हैं, उसके उस पार रियल चेतन है, 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ, 'सर्वज्ञ' मिल जाएँ और वे जब प्रदान करें तब सच्चा आत्मा प्राप्त होता है। वर्ना, माने हुए आत्मा से क्रोध-मान-माया-लोभ जाते नहीं हैं।

''प्रकृति का एक भी गुण 'शुद्ध चेतन' में नहीं है और 'शुद्ध चेतन' का एक भी गुण प्रकृति में नहीं है।''

यह सूत्र गहनता पूर्वक पूरी तरह से समझने जैसा है।

सहज प्राकृत शक्ति देवियाँ

अंबामाता, दुर्गादेवी, ये सभी देवियाँ प्रकृति भाव सूचित करती हैं। वे सहजता सूचित करती हैं। प्रकृति सहज हो जाए तो आत्मा सहज हो जाता है अथवा आत्मा सहज हो जाए तो प्रकृति सहज हो जाती है। हम लोगों को माता जी की भक्ति खुद की प्रकृति द्वारा करवानी है। हमें आत्मभाव से नहीं करनी है। 'चंदूलाल' से देवी की भक्ति करवानी है और तभी प्रकृति सहज होगी।

यह तो, हिन्दुस्तान में लोगों ने माता जी के अलग-अलग नाम रखे हुए हैं। कितना अधिक, विशाल होगा यह साइन्स! कितनी सारी खोज करके अंबामाता, सरस्वतीदेवी, लक्ष्मीदेवी की शोध हुई होगी! यह सब किया, तब साइन्स कितना अधिक ऊँचा पहुँचा हुआ होगा? यह सब अभी खत्म हो गया है, तभी तो माता जी के दर्शन करना भी नहीं आया!

माता जी वे आद्यशक्ति हैं! वे प्राकृत शक्ति देती हैं। माता जी की भक्ति करने से प्राकृत शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। अंबा माँ तो संसार के विघ्न दूर कर देती हैं, लेकिन मुक्ति तो ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होती है। दर्शन करना आए तो चार माताएँ तो हाज़िर ही हैं - अंबा माँ, बहुचरा माँ, कालिका माँ और भद्रकाली माँ। माता जी पापों को नहीं धोतीं, लेकिन प्राकृत शक्तियाँ देती हैं।

ये अंबा माता जी हमारा (दादा का) कितना रक्षण करती हैं?

हमारे आसपास सब ओर देवी-देवता हाज़िर ही रहते हैं। हम देवी-देवताओं से पूछे बिना, उनकी आज्ञा लिए बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ते। सर्व देवी-देवताओं की कृपा हम पर और हमारे महात्माओं पर बरसती ही जा रही है!

माताजी

अंबिका देवी यानी सहज प्रकृति। हर एक देवी जी के नियम होते हैं। उन नियमों को पालें तो माता जी खुश रहती हैं। हम अंबे माँ के एक ही इकलौते लाल हैं। माता जी के पास आप हमारी चिट्ठी लेकर जाओगे तो वे स्वीकार करेंगी। आपका बेटा हो और नौकर हो, लेकिन यदि नौकर आपके नियम में ही रहे तो आपको नौकर प्रिय लगेगा या नहीं? लगेगा ही। हमने कभी भी अंबा माँ के, लक्ष्मी जी के या सरस्वती देवी के नियम नहीं तोड़े हैं। निरंतर उनके नियमों में ही रहते हैं। इसलिए ये तीनों देवियाँ हम पर निरंतर प्रसन्न रहती हैं। आपको भी यदि उन्हें प्रसन्न रखना हो तो उनके नियमों का पालन करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अंबामाता के क्या नियम हैं? हमारे घर पर अंबामाता की भक्ति करते हैं सभी, लेकिन उनके नियम क्या हैं वे हम नहीं जानते।

दादाश्री : अंबा जी देवी यानी क्या? वे प्रकृति की सहजता सूचित करती हैं। यदि सहजता टूटी तो अंबा जी तेरे ऊपर राज़ी ही कैसे होंगी? इन अंबा देवी का क्या कहना! वे तो माता जी हैं, माँ हैं। बंगाल में जो दुर्गा कहलाती हैं, वही ये अंबाजी हैं। सभी देवियों के अलग-अलग नाम रखे हैं, लेकिन ज़बरदस्त देवी हैं! पूरी प्रकृति हैं। पूरी प्रकृति का भाग यदि हो तो वह माता जी हैं। यदि प्रकृति सहज हुई तो आत्मा सहज हो ही जाता है। आत्मा और प्रकृति उन दोनों में से एक सहज की तरफ चला तो दोनों सहज हो जाते हैं!

सरस्वती

प्रश्नकर्ता : सरस्वती देवी के नियम क्या हैं?

दादाश्री : सरस्वती अर्थात् वाणी से संबंधित जो-जो नियम लागू होते हैं, उनका पालन करें तो सरस्वती देवी खुश रहती है। वाणी का दुरुपयोग करें, झूठ बोलें, प्रपंच करें तो फिर सरस्वती देवी कैसे राज़ी होंगी? जो भीतर है वह नहीं बोलो, तो तुम पर सरस्वती देवी कैसे राज़ी होंगी? आज किसी का भी वचनबल क्यों नहीं रहा? क्योंकि वाणी के नियमों का पालन नहीं किया है। मनुष्य में आने के बाद दो प्रकार के बलों की ज़रूरत है - वचनबल और मनोबल। देहबल, वह पाशवता में जाता है। वचनबल और मनोबल की शक्ति रिलेटिव आत्मा को बलवान करती है। अभी वचनबल तो लुप्त हो गया है और मन तो फ्रेक्चर हो गया है। आजकल वचनबल कैसे होते हैं? बाप बेटे से कहे कि, 'भाई, ज़रा खड़ा हो तो।' तब बेटा आड़ा होकर सो जाता है! खुद का बेटा ही नहीं मानता! यह वचनबल किस तरह चला गया? वाणी का गलत, उल्टा उपयोग किया, उससे। वाणी का किसी भी प्रकार का अपव्यय नहीं हो, वाणी को किसी भी विभाविक स्वरूप में नहीं ले जाए तो वचनबल उत्पन्न होगा।

झूठ बोले, प्रपंच करे, वह सब वाणी का अपव्यय कहलाता है। वाणी के दुर्व्यय और अपव्यय में बहुत फर्क है। अपव्यय मतलब सभी प्रकार से नालायक, सभी प्रकार से दुरुपयोग करते हैं। वकील दो रुपये के लिए झूठ बोलते हैं कि, 'हाँ, मैं इन्हें पहचानता हूँ', वह अपव्यय कहलाता है।

वाणी से कितनों को डराया, कुत्तों को डराया, झूठ बोले, प्रपंच किए, वह वाणी का दुरुपयोग किया कहलाता है। उससे वचनबल टूट जाता है। सिर्फ सत्य ही बोलो और फिर सत्य का आग्रह पकड़कर नहीं रखो तो वचनबल फिर से उत्पन्न हो जाता है। यदि चीज़ का दुरुपयोग होता है तो उसका वचनबल उतर जाता है। झूठ बोलकर, खुद का स्व-बचाव करे, उससे तो मन, वाणी सबकुछ फ्रेक्चर हो जाता है। सत्य बोले लेकिन उसके पीछे भावना कैसी ज़बरदस्त होनी चाहिए? इन 'दादा' जैसा वचनबल होना चाहिए। 'उठो' कहे तो उठ

जाए। हमारा वचनबल तो ग़ज़ब का है! हमारे शब्द कैसे होते हैं? ये शास्त्रों के शब्द नहीं हैं। शास्त्रों के शब्द तो जड़ और चोट लगे वैसे होते हैं और हमारे प्रत्यक्ष चेतन शब्द से तो भीतर 'ज्ञान' हाज़िर हो ही जाता है! आत्मा ही प्रकट हो जाता है! और फिर ज़रा सी भी चोट नहीं लगती। 'हमारी' वाणी से बिल्कुल भी अजीर्ण नहीं होता है। 'यह' तो पूरा 'ज्ञानार्क' है! यह पच जाता है और अजीर्ण नहीं होता! 'ज्ञानी पुरुष' का एक भी वचन वृथा नहीं जाता! ग़ज़ब का, ज़बरदस्त वचनबल होता है! उनके एक-एक वचन पर जगत् आफरीन होगा! उनका एक ही वचन ठेठ मोक्ष तक ले जाएगा। हमारे एक-एक शब्द में चेतन है। वाणी रिकॉर्ड स्वरूप है, जड़ है। लेकिन हमारी वाणी, भीतर ग़ज़ब के प्रकट हो चुके परमात्मा को स्पर्श करके निकलती है, इसलिए निश्चेतन को चेतन बना दे, ऐसी चेतनवाणी है! सामने वाले की भावना होनी चाहिए। हम बोलें कि, 'एय, कूद', तो सामने वाला दस फुट का गड्ढा भी कूद जाए! तब कुछ लोग कहते हैं कि, 'आप शक्तिपात करते हैं।' ना, हमारे वचन में ही ऐसा बल है! कोई बहुत डिप्रेस हो चुका हो तो हम उसे आँखों से प्रेम का पान करवाते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' तो किसी भी तरह से शक्ति प्रकट करवा दें। ग़ज़ब का वचनबल होता है।

कवि क्या गाते हैं :

'जगत् उद अवतार, देशना ते श्रुतज्ञान,
स्याद्वाद ज्ञान-दान, सर्वमान्य परमाण।'

जगत् का उदय अच्छा हो, तो 'ज्ञानी पुरुष' प्रकट हो जाते हैं और उनकी 'देशना' ही 'श्रुतज्ञान' है। उनके एक ही वाक्य में सभी शास्त्र पूर्ण रूप से आ जाते हैं!

शास्त्रों में लिखा है कि 'सत्य बोलो।' तब लोग कहते हैं कि, 'हमसे सत्य नहीं बोला जाता। इसलिए अब कोई कलियुगी शास्त्र दीजिए तब काम होगा।' कलियुग का असर नहीं हो पाए और मोक्ष में ले जाए ऐसे शास्त्र अब लिखे जाएँगे। यह सत्य बोलो, दया रखो,

शांति रखो, उन शास्त्रों की बातें तो पुरानी दवाई हो चुकी है! अब तो नई दवाई की आवश्यकता पड़ेगी। हमारा निश्चय तो सच बोलने का होना चाहिए। फिर भूल हो जाए तो हमें चंदूलाल से प्रतिक्रमण करवाना पड़ेगा। 'हमारे' शब्द आवरण तोड़ने वाले हैं। आपको अंदर पूरा स्पष्टीकरण दे दें, ऐसा ज्ञानी का वचनबल है। आप यहाँ हमारे पास बैठते हो, तब जगत् विस्मृत रहता है और उसी को मोक्ष कहा है!

हमारी वाणी तो प्रत्यक्ष सरस्वती कहलाती है। फोटो की सरस्वती, शास्त्रों की या पुस्तकों की सरस्वती, वह परोक्ष सरस्वती है। प्रत्यक्ष सरस्वती के दर्शन करने हों तो वह यहाँ हमारी वाणी सुने, तब हो जाते हैं!

यह सब बोला जा रहा है, लेकिन उसमें एक अक्षर भी 'मैं' नहीं बोलता हूँ, आपका पुण्य इन शब्दों को बुलवाता है। 'यह' जो वाणी निकलती है, उसके द्वारा 'हम' जान जाते हैं कि सामने वाले का कैसा पुण्य है। 'हमारी' वाणी भी रिकॉर्ड है। इससे हमें क्या लेना-देना? फिर भी 'हमारी' रिकॉर्ड कैसी होती है? संपूर्ण स्याद्वाद! किसी जीव को किंचित्मात्र भी दु:ख नहीं हो, हर एक का प्रमाण (मान्यता, श्रद्धा) जिसे स्वीकार करे, ऐसी है 'यह' स्याद्वाद वाणी।

सरस्वती की आराधना यानी क्या? वाणी का किसी भी तरह से अपव्यय नहीं हो और वाणी को उसके विभाविक स्वरूप में नहीं ले जाएँ, वह। यदि झूठ बोला तो वह कितना बड़ा विभाव है!

क्षत्रियों का वचन यानी वचन। वे अपना वचन नहीं बदलते। अभी मुंबई शहर में है ही नहीं न कोई! अरे! वचन तो कहाँ गया, लेकिन यह लिखा हुआ दस्तावेज, हस्ताक्षर किया हुआ हो तब भी कहता है कि, 'हस्ताक्षर मेरे नहीं हैं' और सच्चा क्षत्रिय तो वचन बोला यानी कि बोला।

ये चारण लोग फोटो वाली सरस्वती की भजना करते हैं, फिर भी उनकी वाणी कितनी ज़्यादा मीठी होती है!

लक्ष्मी जी

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी जी के नियम क्या हैं?

दादाश्री : लक्ष्मी जी गलत तरह से नहीं लेनी चाहिए, यह नियम है। इस नियम को यदि तोड़ें, तब फिर लक्ष्मी जी कहाँ से राज़ी रहेंगी? फिर तू लाख लक्ष्मी जी को धो न! सभी धोते हैं। वहाँ विलायत में क्या लोग लक्ष्मी जी को धोते हैं?

प्रश्नकर्ता : ना दादा, वहाँ तो कोई लक्ष्मी जी को नहीं धोता।

दादाश्री : फिर भी उन फॉरैनर्स के पास लक्ष्मी जी आती हैं या नहीं! ऐसे क्या लक्ष्मी जी धोने से आती होंगी? दही में भी धोते हैं यहाँ हिन्दुस्तान में। लक्ष्मी जी को सभी धोते रहते हैं, और कोई भी कच्चा नहीं है। मुझे भी लोग कहने आते हैं कि, 'आपने लक्ष्मी जी को धोया या नहीं?' मैंने कहा, 'किसलिए? ये लक्ष्मी जी जब मिलती हैं, तब हम कह देते हैं कि, बड़ौदा में, मामा की पोल, और छठा घर, जब अनुकूल आए तब पधारिएगा और जब जाना हो तब जाइएगा। आपका ही घर है। पधारिएगा', इतना हम कहते हैं। हम विनय नहीं चूकते। हम वहाँ पर ऐसा नहीं कहते कि, 'हमें इनकी ज़रूरत नहीं है।'

लक्ष्मी जी का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। कुछ साधु-महाराज वगैरह लक्ष्मी जी को देखकर 'नहीं-नहीं', करते हैं। उससे उनके कितने ही जन्म लक्ष्मी के बिना भटक मरेंगे। तो मुए, लक्ष्मी जी का ऐसे तिरस्कार मत करना, नहीं तो छूने को भी नहीं मिलेंगी। तिरस्कार नहीं करते। किसी भी चीज़ का तिरस्कार किया जाए, ऐसा नहीं है। नहीं तो अगले जन्म में लक्ष्मी जी के दर्शन भी करने को नहीं मिलेंगे। यह जो लक्ष्मी जी का तिरस्कार करते हैं, वह तो व्यवहार को धक्का मारने जैसा है। यह तो व्यवहार है। इसलिए हम तो लक्ष्मी जी को आते हुए भी 'जय सच्चिदानंद' और जाते हुए भी 'जय सच्चिदानंद' करते हैं। 'यह घर आपका है, जब अनुकूल आए तब पधारिएगा', ऐसी विनती करनी चाहिए। लक्ष्मी जी कहती हैं, 'ये सेठ लोग हमारे पीछे पड़े हैं,

उससे उनके पैर छिल गए हैं। वे पीछे पड़ते हैं, तब दो-चार बार गिर जाते हैं, तब वापस मन में ऐसा भाव करते हैं कि, 'अरे इसमें तो घुटने छिल जाते हैं', और इतने में तो हम फिर से इशारा करते हैं और फिर वह सेठ खड़ा होकर दौड़ने लगता है। यानी हमें उन्हें मारते रहना है। उन्हें सब तरफ से छीलकर लहू-लुहान कर देना है। उन्हें सूजन चढ़ी है, फिर भी समझ नहीं खुलती!' बहुत पक्की हैं लक्ष्मी जी तो!

कलिकाल की लक्ष्मी

आज की लक्ष्मी 'पापानुबंधी पुण्य' की है। इसलिए वह क्लेश करवाए ऐसी है। इससे तो कम आए तो अच्छा, घर में क्लेश तो नहीं घुसे! आज जहाँ-जहाँ लक्ष्मी आती है, वहाँ क्लेश का वातावरण हो जाता है। एक रोटी और सब्ज़ी अच्छी, लेकिन बत्तीस प्रकार के पकवान काम के नहीं हैं। क्योंकि वे पकवान खाने के बाद क्लेश हो, तो किस काम का! इस काल की, लक्ष्मी आती है और क्लेश लाती है। पापानुबंधी पुण्य की लक्ष्मी दुःख देकर जाती है, नहीं तो एक ही रुपया, ओहोहो! कितना सुख देकर जाए! पुण्यानुबंधी पुण्य तो घर में सभी को सुख-शांति देकर जाता है, घर के सभी लोगों को सिर्फ धर्म के ही विचार रहा करते हैं।

लक्ष्मी तो कैसी है? कमाते हुए भी दुःख, संभालते हुए दुःख, रक्षण करते हुए दुःख और खर्च करते हुए भी दुःख। घर में लाख रुपये आएँ, तब उन्हें संभालने की परेशानी हो जाती है। कौन से बैंक में इसकी सेफसाइड है, वह ढूँढना पड़ता है और फिर रिश्तेदारों को पता चले कि तुरंत ही दौड़े आते हैं। सभी मित्र दौड़े आते हैं। कहते हैं, 'अरे यार, मुझ पर इतना भी विश्वास नहीं? सिर्फ दस हज़ार रुपये चाहिए।' मजबूरन फिर वे देने पड़ते हैं। यह तो पैसे अधिक हों तो भी दुःख और कम हों तो भी दुःख। यह तो नॉर्मल हो वही अच्छा, नहीं तो फिर लक्ष्मी खर्च करते हुए भी दुःख होता है।

यह ज़रा किसी ने नई साड़ी ली हो, तो तुरंत कहती है, 'ऐसी साड़ी मैंने भी ली होती तो?' ऐसे विचारों से दुःख हो जाता है। उसी प्रकार यह लक्ष्मी तो आए और जाए तब तक दुःख दे ऐसा है। यह

तो कहते हैं कि, 'ये चालीस हज़ार बैंक में है, वे कभी भी नहीं निकालने हैं।' फिर वह ऐसा समझता है कि यह क्रेडिट ही रहेगा। ना, उसमें तो डेबिट का खाता होता ही है। वह जाने के लिए ही आती है। इस नदी में भी यदि पानी उफनने लगे तो वे सभी को छूट दे देते हैं कि 'जाओ, काम में लो।' जबकि इनके पास आए तो वे रोककर रखते हैं। नदी को यदि चेतना आ जाती न तो वह भी संभालकर रखती! यह तो जितना आए उतना खर्च कर देना चाहिए, उसमें रोकने का क्या है? खाना-पीना और खिला देना। यह तो *पूरण-गलन* स्वभाव का है। जितना *पूरण* (चार्ज होना, भरना) हुआ, उतना फिर *गलन* (डिस्चार्ज होना, खाली होना) होगा। यदि *गलन* नहीं होता न तो भी मुसीबत हो जाती। लेकिन जितना *गलन* होता है, उतना फिर खाया जाता है। यह साँस लिया वह *पूरण* किया और उच्छ्वास निकाला वह *गलन* है। सभी *पूरण-गलन* स्वभाव का है। इसलिए हमने क्या खोज की कि, 'कमी नहीं और अधिकता भी नहीं! हमें कभी लक्ष्मी की 'कमी भी नहीं पड़ी और अधिकता भी नहीं रही! कमी वाले सूख जाते हैं और अधिकता वाले को सूजन चढ़ती है। अधिक यानी क्या कि लक्ष्मी जी दो-तीन साल तक जाएँ ही नहीं। लक्ष्मी जी तो चलती हुई ही भली, नहीं तो दु:खदायी हो जाती हैं। हमें तो लक्ष्मी जी कभी भी याद ही नहीं आतीं। याद किसे आती हैं कि जिसने दर्शन नहीं किए हों उसे, लेकिन हमारे अंदर तो लक्ष्मी और नारायण दोनों साथ में ही हैं। हमें लक्ष्मी जी सामने मिलें तो हम विनय करते हैं। वह नहीं चूकते।

अपने में कहावत है न कि 'बेटा होगा तो बहू आएगी ही न!' 'नारायण' हैं, तब 'लक्ष्मीजी' आएँगी ही। हमें तो सिर्फ विनय से अपने घर का एड्रेस ही देना होता है। लक्ष्मी जी को तो लोग पहली बार गौने पर आई हुई बहू की तरह रोककर रखते हैं। लक्ष्मी जी विनय चाहती हैं। जहाँ भगवान हैं, वहाँ वैभव की क्या कमी?

लक्ष्मी जी तो हाथ में जैसे मैल आया करता है, वैसे हर किसी

के हाथ में हिसाब के अनुसार आती ही रहती हैं। जो लोभांध हो जाता है, उसकी सभी दिशाएँ बंद हो जाती हैं। उसे और कुछ भी नहीं दिखता। एक सेठ का चित्त पूरे दिन व्यापार में और पैसे कमाने में, तो उसके घर की बेटियाँ और बेटे कॉलेज के बदले किसी और जगह जाते हैं। क्या वह सेठ देखने जाता है? अरे, तू कमाता रहता है और वहाँ तो घर बरबाद हो रहा है। हम तो साफ शब्दों में, उसके हित का ही कह देते हैं।

1942 के बाद की लक्ष्मी

प्रश्नकर्ता : मैं दस हज़ार रुपये महीने कमाता हूँ, लेकिन मेरे पास लक्ष्मी जी टिकती क्यों नहीं?

दादाश्री : 1942 के बाद की लक्ष्मी टिकती नहीं है। यह जो लक्ष्मी है, वह पाप की लक्ष्मी है, इसलिए टिकती नहीं है। अभी के बाद के दो-पाँच साल के बाद की लक्ष्मी टिकेगी। हम 'ज्ञानी' हैं, फिर भी लक्ष्मी आती है, इसके बावजूद टिकती नहीं। यह तो इन्कम टैक्स भरा जाए, उतनी लक्ष्मी आती है, यानी हो गया।

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी न टिके तो क्या करें?

दादाश्री : लक्ष्मी तो टिके ऐसी है ही नहीं। लेकिन उसका रास्ता बदल देना है। उस रास्ते पर है, तो उसका प्रवाह बदल देना है और धर्म के रास्ते पर मोड़ देनी है। वह जितनी सन्मार्ग पर गई उतनी खरी। भगवान के आने के बाद लक्ष्मी जी टिकती हैं, उसके सिवा लक्ष्मी जी टिकें किस तरह? भगवान हों, वहाँ पर क्लेश नहीं होता और सिर्फ लक्ष्मी जी हों तो क्लेश और झगड़े होते हैं। लोग ढेरों लक्ष्मी कमाते हैं, लेकिन वह व्यर्थ जाती है। किसी पुण्यवान के हाथों ही लक्ष्मी अच्छे रास्ते खर्च होती है। लक्ष्मी अच्छे रास्ते खर्च हो, तो वह बहुत भारी पुण्य कहलाता है।

1942 के बाद की लक्ष्मी में कोई बरकत ही नहीं है। अभी लक्ष्मी यथार्थ जगह पर खर्च नहीं होती है। यथार्थ जगह पर खर्च हो

तो बहुत अच्छा कहलाए। यहाँ अपने यहाँ तो अब मोक्ष की ही बात बची है।

वणिक बुद्धि वाले तो असल में लक्ष्मी जी की ट्रिक समझ गए हैं कि जो कमाऊँगा, उसके आठवें भाग का भगवान में डाल दूँ, बाद में फिर उसकी फसल काटूँगा। तो भगवान भी यह लक्ष्मी जी प्राप्त करने की उनकी ट्रिक समझ गए हैं। भगवान क्या कहते हैं कि, 'तुम लक्ष्मी जी प्राप्त करते ही रहो, लेकिन मोक्ष नहीं मिलेगा तुम्हें।'

लोगों की लक्ष्मी गटर में जाती है। पुण्य की कमाई संतपुरुषों के लिए जाती है।

क्षत्रिय को कैसा है कि भगवान के वहाँ दर्शन करने जाए तो जेब में से जितने पैसे निकलें उतने डाल देता है। जबकि वणिक बुद्धि वाले को कैसा है कि पहले से ही निश्चित करके पैसे डालता है। रुपये का नोट निकले तो छुट्टा करवाकर दस पैसे डालता है!

लक्ष्मी जी का स्वभाव

प्रश्नकर्ता : यह जो लक्ष्मी कमाते हैं, वह कितनी मात्रा में कमानी चाहिए?

दादाश्री : इसमें ऐसा कुछ नहीं है। रोज़ सुबह नहाना पड़ता है न? फिर भी कोई सोचता है कि एक ही लोटा पानी मिलेगा तो क्या करूँगा? उसी तरह लक्ष्मी का भी विचार नहीं आना चाहिए। डेढ़ बाल्टी मिलेगी, उतना निश्चित ही है। और दो लोटे वह भी निश्चित ही है, उसमें कोई कम-ज़्यादा नहीं कर सकता। इसलिए मन-वचन-काया से लक्ष्मी के लिए तू प्रयत्न करना, इच्छा मत करना। ये लक्ष्मी जी तो बैंक बेलेन्स है, बैंक में यदि वह जमा हुआ होगा तभी मिलेगा न? कोई लक्ष्मी जी की इच्छा करे तो लक्ष्मी जी कहती हैं कि, 'तुझे इस जुलाई में पैसे मिलने वाले थे, वे अगली जुलाई में मिलेंगे', और जो कहता है कि 'मुझे पैसे नहीं चाहिए', तो वह भी बड़ा गुनाह है। लक्ष्मी जी का तिरस्कार

नहीं और इच्छा भी नहीं करनी चाहिए। उन्हें तो नमस्कार करने चाहिए। उनका तो विनय रखना चाहिए, क्योंकि वे तो हेड ऑफिस में हैं।

लक्ष्मी जी तो उनके खुद के टाइम पर, काल पकने पर आती हैं, ऐसा ही है। यह तो इच्छा से अंतराय डालता है। लक्ष्मी जी कहती हैं कि, 'जिस टाइम पर जिस मुहल्ले में रहना हो, उसी टाइम पर रहना चाहिए, और हम समय-समय पर भेज ही देते हैं। तेरे हर एक ड्राफ्ट वगैरह सभी टाइम से आ जाएँगे। लेकिन साथ ही, मेरी इच्छा मत करना। क्योंकि नियमपूर्वक जिसका है, उसे ब्याज के साथ भिजवा देते हैं। जो इच्छा करता है उसके वहाँ देर से भेजते हैं, और जो इच्छा नहीं करता उसे समय से भिजवा देते हैं।' दूसरा, लक्ष्मी जी क्या कहतीं हैं कि 'तुझे मोक्ष में जाना हो तो हक़ की लक्ष्मी मिले, वही लेना। किसी की भी लक्ष्मी छीनकर, ठगकर मत लेना।' फिर भी यदि लक्ष्मी जी की उलट-पुलट (आना-जाना) नहीं हो, तो अनुभव नहीं हो सकता और अनुभव हुए बगैर मोक्ष में नहीं जा सकते!

लक्ष्मी जी का जावन

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी जी की कमी किसलिए पड़ती है?

दादाश्री : चोरियों से। जहाँ मन-वचन-काया से चोरियाँ नहीं होतीं, वहाँ लक्ष्मी जी कृपा करती हैं। लक्ष्मी का *अंतराय* (विघ्न, बाधा) चोरी से है। ट्रिक और लक्ष्मी जी का बैर है। स्थूल चोरी बंद हो, तब जाकर तो ऊँची जाति में जन्म मिलता है। लेकिन सूक्ष्म चोरी यानी कि ट्रिक करते हैं, वह तो हार्ड रौद्रध्यान है, और उसका फल नर्कगति है। यह कपड़ा खींचकर देते हैं, वह हार्ड रौद्रध्यान है। ट्रिक तो होनी ही नहीं चाहिए। ट्रिक किसे कहा जाता है? 'बहुत शुद्ध माल है' कहकर मिलावट वाला माल देकर खुश होता है। और यदि हम कहें कि, 'ऐसा तो कहीं करना चाहिए?' तो तब वह कहता है कि, 'यह तो ऐसे ही किया जाता है।' लेकिन प्रामाणिकता की इच्छा वाले को क्या कहना चाहिए कि, 'मेरी इच्छा तो अच्छा माल देने की है, लेकिन यह माल ऐसा है, यह ले जाइए।' इतना कह दें, तब भी जोखिमदारी अपनी नहीं!

यह पूरा मुंबई शहर दुःखी है, क्योंकि पाँच लाख मिलें, इस योग्य हैं, और करोड़ की मुहर लगाकर बैठे हैं और जो इस योग्य हैं कि हज़ार मिलें, वे लाख की मुहर लगाकर बैठे हैं!

प्रश्नकर्ता : पैसे विनाशी चीज़ हैं, इसके बावजूद उसके बगैर चलता नहीं है न? गाड़ी में बैठने से पहले पैसे चाहिए।

दादाश्री : जिस तरह लक्ष्मी के बिना नहीं चलता, उसी तरह लक्ष्मी मिलनी-नहीं मिलनी, वह खुद की सत्ता की बात नहीं है न! यह लक्ष्मी मेहनत से मिलतीं, तब तो मज़दूर मेहनत करके मर जाते हैं, फिर भी मात्र खाने लायक ही मिलता है और मिल मालिक बिना मेहनत के दो मिलों के मालिक होते हैं।

ये लक्ष्मी जी कैसे आती हैं और कैसे जाती हैं, वह हम जानते हैं। लक्ष्मी जी मेहनत से नहीं आतीं या अक़्ल से या ट्रिक करने से भी नहीं आती हैं। लक्ष्मी कैसे कमाई जाती है? यदि सीधी तरह कमाई जा सकती तो अपने मंत्रियों को चार आने भी नहीं मिलते! यह लक्ष्मी तो पुण्य से कमाई जाती हैं। पागल हो तो भी पुण्य से कमाता रहता है। पागल का उदाहरण देता हूँ।

लक्ष्मी जी का आवन

एक सेठ थे। सेठ और उनका मुनीम दोनों बैठे हुए थे। अहमदाबाद में ही तो न! लकड़ी का तख्ता और ऊपर गद्दी, ऐसा पलंग, सामने तिपाई। और उसके ऊपर भोजन का थाल था। सेठ खाना खाने बैठ रहे थे। सेठ की डिज़ाइन कहूँ। बैठे थे तीन फुट जमीन पर। जमीन से डेढ़ फीट ऊपर सिर, मुँह का त्रिकोण आकार और बड़ी-बड़ी आँखें और बड़ा नाक, और होठ तो मोटे-मोटे थे पकौड़ी जैसे और पास में फोन। खाते-खाते फोन आए तो बात करते। सेठ को खाना तो आता नहीं था। दो-तीन पूरी के टुकड़े नीचे गिर गए थे और चावल तो कितने ही बिखरे हुए थे! नीचे! फोन की घंटी बजती और सेठ कहता कि 'दो हज़ार गांठ ले लो।' और दूसरे दिन दो लाख रुपये कमा लेता

था। मुनीम जी बैठे-बैठे माथाफोड़ करते और सेठ बिना मेहनत के कमाते हैं। यों सेठ तो अक़्ल से ही कमाते हुए दिखते हैं, लेकिन वह अक़्ल खरे समय पर पुण्य के कारण प्रकाश देती है। यह पुण्य से है। वह तो सेठ को और मुनीम जी को साथ में रखें, तब समझ में आएगा। खरी अक़्ल तो सेठ के मुनीम में ही होती है, सेठ में नहीं। यह पुण्य कहाँ से आया? भगवान की समझकर भजना की, इसलिए? ना, बिना समझे भजना की, इसलिए। किसी पर उपकार किए, किसी का भला किया, उन सब से पुण्य बंधा। भगवान को नासमझी से भजते हैं, फिर भी अग्नि में हाथ नासमझी में डाल दे, तो भी जल जाता है न? यह अक्रम ज्ञान है। यहाँ लिफ्टमार्ग है, इसलिए खाते-पीते हुए भी मुक्ति बरतती है। आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं होते हैं। वही पुणिया श्रावक का सामायिक यहाँ चखने को मिलता है।

यह तो लोग पूरा दिन आर्तध्यान और रौद्रध्यान करते हैं, उनसे लक्ष्मी तो उतनी ही आने वाली है। भगवान ने कहा है कि लक्ष्मी धर्मध्यान से बढ़ती है और आर्तध्यान और रौद्रध्यान से लक्ष्मी घटती है। यह तो आर्तध्यान से और रौद्रध्यान से लक्ष्मी बढ़ाने के उपाय करते हैं। वह तो पहले का पुण्य जमा रहा हुआ होगा तभी मिलेगी। इन 'दादा' की 'कृपा' से तो सबकुछ आ मिलता है। कारण क्या है? उनकी कृपा से सारे अंतराय टूट जाते हैं। लक्ष्मी तो है ही, लेकिन आपके अंतराय से मिल नहीं रही थी। वे अंतराय 'हमारी' 'कृपा' से टूट जाते हैं और उसके बाद सबकुछ आ मिलता है। 'दादा' की 'कृपा' तो मन के रोगों के, वाणी के रोगों के और देह के रोगों के - उन सर्व प्रकार के दु:खों के अंतरायों को तोड़ने वाली है। यहाँ पर जगत् के समस्त दु:ख चले जाते हैं। किसी की दो मिलें, लेकिन बेटा शराबी हो तो वह बाप को रोज़ मारता है, गालियाँ देता है। तो वह कहा भी नहीं जाता और सहा भी नहीं जाता। ऐसे सब दु:ख हैं। यह संसार तो निरा दु:खों का ही साम्राज्य है। बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजा भी राजपाट छोड़कर भाग निकले। और इससे झोंपड़ी नहीं छूटती। ऐसी क्या ममता है कि छूटता नहीं? आधि, व्याधि और *उपाधि* के ताप में इंसान

शक्करकंद की तरह चारों ओर से भुन रहा है। दो मिलों वाला, संसारी, त्यागी, दो पत्नियों वाला और सन्यासी - सभी भुन रहे हैं। उसमें 'यही' एक शीतल छाया खड़ी हुई है, नहीं तो किस तरह जीएँ वह भी भारी हो जाए, ऐसा है। यही एक समाधि का स्थान बना है!

प्रश्नकर्ता : आजकल पैसे की प्रधानता है, ऐसा क्यों?

दादाश्री : जब इंसान को किसी तरह की सूझ नहीं पड़ती है, तब मान बैठता है कि पैसों से सुख मिलेगा। ऐसा दृढ़ हो जाता है, इसलिए मानता है कि पैसों से विषय मिलेंगे। बाकी का सबकुछ भी मिलेगा। लेकिन उसकी भी गलती नहीं है। यह तो (उसने) पहले से ही ऐसे कर्म किए हुए हैं, उनके ये फल आते रहते हैं। इस पूरे मुंबई में दसेक लोग ही पुण्यानुबंधी पुण्य वाले लक्ष्मीवान होंगे, और बाकी के पापानुबंधी पुण्य वाले लक्ष्मीवान हैं और वे निरंतर अपार चिंता में रहा करते हैं।

हम भी व्यापारी इंसान हैं। इसलिए संसार में व्यापार-रोज़गार और इन्कम टैक्स वगैरह सभी हमें भी हैं। हम कान्ट्रैक्ट का व्यवसाय करते हैं, फिर भी उसमें हम संपूर्ण वीतराग रहते हैं। ऐसे वीतराग कैसे रह पाते हैं? 'ज्ञान' से। अज्ञानता से लोग दु:खी हो रहे हैं। लक्ष्मी पापानुबंधी पुण्य से होती है, लेकिन विचार निरे पाप के ही होते हैं। लक्ष्मी पुण्यानुबंधी पुण्य वाले की दासी ज़रूर है, लेकिन उसे वह ऊँचे ले जाती है, और पापानुबंधी पुण्यवानों की भी लक्ष्मी दासी है, लेकिन वह उसे अधोगति में ले जाती है!

आजकल तो इंसान, इंसान ही नहीं रहा है न! और उनकी मौत तो देखो? कुत्ते की तरह मरते हैं। ये तो *अणहक्क* (बिना हक़वाले) के विषय भोगे हैं, उसका फल है। जिनके पास लक्ष्मी है, विपरीत बुद्धि की वजह से उन्हें भी अपार दु:ख हैं। सम्यक् बुद्धि सुखी बनाती है।

सच्ची लक्ष्मी कब आती है कि आपके मन के भाव सुधरें, तब। इन व्यभिचारी विचारों से सच्ची लक्ष्मी तो कैसे आएगी? पापानुबंधी पुण्य की लक्ष्मी तो रोम-रोम में काटकर जाती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन लोगों को अभी पैसों की ज़रूरत है न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन क्या इस वजह से ऐसे पक्के दुर्ध्यान करने चाहिए? यह नहाना भी रोज़ की ज़रूरत है, फिर भी वहाँ क्यों नहाने के लिए ध्यान नहीं बिगड़ता? अभी तो यदि पानी नहीं मिले तो उसमें भी ध्यान बिगड़ जाता है, लेकिन हमारा तो तय ही होना चाहिए कि पानी मिला तो नहाऊँगा, नहीं तो नहीं, लेकिन ध्यान नहीं बिगड़ना चाहिए। पानी का स्वभाव है कि आता रहता है। वैसे ही लक्ष्मी का स्वभाव है कि आती रहती है, और टाइम हो जाए तब चलती बनती है। पूरे वर्ल्ड में किसी की, संडास जाने की सत्ता भी उसकी खुद की नहीं है। यह तो मात्र नैमित्तिक क्रिया करनी होती है। लेकिन वहाँ ध्यान बिगाड़कर छीन लेने की इच्छा रखे, तब तो फिर कैसे फल आएँगे?

एक व्यक्ति आम की आशा से पेड़ के नीचे बैठा। भगवान ने पूछा, 'अरे, तू क्यों पेड़ के नीचे बैठा है?' तब उसने कहा, 'आम खाने के लिए।' भगवान ने कहा, 'अरे, यह तो बरगद का पेड़ है न? वहाँ आम की आशा से तुझे क्या मिलेगा? अरे, पेड़ को पहचान! पेड़ को पहचानकर तू फल की आशा रख।' 'ज्ञानी पुरुष' के पास जा तो तेरा समाधान हो जाएगा। ये लोग तो भगवान को भूलकर लक्ष्मी जी को ढूँढ रहे हैं। जो भगत है, उसे लक्ष्मी जी की कमी रहती है। भगत और भगवान दोनों अलग होते हैं। वहाँ भेद होता है। भगत बहुत बावले होते हैं। नियम कैसा है कि जहाँ बावलापन हो, वहाँ से लक्ष्मी जी चली जाती हैं। व्यवहार में ज्ञानी बावलेपन वाले नहीं होते, बहुत सतर्क होते हैं। भक्ति से 'ज्ञानी पुरुष' मिलते हैं और 'ज्ञान' प्राप्त होता है। 'ज्ञान' से मोक्ष होता है।

भगवान ने क्या कहा था कि नर्मदा जी में पानी आता है तो वह नर्मदा जी के पाट के सामर्थ्य के अनुसार ही होता है। लेकिन यदि उसके सामर्थ्य से ज़्यादा पानी आए तो? तो वह किनारा-विनारा सब तोड़ डालता है और आसपास के गाँवों को डुबा देता है। लक्ष्मी जी का भी वैसा ही है। नॉर्मल आए, तब तक अच्छा। लक्ष्मी जी बिलो

नॉर्मल आएँ तो भी फीवर है और एबव नॉर्मल भी फीवर है। एबव नॉर्मल तो फीवर बढ़ाता है। लेकिन दोनों तरह के स्टेजेज़ में लक्ष्मी फीवर स्वरूप हो पड़ती है।

लक्ष्मी का स्वभाव कैसा है कि जैसे-जैसे लक्ष्मी बढ़ती जाए, वैसे-वैसे 'परिग्रह' बढ़ता जाता है।

लक्ष्मी के लिए कुछ लोग निस्पृह हो जाते हैं, तो निस्पृहभाव, वह कौन कर सकता है? जिसे आत्मा की स्पृहा हो वही निस्पृह भाव कर सकता है। लेकिन आत्मा प्राप्त हुए बिना आत्मा की स्पृहा किस तरह से हो? इसलिए सिर्फ निस्पृह हो जाता है और सिर्फ निस्पृही हुआ तो वह भटक मरेगा! यानी कि सस्पृही-निस्पृही हो तो मोक्ष में जाएगा। हम लक्ष्मी के विरोधी नहीं हैं कि हम लक्ष्मी का त्याग करें। लक्ष्मी का त्याग नहीं करना है, लेकिन अज्ञानता का त्याग करना है। कुछ लोग लक्ष्मी का तिरस्कार करते हैं। किसी भी चीज़ का तिरस्कार किया तो वह कभी भी फिर मिलती ही नहीं। सिर्फ निस्पृह हो जाए, तो वह तो सब से बड़ा पागलपन है।

ज्ञानी-सस्पृह, निस्पृह

हम सस्पृह-निस्पृह हैं। भगवान सस्पृह-निस्पृह थे। जबकि उनके चेले निस्पृह हो गए हैं! नेसेसिटी अराइज़ (ज़रूरत पैदा) हो उस अनुसार काम लेना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सस्पृह-निस्पृह वह किस तरह? वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : संसारी भावों में हम निस्पृही और आत्मा के भावो में सस्पृही। सस्पृही-निस्पृही होगा तभी मोक्ष में जा पाएगा। इसलिए हर एक अवसर का स्वागत कर लेना। समयानुसार काम लेना। फिर वह फायदे का हो या नुकसान का हो। भ्रांत बुद्धि 'सत्य' का अवलोकन नहीं होने देती। भगवान कहते हैं कि, 'तू भले थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी में रहे, उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन ज़रा अविरोधाभास जीवन रखना।

लक्ष्मी जी के नियम का पालन तो करना ही चाहिए। गलत रास्ते वाली लक्ष्मी नहीं लेनी चाहिए। लक्ष्मी के लिए सहज प्रयत्न होना चाहिए। दुकान पर जाकर रोज़ बैठना, लेकिन उसकी इच्छा नहीं होनी चाहिए। किसी के पैसे लिए तो लक्ष्मी जी क्या कहती हैं कि वापस दे देना। रोज़ ऐसा भाव करना चाहिए कि 'दे देने हैं', तो वे दिए ही जाएँगे।

दूसरी बात यह कि लक्ष्मी जी का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। कुछ कहते हैं कि, 'हमें नहीं चाहिए, लक्ष्मी जी को हम टच भी नहीं करते।' लक्ष्मी जी को नहीं छुए, उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन ऐसे जो वाणी से बोलते हैं न, भाव में वैसा बरतता है, वह जोखिम है। आगे कितने ही जन्मों तक लक्ष्मी जी के बिना भटकता है। लक्ष्मी जी तो वीतराग हैं, अचेतन चीज़ है। खुद को उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। किसी का भी तिरस्कार किया, फिर भले ही वह चेतन हो या अचेतन, वह मिलेगा नहीं। हम तो 'अपरिग्रही हैं' ऐसा बोलते हैं, लेकिन 'लक्ष्मी जी को कभी नहीं छूऊँगा' ऐसा नहीं बोलते। लक्ष्मी जी तो सारी दुनिया के व्यवहार की 'नाक' कहलाती हैं। 'व्यवस्थित' के नियम के आधार पर सभी देवी-देवता रखे गए हैं। इसलिए कभी भी तिरस्कार नहीं करना चाहिए।

जो मन-वचन-काया से किंचित् भी चोरी करे, तो उसे बहुत मेहनत करने पर भी मुश्किल से लक्ष्मी मिलेगी। लक्ष्मी प्राप्त होने में यह सब से बड़ा अंतराय है-चोरी। यह तो क्या होता है कि मनुष्यपन में जो-जो मनुष्य की सिद्धियाँ लेकर आए होते हैं, उन सिद्धिओं को भुनाकर दिवालिये होते जाते हैं। आज प्रामाणिकता से बहुत मेहनत करके भी लक्ष्मी प्राप्त नहीं कर सकता, इसका अर्थ यह है कि पहले से ही मनुष्यपन की सिद्धि उल्टे प्रकार से भुनाकर ही आया है। उसका यह परिणाम है। सब से बड़ी सिद्धि कौन सी? तब कहे, 'मनुष्यपन'। और वह भी ऊँची जाति में जन्म लेना और वह भी हिन्दुस्तान में। इसे सब से बड़ी सिद्धि किसलिए कहा है? क्योंकि इस मनुष्यपन के माध्यम से ही मोक्ष में जाया जा सकता है!

जब तक कभी टेढ़ा धंधा शुरू नहीं हो, तब तक लक्ष्मी जी नहीं जाती। टेढ़ा रास्ता, वह लक्ष्मी जाने का निमित्त है!

यह काला धन कैसा कहलाता है, वह समझाऊँ। यदि बाढ़ का पानी अपने घर में घुस जाए तो अपने को खुशी होती है कि घर बैठे पानी आया। तो जब वह बाढ़ का पानी उतरेगा तब पानी तो चला जाएगा, और फिर जो कीचड़ रहेगा, उस कीचड़ को धोकर निकालते-निकालते तेरा दम निकल जाएगा। यह कालाधन बाढ़ के पानी की तरह है, वह रोम-रोम में काटकर जाएगा। इसलिए मुझे सेठों से कहना पड़ा कि, 'सावधानी से चलना।'

लक्ष्मी जी तो देवी हैं। व्यवहार में भगवान की पत्नी कहलाती हैं। यह सब तो पद्धति के अनुसार 'व्यवस्थित' है, लेकिन भीतर चल-विचल होने से गड़बड़ खड़ी होती है। भीतर चल-विचल नहीं होगा, तब लक्ष्मी जी बढ़ेंगी। यह भीतर चल-विचल नहीं हो तो ऐसा नहीं होता कि, 'क्या होगा? क्या होगा?' ऐसा हुआ कि लक्ष्मी जी चलती बनेंगी।

भगवान क्या कहते हैं कि, 'तेरा धन होगा न, तो तू पेड़ उगाने जाएगा और तुझे मिल जाएगा। उसके लिए जमीन खोदने की ज़रूरत नहीं है।' इस धन के लिए बहुत माथापच्ची करने की ज़रूरत नहीं है। बहुत मज़दूरी से तो मात्र मज़दूरी का धन मिलता है। बाकी, लक्ष्मी के लिए बहुत मेहनत की ज़रूरत नहीं है। यह मोक्ष भी मेहनत से नहीं मिलता। फिर भी लक्ष्मी के लिए ऑफिस जाकर बैठना पड़ता है, उतनी मेहनत करनी पड़ती है। गेहूँ उगे हों या नहीं उगे हों, फिर भी तेरी थाली में रोटी आती है या नहीं? 'व्यवस्थित' का नियम ही ऐसा है!

जिसे हम याद करते हैं, वह दूर होता जाता है। इसलिए लक्ष्मी जी को याद नहीं करना चाहिए। जिसे याद करें वह कलियुग के प्रताप से रूठता जाता है, और सत्युग में वह याद करते ही आ जाता है। लक्ष्मी जी जाएँ तब 'आइएगा' और आएँ तब 'पधारिए' कहना होता

है। वह कोई थोड़े ही भजन करने से आती है? लक्ष्मी जी को मनाना नहीं चाहिए। सिर्फ स्त्री को ही मनाना चाहिए।

ऑनेस्टी इज़ द बेस्ट पॉलिसी और सत्य कभी भी असत्य नहीं बनता है। लेकिन श्रद्धा डगमगा गई है और काल भी ऐसा है। रात में किसकी सत्ता होती है? चोरों का साम्राज्य होता है। तब यदि अपनी दुकान खोलकर बैठें, तब तो वे सब उठा ले जाएँगे। यह काल तो चोरों का है। उससे क्या हमें अपनी पद्धति बदल देनी चाहिए? सुबह तक दुकान बंद रखो, लेकिन अपनी पद्धति तो नहीं ही बदलनी चाहिए। ये राशन के नियम हों, उसमें कोई 'पोल' (गड़बड़,गफलत,घोटाला) मारकर चलता बने, तो वह लाभ मानता है, और दूसरे क्यों नहीं मानते? यह तो, यदि घर में सभी असत्य बोलें तो किस पर विश्वास करें? और यदि एक पर विश्वास करें, तब तो सभी पर विश्वास करना चाहिए न? लेकिन यह तो घर में विश्वास, वह भी अंधा विश्वास करता है। किसी की सत्ता नहीं, कोई कुछ कह सके, ऐसा नहीं है। यदि खुद की सत्ता होती तब तो कोई स्टीमर डूबता ही नहीं। लेकिन ये तो लट्टू हैं, प्रकृति नचाए वैसे नाचते हैं। पर-सत्ता क्यों कहा है? अपने को पसंद हो वहाँ भी ले जाता है और नहीं पसंद हो, वहाँ भी ले जाता है। नहीं पसंद हो, वहाँ पर तो वह अनिच्छा से भी जाता है, इसलिए वह परसत्ता ही है न!

'ऑनेस्टी इज़ द बेस्ट पोलिसी' रखनी चाहिए। लेकिन यह वाक्य अब बेअसर हो गया है। इसलिए अब से हमारा नया वाक्य रखना, 'डिसओनेस्टी इज़ द बेस्ट फूलिशनेस'। वह पहले वाला पॉज़िटिव वाक्य लिखकर तो लोग घनचक्कर हो गए हैं। 'बीवेयर ऑफ थीव्ज़' का बोर्ड लिखा है, फिर भी लोग लुट गए तो फिर बोर्ड किस काम का? फिर भी लोग यह 'ऑनेस्टी इज़ द बेस्ट पोलिसी' का बोर्ड लगाते हैं, फिर भी ऑनेस्टी रह नहीं पाती। तो वह बोर्ड किस काम का? अब तो नए शास्त्रों की और नए सूत्रों की ज़रूरत है। इसलिए हम कहते हैं कि, 'डिसऑनेस्टी इज़ द बेस्ट फूलिशनेस' का बोर्ड लगाना।

‘नो लॉ’ – लॉ

कुछ लोग हमें कहते हैं कि, ‘दादा, आप आश्रम क्यों नहीं खोलते? आश्रम खोलिए न दादा?’

लेकिन ‘ज्ञानी पुरुष’ आश्रम का श्रम नहीं करते। वे तो, किसी का रूम मिला तो वहाँ सत्संग कर लेते हैं, और वह भी नहीं मिले तो किसी पेड़ के नीचे बैठकर सत्संग कर लेते हैं। और इन आश्रमों में तो नियम चाहिए, रसोईघर चाहिए, संडास चाहिए। ये सब चाहिए और वही का वही संसार चाहिए। फिर वापस कहाँ यह मुसीबत!

आश्रम में तो दाल-चावल, रोटी और सब्ज़ी खाकर पड़े रहते हैं, जैसे घर पर पड़े रहते हैं, वैसे। कुछ लोग तो खाकर पड़े रहने के लिए ही आश्रम में रहते हैं! अपने यहाँ आश्रम नहीं होता। हम तो ब्रह्मांड के *ऊपरी,* इसलिए जहाँ जाएँ वहाँ सभी गाँव अपने ही हैं न!

अपने यहाँ सत्संग में नो लॉ! अपने यहाँ तो बगैर लॉ का लॉ। अक्रम अर्थात् नो लॉ, पूरे जगत् में बगैर लॉ की पार्टी हो तो इन ‘दादा’ के फॉलोअर्स के पास है। उन्हें किसी जगह पर लॉ नहीं होता। जगत् के लोग लॉ के बिना रह ही नहीं सकते। लॉ के बगैर रहेंगे तो मोक्ष में जाएँगे! लॉ नहीं रहे, तो सहज हो जाएँगे। लॉ से असहज हो जाते हैं। बिना लॉ का नियम अर्थात् सहज होता है।

जिसका एक्सेस हो जाए, यानी कि अधिकता हो जाए, उसके

प्रति अभाव हो जाता है। जहाँ पर और कंट्रोल हो तो चित्त वहीं पर जाता है। चीनी पर कंट्रोल किया हो तो चित्त चीनी में ही रहता है कि कब ले आऊँ? कंट्रोल ऐसी चीज़ है कि वह मन को अधीर कर देती है। इसीलिए हम कहते हैं कि डीकंट्रोल कर दो। बाहर तो कंट्रोल ही करते रहते हैं, उससे मन पूरा दिन अधीर रहा करता है।

मन का स्वभाव ऐसा है कि एक्सेस हो जाए तो उस पर द्वेष होता है, ऐसी चीज़ों पर क्या कंट्रोल करना? मनचाही चीज़ हो और ऊपर से कंट्रोल करे तो चित्त वहीं पर जाता है, चित्त का ऐसा स्वभाव है।

छोटा बच्चा हो, उसे कहें कि, 'यह मत लेना' तो उसका चित्त वहीं चिपका रहेगा, अगर उसे दूसरा कुछ दें, तब भी नहीं लेता। इसीलिए दे देना चाहिए। वह 'व्यवस्थित' से बाहर कितना ले लेगा? कितना लुट जाएगा?

अपने यहाँ तो नियम ही नहीं हैं न! कानून का मतलब अर्धकंट्रोल। अपने यहाँ अगर कहें कि, 'क्यों देर से आए? चार बजे ही आ जाना।' तो मन कंट्रोल में आ गया, इसलिए बिगड़ ही जाएगा। अगर कंट्रोल नहीं हो तो मन कितना मुक्त रहेगा! सीमेन्ट का कंट्रोल करने गए तो भाव बत्तीस रुपये हो गया! सन् 1942 के बाद यह कंट्रोल आया, उससे लोगों के मन बिगड़ गए।

हम किसी को डाँटते ही नहीं। हम ऐसा नहीं कहते कि, 'ऐसा क्यों लाया और ऐसा क्यों किया?' सब को डाँटना नहीं पड़े ऐसा ही हमने रखा है। 'नो लॉज़।' नियम-वियम कुछ नहीं। रसोई में कोई पतीला उल्टा रखे, फिर भी हम कुछ नहीं बोलते। उसे अपने आप ही एक्सपीरियन्स मिलेगा न! इस वर्ल्ड को एक दिन सारे ही नियम निकाल देने पड़ेंगे! सब से पहला बिना नियम वाला अपने यहाँ किया है! सरकार से कहेंगे कि देखकर जाओ हमारे यहाँ बिना नियम का संचालन! ये औरंगाबाद में सौ व्यक्तियों का बिना नियम के दस दिन तक कैसा चलता है! कैसा सुंदर चलता है! चाय, पानी, नाश्ता! दूसरी सब जगह

तो कितने नियम! लॉज़ पर लॉज़! यह तो 'बगैर कानून वाली मंडली' कहलाती है!

कानून वाली मंडली में भगवान नहीं रहते हैं, और बगैर कानून वाली मंडली में भगवान रहते हैं! भले ही चोर हों, लेकिन बगैर कानून वाली हो तो भगवान वहाँ रहते हैं क्योंकि यदि ऐक्यता हो, तो भगवान वहाँ हाज़िर रहते हैं। इस गैरकानूनी मंडली में जिसे जैसा ठीक लगे वैसे बैठा हुआ है। बगैर कानून वाली में हर एक स्वेच्छा से नियम का पालन करता है। बगैर कानून वाली में कुदरती रूप से ही नियमों का पालन होता है।

सरकार ने नियम बनाए, लोगों ने नियम बनाए, समाज ने नियम बनाए और नियमों के चंगुल में आ गए सभी। धर्म में तो नियम होने ही नहीं चाहिए। नियमों के चंगुल में आया तो काले कपड़े वालों के बीच फँसेंगा। काले कपड़े इटसेल्फ क्या कहते हैं कि हम तो अपशकुन वाले हैं!

एक दिन दुनिया को नियम छोड़ देने पड़ेंगे! 'नो कोर्ट'। इन कोर्टों से ही तो बिगड़ा है सब! काले कपड़े! नियम एक्सेस (आवश्यकता से अधिक) हो गए इसलिए पोइज़न हो गया। नियम तो तरीके वाला होता है। और धर्म में तो नियम होते ही नहीं। लेकिन तू जैन कैसा? तू वैष्णव कैसा? तेरा डेवेलपमेन्ट कैसा? यदि तू मूर्ख है तो तेरे लिए नियमों की ज़रूरत है और यदि तू डेवेलप्ड है तो तुझे नियमों की ज़रूरत नहीं है। जैन को नियमों की ज़रूरत ही नहीं है। उसे तो भीतर से ही सभी नियम दिखते हैं! अपने यहाँ नियम के बगैर सब चलने दिया है। और जिसे जैसे ठीक लगे वैसे चलने दिया है और हर एक को सभी छूट दी है।

हम सब 38 दिन की यात्रा पर गए थे, वहाँ भी हमारे तो 'नो लॉज़।' उसमें फिर ऐसा नहीं कि किसी के साथ लड़ना नहीं है। जिसके साथ लड़ना हो उसके साथ लड़ने की छूट। लेकिन लड़ने की छूट

देनी है, ऐसा भी नहीं और नहीं देनी ऐसा भी नहीं। वे यदि लड़ें तो 'हम' देखते थे। रात को वापस सभी 'हमारी' साक्षी में प्रतिक्रमण से धो डालते थे। आमने-सामने दाग़ पड़ते थे और वापस सब धो डालते! यह प्योर वीतराग मार्ग है, इसलिए यहाँ कैश (नकद) प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। इसमें पाक्षिक या मासिक प्रतिक्रमण नहीं होते। दोष हुआ कि तुरंत ही प्रतिक्रमण। यदि नियम हो तो मुँह से नहीं बोलते लेकिन अंदर उथल-पुथल रहती है। अंदर उलझता रहता है। अपने यहाँ तो नियम ही नहीं है। ऐसा है यह अक्रम ज्ञान! हम हैं तब तक छूट दी हुई है, इसलिए नियम-वियम नहीं।

सारे जगत् में सभी साधु-सन्यासियों के पास नियम हैं। उसमें ऐसे बैठना और वैसे करना। वे लॉज़ तो संकल्प-विकल्प खड़े करते हैं, जबकि आत्मा सहज है। नियम, वह बंधन है। संघ में नियम रखते हैं, और नियम, वही बंधन है। वह तो जो यम में से नियम में आएँ, उनके लिए है। यम मतलब फर्स्ट स्टैन्डर्ड और नियम मतलब सेकन्ड स्टैन्डर्ड। फर्स्ट में से सेकन्ड में आएँ, उनके लिए नियम हैं। मोक्ष के लिए इसकी ज़रूरत नहीं है। मोक्ष के लिए तो आत्मा को सहज रूप से बरतने दो। सहज बरतने दो, तो सहज मोक्ष बरतेगा!

यहाँ धर्म में एक पैसे का भी व्यवहार नहीं होता। आरती के घी के लिए भी पैसे यहाँ नहीं लेते। पुस्तकें छापने के लिए पैसों की ज़रूरत है, वे यहाँ पर नहीं माँगे जाते। फिर भी किस तरह पैसों के बिना चल रहा है, वही आश्चर्य है। यदि धर्म में पैसों का लेन-देन किया तो माथापच्ची करने जैसा है। उसके लिए तो नियम चाहिए, ऑफिस चाहिए और अपार जंजाल चाहिए। यहाँ पर नियम नहीं है तो सब कितने शांति से बैठे हैं और उपाश्रय में तो जब व्याख्यान सुनने आएँ तो हँसी-ठिठोली करते हैं। वहाँ नियम होता है कि 'शांति रखो', फिर भी हँसी-ठिठोली!

इस दूषमकाल के लोग नियम के लिए नहीं हैं। इन्हें तो कंट्रोल किया कि मन और अधिक बिगड़ेगा! और एक नियम घुसा तो नियम

की किताबें बनानी पड़ेंगी। नया कुछ हुआ तो नियम निकालो, नियम की पुरानी किताबें खोलो और जाँच करो।

नियमों में विवेक

एक वृद्ध महाराज उपाश्रय में चतुर्मास करने गए थे। वे बेचारे बहुत वृद्ध और पैर से लँगड़ाते थे। उनसे चला ही नहीं जाता था। जब चातुर्मास पूरा हुआ तब उनसे कहा गया कि, 'आप अब विहार कर जाइए।' महाराज का पैर ठीक हुआ ही नहीं था, इसलिए उन्होंने ठहरने के लिए एक्स्टेन्शन माँगा। तब संघपति ने कहा कि, 'अधिक से अधिक जितना दिया जा सके उतना दे दिया है, अब आगे एक्स्टेन्शन नहीं मिलेगा।' अब महाराज को तो अनिवार्य रूप से जाना ही पड़े, ऐसा हो गया। उन महाराज ने कहा, 'ठीक है, तब मैं चला जाऊँगा। यहाँ से चार मील दूर छाणी गाँव है, वहाँ विहार कर जाऊँगा। लेकिन चार मील मुझसे चला जा सके ऐसा नहीं है, तो डोली की व्यवस्था कर दीजिए।' तब संघपति ने कहा कि, 'आज तक ऐसी डोली तो हमने किसी के लिए करके दी हो ऐसा याद नहीं है।' तब उन्होंने वापस पिछले सब रिकॉर्ड देखे, हिसाब की किताबें देखीं, उनकी नियम की किताबें उठाईं, लेकिन कहीं भी उन्हें ऐसा मिला ही नहीं कि पैर से लँगड़ाने के कारण किसी महाराज के लिए डोली की व्यवस्था करनी पड़ी हो! इसलिए उन्होंने तो महाराज से कहा कि, 'ऐसा कोई नियम बनाया ही नहीं गया है तो हम क्या करें!' नियम कैसे तोड़ें? अरे, क्या सभी पैर से लँगड़ाते हैं, जो ऐसा नियम बनाना पड़ता? कुछ व्यवहारिक समझ तो चाहिए न कि जड़ की तरह ही नियम को पकड़कर बैठना है?

वे महाराज बेचारे मेरे पास आए और मुझे कहने लगे। मुझे कहा कि, 'भाई, देखो न! इस संघ ने मेरी यह अवदशा की है। पचास रुपये कोई निकालता नहीं और डोली की व्यवस्था करता नहीं, और दूसरी तरफ ऐसा कह रहे हैं, 'विहार कर जाइए, विहार कर जाइए।' क्या करूँ अब मैं? आप ही कोई रास्ता निकालिए।' फिर हमने उनके लिए

पैसों की व्यवस्था कर दी। उसके बाद डोली की व्यवस्था हुई और महाराज को बैन्डबाजे बजाकर बिदाई दी गई! बड़ी शोभायात्रा निकाली और संघपति भी सिर पर पगड़ी-वगड़ी लगाकर धूमधाम से महाराज की शोभायात्रा में निकले!

अरे! ये बाजे बजाए और शोभायात्रा का उत्सव किया उसमें पाँच सौ रुपये खर्च किए और महाराज के लिए डोली करने के लिए पचास रुपये नहीं खर्च सके? कारण क्या? तो कहा, 'शोभायात्रा का नियम तो हमारे पास है, लेकिन यह डोली का नियम तो हमारे पिछले इतिहास में भी नहीं है, तब फिर हम ऐसा किस तरह करें?'

अब इसे मुझे 'अव्यवहारिकता' नहीं तो और क्या कहना चाहिए?

हमारे यहाँ नियम नहीं हैं, लेकिन फिर साथ-साथ सामने वाले के नियम हम नहीं तोड़ सकते। किसी का नियम तोड़ना, उससे तो सामने वाले व्यक्ति को उल्टी अनुमोदना मिलती है, उसके हम निमित्त बनते हैं। अपने से ऐसा नहीं होना चाहिए। 'अपना' तो कोई नाम ही देने वाला नहीं है। लेकिन इसके निमित्त बनें तो सामने वाले की आदत पड़ जाएगी कि हम भी इस तरह से नियम तोड़ें, इसलिए अपने को संपूर्ण रूप से सामने वाले के नियमों में रहना पड़ेगा।

हमारे यहाँ नियम नहीं होते, आज्ञा ही होती है। सभी रिलेटिव में नियम होते हैं। यहाँ पर नियम नहीं होते।

धर्मध्यान

प्रश्नकर्ता : पूजा-सेवा करते हैं, वह धर्मध्यान कहलाता है न?

दादाश्री : ना, उसे धर्मध्यान नहीं कहते। पूजा-सेवा करते समय आपका ध्यान कहाँ बरतता है, वह देखा जाता है। भगवान क्रिया को देखते ही नहीं, लेकिन क्रिया के समय ध्यान कहाँ बरत रहा है, वह देखते हैं।

एक सेठ थे। रोज़ सुबह चार घंटे पूजा, पाठ, सामायिक वगैरह करते थे। एक दिन एक व्यक्ति ने दरवाज़ा खटखटाया और सेठानी ने खोलकर पूछा, 'क्या काम है?' उस व्यक्ति ने सेठानी से पूछा कि, 'सेठ कहाँ गए हैं?' सेठानी ने तुरंत ही जवाब दिया, 'सेठ कूड़ेखाने में गए हुए हैं।' सेठ अंदर बैठे-बैठे ही सब सुन रहे थे, तब उन्हें लगा कि 'वास्तव में अभी तो मैं विषयों के ही ध्यान में था। भले ही मैं सामायिक में होऊँ, लेकिन ध्यान तो मेरा विषयरूपी कूड़े में ही था।' तब उन्हें पक्का हो गया कि 'मुझसे तो मेरी पत्नी अधिक समझदार है।'

सामायिक कर रहे हों, माला फेर रहे हों, लेकिन ध्यान यदि अन्यत्र गया हो, तब उस क्रिया का फल नहीं देखा जाता, लेकिन उस समय जिस ध्यान में खुद बरत रहा होता है, वही देखा जाता है।

ध्यान, वही पुरुषार्थ

जगत् भ्रांति वाला है। वह क्रियाओं को देखता है, ध्यान को

नहीं देखता। ध्यान अगले जन्म का पुरुषार्थ है और क्रिया, वह पिछले जन्म का पुरुषार्थ है। ध्यान अगले जन्म में फल देता है। ध्यान हुआ कि उस समय परमाणु बाहर से खिंचते हैं और वे ध्यान स्वरूप होकर भीतर सूक्ष्मता से संग्रहित हो जाते हैं और कारणदेह का सर्जन होता है। जब ऋणानुबंधी जीव माता के गर्भ में जाता है, तब सूक्ष्म देह जो है वह, वीर्य और रज के स्थूल परमाणु एकदम खींच लेती है। उससे कार्यदेह का निर्माण हो जाता है। जब इंसान मरता है तब आत्मा, सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर साथ में जाते हैं। सूक्ष्म शरीर हर एक में कॉमन होता है, लेकिन कारण शरीर हर एक के खुद के सेवित कॉज़ेज़ के अनुसार अलग-अलग होते हैं। सूक्ष्म शरीर इलेक्ट्रिकल बॉडी है, जो खुराक के बिना रह ही नहीं सकता। इसलिए मृत्यु के बाद तुरंत ही उसी क्षण माता के शरीर में प्रवेश प्राप्त करके ही रहता है और टाइमिंग मिलते ही वीर्य और रज के संयोग से एकदम स्थूल परमाणुओं को खुराक के रूप में चूस लेता है और पिंड के रूप में स्थूल देह प्राप्त कर लेता है। उसके बाद जीव डेवेलप होता जाता है और करीब पाँच महीने का होने पर संचार होना शुरू हो जाता है।

एक क्षण के लिए भी 'हमें' 'हमारे' स्वरूप के अलावा एक भी संसारी विचार नहीं आता। हमारी इच्छा है ज़रूर कि सब हमारे इस सुख को प्राप्त करें। ध्यान ही आने वाले जन्म का साधन है! उसके सिवा और कोई साधन है ही नहीं, अगले जन्म का!

वीतरागों का मत क्या है? ध्यान बदलो। दुर्ध्यान होता हो तो इतना पुरुषार्थ करो कि दुर्ध्यान नहीं हो।

प्रश्नकर्ता : उसमें पुरुषार्थ किस तरह करें?

दादाश्री : क्रिया नहीं बदल सकती लेकिन ध्यान बदल सके ऐसा है। इस काल के दबाव से रौद्रध्यान होता है, आर्तध्यान होता है, लेकिन भगवान ने उनके सामने पुरुषार्थ का साधन बतलाया है, उसमें आर्तध्यान और रौद्रध्यान को हटाना है। जैसे हम खुराक में हितकारी

खुराक खाते हैं और अहितकारी खुराक हटा देते हैं, उसी तरह आर्तध्यान और रौद्रध्यान हटाने हैं और धर्मध्यान करना है।

आर्तध्यान - रौद्रध्यान

प्रश्नकर्ता : आर्तध्यान और रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

दादाश्री : किसी के सुख को किंचित्मात्र भी छीन लेने का ध्यान करना, वह रौद्रध्यान है। फिर भले ही उसने वास्तव में छीन नहीं लिया हो, लेकिन वह ध्यान तो रौद्रध्यान ही माना जाएगा और उसका फल नर्कगति है। आर्तध्यान मतलब जो भी कोई चिंता-परेशानी आ पड़े, वह खुद अकेला, खुद के भीतर ही सहन करता रहे और कभी भी मुँह से बोले नहीं, क्रोध नहीं करे, तो वह आर्तध्यान माना जाएगा। आज तो सिर्फ आर्तध्यान का मिलना मुश्किल है। जहाँ-तहाँ रौद्रध्यान ही है। धर्मस्थानों में भी इस काल में आर्तध्यान और रौद्रध्यान घुस गए हैं। इन साधुओं को निरंतर आर्तध्यान और रौद्रध्यान होते रहते हैं। शिष्यों पर चिढ़ते हैं, वह रौद्रध्यान है और भीतर घुलते रहते हैं, वह आर्तध्यान है। फलाँ महाराज के पच्चीस शिष्य हैं और मेरे तो इतने ही हैं, वह भयंकर आर्तध्यान है। और फिर वह शिष्य बढ़ाने में पड़ जाता है और भयंकर रौद्रध्यान करता है। महावीर भगवान के सिंहासन पर यह कैसे शोभा दे? ये तो रेसकोर्स में पड़े हुए हैं! शिष्य बढ़ाने में पड़े हैं! अरे, घर पर एक बीवी और दो बच्चे, ऐसे तीन घंट थे, वे छोड़कर यहाँ एक सौ आठ घंट गले में लटकाए? इसे वीतराग मार्ग कैसे कहेंगे?

प्रश्नकर्ता : इन आर्तध्यान और रौद्रध्यान को बदलें किस तरह?

दादाश्री : आर्तध्यान और रौद्रध्यान होते हैं, वह इस काल के कर्मों की विचित्रता है। लेकिन यह जो अतिक्रमण हुआ उसके पीछे नकद प्रतिक्रमण रख। कभी शायद अतिक्रमण हो जाए तो आपको प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। रौद्रध्यान में पश्चाताप हो तो वह आर्तध्यान में जाता है और यदि रौद्रध्यान में यथार्थ प्रतिक्रमण करे तो धर्मध्यान हो जाता है। आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान साथ में ही होते हैं।

भले ही भगवान की मूर्ति हो, लेकिन उसकी साक्षी में आलोचना करें और फिर से वैसा ध्यान नहीं हो, ऐसा दृढ़ निश्चय करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : कोई अपना अपमान करे तो उसे मन में किस तरह लेना चाहिए?

दादाश्री : आत्मज्ञान हो तो अपमान होने से परेशानी नहीं होती। लेकिन ज्ञान नहीं हो तो भीतर से कहना चाहिए कि खुद की पहले की भूल होगी। अपनी खुद की ही भूल होगी, इसलिए सामने वाला अपमान कर रहा है। मेरा कोई पहले का हिसाब होगा, इसलिए वापस लौटा रहा है। इसलिए हमें जमा कर लेना है। यदि अपमान करने वाले से कहें कि, 'भाई, तू फिर से अपमान कर तो?' तब वह कहेगा, 'मैं कोई फालतू हूँ?' यह तो जो उधारी है वही जमा करवा जाते हैं। जन्मा तब से, मरा तब तक सबकुछ अनिवार्यता ही है। ये कितने ही पास हो जाते हैं, कुछ फेल हो जाते हैं और कुछ पढ़ते ही नहीं हैं। यह सब पहले के हिसाब में रहा हुआ है। यह सारा हिसाब कौन रखता है? यह तो भीतर ग़ज़ब का एडजस्टमेन्ट है। भीतर अनंत शक्तियाँ हैं। यह हिसाब चार ध्यान के आधार पर है। जैसा ध्यान बरते वैसा फल आता है।

अनंतकाल से भटक रहे हैं, फिर भी आर्तध्यान और रौद्रध्यान होने बंद नहीं हुए। इसलिए उन्हें समझना चाहिए। घर में झगड़े हों तो क्षमापना करनी चाहिए। सामने वाला बैर नहीं बाँधे, उस प्रकार से क्षमापना करनी चाहिए। भगवान की आज्ञा में रहना, वही सब से ऊँचा धर्मध्यान है। यह क्षमापना कैसे करें? मुफ्त में क्षमापना क्यों? नहीं, जितना आप देते हो उतना ही वापस आता है।

रौद्रध्यान और आर्तध्यान दो ही कचोटते हैं। बाहर वाला अन्य कोई नहीं कचोटता! क्रोध-मान-माया-लोभ हटाने से हटने वाले नहीं हैं। डॉक्टर ने चीनी खाने को मना किया हो तो कैसे जागृत रहा जाता है? यदि डॉक्टर ने कहा हो कि, 'आपको हार्ट अटैक आया है और

नमक बिल्कुल नहीं खाना है, खाओगे तो दूसरा अटैक आ जाएगा और आप मर जाओगे।' तब आप कितने अलर्ट रहते हो! वहाँ क्यों सावधान रहते हो? ये आर्तध्यान और रौद्रध्यान, यह तो अनंतकाल का मरण है। इसलिए इन्हें बंद करना ही है, ऐसा निश्चित किया कि तुरंत ही पचास प्रतिशत आर्तध्यान और रौद्रध्यान कम हो जाएँगे। आप भक्ति-वक्ति, सामायिक या पूजा-पाठ जो करना हो वह करना, जिस गुरु की आराधना की हो, उनकी आराधना करना, लेकिन आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं हों, उतना करना। शुक्लध्यान इस काल में होता ही नहीं। फिर भी, किसी को यदि शुक्लध्यान चाहिए, चिंता हमेशा के लिए बंद करनी हो तो हमारे पास सत्संग में आ जाना। हम एक घंटे में ही आपको शुक्लध्यान दे देंगे। 'ज्ञानी पुरुष' क्या नहीं कर सकते? 'ज्ञानी पुरुष' चाहें सो करें, लेकिन हम किसी चीज़ के कर्ता नहीं होते हैं, हम निमित्तभाव में ही होते हैं निरंतर।

यदि शुक्लध्यान प्राप्त नहीं होता तो इस काल में तो धर्मध्यान में रहें तब भी काफी है। आज तो खरा धर्मध्यान भी लुप्त हो गया है। धर्मध्यान को समझते ही नहीं कि धर्मध्यान किसे कहते हैं? धर्मध्यान तो, जितने समय तक किया उतना समय! एक घंटा तो एक घंटा, लेकिन तब आनंद भरपूर रहता है और उस आनंद के प्रतिस्पंदन अगले दो-तीन घंटों तक रहते हैं। धर्मध्यान नहीं समझते तो फिर करें क्या? पूरे दिन रौद्रध्यान और आर्तध्यान, रौद्रध्यान और आर्तध्यान! पूरे दिन किच-किच! भगवान ने कहा था कि धर्मध्यान में रहना।

धर्मध्यान के चार स्तंभ

प्रश्नकर्ता : भगवान ने किसे धर्मध्यान कहा था?

दादाश्री : भगवान ने, 'आज्ञा वही धर्म और आज्ञा वही तप'। ऐसा कहा था। भगवान ने धर्मध्यान के चार आधारस्तंभ बताए हैं।

भगवान की आज्ञा सच ही है, ऐसा मानने लगे तो वह धर्मध्यान के पहले स्तंभ अर्थात् 'आज्ञाविचय' में आ गया। दूसरा स्तंभ यानी कि

उसे क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हों, ऐसा रहे यानी 'अपाय-विचय' में आ गया। सामने वाले ने पत्थर मारा, वह मेरे खुद के ही कर्म का उदय है वैसा रहे, तब तीसरे स्तंभ यानी कि 'विपाक-विचय' में आया कहलाया और चौथा स्तंभ यानी 'संस्थान-विचय', अर्थात जो चार लोक हैं, उनकी हकीकत समझ जाए तो धर्मध्यान पूरा हो जाए।

अब भगवान की आज्ञा सच्ची है, वह तो सभी कबूल करते ही हैं। 'संस्थान-विचय' बहुत गहनता से समझ में नहीं आएगा तो चलेगा। उसके बजाय तो समकित प्राप्त हो ऐसी कोई व्यवस्था कर न, तो उसमें सभी आ जाएगा। धर्मध्यान में मुख्य पुरुषार्थ ही वहाँ पर करना है कि आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं हों। आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं हों तो फिर बाकी क्या रहा? धर्मध्यान ही। शुक्लध्यान तो है नहीं, इसलिए धर्मध्यान यदि प्राप्त करना हो तो आर्तध्यान को और रौद्रध्यान को हटाओ। धर्मध्यान किसे कहते हैं? कोई गालियाँ दे रहा हो तो आपको गाली देने वाले का दोष नहीं दिखे। आपका ज्ञान ऐसा हो कि कोई गाली दे रहा है फिर भी उसका दोष नहीं दिखे, और 'मेरे ही कर्मों के उदय का दोष है' ऐसा भान रहे। इसे ही भगवान ने धर्मध्यान कहा है।

घर में सास झगड़ रही हो तो हमें समझना चाहिए कि यह सास मेरे ही हिस्से में क्यों आई? दूसरी सासें नहीं थीं क्या? लेकिन मुझे यही क्यों मिली? अर्थात् उसके साथ अपना कुछ हिसाब है, तो वह हिसाब शांतभाव से पूरा कर लो।

धर्मध्यान रहा नहीं। इस काल में धर्मध्यान समझते ही नहीं। समझते तो भी कल्याण हो जाता!

प्रश्नकर्ता : अहंकार का ज़ोर अधिक होता है, क्या इसलिए धर्मध्यान भूल जाते हैं?

दादाश्री : समझ किसे कहते हैं कि समझ से वैसा ही प्रवर्तन हो जाए। जब तक प्रवर्तन में नहीं आए, तब तक समझ में आया नहीं है, ऐसा कहना चाहिए। समझ का फल तुरंत ही प्रवर्तन में आना, वह

है। प्रवर्तन में आना ही चाहिए। हम छोटे बच्चे से कहें कि ये दो शीशियाँ रखी हैं, दोनों एक सी ही हैं और दोनों में दवाइयाँ हैं, दोनों में व्हाइट पाउडर है। एक पर लिखा हो अमृत और दूसरी पर लिखा हो पोइज़न, तो बच्चे को हमें समझाना चाहिए कि इसमें से कुछ खा मत जाना। हम अमृत की दवाई मुँह में डाल रहे हों, तो बच्चा भी यदि नहीं जानता हो कि इसमें से कौन सा अमृत है और कौन सा ज़हर है तो वह भूल से पोइज़न खा लेगा। इसलिए हमें बच्चे को बताना चाहिए कि इसमें पोइज़न है। सिर्फ पोइज़न बोलने से बच्चा समझ गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसे तो यह समझाना चाहिए कि पोइज़न क्या है। उसे समझाना चाहिए कि पोइज़न से इंसान मर जाता है। मर जाना क्या है, बच्चे वह नहीं समझते। इसलिए उसे वह भी समझाना पड़ता है कि परसों वे चाचा मर गए थे, वैसा हो जाता है। ऐसे सब तरह से विस्तार से समझाया जाए तो फिर बच्चा कभी भी पोइज़न की शीशी को नहीं छुएगा। वह अमल में आ ही जाएगा। जो अमल में नहीं आया, वह अज्ञान है। पूरी-पूरी समझ तो, पद्धति अनुसार सीखा ही नहीं। किसी के लिखे हुए सवाल नकल करके ले आए, उससे क्या करना आ गया? किसी ने मेथेमेटिक्स के सवाल किए हों और नकल करके ले आए तो उससे क्या आ गया? यह सब नकली ज्ञान है। दरअसल ज्ञान नहीं है। वर्ना कोई गालियाँ दे और असर नहीं हो, खुद अपनी ही भूल है ऐसा खुद को लगता रहे और खुद प्रतिक्रमण करता रहे तो वह भगवान का सब से बड़ा ज्ञान है! यही मोक्ष में ले जाएगा! इतना शब्द, हमारे एक ही वाक्य का यदि पालन करे न, तो मोक्ष में चला जाए! बाकी सब का क्या करना है?

सामायिक तो समझते ही नहीं। सामायिक किसे कहना, वह भी नहीं जानते। सामायिक में, जो याद नहीं करना होता है, वही पहले याद आता है। खुद सामायिक करने बैठे और मन में निश्चित करे कि आज दुकान याद ही नहीं करनी है तो पहला धमाका दुकान का ही होता है! क्योंकि मन रिएक्शन वाला है। जिसके लिए आप मना करोगे, तो अंदर सब से पहले उसी का धमाका होगा! और आप कहो कि

आप सभी आना तो उस समय नहीं आते! आप यदि ऐसे कहो कि मैं सामायिक करूँ तब आप सब आना, तो उस घड़ी कोई नहीं आएगा! ऐसा है यह सारा अज्ञान। स्पंदन हुआ कि खत्म हो गया! आत्मा की अनंत शक्तियाँ हैं!

यदि हमारे सिर्फ इतने ही शब्द का पालन करे कि हमें कोई गालियाँ दे, ऐसे-वैसे दुःख दे, परेशान करे, वह सब मेरे कर्म के उदय से है, सामने वाले का दोष नहीं है, सामने वाला तो निमित्त है। इस प्रकार यदि इतना ही भान रहे न, तो तुझे सामने वाला व्यक्ति निर्दोष दिखेगा! और इससे खुद तैरकर पार उतर जाएगा। ठेठ मोक्ष तक पहुँचाएगा। हमारा एक ही वाक्य मोक्ष में ले जाए ऐसा है। 'ज्ञानी पुरुष' के एक ही वाक्य की आवश्यकता है। मोक्ष में जाने के लिए शास्त्र की कोई ज़रूरत नहीं है। क्योंकि 'ज्ञानी पुरुष' सीधा मोक्षमार्ग दिखा देते हैं, पूरा ही। इसलिए वस्तुस्थिति में समझने की ज़रूरत है।

लोग कहते हैं कि हमें 'ज्ञान' है। 'ज्ञान' उसे नहीं कहते। 'ज्ञान' तो जो अमल में आए उसी को कहा जाता है। हमें बोरीवली का रास्ता मालूम है तो बोरीवली आना ही चाहिए। और यदि बोरीवली नहीं आए तो समझना कि बोरीवली के रास्ते का हमें ज्ञान ही नहीं था। भगवान के धर्मध्यान में इतना अधिक बल है, ग़ज़ब की ताक़त है! लेकिन जब तक वह धर्मध्यान को समझे नहीं, तब तक क्या कर सकता है?

और फिर वीतरागों ने कहा है कि, 'उदयकर्म से तू घबराना मत। पूरे दिन उदयकर्म तुझे परेशान करता रहे तो उससे भी तू घबराना मत। क्योंकि उसमें किसी का दोष नहीं है।'

चिंता, वही आर्तध्यान

'राई मात्र वध-घट नहीं, देख्या केवलज्ञान,
ते निश्चय कर छोड़ीने, तजिये आरतध्यान।'

चिंता-विंता छोड़ दो। चिंता, वह आर्तध्यान है। यह शरीर *शाता-अशाता* का जितना उदय लेकर आया है, उतना भोगे बिना कोई चारा

ही नहीं है। इसलिए किसी का दोष मत देखना, किसी के दोष के प्रति दृष्टि मत करना और खुद के दोषों से ही बंधन है, ऐसा समझ जा। राईमात्र कम-ज़्यादा होने वाला नहीं है। तुझसे कुछ परिवर्तन हो नहीं सकेगा इसलिए जय महावीर, जय महावीर, जय महावीर अथवा जय श्री कृष्ण, जय श्री कृष्ण, जय श्री कृष्ण करता रह न! भगवान की जय बुलवा। दूसरे लोगों की क्यों बुलवाता है? यह तो आप इस व्यक्ति को डाँट रहे हों और यह दूसरा व्यक्ति उसका बचाव करे तो पहला व्यक्ति इस दूसरे व्यक्ति की जय बुलवाता है। अरे, जय बुलवा महावीर की या कृष्ण की। आज तो उस भाई की जय-जयकार बुलवा रहा है, वह तो कल वापस झगड़ने जाएगा। इनका क्या ठिकाना? बुलवा जय वीतराग की, नमो वीतरागाय! नमो वीतरागाय!

प्रश्नकर्ता : क्या चिंता-*उपाधि* भगवान ने भेजी होंगी?

दादाश्री : खुद को जैसा व्यापार करना आए, वैसा मिलता है। दही शुद्ध हो, दही बाज़ार का, मसाले बाज़ार के, लकड़ी बाज़ार की, पानी जो है वह भी वॉटर वर्क्स का, फिर भी सब की कढ़ी में फर्क! हर एक की कढ़ी में फर्क होता है। किसी ने तो कढ़ी ऐसी बनाई होती है कि अपना दिमाग़ खराब हो जाए! इन सब को भगवान क्या कहते हैं कि, 'तुझे जैसा आए वैसा कर। तेरे हाथ में सत्ता है! कोई *ऊपरी* है ही नहीं, कोई डाँटने वाला है ही नहीं। डाँटने वाले तो अपनी भूल के कारण हैं, भूल नहीं हो तो कोई डाँटने वाला है ही नहीं। अपनी भूल मिट जाए तो कोई डाँटने वाला है ही नहीं, कोई *ऊपरी* है ही नहीं। कोई विघ्न डालने वाला है ही नहीं। भगवान से कहें कि, 'साहब, आप तो मोक्ष में पहुँच गए लेकिन ये लोग मेरा चोरी कर जाते हैं, तो उसका क्या होगा?' तो भगवान कहेंगे कि, 'भाई, लोग चोरी करते ही नहीं। जब तक तेरे पास तेरी भूल है, तब तक चोरी करेंगे। तेरी भूल मिटा दे।' बाकी, कोई तेरा नाम भी नहीं ले सके, ऐसी तेरी शक्ति है! स्वतंत्र शक्ति लेकर आया हुआ है हर एक जीव। जीव मात्र संपूर्ण स्वतंत्र ही है। परतंत्रता लगती है, लोग उसे दुःख देते

हैं, उसे उसकी खुद की भूल से ही किसी का जमाई और किसी का ससुर बनना पड़ता है। अपनी भूल के कारण यह हाल हुआ है। वास्तव में देखें तो अपना कोई *ऊपरी* है ही नहीं, मात्र खुद की भूलें ही *ऊपरी* हैं। तो भूल मिटाओ और नई भूलें मत होने देना।

'ज्ञानी' अर्थात् जो अज्ञान को नहीं घुसने दें। 'ज्ञान' नहीं मिला हो तब तक लोगों को धर्मध्यान में रहना चाहिए। सिर्फ भगवान का धर्मध्यान प्राप्त कर लें न तो बहुत हो गया! यदि कोई इतना ही निश्चित कर ले, कि जो कोई दु:ख देता है, जो-जो करता है, जेब काटता है, वह किसी का दोष नहीं है, लेकिन दोष मेरा है, मेरे कर्म के उदय से है। अत: यदि किसी को दोषित नहीं देखे तो मुक्ति मिल जाती है। लेकिन यह तो 'इसने मुझे ऐसा किया, यह मेरा चोरी कर गया, ये मेरा खा गए।' सब लोगों पर आरोप लगाता है, जो नहीं करना है वही करता है।

निमित्त को काट खाना

अभी यदि सास दु:ख दे रही हो न, तो बहू खुद के दोष नहीं देखती, लेकिन सास की ही गलतियाँ निकालती रहती है। लेकिन वह यदि धर्मध्यान समझे तो क्या करेगी? 'मेरे कर्मों का दोष है, इसलिए मुझे ऐसी सास मिली। मेरी उस सहेली को क्यों अच्छी सास मिली है', ऐसा विचार नहीं करना चाहिए? किसी सहेली की सास अच्छी होती है या नहीं होती? तो हम नहीं समझ जाएँ कि अपनी कोई भूल होगी न, नहीं तो ऐसी सास कहाँ से आ मिले?

प्रश्नकर्ता : दृष्टि में फर्क है, इसलिए ऐसा होता है?

दादाश्री : ना, दृष्टि में फर्क नहीं है लेकिन उसे भान ही नहीं है कि यह मेरे कर्म के उदय का फल है। वह तो प्रत्यक्ष को ही देखती है, निमित्त को ही काटने दौड़ती है। सास तो निमित्त है, उसे काटने मत दौड़ना। निमित्त का तो बल्कि हमें उपकार मानना चाहिए कि उसने एक कर्म में से मुक्त करवाया हमें। एक कर्म में से मुक्त होना हो तो किस प्रकार मुक्त हुआ जाएगा? कोई जेब काट गया और जेब काटने

वाले व्यक्ति को हम निर्दोष देखें, या फिर सास गालियाँ दे रही हो या अपने ऊपर अँगारे डाले हों, उस घड़ी हमें सास निर्दोष दिखे, तब आप समझना कि 'इस कर्म से मुक्ति हो गई', वर्ना कर्म मुक्त नहीं हुआ है। कर्म से मुक्ति नहीं हुई, और उससे पहले तो सास के दोष देख लेती है, इससे वापस दूसरे नए कर्म बढ़े! कर्म बढ़ते हैं और फिर उलझ जाते हैं, इंसान उलझ जाए तो फिर उलझन में से कैसे निकलेगा? उलझ जाता है। पूरे दिन उलझन ही उलझन में, उलझन ही उलझन में!

इन जानवरों को उलझन नहीं रहती। मनुष्यों को ही उलझन रहती है। क्योंकि वे लोग नई-नई उलझनें डालते रहते हैं। जानवर तो, कोई मार जाए तो मार खाकर भाग जाते हैं। दूसरा, उनमें सामने वाले पर आरोप लगाने की शक्ति नहीं है कि आपने मेरे साथ ऐसा किया या वैसा किया, ऐसा कुछ भी नहीं है। ऐसी उनमें भीतर बुद्धिशक्ति नहीं है। इन मनुष्यों को बुद्धि मिली तो दुरुपयोग किया! बल्कि उलझ गया! जहाँ छूटने को आया, वहीं पर उलझ गया! एक-एक कर्म से मुक्ति होनी चाहिए। सास सताए, तब हरएक बार कर्म से मुक्ति मिलनी चाहिए। तो उसके लिए हमें क्या करना चाहिए? सास को निर्दोष देखना चाहिए कि 'सास का भला क्या दोष? मेरे कर्म का उदय है, इसी वजह से वे मिली हैं। वह बेचारी तो निमित्त है', तो उस कर्म से मुक्ति हुई। और यदि सास का दोष देखा तो फिर कर्म बढ़ेंगे। फिर उसका तो कोई क्या करे? भगवान भी क्या करें?

भगवान तो क्या कहते हैं कि, ''तू मेरी मूर्ति को रोज़ प्रणाम करता है लेकिन जब तक तू इस 'समझ' में नहीं आएगा, तब तक हम तुझसे ऐसा नहीं कह सकते कि 'तू पोइज़न पी और तेरा शरीर अच्छा हो।' हमारी आज्ञा का पालन कर। हमारे दर्शन करने के बजाय यदि हमारी आज्ञा का पालन करेगा तो वह हमें विशेष प्रिय है क्योंकि यों तू दर्शन रोज़ करता है, लेकिन हमारे एक शब्द का भी तू पालन नहीं करता, इसका मतलब 'तू हमारी जीभ पर पैर रख रहा है! उसके लिए तुझे शर्म नहीं आती?' तब वह कहेगा कि, 'साहब, ऐसा तो मैं

जानता ही नहीं था कि मैं आपकी जीभ पर पैर रख रहा हूँ।' और बात भी सही हैं। वह बेचारा यह जाने भी कहाँ से? लोग करते हैं, वैसा वह भी करता है और किसी ने उसे सच्ची समझ भी नहीं दी, फिर वह बेचारा वापस कैसे मुड़ सकेगा? ऐसी सच्ची समझ दी हो, तब वह वापस मुड़ेगा।

कर्म निर्झरें प्रतिक्रमण से

एक कर्म भी कम हो जाए तो उलझनें दिनोंदिन कम होती जाएँगी। एक दिन में यदि एक कर्म कम करे तो दूसरे दिन दो कम कर सकता है, लेकिन यह तो रोज़ उलझनें डालता ही रहता है और बढ़ाता ही रहता है! ये सब लोग क्या अरंडी का तेल पीकर घूमते होंगे? उनके मुँह पर, जैसे अरंडी का तेल नहीं पिया हो, ऐसे होकर फिरते हैं। सभी अरंडी का तेल खरीदकर लाते होंगे क्या? महँगे भाव का अरंडी का तेल रोज़ कहाँ से लाएँ? अंदर परिणति बदली कि अरंडी का तेल पिया हो वैसा मुँह हो जाता है! दोष खुद का और भूल निकालता है औरों की, उससे अंदर की परिणति बदल जाती है। खुद का दोष ढूँढो, वीतराग ऐसा कह गए हैं, और कुछ भी नहीं कह गए हैं। तू तेरे दोषों को पहचान और मुक्त हो जा। बस इतना ही तुझे मुक्तिधाम देगा। इतना ही काम करने को कहा है भगवान ने। और प्रतिक्रमण तो नकद-कैश प्रतिक्रमण करने को कहा है। यह तो उधार प्रतिक्रमण। बारह महीनों में पर्युषण आता है, उस दिन प्रतिक्रमण करते हैं, तब तो नई-नई साड़ियाँ पहनकर निकलती हैं, उससे तो बल्कि मूर्छित होकर घूमती हैं। जब प्रतिक्रमण करना था तब उल्टे मूर्छित होकर, नई साड़ियाँ पहनकर घूमती हैं। ऐसे मूर्च्छा वाले परिणाम को भगवान ने धर्म नहीं कहा है। प्रतिक्रमण का धर्म यदि पकड़ लिया तब अगर तेरे सिर पर गुरु नहीं होंगे तो भी चलेगा। प्रतिक्रमण का धर्म यानी क्या? आपने इनसे कहा कि 'आप खराब हो', तब आपको प्रतिक्रमण करना पड़ेगा, कि जो मुझे नहीं बोलना चाहिए था, वह बोल दिया। इसलिए भगवान के पास आलोचना करनी चाहिए। वीतराग को

याद करके आलोचना करनी चाहिए कि, 'भगवान मेरी भूल हो गई है। मैंने इस भाई को ऐसा कहा इसलिए उसका पछतावा करता हूँ। अब फिर से ऐसा नहीं करूँगा।' 'फिर से नहीं करूँगा', उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान, भगवान का बस इतना ही पकड़ ले न, वह भी फिर पूरा नकद, उधार नाम मात्र को भी नहीं रहने दे, आज का आज और कल का कल, जहाँ कहीं कुछ भी हो जाए तो वहीं पर नकद दे दे, तो अमीर बन जाएगा, तब फिर वैभव भोगेगा और मोक्ष में जाएगा! एक ही शब्द पकड़े, इन 'ज्ञानी पुरुष' का एक ही शब्द पकड़ ले तो बहुत हो गया! ठेठ मोक्ष में न ले जाए तो वे ज्ञानी ही नहीं हैं! एक ही शब्द पकड़ ले, ज़्यादा नहीं।

अब आपने उन्हें उल्टा कहा तो आपको तो प्रतिक्रमण करना पड़ेगा, लेकिन उन्हें भी आपका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। उन्हें क्या प्रतिक्रमण करना पड़ता है कि, 'मैंने कब भूल की होगी कि इन्हें मुझे गाली देने का प्रसंग आया?' इसलिए उन्हें खुद की भूलों का प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। उन्हें उनके पूर्व जन्म का प्रतिक्रमण करना पड़ेगा और आपको आपके इस जन्म का प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। ऐसे प्रतिक्रमण दिन के पाँच सौ-पाँच सौ करेगा, तब मोक्ष में जाएगा।

अब ऐसा धर्मध्यान और ऐसे प्रतिक्रमण तो आजकल उपाश्रय में भी नहीं रहे हैं न? फिर अब क्या हो? नहीं तो फिर भी रो-रोकर तो भुगतना ही पड़ता है न? तो उसके बदले हँसकर भुगते तो क्या बुरा है?

यदि इतना ही करो न तो और कोई धर्म नहीं ढूँढोगे तो भी हर्ज नहीं है। इतना पालन करो तो काफी है, और मैं तुझे गारन्टी देता हूँ, तेरे सिर पर हाथ रख देता हूँ। जा, मोक्ष के लिए, ठेठ तक मैं तेरा साथ दूँगा! तेरी तैयारी चाहिए। एक ही शब्द पालन करे तो बहुत हो गया!

अतिक्रमण हुआ तो प्रतिक्रमण करना ही चाहिए। अतिक्रमण तो मन में खराब विचार आएँ, किसी स्त्री के लिए खराब विचार आया,

तब फिर 'विचार अच्छा होना चाहिए', ऐसा कहकर उसे पलट देना। मन में ऐसा लगा कि, 'यह नालायक है', तो ऐसा विचार क्यों आए? हमें उसकी लायकी और नालायकी देखने का राइट (अधिकार) नहीं है। फिर भी यदि यों ही बोलना हो तो बोलना कि, 'सभी अच्छे हैं।' अच्छे हैं, कहोगे तब तो आपको कर्म का दोष नहीं लगेगा, लेकिन यदि उसे बुरा कहा तो वह अतिक्रमण कहा जाएगा, इसलिए उसका प्रतिक्रमण अवश्य करना पड़ेगा।

बेटे को मारने का कोई अधिकार नहीं है, समझाने का अधिकार है। फिर भी बेटे को पीट दिया, तब फिर प्रतिक्रमण नहीं करें तो सब (कर्म) चिपकते ही रहेंगे न? प्रतिक्रमण तो होना ही चाहिए न? बेटे को पीट दिया, वह तो प्रकृति के उल्टे स्वभाव के कारण है, क्रोध-मान-माया-लोभ के कारण है, कषायों के कारण पीट दिया। कषाय खड़े हो गए इसलिए पीट दिया। लेकिन पीट देने के बाद वापस मेरा शब्द याद रहे कि, 'दादा' ने कहा था कि, 'अतिक्रमण हो जाए तब ऐसा प्रतिक्रमण करो।' तो अगर प्रतिक्रमण करेगा न, तब भी वह धुल जाएगा। तुरंत ही धुल जाएगा, ऐसा है। धर्मध्यान से, बंधा हुआ कर्म छूटता है और नया नहीं बंधता! और संपूर्ण मोक्ष तो जब शुक्लध्यान उत्पन्न होगा, तब होगा। शुक्लध्यान तो 'ज्ञानी पुरुष' से ही प्राप्त हो सकता है। शुक्लध्यान के लिए तो इस काल में वीतरागों ने मना किया है, लेकिन यह तो अक्रम मार्ग है, अपवाद मार्ग है इसलिए 'हम' एक घंटे में ही शुक्लध्यान दे देते हैं। नहीं तो शुक्लध्यान की बात ही नहीं हो सकती न! और शुक्लध्यान हुआ तो काम ही हो गया न!

पहले बहू थी वह सास बनी, क्योंकि बहू लाई तो खुद सास बनी। इस तरह यह पूरा संसार सापेक्ष है, भ्रांति है। यह वास्तविक चीज़ नहीं है और सापेक्ष को सच मान लिया कि यह मेरा ही बेटा है। बेटा अपना कब कहलाता है कि हम उसका अपमान करें, गालियाँ दें, मारें तो भी उसे अपने पर प्रेम आता रहे, तो हम जानें कि बेटा अपना ही है। लेकिन यह तो यदि एक घंटे अपमान किया हो तो वह

आपको मारने दौड़े! अरे! एक फादर ने ज़रा ज़्यादती कर दी तो दो घंटों में ही बेटे ने बाप के सामने कोर्ट में दावा दायर कर दिया। और वकील से क्या कहता है कि, 'आपको तीन सौ रुपये ज़्यादा दूँगा, यदि आप कोर्ट में मेरे फादर का नीचा दिखाओ तो!' ये नीचा दिखाते हैं! यह तो संसार ही ऐसा है कि कोई मुश्किल के टाइम में अपना नहीं बनता। इसलिए भगवान का आसरा लेने जैसा है, और किसी का नहीं।

लोग ऐसा कहते हैं न कि, 'मुझे ठोकर लगी।' ऐसा ही कहते हैं न कि, 'मैं ऐसे जा रहा था और मुझे ठोकर लगी?' ठोकर तो उसी जगह पर है, रोज़ वहीं के वहीं बैठी रहती है। ठोकर कहती है, 'मूर्ख, तूने मुझे मारा! तू टकाराता रहता है! मैं मना करूँ तो भी वह वापस टकराता है! मेरा तो मुकाम ही इस जगह पर है। यह मूर्ख अंधे की तरह मुझे मार रहा है।' ठोकर कहती है, वह ठीक है न? ऐसी यह दुनिया है! फिर मोक्ष ढूँढे तो कहाँ से होगा? वीतरागों का बताया हुआ मोक्ष सब से आसान, सब से सरल है। 'शुद्ध भाव से वीतरागों को पहचाने, तब भी मोक्ष हो जाए।' लेकिन वीतरागों को ये लोग पहचाने ही नहीं। और वीतरागों से कहते हैं कि 'मेरे यहाँ बेटा नहीं है।' इसलिए भगवान का पालना ले आते हैं। अरे, वीतरागों के पास बेटा माँगता है? वीतराग भला ऐसे में हाथ डालते होंगे? यदि हाथ डालें तो फिर वे वीतराग कैसे? वीतरागों से माँगना हो तो एक ही चीज़ माँगो। मोक्ष माँगो। मोक्ष माँगो तो मोक्ष मिलेगा लेकिन क्या चिरौंजी माँगेगा तो मिलेगी?

यहाँ सबकुछ नया सुनने को मिलता है। रिलेटिव में दूसरी सब जगह जो सुनने को मिलता था, वह पूरा साधन मार्ग था, और यह साध्य मार्ग है। अनंत जन्मों से साधनों का ही रक्षण किया है और ध्येय निश्चित किए बगैर ध्यान करता रहता है। ध्यान तो कब हो सकता है? खुद ध्याता बन जाए तब। हम पूछें कि, 'तू कौन है?' तब कहेगा, 'मैं मजिस्ट्रेट हूँ'। 'अरे, ध्यान करते समय ध्याता नहीं था? मजिस्ट्रेट था?' यह तो ध्याता कब बनता है कि जगत् का सबकुछ विस्मृत हो

जाए तब। यह तो उसका ध्यान मजिस्ट्रेट में है, इसलिए ध्येय कहाँ से निश्चित हो? यह तो ध्येय बड़ौदा जाने का हो फिर खुद ध्याता बन जाता है कि किसमें जाएँगे? लेकिन यह तो इन्द्रिय प्रत्यक्ष है और आत्मा का तो भान ही नहीं है, और वह तो अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है!

चार प्रकार के ध्यान

चार प्रकार के ध्यान होते हैं, उनमें से मनुष्य निरंतर किसी एक ध्यान में रहते ही हैं। आपको यहाँ पर कौन सा ध्यान रहता है?

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह ध्यान।

दादाश्री : वह तो लक्ष्य कहलाता है, लेकिन ध्यान कब कहलाता है कि जब ध्याता बन जाए तब। लेकिन अपने यहाँ तो ध्यान, ध्याता और ध्येय पूरा हो गया और योग के आठों अंग पूरे करके लक्ष्य में पहुँच गए हैं। अभी आपसे कहें कि, 'चलो, उठो, भोजन करने चलो', तो तब भी आप ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंदी रहते हो और फिर कहें कि, 'आपको यहाँ भोजन नहीं करना है', तब भी ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंदी रह पाएँ तो उसे शुक्लध्यान कहा है। दुकान में गोलमाल करते हैं, कपड़ा खींचकर देते हैं, उसे रौद्रध्यान कहा है। ये मिलावट करते हैं वह रौद्रध्यान में जाता है। यह दुकान पर बैठे-बैठे ग्राहक की राह देखता है, उसे भगवान ने आर्तध्यान कहा है!

एक तरफ भगवान महावीर ने 45 आगम कहे और एक तरफ चार शब्द कहे। इन दोनों का तौल समान बताया। चार शब्दों का जिसने ध्यान रखा, उसने इन सारे आगमों का ध्यान रखा। वे चार शब्द कौन से? रौद्रध्यान, आर्तध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान।

जगत् कैसा है? तेरा ग्राहक हो, तो तू सोलह के साढ़े सोलह कहेगा तो भी चला जाने वाला नहीं है और तेरा ग्राहक नहीं होगा तो तू पंद्रह कहेगा तो भी चला जाएगा। इतना भरोसा तो रख!

खुद, खुद की चिंता करे वह आर्तध्यान है। बेटी छोटी है, पैसे

हैं नहीं, तो मैं क्या करूँगा? कैसे उसका विवाह करूँगा? वह आर्तध्यान। अभी तो बेटी छोटी है और भविष्य को उलीच रहा है, वह है आर्तध्यान।

यह तो घर पर नापसंद व्यक्ति आए और चार दिन रहने वाला हो, तो अंदर होता है कि, 'जाए तो अच्छा, मेरे यहाँ कहाँ से आ पड़ा?' वह सब आर्तध्यान और फिर, 'यह नालायक है' ऐसी गालियाँ दे, वह रौद्रध्यान। आर्तध्यान और रौद्रध्यान करता है!

दूध शुद्ध हो और उसकी खीर बनानी हो तो उसमें भी नमक नहीं डालना चाहिए, लेकिन चीनी डालनी चाहिए। शुद्ध दूध में चीनी डालनी, वह धर्मध्यान। यह तो मेरे ही कर्म के दोष से, मेरी ही भूल से ये दुःख आ पड़ते हैं, वह सब धर्मध्यान में समाता है।

भगवान महावीर के चार शब्द सीख गया तो दूसरी तरफ पैंतालीस आगम पढ़ लिए!

वीतरागों का सच्चा धर्मध्यान हो तो क्लेश मिट जाते हैं।

धर्मध्यान किसे कहते हैं? किसी व्यक्ति ने हमारे लिए खराब किया तो उसकी तरफ किंचित्‌मात्र भी भाव नहीं बिगड़े और उसके प्रति क्या भाव रहे, ज्ञान का कैसा अवलंबन लें कि 'मेरे ही कर्मों के उदय से ये भाई मुझे मिले हैं', और तब वह धर्मध्यान में जाता है। यह तो किसी ने भरी सभा में भयंकर अपमान किया हो तो वह आशीर्वाद देकर भूल जाता है। अपमान को उपेक्षाभाव से भूले, उसे भगवान ने धर्मध्यान कहा है। ये तो ऐसे लोग हैं कि अपमान को मरते दम तक नहीं भूलते!

धर्मध्यान वाला श्रेष्ठी पुरुष कहलाता है। पूरे दिन, सुबह से उठे, तभी से लोगों को ओब्लाइज़ करता रहता है। ओब्लाइज़िंग नेचर का होता है। खुद सहन करके भी सामने वाले को सुख देता है। दुःख तो जमा ही करता है। एक भी आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं होता। उसके मुँह पर अरंडी का तेल चुपड़ा हुआ नहीं होता। मुख पर नूर दिखता है। पूरे गाँव के झगड़ों को वह निपटा देता है। उसे किसी के प्रति

पक्षपात नहीं होता। जैन तो कैसा होना चाहिए? जैन तो श्रेष्ठी पुरुष माने जाते हैं, श्रेष्ठ पुरुष कहे जाते हैं। पचास-पचास मील के रेडियस (परिधि) में उनकी सुगंध आती है!

अभी तो श्रेष्ठी से सेठ (*शेठ*) बन गए, और उनके ड्राइवर से पूछें तो कहेगा कि जाने दो न उनकी बात। सेठ शब्द की तो मात्रा निकाल देने जैसी है! सेठ (*शेठ*) की मात्रा निकाल दें तो क्या बाकी रहेगा?

प्रश्नकर्ता : *शठ* (धूर्त)!

दादाश्री : अभी तो श्रेष्ठी कैसे हो गए हैं? दो साल पहले नए सोफे लाया हो तो भी पड़ोसी का देखकर फिर से दूसरे नए लाता है। यह तो स्पर्धा में पड़े हुए हैं। एक गद्दा और तकिया हो तब भी चले। लेकिन यह तो देखा-देखी और स्पर्धा चली है। उसे सेठ कैसे कहेंगे? ये गद्दे-तकिये की भारतीय बैठक तो बहुत उच्च है। लेकिन लोग उसे समझते नहीं और सोफे के पीछे लगे हैं। फलाँ ने ऐसा लिया है तो मुझे भी वैसा चाहिए, और उसके बाद जो कलह होती है! ड्राइवर के घर पर भी सोफे और सेठ के घर पर भी सोफे। यह तो सब नकली घुस गया है। किसी ने ऐसे कपड़े पहने तो वैसे कपड़े पहनने की वृत्ति होती है! यह तो किसी को गैस पर रोटी पकाते देखा तो खुद गैस ले आया। अरे! कोयले और गैस की रोटी में फर्क नहीं समझता? चाहे जो भी खरीदो उसमें हर्ज नहीं है लेकिन स्पर्धा किसलिए? इस स्पर्धा से तो मानवता भी खो बैठे हैं। यह पाशवता तुझ में दिखेगी तो तू पशु में जाएगा। वर्ना श्रेष्ठी तो खुद पूर्ण सुखी होता है और मुहल्ले में सभी को सुखी करने की भावना में रहता है। जब खुद सुखी हो, तभी औरों को सुख दे सकता है। खुद ही यदि दु:खी हो वह औरों को क्या सुख देगा? दु:खियारा तो भक्ति करता है और सुखी होने के प्रयत्न में ही रहता है!

भले मोक्ष की बात एक तरफ रही, लेकिन आर्तध्यान और रौद्रध्यान पर तो अंकुश होना चाहिए न? उसकी छूट कैसे दी जाए?

छूट किस चीज़ की होती है? धर्मध्यान की होती है। यह तो खुले हाथ से दुर्ध्यान का उपयोग करता है! कितना शोभा देता है और कितना शोभा नहीं देता, उतना तो होना ही चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : अपध्यान यानी क्या?

दादाश्री : अपध्यान तो इस काल में खड़ा हुआ है। अपध्यान यानी जो चारों ध्यान में नहीं समाए वह। भगवान के समय में चार प्रकार के ध्यान थे। उस समय में अपध्यान नहीं लिखा गया था। जिस समय जो अनुभव में नहीं आए न, वह लिखा जाए तो किस काम का? इसलिए अपध्यान तब नहीं लिखा गया था। इस काल में वैसे अपध्यान खड़े हो गए हैं। अपध्यान का अर्थ मैं आपको समझाऊँ। यह सामायिक करते समय घड़ी में देखता रहता है कि, 'अभी कितनी बाकी रही, अभी कितनी बाकी रही, कब पूरी होगी, कब पूरी होगी?' इस प्रकार ध्यान सामायिक में नहीं होता, लेकिन घड़ी में होता है! इसे अपध्यान कहते हैं। दुर्ध्यान हो तो चला सकते हैं। दुर्ध्यान यानी विरोधी ध्यान और सद्ध्यान मोक्ष में ले जाता है। और यह घड़ी देखते रहते हैं, वह तो अपध्यान कहलाता है। सीधा नहीं, उल्टा नहीं लेकिन तीसरे ही प्रकार का। घड़ी देखता रहता है, उसमें उसकी नीयत क्या है? एक व्यक्ति चिढ़कर खुद के अहंकार के पोषण के लिए गाँव जला देता है! लेकिन वह भी एक प्रकार का ध्यान कहलाता है। इन अपध्यान वालों को तो खुद के अहंकार की पड़ी ही नहीं होती, लेकिन जब भी ध्यान करता है–वह अपध्यान ही करता है–यानी कि संपूर्ण अनर्थकारी। न तो खुद के लिए, न ही मान के लिए, बिल्कुल मीनिंगलेस! अर्थ के बिना, हेतु के बिना जो क्रिया की जाए, वह अपध्यान।

हार्ड रौद्रध्यान

दूसरा, इस काल में हार्ड रौद्रध्यान बढ़ गए हैं। हार्ड रौद्रध्यान यानी खुद की अधिक बुद्धि से सामने वाले की कम बुद्धि का फायदा उठाकर सामने वाले का छीन लेना, वह हार्ड रौद्रध्यान। यह तो खुद

की बुद्धि से सामने वाले को मारता है, सामने वाले का पूरा खून चूस लेता है और उसकी हड्डियाँ और चमड़ी ही बाकी रखता है। फिर ऊपर से कहता है, 'मैंने कहाँ मारा? हमारा तो अहिंसा परमो धर्म!' इन सेठों ने ऐसे-ऐसे कनेक्शन की व्यवस्था कर दी होती है कि सेठ गद्दी-तकिये पर बैठे रहते हैं और किसान बेचारे रात-दिन मेहनत करते हैं और मक्खन सेठ के घर जाता है और उसके हिस्से में तो छाछ भी नहीं आती! सेठ खुद की अधिक बुद्धि से दूसरे की कम बुद्धि का लाभ उठाकर उसे सहला-सहलाकर मारता है। इसे हार्ड रौद्रध्यान कहा है। यह तो एक-एक चपत करके मारता है। एकदम तलवार से दो टुकड़े कर डाले तो वह हार्ड रौद्रध्यान नहीं कहलाता, रौद्रध्यान कहलाता है क्योंकि अगर दो टुकड़े करे तब तो फिर खून देखकर भी उसका मन पीछे हट जाता है कि, 'अरेरे! मुझसे यह मर गया।' लेकिन इस हार्ड रौद्रध्यान से तो मन पीछे नहीं हटता और बल्कि बढ़ता जाता है। खून की एक बूँद भी गिराए बिना सेठ मज़दूर के शरीर के खून की एक-एक बूँद चूस लेता है! अब इसकी बराबरी कौन करे? इसका तो टर्मिनस स्टेशन (अंतिम स्टेशन) ही नहीं है न! इस हार्ड रौद्रध्यान का फल तो बहुत भयंकर आता है। सातवे नर्क में भी नहीं समाए, ऐसा फल। इन हार्ड रौद्रध्यान और अपध्यान को बारीकी से समझना तो पड़ेगा न? आपको क्या लगता है? या फिर समझे बिना चलेगा?

प्रश्नकर्ता : समझना तो पड़ेगा ही दादा।

दादाश्री : यह भगवान महावीर के बाद के 2500 सालों का दूषमकाल है, तो सभी ने ही भूल खाई इसमें। साधु-वाधु सभी ने भूल खाई! कोई ही, सौ में से दो-पाँच साधु ही इससे बचे होंगे! बाकी सभी रौद्रध्यान, आर्तध्यान और नहीं करने लायक अपध्यान पूरे दिन करते रहते हैं। अब ये साधु किसलिए बनते हैं? तब कहे, आर्तध्यान और रौद्रध्यान को हटाने के लिए। घर पर पसंद नहीं, रोज़ झगड़े होते हैं, किसी के साथ पैसे लेने-देने पड़ें, उसके झगड़े होते हैं, इसके बजाय उसमें से छूट कर साधु बन जाए तो फिर खाने-पीने की चिंता

तो मिटी और घर चलाने की, शादी करने की चिंता मिटी तो फिर आर्त और रौद्रध्यान छूटे! इतना छोड़ने के लिए साधुपन लेना है। लेकिन अभी तो इन गृहस्थियों को जितने आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं होते, उतने इन महाराजों को हो गए हैं! सभी की इच्छा तो भगवान की आज्ञा में ही रहने की है। सच्चे दिल की इच्छा है, लेकिन मार्ग नहीं मिले तो क्या हो?

भगवान के समय में नहीं थे ऐसे ध्यान, यहाँ इस काल में अभी खड़े हो गए हैं!

यहाँ आपकी हर एक बात का खुलासा होता है। महावीर भगवान गए तब से 2500 साल से 'भट्ठी' शुरू हो गई थी। अब 2500 साल खत्म हुए हैं और वह 'भट्ठी' खत्म हो रही है और अब नया युग और सबकुछ नया ही शुरू हो रहा है!

संसार का उपादान कारण

संसार का उपादान आर्तध्यान और रौद्रध्यान है और वही अधिकरण क्रिया है। सिर्फ धर्मध्यान हो तो वह संसार में भटकाए ऐसा नहीं है और कभी उससे शुक्लध्यान भी प्राप्त हो जाता है। आर्तध्यान और रौद्रध्यान में तो पूरे दिन *कढ़ापा* और *अजंपा* रहता है। *कढ़ापा* रौद्रध्यान है और *अजंपा* आर्तध्यान है। यदि अंदर *अजंपा* होता रहता हो और वह सामने वाले की समझ में आ जाए तो वह रौद्रध्यान में जाता है!

रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

यह आर्तध्यान और रौद्रध्यान को आप पहचानते हो क्या? क्या काले रंग का इंसान, वह आर्तध्यान और गोरे रंग का इंसान, वह रौद्रध्यान कहलाता है?

क्रोध तो किसी और पर आता है न? क्रोध यदि खुद अपने आप पर करे तो भगवान ने उसे आर्तध्यान माना है, लेकिन क्रोध किसी और के लिए करता है। खुद पर करे, ऐसी कोई कच्ची माया नहीं है।

ये सभी पक्के हैं। खुद पर क्रोध नहीं करते! खुद पर क्रोध करें, लोग क्या ऐसे हैं? दूसरों पर करते हैं न? दूसरों पर क्रोध किया तो वह दूसरों को दुःख देने का भाव किया। क्रोध, वह दूसरों को दुःख देने का भाव कहलाता है। लोभ, वह औरों से ले लेने का भाव कहलाता है। कपट और माया, वे तो किसी और व्यक्ति को नुकसान पहुँचाकर उससे ले लेने के भाव हैं। और मान, वह तिरस्कार है, दूसरों का तिरस्कार करने का भाव है। वह सभी रौद्रध्यान है। क्रोध-मान-माया-लोभ, वह रौद्रध्यान है।

आर्तध्यान किसे कहते हैं?

आर्तध्यान तो, अभी आपके यहाँ दो मेहमान आए हों, वे आपको पसंद हों या आपको पसंद नहीं भी हों, ऐसे मेहमान होते हैं या नहीं? नापसंद मेहमान होते हैं तब होता है कि, 'ये कहाँ से आ गए?' दरवाज़े में प्रवेश किया और तभी से आपको अंदर बेचैनी होने लगती है और फिर मुँह पर कहना पड़ता है कि, 'आइए, बैठिए।' उन्हें ऐसा कहना पड़ता है या नहीं कहना पड़ता? क्योंकि वैसा न कहें तो आबरू जाए, बाहर फज़ीहत करेंगे न अपनी? इसलिए आओ, बैठो कहना पड़ता है। और अंदर बेचैनी होती रहती है, उसे आर्तध्यान कहा है भगवान ने। आर्तध्यान मतलब खुद के लिए ही पीड़ाकारी ध्यान। अब मेहमान आए हैं, तब क्या वापस चले जाने वाले हैं? तब कहना चाहिए कि आइए बैठिए और अगर भीतर आर्तध्यान होने लगे तो वह नहीं होने देना चाहिए, ऐसा भगवान ने कहा है। और अगर हो जाए तो प्रतिक्रमण करना चाहिए कि, 'भगवान ऐसा क्यों हो रहा है? मुझे नहीं करना है ऐसा।' या फिर कोई दो व्यक्ति पसंद हों या आपकी वृद्ध माँ आई हों न, वे दो दिन के लिए आई हों और आठ दिन तक रहें तो बहुत अच्छा, ऐसी भावना होती है न, तो वह भी आर्तध्यान कहलाती है। वे जा रही हों और मन में दुःख होता रहे कि, 'अभी और दो दिन बाद गई होतीं तो मुझे संतोष होता।' तो वह भी आर्तध्यान कहलाता है। या फिर आपने किसी पर क्रोध किया तो वह रौद्रध्यान हो गया। और यह किसी पर क्रोध करे और वापस पछतावा करे, वह आर्तध्यान हुआ कहलाता है।

कुछ लोग क्रोध करने के बाद, 'क्रोध करने लायक ही था' ऐसा कहते हैं, इसलिए वह रौद्रध्यान, ज़बरदस्त रौद्रध्यान हुआ! डबल हुआ! क्रोध से तो रौद्रध्यान हुआ लेकिन 'करने लायक था', ऐसा हुआ तो वह राज़ी खुशी से करता है इसलिए डबल हुआ, और दूसरा व्यक्ति पछतावा करता है, इसलिए वह आर्तध्यान में जाता है। रौद्रध्यान भी, पछतावा किया इसलिए आर्तध्यान में जाता है, क्योंकि पछतावे सहित करता है।

पैसे कमाने की भावना का मतलब ही रौद्रध्यान। पैसे कमाने की भावना यानी दूसरों के पैसे कम करने की भावना ही न? इसलिए भगवान ने कहा है कि, 'कमाने की तू भावना ही मत करना।'

दादाश्री : तू रोज़ नहाने के लिए ध्यान करता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं साहब।

दादाश्री : नहाने का ध्यान नहीं करता तब भी पानी की बाल्टी मिलती है या नहीं मिलती?

प्रश्नकर्ता : मिलती है।

दादाश्री : जैसे नहाने के लिए पानी की बाल्टी मिल जाती है वैसे ही ज़रूरत के अनुसार पैसे हर एक को मिल जाते हैं, ऐसा नियम ही है। यहाँ पर भी बेकार ही ध्यान करता है।

सारा दिन बिस्तर का हिसाब लगाते रहते हो कि रात को बिस्तर बिछाने को मिलेगा या नहीं मिलेगा? यह तो शाम हो और सुबह हो, लक्ष्मी, लक्ष्मी और लक्ष्मी! अरे कौन गुरु मिले तुझे? कौन ऐसा मूर्ख गुरु मिला कि जिसने तुझे सिर्फ लक्ष्मी के पीछे ही लगाया! घर के संस्कार लुट गए, स्वास्थ्य लुट गया, ब्लड प्रेशर हो गया। हार्ट फेल की तैयारियाँ चल रही हैं! तुझे कौन ऐसे गुरु मिले कि सिर्फ लक्ष्मी के–पैसों के पीछे पड़, ऐसा सिखलाया?

इन्हें कोई गुरु नहीं मिले तो लोकसंज्ञा, वही उनकी गुरु होती

है। लोकसंज्ञा मतलब लोगों ने पैसों में सुख माना, वह लोकसंज्ञा। लोकसंज्ञा से यह रोग दाखिल हो गया तब कौन सी संज्ञा से यह रोग निकले? तब भगवान कहते हैं कि, 'ज्ञानी की संज्ञा से यह रोग निकलेगा। लोकसंज्ञा से दाखिल हुआ रोग ज्ञानी की संज्ञा से निकल जाता है।'

यानी कि कहना चाहते हैं कि यह नहाने के पानी के लिए या रात को सोने के बिस्तर के लिए या दूसरी कितनी ही चीज़ों के लिए आप सोचते तक नहीं फिर भी, क्या वह आपको नहीं मिलतीं? वैसे ही लक्ष्मी के लिए भी सहज रहना चाहिए।

हम ज्ञानी लोग यह कैसा हिसाब निकालते होंगे? यह जगत् किस तरह चलता है, उसका किसी को भान ही नहीं है। किसी लड़के के मित्र को दाढ़ी ही नहीं उग रही हो तो उस लड़के को वहम हो जाता है कि, 'मेरी दाढ़ी नहीं उगेगी तो मैं क्या करूँगा?' उसी तरह यह जगत् वहम करने जैसा नहीं है। किसी की नहीं उगे तो इट इज़ अ डिफरन्ट मेटर, लेकिन तेरी तो उगेगी ही। हर एक व्यक्ति को दाढ़ी तो उगती ही है। अगर किसी को नहीं उगे, तो वह तो कुदरत का एक आश्चर्य है!

अरे! पैसे कमाने वाला क्या तू है? तो कहते हैं कि, 'अवश्य कमाने वाला है और खोएगा भी।' उन दोनों की ही सत्ता तेरे हाथ में नहीं है। बेकार ही ध्यान क्यों बिगाड़ता है? ये पैसे तो *पूरण-गलन* होते हैं। वह सब कुदरत की सत्ता है। यानी *पूरण* होते हैं, लाख रुपये कमाता है वह कुदरत की सत्ता है और लाख का नुकसान होता है, वह भी कुदरत की सत्ता है। वह सत्ता आपकी नहीं है, वहाँ किसलिए हाथ डालते हो?

आरोपित भाव से जो जो करता है वह बंधन है, और तब तक आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद नहीं होते हैं। जैन धर्म का सारांश क्या है? तो यह कि आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद हो जाएँ तो, जैन धर्म प्राप्त कर लिया, ऐसा कहा जाएगा। वे दोनों बंद हो जाएँ तो जैन धर्म

का सारांश प्राप्त कर लिया, ऐसा कहा जाएगा। भगवान महावीर ने जो कहा उसे प्राप्त कर लिया, ऐसा कहलाता है। वर्ना आर्तध्यान और रौद्रध्यान तो सभी धर्म वालों को होते हैं और आपको भी हों तो फिर कोई अर्थ ही नहीं है न? क्या दूसरों में और इनमें फर्क नहीं होगा? जैन में और अन्य धर्मों में क्या फर्क ही नहीं होगा? अन्य धर्मों में भी चारों ध्यान हैं और जैनधर्म में भी चारों ध्यान हैं, तो फिर उसे वीतराग का धर्म कहेंगे ही कैसे? अन्य सब धर्म वाले भी इन चार ध्यानों में रहते हैं, और ये भी चार ध्यानों में रहते हैं। चार ध्यानों से ऊपर का पाँचवा ध्यान नहीं है। अब वे भी चार ध्यानों में हैं और आप भी चार ध्यानों में हो, तो उसमें ऐसा कैसे कहेंगे कि आपने प्रगति की? वीतराग धर्म में फर्क तो होना चाहिए न? तब कहते हैं, 'किसमें फर्क होना चाहिए?' तेरे दुर्ध्यान कितने कम हुए हैं? चार ध्यान में से कौन-कौन से ध्यान कम हो गए हैं? कदाचित् रौद्रध्यान बंद हो गया हो और आर्तध्यान रहा, तब भी भगवान चला लेंगे। यदि थोड़ा सा भी आर्त और रौद्रध्यान दोनों जाएँ, उसके बाद ऐसा कहा जाएगा कि वीतराग धर्म प्राप्त हुआ।

प्रश्नकर्ता : अगम विचार वह कौन सा ध्यान कहलाता है?

दादाश्री : अगम विचार, वह आर्तध्यान में समाता है अथवा पहले के भूतकाल के विचारों से भी दुःख होता है उसे। साल भर पहले बेटा मर गया हो और आज याद करके रोए तो वह आर्तध्यान कहलाता है। दुःख में आर्त और रौद्रध्यान करता है। इकलौता बेटा मर जाए न, तो कल्पांत करता है। कल्पांत किया यानी *कल्प* (कालचक्र) के अंत तक तुझे भटकना पड़ेगा! एक करोड़ सालों तक भटकना पड़ेगा!

ये व्यापारी कपड़ा खींचकर नापते हैं तो मुझे उन्हें कहना पड़ता है कि, 'सेठों, मोक्ष जाने की इच्छा नहीं है अब?' तो वे कहते हैं, 'क्यों ऐसा?' तब मुझे कहना पड़ता है, 'यह कपड़ा खींच रहे हो, तब कौन से ध्यान में हो? महावीर भगवान के ध्यान को तो पहचानो! यह रौद्रध्यान कहलाता है। दूसरों के पास से थोड़ा, एक उँगली बराबर भी

हड़प लेना, वह रौद्रध्यान कहलाता है। आपको इतना कहने का अधिकार है, कि ग्राहक पूछे कि, 'इस टेरेलीन का क्या भाव है?' तो आप अट्ठारह के बदले साढ़े अट्ठारह कह सकते हो। लेकिन अट्ठारह कहने के बाद में आपको उसे नाप पूरा देना चाहिए, किंचित्मात्र भी कम नहीं। कम नहीं दिया गया हो और कम देने की भावना मात्र की, उसे भी रौद्रध्यान कहा है। कम देते समय भूल से वापस ज़्यादा भी चला गया होगा तो वहाँ कोई जमा करने वाला नहीं है। सेठ लोगों ने नौकरों से कह रखा होता है कि, 'देख, यह अपने चालीस गज में इतना बचना चाहिए।' यानी उसने फिर अनुमोदना कर रखी होती है।

खुद करता है, करवाता है, और कर्ता के प्रति अनुमोदना करता है। यही का यही पूरे दिन रौद्रध्यान है और जैनपन खत्म हो गया है। जैन तो कैसा होता है? भले ही हम कैसी भी मुश्किल में हों, फिर भी अगर उस समय कोई व्यक्ति अपने से हैल्प लेने आए, और वह अपनी मुश्किल जान जाए तो हम जैन कैसे? उसे हैल्प मिलनी ही चाहिए, उसकी आशा भंग नहीं करनी चाहिए। कम-ज़्यादा, लेकिन अंत में आपका साथ तो मिलना ही चाहिए। यदि आपके पास पैसों का साधन नहीं हो तो कोई बात नहीं लेकिन आपका साथ तो मिलना चाहिए कि और कोई कामकाज हो तो कुछ कहना। जैन समझकर, सेठ समझकर वह आपके पास आया और बेचारा वापस जाए, निःश्वास लेकर, वह किस काम का! आपको क्या लगता है? बात मेरी सही है या गलत?

जहाँ अच्छा पेड़ देखते हैं, वहीं ये लोग छाया के लिए बैठ जाते हैं और यदि पेड़ ही काटने दौड़े तो क्या होगा? वैसे ही अभी ये सेठ लोग काटने दौड़ते हैं कि, 'आप नालायक हो, आप ऐसे हो, आप वैसे हो', वगैरह। गरीबों को तो आप नालायक कह सकोगे, क्योंकि उन बेचारों की सत्ता नहीं है। और नौकरों का तो पूरे दिन तेल ही निकाल देता है। नौकरों के हाथ से गिरकर प्याले टूट गए कि, 'हाथ टूटे हुए हैं, तुझे ऐसा है' ऐसे गालियाँ देता है। तब तेरी क्या गति होगी? नौकरों के हाथ टूटे हुए हों तो तू उन्हें नौकरी पर रखता ही

नहीं न? ये तो कर्म के कर्ता बन गए! भगवान ने व्यवहार से कहा था, ड्रामेटिक भाव से करना था लेकिन यह तो 'मैं ही कर रहा हूँ, मेरे सिवा कौन करेगा?' उससे तो कर्म बंधन होता है। और वह भी फिर सिर्फ निकाचित कर्म के बंधन होते हैं, हल्के नहीं। उसे तो हल्के कर्म के बंधन होते हैं और इनको तो पक्की गांठ!

इसमें किसी का दोष नहीं है। सभी आचार्यों, साधुओं सभी की इच्छा है कि भगवान के कहे अनुसार चलना है, लेकिन वैसे संयोग नहीं मिलते। जैसे इस जगत् के लोगों को कैसा होता है कि मेरे घर के लोगों को मुझे सुखी करना है ऐसी भावना है, लेकिन संयोग मिले बगैर सुखी कैसे होंगे? उसी तरह इन साधु-आचार्यों को संयोग नहीं मिलते।

हमने आपको स्वरूप ज्ञान दिया, उसके बाद क्या आर्तध्यान और रौद्रध्यान होते हैं?

प्रश्नकर्ता : ना, दादा, अब नहीं होते।

दादाश्री : अभी बेटी की शादी करवाई, तब शादी में कैसी परिणति रही थी? आर्तध्यान और रौद्रध्यान खड़े हुए थे?

प्रश्नकर्ता : ना दादा, एक भी आर्तध्यान या रौद्रध्यान खड़ा नहीं हुआ।

दादाश्री : यह 'अक्रम-ज्ञान' है ही ऐसा। इस ज्ञान से रिलेटिव में धर्मध्यान रहता है और भीतर, रियल में शुक्लध्यान बरतता है। ऐसा ग़ज़ब का आश्चर्यजनक ज्ञान है!

क्रमिक मार्ग में जिसके आर्तध्यान और रौद्रध्यान गए वह भगवान पद में आया माना जाता है, तब से भगवान पद की शुरूआत हुई मानी जाती है!

धर्मध्यान किसे कहते हैं?

आर्त और रौद्रध्यान नहीं हों, तो धर्मध्यान में आया कहलाता

है। आर्त और रौद्रध्यान बंद हो जाएँ, तो नए कर्म बंधन रुक जाते हैं, लेकिन ऐसा हो पाए, वैसा है नहीं। वह तो हम 'स्वरूप ज्ञान' देते हैं उसके बाद ही बाहर धर्मध्यान शुरू हो जाता है और भीतर शुक्लध्यान बरतता है एवं आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद हो जाते हैं। यह अक्रम मार्ग है इसलिए बाह्य क्रिया मिथ्यात्वी जैसी, वैसी की वैसी ही रहती है, लेकिन ध्यान पूरा बदल जाता है!

भगवान ने कहा है धर्मध्यान हो तो भी निष्क्लेश रहेगा, क्लेश नहीं होगा। पैसे भले ही कम-ज़्यादा हों लेकिन निष्क्लेश होना चाहिए। ऐसा क्लेश रहित घर ढूँढना मुश्किल है। मतभेद को क्लेश कहते हैं। और जहाँ क्लेश हैं, वहाँ संसार खड़ा है। जिसका क्लेश मिटा, वह भगवान पद में आ गया कहलाएगा।

छोटे प्रकार के क्लेश होते हैं और फिर उनका बड़ा स्वरूप हो जाता है। इस मतभेद में और क्लेश में महामुश्किल से मिला हुआ मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जाता है। जितना टाइम क्लेश करे उतना टाइम वह जानवर की गति बाँधता है! सज्जनता में जानवर योनि नहीं बंधती।

'कलुषित भाव' के अभाव से भगवान पद

प्रश्नकर्ता : हमें नहीं करना हो तब भी सामने वाला आकर क्लेश कर जाए तो?

दादाश्री : हाँ, इसी का नाम जगत् है न! इसलिए ही कहा है न कि, ऐसी 'गुफा' ढूँढ ले कि जिसे किसी ने जाना ही नहीं हो और तुझे कोई पहचान ही नहीं सके, ऐसी 'गुफा' ढूँढ। यह तो चाहे कहीं से भी तुझे ढूँढकर लोग क्लेश करवाएँगे, नहीं तो रात में दो मच्छर आकर भी क्लेश करवाएँगे! चैन से नहीं बैठने देंगे। इसलिए मनुष्यगति में आने के बाद अधोगति में नहीं जाना हो तो क्लेश मत होने देना। तेरा क्लेश मिटने के बाद तू दूसरों का क्लेश मिटा सकेगा, तब तू लोकपूज्य पद में आ गया, ऐसा कहा जाएगा!

आत्मा तो खुद परमात्मा ही है। इसलिए पूज्य है, लोकपूज्य है।

लेकिन *पुद्गल* भी लोकपूज्य बन सके ऐसा है, लेकिन कलुषित भाव निकल जाएँ तब! खुद में कलुषित भाव नहीं रहें और सामने वाले के कारण खुद को कलुषित भाव नहीं हों तो *पुद्गल* भी लोकपूज्य हो जाता है! सामने वाले के कलुषित भाव में भी खुद कलुषित नहीं हो तो *पुद्गल* भी लोकपूज्य बन जाता है। अन्य भाव भले ही रहें लेकिन कलुषित भाव उत्पन्न नहीं होना चाहिए। जो खुद के लिए, दूसरों के लिए, किसी जीव मात्र के लिए कलुषित भाव नहीं करे तो वह पूज्य बन जाता है। 'हमने' हममें क्या देखा? हममें से क्या निकल गया? यह हमारा *पुद्गल* किसलिए लोकपूज्य बन गया है? हम 'खुद' तो निरंतर 'हमारे स्वरूप' में ही रहते हैं लेकिन इस *पुद्गल* में से सर्व कलुषित भाव निकल गए हैं! इसलिए यह *पुद्गल* भी लोकपूज्य बन गया है! मात्र कलुषित भाव चले गए हैं, फिर खाते हैं, पीते हैं, कपड़े पहनते हैं, अरे! टेरिलीन के भी कपड़े पहनते हैं और इसके बावजूद भी लोकपूज्य पद है! यह भी इस काल का आश्चर्य है न! 'असंयति पूजा' नाम का यह ग्यारहवाँ आश्चर्य है!

इस 'अक्रम मार्ग' में तो कलुषित भाव निकल जाएँ, ऐसा मार्ग है। कलुषित भाव रहते ही नहीं, खत्म हो जाते हैं ऐसा है। तब फिर खुद को तो क्लेश नहीं रहता, लेकिन खुद के कारण सामने वाले को भी क्लेश नहीं होते और सामने वाला, क्लेश वाला हमारे अकलुषित भाव से ठंडा पड़ जाता है, पूरा भाव ही चेन्ज हो जाता है! यह 'मकान' कभी भी कलुषित होता ही नहीं है। लेकिन खुद कलुषित भाव वाला है, इसलिए फिर 'मकान' भी कलुषित दिखता है। फिर कहे कि यह 'रूम' मुझे रास नहीं आता। खुद के कलुषित भावों का इसमें आरोप किया इसलिए सब बिगड़ जाता है।

कलुषित भाव निकल जाएँ तो *पुद्गल* भी पूज्य हो जाए, ऐसा यह जगत् है! फिर चाहे कोई भी हो, मुस्लिम हो या जैन हो या वैष्णव हो, जिसके वे कलुषित भाव निकल जाएँ, वह लोकपूज्य बन जाता है! ये जो औलिया होते हैं, उनके तो थोड़े-बहुत कलुषित भाव निकल

जाते हैं, इसलिए वे दर्शन करने योग्य लगते हैं। फिर भी औलिया में वह नैचुरली है, विकासक्रम के रास्ते में आते ही हो जाता है। उसमें उनका खुद का पुरुषार्थ नहीं होता। पुरुषार्थ तो ज्ञान मिलने के बाद ही हो पाता है। उसके बाद जब 'स्वक्षेत्र' में बैठें, तब कलुषित भाव कम होते जाते हैं। वर्ना तब तक यदि एक कलुषित भाव कम करने जाएँ तो दूसरे चार घुस जाते हैं। जब तक हमारे पास ऐसे गार्ड नहीं होते जो उन्हें घुसने न दें, तब तक पूरा ही लश्कर घुस जाता है। गार्ड कब मिलता है? 'पुरुष' बन जाए तब। यानी कि खुद के पास पूरा लश्कर ज्यों का त्यों रहता है। गार्ड नहीं हो, तब तो चोर घुस जाता है तो फिर क्या फायदा हुआ?

दिनोंदिन कलुषित भाव कम नहीं होंगे तो मानवता रहेगी ही नहीं, पाशवता रहेगी।

उच्च गौत्र कब तक है? लोकपूज्य हों तब तक। जो लोकनिंद्य नहीं हैं, उन्हें कलियुग में भगवान ने लोकपूज्य कहा है। इस कलियुग में इतना लाभ लोगों को मिला है कि यदि इस कलियुग में तेरी निंदा नहीं हो रही है, तो तू लोकपूज्य पद में है! भगवान इस बात में समझदार थे, लेकिन भक्त इतने समझदार नहीं हैं कि 'भगवान ने मुझे लोकपूज्य पद दिया है इसलिए मुझे दाग़ नहीं पड़ने देना चाहिए।' वर्ना लोकपूज्य तो होते ही नहीं हैं! ऐसे होंगे तो दो या तीन ही होंगे पूरी दुनिया में! गुरु को शिष्य पूजते हैं लेकिन वह तो पुलिस वालों की तरह। पीछे से शिष्य कहेंगे कि, 'जाने दो न उनकी बात', ऐसा कहते हैं। कृपालुदेव(श्रीमद् राजचंद्रजी) लोकपूज्य थे। लोकपूज्य मतलब सब से ऊँचा गौत्र। भगवान लोकपूज्य थे। जो-जो भाग लोकनिंद्य हो तो उसके लिए माफ़ी माँगकर धो देना चाहिए।

पूज्य जन हार्टिली होते हैं। भगवान महावीर लोकपूज्य पद लेकर आए थे।

भगवान यानी क्या, कि उनके लेवल वाले आसपास के लोग उनके व्यू पोइन्ट में जो आ गए हों, उन्हें वे ही भगवान लगते हैं।

क्राइस्ट भगवान के व्यू पोइन्ट में आए हुए लोगों को महावीर दिखाएँ तो उन्हें महावीर भगवान नहीं लगेंगे, उन्हें तो क्राइस्ट ही भगवान लगेंगे।

इन 'ज्ञानी पुरुष' को भी लोग भगवान की तरह पहचानते हैं। भगवान तो विशेषण है, और हम निर्विशेष शुद्धात्मा! शुद्धात्मा को विशेषण नहीं होता। इस विशेषण से ही जगत् उत्पन्न हुआ है। 'शुद्धात्मा' को विशेषण नहीं होता इसीलिए 'हमारा' पूरा पद 'निर्विशेष' है।

ये हमें भगवान कहते हैं, वह तो हमारी मज़ाक उड़ाने जैसा है। कोई बाहर साधु हो और खुद को एक भी कलुषित भाव नहीं हो और खुद के निमित्त से दूसरों को भी कलुषित भाव उत्पन्न नहीं हो तो उसे भी भगवान पद प्राप्त होता है। तो 'हमें' भी भगवान कहा। लेकिन यह तो निर्विशेष पद है! इस पर विशेषण लागू ही नहीं होता। शास्त्रों में यह पद नहीं होता। इसलिए किसी को विशेषण में नहीं पड़ना है। 'हमारा' विशेषण है ही नहीं। भगवान, वह तो विशेषण है, नाम नहीं है। कोई बी.एस.सी. हो जाए तो उसे ग्रेजुएट कहते हैं। फिर वह उससे आगे दस साल तक पढ़ाई करे तब भी उसे हम ग्रेजुएट कहें तो कैसा हीन लगेगा? 'ज्ञानी पुरुषों' को भगवान कहना, वह तो हीनपद में कहने के बराबर है। 'भगवान' पद तो 'ज्ञानी पुरुष' के लिए हीनपद है। 'ज्ञानी पुरुष' तो आश्चर्य कहलाते हैं! वे तो निर्विशेष होते हैं। लेकिन लोग पहचानें किस तरह? इसलिए भगवान कहना पड़ता है। भगवान तो 'भग्' धातु पर से बना हुआ शब्द है। 'भग्' पर से भगवान। जैसे 'भाग्य' पर से भाग्यवान बनता है, वैसे ही जिसने भगवत् गुण प्राप्त किए हों, वे भगवान कहलाते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' तो उससे भी बहुत आगे पहुँचे हुए होते हैं। उससे आगे कुछ भी बाकी नहीं बचता। हमारी मात्र चार डिग्री बाकी बची हैं। भगवान महावीर की 360 डिग्री पूरी हो गई थीं और हमारा केवलज्ञान 356 डिग्री पर अटका हुआ है, वह भी इस काल की विचित्रता के कारण! लेकिन आपको यदि चाहिए तो हम आपको संपूर्ण 360 डिग्री का केवलज्ञान घंटे भर में दे सकते हैं, ऐसा है, आपकी तैयारी चाहिए। लेकिन इस काल की विचित्रता है, इसलिए

वह आपको पूरा-पूरा पचेगा नहीं। हमें ही 356 डिग्री पर आकर खड़ा रह गया है न! लेकिन भीतर तो उसका संपूर्ण सुख हमें बरतता है।

किसी भी काल में धर्म के लिए आया ही नहीं था, ऐसा काल आज आया है। भगवान महावीर के बाद के 2500 साल अब पूरे हो रहे हैं और भगवान महावीर के बाद साढ़े तीन साल ही बीते हों ऐसा काल आ रहा है। अभी भले ही दूषमकाल हो, लेकिन अभी सब से अच्छा काल आया है। खरा काल ही अभी आया है। इस काल में जो लोकनिंद्य नहीं हैं, उन्हें भगवान ने लोकपूज्य कहा है। ऐसा सुंदर यह काल है तो उसका लाभ उठा लेना चाहिए न?

हम इस काल में नकद मोक्ष दे सकते हैं। यहीं मोक्ष बरतेगा। हम मोक्षदाता हैं, मोक्ष के लाइसेन्सदार हैं। जगत् कल्याण के निमित्त हैं हम। हम उसके कर्ता नहीं हैं। हम कभी भी किसी भी चीज़ के कर्ता नहीं बनते हैं क्योंकि जो कर्ता बने तो उसका भोक्ता बनना ही पड़ता है। हम निमित्त भाव में ही रहते हैं।

इसलिए सभी को भले ही मोक्षधर्म का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, लेकिन धर्मध्यान तो इस काल में फुल स्टेज पर जा सकता है, ऐसा है। 'अक्रम मार्ग' से मोक्ष तो कुछ महा पुण्यशालियों को ही प्राप्त होता है, लेकिन बाकी सभी को, हम सर्वोच्च धर्मध्यान दे सकते हैं, ऐसा है। रौद्रध्यान और आर्तध्यान, वह अधर्मध्यान है। धर्मध्यान, वह धर्मध्यान है और शुक्लध्यान, वह आत्मध्यान है। रौद्रध्यान और आर्तध्यान जाएँ उसी को कहते हैं धर्मध्यान।

निज दोष

किसी को हमसे किंचित्‌मात्र दुःख हो तो समझना कि भूल अपनी है। अपने भीतर परिणाम ऊपर-नीचे हों तो भूल अपनी है, ऐसा समझ में आता है। सामने वाला व्यक्ति भुगत रहा है, इसलिए उसकी भूल तो प्रत्यक्ष है ही, लेकिन निमित्त हम बने, हमने उसे डाँटा, इसलिए हमारी भी भूल। क्यों दादा को *भोगवटा* (सुख-दुःख का असर) नहीं आता? क्योंकि उनकी एक भी भूल नहीं बची है। अपनी भूल से सामने वाले को कुछ भी असर हो और यदि कुछ उधार हो जाए तो तुरंत ही मन से माफ़ी माँगकर जमा कर लेना चाहिए। अपने में क्रोध-मान-माया-लोभ के जो कषाय हैं, वे उधार चढ़ाए बगैर रहते ही नहीं। इसलिए उनके सामने जमा कर लेना चाहिए। अपनी भूल हुई हो, तब उधार हो जाता है, लेकिन तुरंत ही कैश नकद प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए। अपने कारण किसी से अतिक्रमण हो जाए, तो हमें जमा कर लेना चाहिए, और भविष्य के लिए उधार नहीं रखना चाहिए। और यदि किसी के प्रति हम से भूल हो जाए, तब भी हमें आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान कर लेना चाहिए। मन-वचन-काया से प्रत्यक्ष दादा भगवान की साक्षी में क्षमा माँगते रहना। कदम-कदम पर जागृति रहनी चाहिए। अपने में क्रोध-मान-माया-लोभ के कषाय तो भूलें करवाकर उधारी करवाएँ, ऐसा माल है। वे भूलें करवाते ही हैं और उधारी खड़ी करते हैं, लेकिन उसके सामने हमें तुरंत ही, तत्क्षण माफ़ी माँगकर जमा करके साफ कर लेना चाहिए। यह व्यापार पैन्डिग नहीं रखना चाहिए। इसे तो दरअसल नकद व्यापार कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : अभी जो भूलें हो रही हैं, वे पिछले जन्म की हैं न?

दादाश्री : पिछले जन्म के पापों को लेकर ही ये भूलें हैं। लेकिन वापस इस जन्म में भूलें मिटती ही नहीं और भूलें बढ़ाता जाता है। भूल को मिटाने के लिए भूल को भूल कहना पड़ेगा। उसका रक्षण नहीं करना चाहिए। 'इसे' 'ज्ञानी पुरुषों' की चाबी कहते हैं। इससे कैसा भी ताला खुल जाता है।

हम अपनी भूल से बंधे हुए हैं। भूल मिट जाए तब तो परमात्मा ही हैं! जिसकी एक भी भूल नहीं है, वह खुद परमात्मा ही है। ये भूलें क्या कहती हैं? 'तू मुझे जान, मुझे पहचान।' यह तो ऐसा है कि भूल को खुद का अच्छा गुण मानते थे। भूल का स्वभाव कैसा है कि वह हमारे ऊपर शासन चलाती है। लेकिन भूल को भूल जानें तो वह भाग जाती है। फिर खड़ी नहीं रहती, जाने लगती है। लेकिन यह तो क्या करते हैं कि एक तो भूल को भूल नहीं समझते और ऊपर से उसका रक्षण करते हैं। यानी भूल को घर में ही भोजन करवाते हैं।

भूल का रक्षण

प्रश्नकर्ता : दादा, भूल का रक्षण किस तरह किया जाता है?

दादाश्री : यदि किसी को डाँटने के बाद हम कहें कि, 'हमने उसे नहीं डाँटा होता तो वह समझता ही नहीं। इसलिए उसे डाँटना ही चाहिए।' इससे तो वह 'भूल' समझ जाती है कि इस भाई को अभी तक मेरा पता ही नहीं चला है, और वापस मेरा पक्ष ले रहा है इसलिए यहीं खाओ, पीओ और रहो। एक ही बार यदि अपनी भूल का पक्ष लिया जाए तो उस भूल का दस साल का आयुष्य बढ़ जाता है। किसी भी भूल का पक्ष नहीं लेना चाहिए।

हममें *आड़ाई* (टेढ़ापन) ज़रा सी भी नहीं होती। कोई हमें हमारी भूल बताए तो हम तुरंत ही एक्सेप्ट (स्वीकार) कर लेते हैं। कोई कहे

कि यह आपकी भूल है, तो हम कहते हैं कि 'हाँ भाई, यह तूने हमें भूल बताई तो तेरा उपकार।' हम तो ऐसा समझते हैं कि जो भूल मुझे नहीं दिख रही थी, वह भूल उसने बता दी, इसलिए उसका उपकार। यदि रोज़ाना पच्चीस के करीब भूलें समझ में आएँ तो ग़ज़ब की शक्ति उत्पन्न हो जाएगी। यह भूल क्या है, वह समझ में आए उसके लिए हमने कहा है न कि, 'भुगते उसी की भूल'। तूने भुगता तो भूल तेरी। यह तेरी जेब कट गई और तू दूसरों को गालियाँ दे उससे तो भूल को एक्स्टेन्शन मिलता है। भूल जान जाती है कि यह तो हमें खिलाने-पिलाने की ही बात कर रहा है। फिर वह जाती नहीं। यदि कोई घर जला डाले तो लोग जलाने वाले को गालियाँ देते हैं, जबकि जलाने वाला तो घर पर आराम कर रहा होता है। यह तो खुद की ही भूल। इस समय कौन भुगत रहा है? उसकी भूल।

''दादा' चोर हैं'', यदि ऐसा मेरे कोट के पीछे लिखा हो तो वह भूल हमारी है। क्योंकि ऐसा तो कौन फालतू होगा ऐसा लिखने के लिए? और हमारे ही पीछे क्यों लिखा? इसलिए हम तुरंत ही भूल एक्सेप्ट करके निकाल कर देते हैं। यह कैसा है कि पहले भूलें की थीं उनका निकाल नहीं किया था, इसलिए वे ही भूलें फिर से आती हैं। भूलों का निकाल करना नहीं आया, इसलिए एक भूल निकालने के बजाय दूसरी पाँच भूलें कीं!

संसार बाधक नहीं है, खाना-पीना बाधक नहीं है। न तो तप ने बाँधा है, न ही त्याग ने बाँधा है। खुद की भूलों ने ही लोगों को बाँधा है। अंदर तो अपार भूलें हैं। लेकिन मात्र बड़ी-बड़ी पच्चीसेक जितनी ही भूलें मिटा दें न तो छब्बीसवी अपने आप जाने लगेगी।

कुछ लोग तो भूल को जानते हैं, फिर भी खुद के अहंकार के कारण उसे भूल नहीं कहते। यह कैसा है? एक ही भूल अनंत जन्म बिगाड़ डालती है, ऐसा तो पुसाएगा ही नहीं।

ज्ञानी पुरुष में, देखी जा सकें वैसी स्थूल भूलें नहीं होतीं। और

सूक्ष्म भूलें भी नहीं होतीं। उनकी सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम भूलें होती हैं, लेकिन वे उनके ज्ञाता-द्रष्टा रहते हैं। इन दोषों की आपको परिभाषा दूँ। स्थूल भूल यानी क्या? मुझसे कोई भूल हो जाए तो, यदि कोई जागृत व्यक्ति होगा तो वह समझ जाएगा कि इन्होंने कोई भूल की है। सूक्ष्म भूल यानी कि मान लो यहाँ पच्चीस हज़ार लोग बैठे हों तो मैं समझ जाता हूँ कि दोष हुआ, लेकिन उन पच्चीस हज़ार में से मुश्किल से पाँचेक लोग ही सूक्ष्म भूल को समझ सकेंगे। सूक्ष्म दोष तो बुद्धि से भी देखे जा सकते हैं, जबकि सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम भूलें, वे तो ज्ञान से ही दिखती हैं। मनुष्यों को सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम दोष नहीं दिखते। देवी-देवता यदि अवधिज्ञान से देखें तभी उन्हें दिखते हैं। फिर भी वे दोष किसी को नुकसान नहीं पहुँचाते, वैसे सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम दोष मुझ में रहे हुए हैं। और वे भी इस कलिकाल की विचित्रता के कारण!

ब्लंडर्स और मिस्टेक्स

भूल एक नहीं है, अनंत हैं। खुद बंधा हुआ है ब्लंडर्स और मिस्टेक्स से। जब तक ब्लंडर्स नहीं टूटेंगे, तब तक मिस्टेक्स नहीं जाएँगी।

प्रश्नकर्ता : ब्लंडर्स किसे कहते हैं?

दादाश्री : 'मैं चंदूलाल हूँ' वही ब्लंडर है। हम 'स्वरूप ज्ञान' देते हैं, फिर ब्लंडर्स चले जाते हैं और मिस्टेक्स बचती हैं। वे भूलें फिर ज्ञेय स्वरूप में दिखती हैं। जितने ज्ञेय दिखें उतनों से मुक्त हो जाते हैं। ये प्याज़ की परतें होती हैं न, उसी तरह दोष भी परतों वाले होते हैं। जैसे-जैसे दोष दिखते हैं, वैसे-वैसे उनकी परतें उखड़ती जाती हैं और जब उनकी सारी परतें उखड़ जाती हैं, तब वह दोष जड़-मूल से सदा के लिए बिदाई ले लेता है। कुछ दोष एक परत वाले होते हैं। उनकी दूसरी परत होती ही नहीं है, इसलिए उन्हें एक ही बार देखने से वे चले जाते हैं। अधिक परतों वाले दोषों को बार-बार देखना पड़ता है और वे प्रतिक्रमण करने पर चले जाते हैं, तब जाते हैं और

कुछ दोष तो इतने गाढ़े होते हैं कि उनका बार-बार प्रतिक्रमण करते रहना पड़ता है, तब लोग कहेंगे कि वही का वही दोष हो रहा है? तब कहें कि भाई! हाँ लेकिन उसका यह कारण उन्हें समझ में नहीं आता! दोष तो परतों जैसे हैं, अनंत हैं। इसलिए जो-जो दिखें और उनके प्रतिक्रमण करें, तो शुद्ध होते जाएँगे। कृपालुदेव ने कहा है कि:

'हुं तो दोष अनंतनुं भाजन छुं. करुणाल
दीठा नहीं निजदोष तो तरीये कोण उपाय?'

दोष अनंत हैं और वे दिखाई नहीं दिए हैं, इसलिए वे दोष जाते ही नहीं। यदि तुझ में दोष नहीं हैं तो 'मैं दोष का भाजन हूँ', ऐसा मत बोलना, नहीं तो वैसा बन जाएगा और अनंत दोष हैं तो वैसा स्पष्ट रूप से बोल दे कि मुझ में अनंत दोष हैं। लेकिन जिनालय से बाहर निकलने के बाद सेठ से पूछें तो कहेगा कि एक-दो ही दोष होंगे। ज़रा सा क्रोध, ज़रा सा लोभ, बस इतना ही है। तब फिर दोष भी जान जाते हैं कि भाई कपट कर रहे हैं, उससे फिर दोष भी खड़े ही रहते हैं।

सब से बड़ी भूल, वह स्वच्छंद है। स्वच्छंद से तो पूरा लश्कर खड़ा है। स्वच्छंद, वही बड़ी भूल है। यानी ज़रा सा ऐसा कहा कि, 'उसमें क्या हुआ?' तो हो गया। वह फिर अनंत जन्म बिगाड़ देता है।

'ज्ञानी पुरुष' की कृपा से, शक्ति से दोष दिखते हैं और मिट जाते हैं। किसी व्यक्ति को भूल रहित होना हो तो हम उससे कहते हैं कि सिर्फ तीन ही साल तक क्रोध-मान-माया-लोभ को खुराक मत देना, तो वे सब मृतप्राय हो जाएँगे। भूलों को यदि तीन ही साल खुराक नहीं मिले तो वे घर बदल डालेंगी। दोष का मतलब ही है क्रोध-मान-माया-लोभ का पक्ष लेना, यदि तीन ही साल के लिए बिल्कुल भी पक्ष नहीं लिया तो वे भाग जाएँगे।

लोभी की प्रकृति

लोभी यदि मार्केट में जाए तो उसकी दृष्टि सस्ती सब्ज़ियों की

ओर ही जाती है। भीतर लोभ क्या कहता है कि, 'ये लोभी तो मुझे खिलाते हैं इसलिए यहीं पर मुकाम करो।' तब लोभी को क्या करना चाहिए कि जहाँ महँगी सब्ज़ी मिल रही हो वहाँ पर जाना चाहिए और बिना मोल-भाव किए सब्ज़ी ले लेनी चाहिए। फिर भले ही डबल पैसे देने पड़ें। लोभ समझ जाएगा कि मुझे यहाँ खाने को नहीं मिल रहा है, उसके बाद फिर वह भागने लगेगा। हमारे यहाँ एक भाई आते थे। बड़े साहब थे। वे अच्छी तनख्वाह पाते थे। घर में पति-पत्नी बस दोनों ही थे। कोई बच्चा-वच्चा नहीं था उनका। एक दिन वे मुझसे कहने लगे, 'दादा, मेरा स्वभाव बड़ा कंजूस है, इसलिए मेरे हाथ से पैसा नहीं छूटता। मैं किसी की शादी में भोजन परोसता हूँ, तब भी मुझसे थोड़ा-थोड़ा चटनी जितना ही परोसा जाता है, इसलिए मैं सुन पाऊँ उस तरह से सब लोग बोलते भी हैं कि बड़े कंजूस हैं। मेरी बीवी भी शिकायत करती है। लेकिन क्या करूँ? यह लोभी स्वभाव जाता ही नहीं। आप कुछ रास्ता बताइए। यह तो किसी और का खर्च करना हो, वहाँ पर भी यह लोभ मुझे नीचा दिखाता है।' उसके बाद हमने उसे बताया कि, 'आप सत्संग में रोज़ चलकर आते हो, तो अब से पैदल मत आना, लेकिन रिक्शे में आना और साथ में दस रुपये की रेजगारी रास्ते में बिखेरते-बिखेरते आना।' उसने ऐसा ही किया और उसका काम हो गया। ऐसा करने से क्या होता है कि लोभ की खुराक बंद हो जाती है और मन भी बड़ा बनता है।

भूल को पहचानने से भूल मिटे

भूल को पहचानने लगा, तो भूल मिटती है। कुछ लोग कपड़ा खींच- खींचकर नापते हैं और ऊपर से कहते हैं कि आज तो पाव गज़ कपड़ा कम दिया। यह तो इतना बड़ा रौद्रध्यान और फिर उसका पक्ष! भूल का पक्ष नहीं लेते हैं। घी वाला घी में, किसी को पता नहीं चले ऐसे मिलावट करके पाँच सौ रुपये कमाता है। वह तो मूल के साथ वृक्ष बो देता है। खुद ही खुद के अनंत जन्म बिगाड़ देता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, अभी तक ज़्यादा दोष नहीं दिखते हैं। थोड़े ही दिखते हैं।

दादाश्री : यहाँ सत्संग में बैठने से आवरण टूटते जाते हैं, वैसे-वैसे दोष दिखते जाते हैं।

दोष दिखने की जागृति

प्रश्नकर्ता : दोष अधिक दिखें, उसके लिए जागृति किस तरह आती है?

दादाश्री : भीतर जागृति तो बहुत है, लेकिन दोषों को ढूँढने की भावना नहीं हुई है। पुलिस वाले को जब चोर खोजने की इच्छा हो तब चोर मिल जाता है। लेकिन यदि पुलिस वाला कहे कि, 'चोर पकड़ने नहीं जाना है। उसे तो, जब वह आएगा तब पकड़ेंगे।' तब फिर चोर मज़े ही करेगा न? ये भूलें तो छुपकर बैठी हैं। उन्हें ढूँढें तो तुरंत ही पकड़ में आती जाती हैं।

सारी कमाई का फल क्या है? आपके दोष एक के बाद एक आपको दिखें, तभी कमाई की कहलाएगी। यह सारा ही सत्संग खुद को खुद के सभी दोष दिखें, उसके लिए है। और खुद के दोष दिखें, तभी वे दोष जाएँगे। दोष कब दिखेंगे? जब खुद 'स्वयं' हो जाएगा, 'स्वस्वरूप' हो जाएगा, तब। जिसे खुद के दोष ज़्यादा दिखें, वह ऊँचा। जब संपूर्ण निष्पक्षपातीपन आए, इस देह के लिए, वाणी के लिए, वर्तन के लिए संपूर्ण निष्पक्षपातीपन उत्पन्न होता है तभी खुद, खुद के सभी दोष देख सकता है।

क्रमिकमार्ग में तो कभी भी खुद के दोष खुद को दिखते ही नहीं। 'दोष तो अनेक हैं, लेकिन हमें दिखते नहीं हैं', ऐसा यदि कहे तो मैं मानूँ कि तू मोक्ष का अधिकारी है, लेकिन जो ऐसा कहे कि, 'मुझ में दो-चार ही दिखते हैं', वह अनंत दोषों से भरा हुआ है और कहता है कि दो-चार ही हैं। तो तुझे दो-चार दोष ही दिखते हैं, यानी तुझ में इतने ही दोष हैं, क्या तू ऐसा मानता है?

महावीर भगवान के मार्ग को प्राप्त कर लिया, ऐसा कब कहलाएगा ? जब रोज़ खुद के सौ-सौ दोष दिखें, रोज़ सौ-सौ प्रतिक्रमण होने लगें, उसके बाद महावीर भगवान के मार्ग में गया कहा जाएगा। 'स्वरूप का ज्ञान' तो अभी उसके बाद कितनी ही दूर है। लेकिन यह तो चार पुस्तकें पढ़कर 'स्वरूप' पाने का कैफ लेकर घूमता है। इसे तो 'स्वरूप' की एक बूँद भी प्राप्त की है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जहाँ 'ज्ञान' अटका है, वहाँ कैफ ही बढ़ता है। कैफ के कारण ज्ञानावरण और दर्शनावरण का हटना रुक गया है। मोक्ष में जाने के लिए मात्र तेरी *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन) ही बाधक है, दूसरी एक भी चीज़ बाधक नहीं है। सब से बड़े भयस्थान ये स्वच्छंद और कैफ हैं!

साधु महाराजों की एक ही भूल, कि वे जो उदयकर्म का गर्व लेते हैं, यदि वह भूल हो रही हो और एक उतनी ही भूल यदि मिटा दें तो काम ही हो जाए। महाराज को उदयकर्म का गर्व है या नहीं, इतना ही देखना होता है, बाहर का और कुछ भी नहीं देखना होता। कषाय रहेंगे तो चलेगा, लेकिन उदयकर्म का गर्व नहीं होना चाहिए। बस, इतना ही देखना होता है।

जो खुद की एक भी भूल मिटाए, उसे भगवान कहते हैं। खुद की भूल बताने वाले बहुत होते हैं, लेकिन कोई मिटा नहीं सकता। भूल दिखाना भी आना चाहिए। यदि भूल दिखाना नहीं आए तो अपनी भूल है, ऐसा क़बूल कर लेना चाहिए। यह किसी की भूल दिखाना, वह तो भारी काम है और जो उस भूल को मिटा दें, वे तो भगवान ही कहलाते हैं। वह तो 'ज्ञानी पुरुष' का ही काम। हमें इस जगत् में कोई भी दोषित दिखता ही नहीं। जेबकतरा हो या चरित्रहीन हो, उन्हें भी हम निर्दोष ही देखते हैं! हम 'सत् वस्तु' को ही देखते हैं। यह तात्विक दृष्टि है। हम पैकिंग को नहीं देखते। वेराइटीज़ ऑफ पैकिंग्स हैं। उनमें हम तत्वदृष्टि से देखते हैं। 'हमने' संपूर्ण निर्दोष दृष्टि की है और सारे जगत् को निर्दोष देखा। इसीलिए 'ज्ञानी पुरुष' आपकी 'भूल' को मिटा सकते हैं। औरों के बस की बात नहीं है। भगवान ने संसारी

दोष को दोष नहीं माना है। 'तेरे स्वरूप का अज्ञान'-वही सब से बड़ा दोष है। यह तो 'मैं चंदूलाल हूँ', तब तक अन्य दोष भी खड़े हैं और एक बार 'खुद के स्वरूप' का भान हो जाए, तब फिर अन्य दोष जाने लगते हैं!

निष्पक्षपाती दृष्टि

'स्वरूप के ज्ञान' के बिना तो भूल दिखती ही नहीं। क्योंकि 'मैं ही चंदूभाई हूँ और मुझ में तो कोई दोष नहीं है, मैं तो सयाना-समझदार हूँ', ऐसा रहता है। और 'स्वरूप ज्ञान' की प्राप्ति के बाद आप निष्पक्षपाती बन गए, मन-वचन-काया पर आपको पक्षपात नहीं रहा। इसलिए खुद की भूलें, आपको खुद को दिखती हैं। जिसे खुद की भूलें पता चलेंगी, जिसे प्रतिक्षण अपनी भूलें दिखेंगी, जहाँ-जहाँ पर होती हैं, वहाँ दिखेंगी, नहीं हैं वहाँ पर नहीं दिखें, वह खुद 'परमात्मा स्वरूप' हो गया! 'वीर भगवान' हो गया! 'हमारा' ज्ञान प्राप्त करने के बाद खुद निष्पक्षपाती हो गया, क्योंकि 'मैं चंदूभाई नहीं, मैं शुद्धात्मा हूँ' यह समझ में आ जाए, उसके बाद निष्पक्षपाती हुआ जाता है। किसी का ज़रा सा भी दोष दिखे नहीं और खुद के सभी दोष दिखें, तभी खुद का कार्य पूरा हुआ कहलाता है। पहले तो 'मैं ही हूँ' ऐसा रहता था, इसलिए निष्पक्षपाती नहीं हुए थे। अब निष्पक्षपाती हो गए इसलिए खुद के सभी दोष दिखने शुरू हुए, और उपयोग अंदर की तरफ ही रहता है, इसलिए दूसरों के दोष नहीं दिखते! जब खुद के दोष दिखने लगें, तब हमारा दिया हुआ 'ज्ञान' परिणामित होना शुरू हो जाता है। खुद के दोष दिखाई देने लगे इसलिए दूसरों के दोष नहीं दिखते हैं। दूसरों के दोष दिखें, वह तो बहुत बड़ा गुनाह कहलाता है। इस निर्दोष जगत् में कोई दोषित है ही नहीं, वहाँ किसे दोष दें? दोष हैं, तब तक दोष, वह अहंकार का भाग है, और जब तक वह भाग धुलेगा नहीं, तब तक सारे दोष निकलेंगे नहीं, और तब तक अहंकार निर्मूल नहीं होगा। अहंकार के निर्मूल होने तक दोष धोने हैं।

दोष प्रतिक्रमण से धुलते हैं। किसी के साथ टकराव में आ जाए,

तब फिर से दोष दिखने लगते हैं और टकराव नहीं हो तो दोष ढँका हुआ रहता है। पाँच सौ-पाँच सौ दोष रोज़ के दिखने लगें, तब समझना कि अब पूर्णाहुति नज़दीक आ रही है। ज्ञान के बाद हमें रोज़ के हज़ारों दोष दिखने लगे थे। जैसे-जैसे दोष दिखते जाते हैं, वैसे-वैसे दोष घटते जाते हैं और जैसे-जैसे दोष घटते हैं, वैसे जागृति बढ़ती जाती है। अब हमारे सिर्फ सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम दोष बचे हैं, जिन्हें हम 'देखते' हैं और 'जानते' हैं। वे दोष किसी को परेशान करें ऐसे नहीं होते, लेकिन काल के कारण वे अटके हुए हैं और उसी वजह से तीन सौ साठ डिग्री का 'केवलज्ञान' रुका हुआ है। तीन सौ छप्पन डिग्री पर आकर रुक गया है! लेकिन हम आपको पूरा तीन सौ साठ डिग्री का 'केवलज्ञान' एक घंटे में ही दे देते हैं, लेकिन आपको वह पचेगा नहीं। अरे, हमें ही नहीं पचा न! काल के कारण चार डिग्री कम रह गया! भीतर पूरा-पूरा तीन सौ साठ डिग्री रियल है और रिलेटिव में तीन सौ छप्पन डिग्री है। इस काल में रिलेटिव-पूर्णता तक पहुँचा जा सके, वैसा नहीं है। लेकिन हमें उसमें हर्ज नहीं है। क्योंकि भीतर अपार सुख बरतता रहता है!

इस संसार में कोई भी आपका *ऊपरी* है ही नहीं, इसकी मैं आपको गारन्टी देता हूँ। कोई बाप भी आपका *ऊपरी* नहीं है। 'आपकी भूलें ही आपकी *ऊपरी* हैं।' यदि 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो आपकी भूलें मिटा दें। तू तेरी ही भूलों से बंधा हुआ है। यह तो मानता है कि 'इस साधन से मैं छूटने का प्रयत्न कर रहा हूँ', लेकिन उसी साधन से तू बंधता है।

एक-एक जन्म में यदि एक-एक भूल मिटाई होती तो भी मोक्ष स्वरूप हो जाते। लेकिन ये तो एक भूल मिटाते हुए पाँच नई भूलें बढ़ाकर आते हैं। यह बाहर सारा सुंदर और भीतर बेहद क्लेश, इसे भूल मिटाई कैसे कहेंगे? आपका *ऊपरी* तो कोई है ही नहीं! लेकिन भूल दिखाने वाला चाहिए। भूलों को मिटाओ, लेकिन खुद की भूलों का खुद को पता कैसे चलेगा? और वे भी क्या एक-दो ही हैं? अनंत

भूलें हैं! काया की अनंत भूलें हैं, वाणी की अनंत भूलें हैं। वाणी की भूलें तो बहुत बुरी दिखती हैं। किसी को भोजन के लिए बुलाने गए हों, तब ऐसा कठोर बोलता है कि बत्तीस व्यंजन के भोजन का आमंत्रण हो, तब भी पसंद नहीं आए। इसके बजाय नहीं बुलाते तो अच्छा होता, ऐसा भीतर होता है। अरे! चाय पिलाए, तब भी कर्कश वाणी निकलती है और मन के दूषण तो बेहिसाब होते हैं!

भूलें तो कौन मिटा सकता है? 'ज्ञानी पुरुष', कि जो खुद की सारी भूलें मिटाकर बैठे हैं। जो शरीर होने पर भी अशरीरी भाव से, वीतराग भाव में रहते हैं। अशरीरी भाव यानी ज्ञानबीज। सारी भूलें मिटाने के बाद, खुद का अज्ञान बीज नाश होता है और ज्ञानबीज पूर्ण रूप से उगता है, वह अशरीरी भाव। जिसे किंचित्‌मात्र भी, ज़रा सी भी देह पर ममता है, तो वह अशरीरी भाव नहीं कहलाता, और देह पर से ममता जाए किस तरह? जब तक अज्ञान है, तब तक ममता जाती नहीं।

दोषों का आधार

प्रश्नकर्ता : दादा, सामने वाले के दोष क्यों दिखते हैं?

दादाश्री : खुद की भूल के कारण ही सामने वाला दोषित दिखता है। इन 'दादा' को सब निर्दोष ही दिखते हैं। क्योंकि खुद की सभी भूलें उन्होंने मिटा दी हैं। खुद का ही अहंकार सामने वाले की भूलें दिखाता है। जिसे भूलें देखनी ही हैं, उसे खुद की सभी भूलें दिखाई देंगी, जिसे निर्दोष देखना है, उसे सभी निर्दोष ही दिखाई देंगे!

जिससे भूल होती है, वह खुद की भूल का *निकाल* करे। सामने वाले की भूल से हमें क्या लेना-देना?

प्रश्नकर्ता : दादा, सामने वाले के दोष नहीं देखने हों, फिर भी दिख जाएँ और भूत घेर लें तो क्या करें?

दादाश्री : जो उलझाती है, वह बुद्धि है। वह विपरीत भाव को

प्राप्त बुद्धि है और बहुत काल से है और फिर, उसे आधार मिला है, इसलिए वह नहीं जाती। यदि उसे कहा हो कि 'तू मेरे लिए हितकारी नहीं है', तो उससे छूट जाएँगे। यह तो, जैसे कोई नौकर हो, उसे कहें कि तेरा काम नहीं है और फिर उससे काम करवाएँ तो चलेगा? इसी प्रकार बुद्धि से एक बार भी काम नहीं करवाना चाहिए। इस बुद्धि को तो संपूर्ण असहयोग देना है। विपरीत बुद्धि संसार के हिताहित का भान बताने वाली है, जबकि सम्यक् बुद्धि संसार को हटाकर मोक्ष की ओर ले जाती है।

प्रश्नकर्ता : दोष छूटते नहीं हैं, तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : दोष नहीं छूटते, लेकिन अगर उन्हें ऐसा कहें कि 'हमारी चीज़ नहीं है', तो छूट जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा कहें, फिर भी नहीं छूटें तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : यह तो, जो दोष बर्फ जैसे हो गए हैं, वे एकदम से कैसे छूट सकेंगे? फिर भी, वे ज्ञेय हैं और हम ज्ञाता, ऐसा संबंध रखें तो उससे वे दोष छूट जाएँगे। उन्हें हमारा आधार नहीं होना चाहिए। आधार नहीं मिले तो आखिर में उन्हें गिरे बिना चारा ही नहीं। यह तो, आधार से चीज़ खड़ी रहती है। निराधार हो जाए, तो गिर जाएगी। जगत् इस (अज्ञान) आधार से खड़ा है। निराधार हो जाए तब तो खड़ा ही नहीं रहे, लेकिन निराधार करना आता नहीं है न! वे तो ज्ञानियों के ही खेल हैं! यह जगत् तो अनंत 'गुह्यता वाला' है, उसमें 'गुह्य से गुह्य' भाग को कोई कैसे समझे!

शिकायत करने वाला ही गुनहगार

पहले शिकायत करने कौन आता है? कलियुग में तो जो गुनहगार हो वही पहले शिकायत करने आता है और सत्युग में जो सच्चा हो वह पहले शिकायत करने आता है। इस कलियुग में न्याय करने वाले भी ऐसे ही हैं कि जिसका पहले सुना उसके पक्ष में बैठ जाते हैं।

कोई छोटी बच्ची हो, शाम को जब पापा घर पर आएँ, तब तुरंत ही वह बच्ची पापा के पास जाती है और कहती है, 'पापा, भैया ने मुझे ऐसा-ऐसा कहा।' उसके बाद फिर पापा तुरंत ही बेटी के पक्ष में बैठ जाते हैं और बेटे से कहते हैं कि 'एय, इधर आ। ऐसा क्यों किया?' बेटे को डाँटने से पहले बेटे को पूछ कि बेटी की बात का मतलब क्या था? और क्यों बेटी ने शिकायत की? बेटे ने क्यों शिकायत नहीं की? बेटे ने क्या किया था? यह तो खुद सेन्सिटिव है, इसलिए बेटी की बात सही मान लेता है। फिर कहता है कि, 'मैं ज़रा कच्चे कान का हूँ इसलिए भूल हो गई!' यह तो खुद मूर्ख है और कान की भूल बताता है। खुद निष्कर्ष नहीं निकालता कि बेटी गुनहगार है, इसलिए पहले शिकायत लेकर आई! घर में तो सभी तरह की बातें होती हैं, हमारे पास सब की शिकायतें आएँ तो हम क्या करते थे कि सब की बातें सुनते थे और फिर न्याय करते थे। सच्चा न्याय करने से फिर गुनहगार नहीं बढ़ते। गुनहगार समझता है कि ये तो न्याय करते हैं, इसलिए हमारी भूल पकड़ी जाएगी।

इस जगत् में अपने को खुलासा ही नहीं करना होता है। गुनहगार को ही खुलासे करने होते हैं, खुलासे देने पड़ते हैं। इस जगत् में सब को आर्बिट्रेटर (मध्यस्थ) होना है! मैं किसी आर्बिट्रेटर को घुसने ही नहीं दूँ। इस जगत् में जो हो रहा है, उससे अलग नए प्रकार का कुछ कभी भी होने वाला है ही नहीं। कीचड़ तो कहता है, तुझे पसंद हो तो हाथ डालना। तुझे हाथ धोने जाना पड़ेगा। हमें तो अपनी ही नाड़ी देखनी है। कोई आर्बिट्रेटर बने, ऐसा हमें स्कोप (अवसर) ही नहीं देना चाहिए।

यह तो सारा दिन 'मेरा और तेरा, मेरा और तेरा' करता रहता है! और उसमे से खुद थोड़ा भी साथ में नहीं ले जा सकता। दूसरे जन्म में कौन-कौन सी चीज़ें साथ में नहीं ले जाओगे आप? यहाँ किसी के साथ लड़ाई-झगड़े किए वे उलझनें साथ ले जानी हैं, किसी को दान दिया वह साथ में ले जाना है और अहंकार तो साथ में ही

ले जाना है। इन सभी उलझनों का मालिक अहंकार है, वह तो साथ में ही रहेगा। क्रोध-मान-माया-लोभ और अहंकार तो साथ में ही आएँगे।

अनुमोदन का फल

प्रश्नकर्ता : दूसरों के दोष का खुद को दंड मिलता है?

दादाश्री : नहीं, उसमें किसी का भी दोष नहीं है। खुद के दोष से ही सामने वाले निमित्त बनते हैं। यह तो भुगते उसकी भूल। करना, करवाना और अनुमोदन करना। उस अनुमोदन का भी फल आता है। किए बिना फल नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : अनुमोदन किसे कहते हैं?

दादाश्री : कोई कुछ करते हुए हिचकिचा रहा हो तो आप कहो कि, 'तू तो कर, मैं हूँ ना!' वह अनुमोदन कहलाता है। और अनुमोदन करने वाले की ज़िम्मेदारी अधिक कहलाती है! करने का फल किसे अधिक मिलता है? तब कहें कि, जिसने ज़्यादा बुद्धि इस्तेमाल की, उसके आधार पर वह बँट जाता है। ये लोग तो कैसे हैं कि दूसरों की सारी भूलें पता चल जाती हैं और खुद की एक भी भूल नहीं दिखती। जब मन आड़ा चले तब कहेगा कि अब तो इस जगत् से ऊब गया हूँ। भीतर बुद्धि दखल दे तब कहेगा कि मेरी बुद्धि आड़ी हो रही है। भीतर अंतहीन 'रामायण' और 'महाभारत' सबकुछ है, उसी का वह मालिक बन बैठा है।

ब्रह्मांड का मालिक कौन?

इस ब्रह्मांड का, हर एक जीव ब्रह्मांड का मालिक है। सिर्फ खुद का भान नहीं है, इसीलिए जीव की तरह रहता है। खुद की देह की मालिकी का जिसे दावा नहीं है, वह पूरे ब्रह्मांड का मालिक बन गया। यह जगत् अपनी मालिकी का है, ऐसा समझ में आ जाए, वही मोक्ष! अभी तक क्यों ऐसा समझ में नहीं आया है? क्योंकि अपनी ही भूलों ने बाँधा हुआ है, इसलिए। पूरा जगत् अपनी ही मालिकी का

है। कोई हमें गाली दे तो वह इसलिए कि खाते में कुछ बाकी होगा, तो उसे जमा कर लेना। अब फिर से कौन व्यापार शुरू करे? जमा कर लेंगे तो व्यापार बंद होता जाएगा और उसके बाद फिर अच्छा माल आएगा।

यह आँख हाथ से दब जाए तो एक चीज़ हो, तो दो दिखाई देने लगती हैं। आँख, आत्मा का रियल स्वरूप नहीं है। वह तो रिलेटिव स्वरूप है। फिर भी, एक भूल होने से एक के बदले दो दिखने लगती हैं न? ये काँच के टुकड़े जमीन पर पड़े हों तो कितनी सारी आँखें दिखती हैं? इस आँख की ज़रा सी भूल से कितनी सारी आँखें दिखती हैं? वैसे ही यह आत्मा खुद नहीं दबता, लेकिन संयोगों के प्रेशर (दबाव) से एक के अनंत रूप दिखते हैं। यह पूरा जगत् भगवत् स्वरूप है। इस पेड़ को काटने का मात्र भाव ही करें तो भी कर्म चिपकें ऐसा है। सामने वाले के बारे में ज़रा सा भी खराब सोचा तो पाप लगता है और अच्छा भाव करे, तो पुण्य मिलता है। मन में भाव बिगड़ें, वह भी खुद की भूल। यहाँ सत्संग में आएँ और यहाँ लोग खड़े हों, तो अगर लगे कि ये सब क्यों खड़े हैं? उससे मन में भाव बिगड़ा। उस भूल के लिए, उसका तुरंत ही प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

पहले 'क्रमिक' मार्ग में आप तप-त्याग करते थे, फिर भी खुद की भूलें नहीं दिखती थीं। अब यह 'अक्रम' मार्ग प्राप्त किया है तो काम निकाल लो। यह तो साहब के पास जाता है और कहता है, 'साहब मुझे छुड़वाइए, साहब मुझे छुड़वाइए।' लेकिन साहब खुद ही बंधा हुआ है वह कैसे तुझे छुड़वाएगा? आजकल तो ये जो ट्रिकें करते हैं, कपट करते हैं, तो वह जो कपट से बंधा हुआ है, वह कब छूटेगा? कोई बाप भी बाँधने वाला नहीं है। यदि होता तब तो भक्तिपूर्वक गिड़गिड़ाता, माफ़ी माँगता, तो भी साहब छोड़ देते, लेकिन नहीं, ऐसा नहीं है, वह तो 'खुद' की भूल से ही 'खुद' बंधा हुआ है। 'ज्ञानी पुरुष' अँगुलीनिर्देश करते हैं कि ऐसा करो तो भूल मिटेगी, या फिर 'ज्ञानी पुरुष' की आज्ञा का पालन करे तो काम हो जाए!

भगवान ने क्या कहा था कि, 'खुद किससे बंधा हुआ है? मात्र चले आ रहे बैर से बंधा हुआ है।' उसी से जगत् चला आ रहा है। कन्टिन्युअस (लगातार) बैर से ही गुत्थियाँ डाली हैं। यह तो वापस बैर का पक्ष लेता है, वही फिर अगले जन्म में आता है और गुत्थियाँ सुलझाने के बजाय उस समय दूसरी पाँच नई डालता जाता है!

लोग मानते हैं कि भगवान *ऊपरी* हैं, इसलिए उनकी भक्ति करेंगे तो छूट जाएँगे। लेकिन नहीं, कोई बाप भी *ऊपरी* नहीं है। तू ही तेरा *ऊपरी,* तेरा रक्षक भी तू ही है और तेरा भक्षक भी तू ही है। यू आर होल एन्ड सोल रिस्पोन्सिबल फोर योरसेल्फ। खुद ही खुद का *ऊपरी* है। इसमें और कोई बाप भी दखल नहीं करता है। हमारा बॉस है वह भी अपनी भूल के कारण और अन्डरहैन्ड है वह भी अपनी भूल के कारण ही है। इसलिए भूल मिटानी पड़ेगी न?

खुद की ही भूल है, ऐसा यदि समझ में नहीं आए तो अगले जन्म का बीज पड़ता है। यह तो हम टोकते हैं, फिर भी यदि नहीं चेते तो क्या हो? और अपनी भूल नहीं हो तो अंदर ज़रा सा भी बखेड़ा नहीं होता। हम निर्मल दृष्टि से देखें तो जगत् निर्मल दिखता है और हम टेढ़ा देखें तो जगत् टेढ़ा दिखता है। इसलिए पहले खुद की दृष्टि निर्मल करो।

प्राकृत गुणों का मोह क्या?

प्रश्नकर्ता : दादा, हमें दोष नहीं देखने हैं, बल्कि गुण देखने हैं?

दादाश्री : नहीं। दोष भी नहीं देखने हैं और गुण भी नहीं देखने हैं। ये दिखते हैं, वे गुण तो सारे प्राकृत गुण हैं। उनमें से एक भी टिकाऊ नहीं है। दानवीर हो, वह पाँच साल से लेकर पचास साल तक, उसी गुण में रहा हो, लेकिन सन्निपात हो जाए, तब वह गुण बदल जाता है। ये गुण तो वात, पित्त और कफ से रहे हुए हैं, अगर इन तीनों में बिगाड़ हो जाए तो सन्निपात हो जाता है। ऐसे गुण तो अनंत जन्मों से इकट्ठे करते रहे हैं। फिर भी, ऐसे प्राकृत दोष इकट्ठे

नहीं करने चाहिए। प्राकृत सद्गुण प्राप्त करेगा, तो कभी न कभी आत्मा प्राप्त कर सकेगा। दया, शांति, ये सब गुण हों, वहाँ भी यदि वात, पित्त और कफ बिगड़ जाए तो वह सब को मारने लगेगा। ये तो प्रकृति के लक्षण कहलाते हैं। ऐसे गुणों से पुण्यानुबंधी पुण्य बंधते हैं। उससे किसी जन्म में 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाते हैं, तो काम हो जाता है। लेकिन ऐसे गुणों में बैठे नहीं रहना है क्योंकि कब उनमें परिवर्तन हो जाए, वह कह नहीं सकते। वे खुद के शुद्धात्मा के गुण नहीं हैं। वे तो प्राकृत गुण हैं। उन्हें तो हम लट्टू कहते हैं। पूरा जगत् प्राकृत गुणों में ही है। पूरा जगत् लट्टू छाप है। यह तो, प्रकृति सामयिक-प्रतिक्रमण करवाती है और खुद सिर पर ले लेता है और कहता है कि, 'मैंने किया!' वह यदि भगवान से पूछे तो भगवान कहेंगे कि, 'इनमें से तू तो कुछ भी नहीं कर रहा है।' किसी दिन पैर दु:खने लगे तो कहेगा, 'मैं क्या करूँ?' प्रकृति जबरन करवाती है और कहता है कि 'मैंने किया!' और इसलिए ही तो वह अगले जन्म के बीज डालता है। यह तो उदयकर्म से होता है और खुद उसका गर्व लेता है। जो उदयकर्म का गर्व ले, उसे साधु कैसे कहेंगे?

मुक्त पुरुष ही छुड़वाएँ

ये सब भूलें तो हैं ही न? उसकी खोज भी नहीं की है न?

प्रश्नकर्ता : इनमें से निकलने की कोशिश करते हैं, लेकिन और गहरे उतरते जाते हैं।

दादाश्री : नहीं, ऐसी कोशिश ही मत करना। यदि यहाँ पर खोदना है और भाई कहीं और खोद कर आए तो फिर उससे क्या होगा? बल्कि दंड मिलेगा! ऐसे ही ये लोग उल्टी कोशिश करते हैं। इसके बजाय कोई 'मुक्त' हो चुका हो, उसके पास जा तो तेरा भी छुटकारा कर देंगे। ये तो खुद ही डूबे हुए हैं, वे दूसरों को कैसे बचाएँगे? जो डॉक्टर पार नहीं उतरे हों, खुद ही गोते खा रहे हों, वे दूसरों को किस तरह बचाएँगे? कभी भी अच्छा संयोग प्राप्त नहीं हुआ

है। अब यह 'ज्ञानी पुरुष' का अच्छा संयोग प्राप्त हुआ है तो आपका काम निकल जाएगा। कभी न कभी भूल तो मिटानी ही पड़ेगी न? अति-अति मुश्किल क्या है? 'मोक्षदाता पुरुष!' और मिलने के बाद 'मोक्षदाता' आपको बंधन में क्यों रखेंगे?

हमने आपको 'स्वरूप ज्ञान' दिया उसके बाद आपको जो दशा उत्पन्न हुई है, वह कृष्ण भगवान की बताई हुई 'स्थितप्रज्ञ' दशा से कहीं ऊँची दशा है। यह तो प्रज्ञा कहलाती है! उससे राग-द्वेष का निंदन कर देना।

यह जगत् 'व्यवस्थित' है। इसलिए अपनी जो गुनहगारी थी, उसे 'व्यवस्थित शक्ति' वापस अपने पास भेज देती है। उसे आने देना है और हमें अपने मोक्ष में रहकर उसका निकाल कर देना है। पिछले जन्म में जो जो भूलें की थीं, वे इस जन्म में सामने आती हैं। इसलिए इस जन्म में हम सीधे चलते हैं, फिर भी वे भूलें बाधाएँ डालती हैं, उसे कहते हैं गुनहगारी!

गुनहगारी - पाप पुण्य की

यह गुनहगारी दो प्रकार की है। हमें फूल चढ़ाएँ, वह भी गुनहगारी और पत्थर पड़ें, वह भी गुनहगारी। फूल चढ़ें, वह पुण्य की गुनहगारी और पत्थर पड़ें, वह पाप की गुनहगारी है। यह कैसा है? पहले जो भूलें की थीं, उनका कोर्ट में केस चलता है और फिर न्याय होता है। जो-जो भूलें की थीं, वे-वे गुनाह भोगने पड़ते हैं। वे भूलें भुगतनी ही पड़ती हैं। उन भूलों का अपने को समताभाव से निकाल करना है, उसमें कुछ भी बोलना नहीं है। बोलेंगे नहीं तो क्या होगा? समय होने पर भूल आती है और भुगतने के बाद वह निकल जाती है। उच्च जातियों में ऐसा बोलने से ही तो सारी गुत्थियाँ पड़ी हुई हैं न! इसलिए उन गुत्थियों को सुलझाने के लिए अगर मौन रखेंगे तो समाधान आए, ऐसा है।

'ज्ञानी पुरुष' की वाणी तो प्रत्यक्ष सरस्वती होती है और उसे

सुनते-सुनते सबकुछ आ जाता है। जो-जो निमित्त आते हैं, वे भूलों का भुगतान करके जाते हैं। यह जो सुख मिलता है वह निमित्त से ही सुख मिलता है और दु:ख भी निमित्त से ही मिलता है।

'ज्ञानी पुरुष' ने गुत्थियाँ नहीं डाली हुई थीं, इसलिए उन्हें अभी आगे से आगे सारा वैभव मिलता रहता है। और आप सब को अभी इस जन्म में 'ज्ञानी पुरुष' मिल गए हैं, इसलिए पिछली उलझनों का समभाव से *निकाल* करके फिर से नई गांठें नहीं डालोगे तो फिर वे गांठें नहीं आएँगी और हल आ जाएगा।

ग्रंथि-आदत, स्वभावमय

खुद के सभी दोष दिखने चाहिए, ताकि दोष कहें, 'यह घर छोड़ो।' यह दोष दिखा, फिर तो कभी न कभी उसे जाना ही पड़ेगा। कुछ दोष तो प्याज़ की परतों जैसे होते हैं। प्याज की आठ-दस परतें होती हैं, उसी तरह दोषों की भी उतनी परतें होती हैं। कुछ दोषों की दो या पाँच तो कुछ दोषों की सौ-सौ परतें होती हैं। इसलिए हमने कहा है कि, ''मन-वचन-काया की आदतें और उनके स्वभाव को मैं जानता हूँ और मेरे स्व-स्वभाव को भी 'मैं' जानता हूँ।''

अब स्वभाव यानी क्या? कि किसी का दस परतों वाला प्याज़ होता है, किसी का सौ परतों वाला प्याज़ होता है और किसी का लाख परतों वाला होता है। मन-वचन-काया की आदतों में परिवर्तन नहीं हो सकता, आदतों का हर्ज नहीं है। आदतों में शायद परिवर्तन नहीं भी हो क्योंकि प्रकृति में परिवर्तन नहीं होता, लेकिन स्वभाव खत्म हो जाता है। जिस ग्रंथि से बीज पड़ता है, वही खत्म हो जाती है। जितनी बार प्रतिक्रमण करते हैं, उतनी परतें उखड़ जाती हैं। प्रतिक्रमण किया मतलब परतें उखड़ेंगी ही। 'दादा' की हाज़िरी में आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करने चाहिए ताकि दोष धुल जाएँ और यदि फिर से भूलें हों तो फिर से प्रतिक्रमण करना। फिर भी जगत् के लोग कहेंगे कि, 'बार-बार वही के वही कर्म करता है और बार-बार प्रतिक्रमण करता है।' हाँ, इसी का नाम संसार है।

लाल झंडी - ठहरो

कोई हमारे सामने लाल झंडी दिखाए तो वह हमारी भूल है। जगत् टेढ़ा नहीं है। अपने दोष के कारण वह लाल झंडी दिखाता है। इसलिए हम पूछते हैं कि, 'भाई, हमारी क्या भूल हुई है?' तब यदि वह कहे कि, 'यह आप दस दिन बाद जाने वाले थे और आज सातवें दिन क्यों जा रहे हैं?' तब हम खुलासा करते हैं, फिर जब वे हरी झंडी दिखाएँ उसके बाद ही हम आगे जाते हैं। भूल को भूल कहकर मिटानी तो पड़ेगी ही न? वह भूल यदि सामने वाला नहीं मिटाए तो हमें ही मिटानी पड़ेगी न? हमें कोई लाल झंडी नहीं दिखाता और कभी दिखाए तो हम पूछते हैं कि, 'क्या हुआ है? क्यों लाल झंडी दिखा रहा है?' लोग तो, यदि कोई लाल झंडी दिखाए तब शोर मचा देते हैं, 'अरे! तू क्या जंगली है? उल्टा क्यों कर रहा है?' यह लाल झंडी दिखाई मतलब, देयर इज़ समथिंग। हमें तो छोटा बच्चा भी डाँट सकता है। जगत् के लोग लाल झंडी दिखाने वाले से कहते हैं, 'तुझ में यह नहीं है और तू ऐसा है, तू बेअक़्ल है।' और ये तो बड़े अक़्ल के बोरे! बेचने जाएँ तो चार आने भी नहीं मिलें। हम में पहले से ही अक़्ल कम थी। हम तो अबुध कहलाते हैं। यह तो आपकी भूलें हैं, इसलिए लाल झंडी दिखाते हैं। उन्हें खुलासा दें तो फिर वे जाने देते हैं।

यथार्थ लौकिक धर्म

जगत् के लोगों को हम बहुत सरल लौकिक मार्ग देंगे। यह क्रियाकांड के तूफान नहीं देंगे। कोई लफंगा आए और उसे कहें कि, 'सत्य बोलना, चोरी मत करना, दया रखना, गलत मत करना' तो यह सब सुनकर वह एक ओर रख देगा। लेकिन हम उसे एक ही वाक्य कहें कि, 'भाई, तू गुत्थियाँ मत डालना।' फिर वह पूछे कि, 'गुत्थियाँ यानी क्या?' तब हम उसे फिर से समझाएँ कि, 'तेरे सामने के खेत में तुरई दिखे और तेरा मन हो तब तू निकाल ले, तो ऐसे बिना पूछे किसी का ले लेना, उसे गुत्थी कहते हैं। आया समझ में? तब वह

तुरंत कहेगा, 'हाँ, समझ गया गुत्थी को, अब ऐसी गुत्थियाँ नहीं डालूँगा, ऐसी तो मैंने कई गुत्थियाँ डाली हैं।'

फिर वह उसकी बीवी को लेकर आता है तो उसे इन गुत्थियों के बारे में समझा देता हूँ। उसकी बीवी कहे कि, 'दादा, ये मेरे साथ बहुत गुत्थियाँ डालते हैं।' तो फिर मैं उसे भी गुत्थियों के बारे में समझा देता हूँ। इसके बाद जब कभी गुत्थी पड़ने वाली हो तब 'दादा' अवश्य याद आ ही जाएँगे और गुत्थियाँ पड़ेंगी नहीं। 'हम' तो क्या कहते हैं कि ऐसे गुत्थियाँ मत डालना और डल जाए तो प्रतिक्रमण करना। यह तो गुत्थी शब्द से तुरंत ही समझ में आ जाता है। ये लोग 'सत्य, दया, चोरी मत करो' वह सब सुन-सुनकर तो थक गए हैं।

यह लौकिक धर्म तो हम घड़ी भर में ही समझा देते हैं! लेकिन अलौकिक धर्म के लिए ज़रा टाइम लगता है।

प्रश्नकर्ता : कुछ गुत्थियाँ पड़ गई हैं जो सुलझती नहीं हैं, तो क्या करूँ?

दादाश्री : वक्त उलझाता है और वक्त सुलझाता है, लेकिन भूलें किसकी? हमने अपनी गुत्थियाँ डाली हुई हैं, जब समय आता है, तब अपने आप ही गुत्थियाँ सुलझती जाती हैं। जिनमें एक भी गुत्थी नहीं है, आप उनके साथ बैठे हो, इसलिए आपकी भी सभी गुत्थियाँ सुलझ जाएँगी, ऐसा है। यदि गुत्थियों वाले इंसान के पास बैठोगे तो आपकी गुत्थियाँ और उलझ जाएँगी, ऐसा नैचुरल नियम है। जो गुत्थियाँ आती हैं, वे जिस टाइम पर डाली हैं, उसी टाइम पर गुत्थियाँ सुलझेंगी। गुत्थियाँ सुलझाने की सत्ता हमारे हाथ में नहीं है। इसलिए भगवान ने क्या कहा है कि, 'ऐसे समय में तू धर्मध्यान, देवदर्शन, कुछ कर। ये बाल बढ़ जाते हैं, उन्हें कटवाने के लिए दौड़-धूप करनी पड़ती है क्या? नहीं। क्योंकि संयोग आ मिलते हैं और बाल कट जाते हैं। वैसे ही जब समय आएगा, तब ये गुत्थियाँ सुलझती जाएँगी।'

द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ। 'पज़ल है', गुत्थी जैसा हो गया है। यदि उसे सुलझा दो तो काम हो जाए!

'लख रे चौरासी नी भूल-भुलामणीना फेरा मारा कोण टाळे?'

इस लख चौरासी में से कैसे निकला जाए? कौन निकाले इसमें से? कृपालुदेव कहते हैं कि जो जीव चौरासी लाख के फेरों में से निकले उसे तो मैं सब से महान मानूँगा। यह तो आपको बाहर निकलने का रास्ता मिला है। 'ज्ञानी पुरुष' मिले हैं, इसलिए उनके माध्यम से बाहर निकला जा सकेगा। 'ज्ञानी पुरुष' आपकी भूल के लिए क्या कर सकते हैं? वे तो मात्र आपको आपकी भूल बताते हैं। प्रकाश दिखाते हैं। रास्ता बताते हैं कि भूल का पक्ष मत लेना। लेकिन फिर यदि भूलों का पक्ष लें कि, 'हमें तो इस दुनिया में रहना है, तो ऐसा कैसे कर सकते हैं?' अरे! यह तो भूल को पोषण दिया। उसका पक्ष मत लेना। एक तो भूल करता है और ऊपर से कल्पांत करे तो *कल्प* के अंत तक रहना पड़ेगा।

खुद की संपूर्ण स्वतंत्रता-आज़ादी यदि चाहिए तो जब खुद की सारी ही भूलें मिट जाएँगी, तब मिलेगी। भूल कब पता चलती है कि खुद कौन है इसका भान हो जाए, परमात्मा का साक्षात्कार हो जाए, तब।

कुदरती नियम : 'भुगते उसी की भूल'

भगवान का नियम तो क्या कहता है कि जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जो भुगतता है, वह खुद ही गुनहगार है। उसमें किसी को भी, वकील को भी पूछने की ज़रूरत नहीं है। यदि किसी की जेब कट जाए तो जेबकतरे की परिणति आनंद की होती है, वह तो जलेबी खा रहा होता है, होटल में चाय-पानी और नाश्ता कर रहा होता है और उस समय वह व्यक्ति जिसकी जेब कटी है, वह भुगत रहा होता है। इसलिए भुगतने वाले की भूल। उसने कभी न कभी चोरी की होगी, इसलिए आज पकड़ा गया, इसलिए वह चोर है, और जेबकतरा तो जब पकड़ा जाएगा तब चोर कहलाएगा।

'भुगते उसी की भूल', यह 'गुप्त तत्व' कहलाता है। यहाँ बुद्धि थक जाती है। जहाँ मतिज्ञान काम नहीं करे, वह बात 'ज्ञानी पुरुष' से जानने को मिलती है। वहाँ पर यह यथास्वरूप मिलती है। इस गुप्त तत्व को बहुत गहनता से समझना चाहिए।

कोई बाप भी *ऊपरी* नहीं है, कोई डाँटने वाला नहीं है। लेकिन ये तो तेरी गांठें ही तेरी *ऊपरी* हैं। डॉक्टर ने मरीज़ को इंजेक्शन दिया, फिर डॉक्टर घर जाकर आराम से सो गया। और मरीज़ को तो सारी रात इंजेक्शन दुःखता रहा, तब उसमें भूल किसकी? मरीज़ की। और डॉक्टर तो, जब उसकी भूल भुगतेगा तब उसकी भूल पकड़ में आएगी।

दो प्रकार की भाषाएँ हैं : एक भ्रांति की भाषा और दूसरी वीतराग भाषा। वीतराग की भाषा 'भुगते उसी की भूल।'

एक स्त्री मुंबई के बस-स्टैन्ड पर खड़ी थी। अब बस-स्टैन्ड पर खड़ा रहना क्या कोई गुनाह है? इतने में एक बस आई और स्टैन्ड पर चढ़ गई, उसने स्टैन्ड तोड़ दिया और उस स्त्री को भी कुचल दिया। वहाँ पाँच सौ लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। अब इन लोगों से कहें कि, 'इसका न्याय करो।' तो वे लोग कहेंगे कि, 'बेचारी यह स्त्री बिना गुनाह के मर गई। इसमें स्त्री का क्या दोष? यह ड्राईवर नालायक है। यह स्त्री बेचारी बिना गुनाह के मर गई, इसलिए भगवान जैसी कोई चीज़ इस संसार में लगती ही नहीं।'

लो, इन लोगों ने ऐसा सार निकाला! लेकिन हम क्या कहते हैं, 'भुगते उसी की भूल।' भगवान तो हैं ही। अरे, ये भगवान नहीं होते तो क्या रहता इस जगत् में? ये लोग तो क्या समझते हैं कि भगवान का चलन नहीं रहा। तब लोगों की भगवान पर से भी आस्था उठ जाती है। अरे! ऐसा नहीं है। ये सब तो पिछले जन्म के हिसाब हैं, ये एक जन्म के नहीं हैं। आज उस स्त्री की भूल पकड़ी गई, इसलिए भुगतना पड़ा।

इस कलियुग में एक्सिडेन्ट और इन्सिडेन्ट ऐसे होते हैं कि व्यक्ति उलझ जाता है। एक्सिडेन्ट मतलब क्या कि 'टू मेनी कॉज़ेज़ एट ए टाइम और इन्सिडेन्ट मतलब क्या कि 'सो मेनी कॉज़ेज़ एट ए टाइम।' इसीलिए हम क्या कहते हैं कि 'भुगते उसी की भूल' और वह तो जब पकड़ा जाएगा, तब उसकी भूल समझी जाएगी।

एक वृद्ध मुझसे कहते हैं, 'मुझे बहुत दुःख भुगतना पड़ रहा है।'

मैंने पूछा, 'क्यों चाचा, क्या हुआ है?'

वे भाई कहते हैं, 'मेरा बेटा बहुत बिगड़ गया है।'

मैंने पूछा, 'एक ही बेटा बिगड़ गया या सभी?'

वृद्ध ने कहा, 'एक ही ऐसा पैदा हुआ है। बाकी तीन तो अच्छे हैं।'

मैंने पूछा, 'वह क्या करता है?'

वृद्ध ने कहा, 'शराब पीता है, जुआ खेलता है, रेस में जाता है, होटलों में पड़ा रहता है। उसके कारण मुझे रात भर नींद नहीं आती। उसकी चिंता रात-दिन होती ही रहती है।'

मैंने कहा, 'तब तो भाई, तेरी ही भूल है। वह तेरी ही भूल के कारण ऐसा करता है। ये बाकी के तीन बेटे अच्छे हैं, तू उस चीज़ का आनंद क्यों नहीं लेता?'

इस वृद्ध के बिगड़ैल बेटे से मैंने एक दिन पूछा, 'अरे, तेरे पिता जी को तो बहुत दुःख होता है और तुझे कोई दुःख नहीं होता?'

बेटे ने कहा, 'मुझे किसका दुःख? पिता जी कमाकर बैठे हैं, उसमें मुझे कैसी चिंता, मैं तो मज़े करता हूँ।'

यानी इन बाप-बेटे में से भुगत कौन रहा है? बाप। इसलिए बाप की ही भूल है। 'भुगते उसी की भूल।' यह बेटा नालायक हो गया, शराब पीता हो, कहीं भी भटकता हो, जुआ खेलता हो, चाहे जो करता हो, इसके बावजूद उसके भाई चैन से सो गए न? उसकी मदर भी चैन से सो गई हैं न! और यह अभागा, बूढ़ा अकेला ही जागता है। इसलिए उसकी भूल। उसकी क्या भूल? तब कहे, इस बूढ़े ने उस बेटे को पूर्व जन्म में बहकाया था, इसलिए पिछले जन्म के ऐसे ऋणानुबंध पड़े हैं। इसलिए बूढ़े को ऐसा भुगतना पड़ता है और बेटा अपनी भूल भुगतेगा तब उसकी भूल पकड़ी जाएगी। यह तो दोनों में से कौन भुन रहा है? जो भुन रहा है, उसी की भूल। बस एक इतना ही नियम समझ गए तो पूरा मोक्षमार्ग खुल जाएगा!

'भुगते उसी की भूल', यह वाक्य बिल्कुल एक्ज़ेक्ट निकला है, हमारे पास से! इसे तो जो-जो उपयोग में लेगा उसका कल्याण हो जाएगा।

रास्ते में कुछ पड़ा हुआ हो और सिनेमा में से कितने ही लोग

आ-जा रहे हों, फिर भी सिर्फ चंदूलाल को ही ठोकर लगती है। तब चंदूलाल कहेंगे कि, 'मुझे ठोकर लगी।' अरे! तू ठोकर को लगा! ठोकर तो हिलती भी नहीं और चलती भी नहीं। लेकिन तू भाग्यवान है कि तुझे ठोकर लगी। लेकिन भ्रांति से कहता है कि, 'मुझे यह ठोकर लगी।' अरे! यह तो 'भुगते उसी की भूल।' यह कोई अँधेर राज नहीं है। यह जगत् एक्ज़ेक्ट न्याय स्वरूप है। यह जगत् एक सेकन्ड भी बगैर न्याय के नहीं रहा है।

साँप ने काटा और आदमी मर गया, उसमें उस आदमी की भूल है। साँप तो पकड़ा जाएगा, तब उसकी भूल मानी जाएगी।

हमने किसी व्यक्ति को पैसे दिए हों और फिर छः महीने तक वह व्यक्ति पैसे वापस नहीं दे, तो? अरे, दिए किसने? तेरे अहंकार ने उसे पोषण दिया, इसलिए तूने दयालु बनकर पैसे दे दिए। तो अब जमा कर उस व्यक्ति के खाते में और अहंकार के खाते में उधार।

दो लोग मिले हो और उसमें से एक, दूसरे पर, लक्ष्मीचंद पर आरोप लगाए कि, 'आपने मेरा बुरा किया है', तो लक्ष्मीचंद को रात को नींद नहीं आएगी जबकि आरोप लगाने वाला तो चैन से सो जाता है। इसलिए भूल लक्ष्मीचंद की है। लेकिन दादा का वाक्य 'भुगते उसी की भूल' याद आ जाए तो लक्ष्मीचंद चैन से सो जाएगा, नहीं तो उसे कितनी ही गालियाँ देगा!

यह तो जिसे पत्थर लगा उसी की भूल। सिर्फ भूल ही नहीं लेकिन भुगतने का इनाम भी है। पाप का इनाम मिले तो वह उसके बुरे कर्तव्य का दंड है और फूल चढ़ें तो उसके अच्छे कर्तव्य का इनाम है, फिर भी दोनों *भोगवटे* (सुख या दुःख का असर) ही हैं - *अशाता* (दुःख-परिणाम) का या शाता का।

न्याय के लिए कोर्ट में जाना, वही सब से बड़ा अन्याय है!

यू आर होल एन्ड सोल रिस्पोन्सिबल फॉर यॉरसेल्फ। ये दुःख देते हैं वे तो मात्र निमित्त हैं, लेकिन मूलतः भूल तो खुद की ही है।

जो फायदा करता है वह भी निमित्त है, और जो नुकसान करवाता है वह भी निमित्त है। लेकिन वह अपना ही हिसाब है, इसलिए ऐसा होता है!

बेटा दरवाज़ा बंद करे और अपनी उँगली अंदर आ जाए तो बेटे को डाँटना नहीं चाहिए। ये तो हमने भुगता है, इसलिए अपनी ही भूल। इस बेटे को क्या कहना पड़ेगा? उसे कहना पड़ेगा कि, 'देख, तू ऐसे शरारत कर रहा था, इसलिए मेरी उँगली आ गई। फिर से ऐसी शरारत मत करना।' बेटे को ऐसे समझाना चाहिए। लेकिन यह तो उसे मारता है। अरे, नई गुत्थियाँ क्यों डालता है?

आज के पति तो पत्नी को डाँट देते हैं। उससे कहते हैं, 'यह दाल तो तूने विचित्र बनाई।' अरे, विचित्र तो तू है! भूल तेरी है इसलिए तेरे हिस्से में यह दाल आई!

लोग कहते हैं कि जब तक यह देह है तब तक *भोगवटा* है, लेकिन नहीं, भूल हो तभी तक *भोगवटा* है। हमें नहीं भुगतना पड़ता, अतः हमारी भूल नहीं है।

वाइफ ने आपकी आँख में दवाई डाली और आपकी आँख दुःखे तो वह आपकी भूल है। जो सहन करे उसकी भूल, ऐसा वीतराग कहते हैं। और ये लोग निमित्त को काटने दौड़ते हैं!

'भुगते उसी की भूल', यह नियम मोक्ष में ले जाएगा। कोई पूछे कि, 'मुझे मेरी भूल किस तरह ढूँढनी चाहिए?' तो हम उसे सिखलाएँगे कि, 'तुझे कहाँ-कहाँ *भोगवटा* आता है? वह तेरी भूल। तेरी क्या भूल हुई होगी कि ऐसा भुगतना पड़ा, वह ढूँढ निकालना।' यह तो सारा दिन *भोगवटा* आता है इसलिए खोज निकालना चाहिए कि क्या-क्या भूल हुई है!

हमें सामने वाले की भूल किस तरह समझ में आती है? सामने वाले का होम और फॉरेन अलग दिखता है। सामने वाले की फॉरेन में भूलें होती हैं, फॉरेन में गुनाह हो तो हम कुछ नहीं बोलते, लेकिन

होम में कुछ हो तब हमें उसे टोकना पड़ता है। मोक्ष में जाते हुए कोई अड़चन नहीं पड़नी चाहिए।

सिर्फ 'भुगते उसी की भूल', इतना कहा तो एक तरफ का पूरा पज़ल उड़ गया और दूसरा 'व्यवस्थित' कहा तो दूसरी तरफ का पूरा पज़ल उड़ जाता है।

भीतर अपार बस्ती है, अतः कौन भुगत रहा है, उसका पता चलता है। किसी समय अहंकार भुगतता है तो वह अहंकार की भूल है। किसी समय मन भुगतता है तो वह मन की भूल है, कभी चित्त भुगतता है तो उस समय चित्त की भूल है। यह तो खुद की भूल में से 'खुद' अलग रह सके, ऐसा है।

यदि 'ज्ञानी पुरुष' का एक ही शब्द समझ जाए और उसे पकड़कर बैठ जाए तो मोक्ष में ही जाएगा। किसका शब्द? 'ज्ञानी' का! इसलिए किसी को किसी की सलाह लेनी ही नहीं पड़े कि, किसकी भूल है इसमें? 'भुगते उसी की भूल।'

न्याय करने वाला यदि चेतन हो न, तब तो शायद पक्षपात करे भी, लेकिन जगत् का न्याय करने वाला निश्चेतन चेतन है। उसे जगत् की भाषा में समझना हो तो वह कम्प्यूटर जैसा है। इस कम्प्यूटर में प्रश्न डालो तो कम्प्यूटर से तो शायद भूल हो भी सकती है, लेकिन जगत् के न्याय में भूल नहीं होती। इस जगत् का न्याय करने वाला निश्चेतन-चेतन है, और फिर वह 'वीतराग' है!

जीवों की संपूर्ण स्वतंत्रता

कोई जीव किसी जीव को परेशान ही नहीं कर सकता। यदि एक जीव दूसरे जीव को परेशान कर सकता तो 'यह वर्ल्ड झूठा है, ऐसा कहा जा सकता है।' इस वर्ल्ड का सिद्धांत खत्म हो जाएगा, टूट जाएगा। कोई जीव किसी जीव को ज़रा सा भी परेशान कर सके, अगर उसमें उतनी स्वतंत्र शक्ति होती तो पूरे वर्ल्ड के सभी सिद्धांत फ्रेक्चर

हो जाते हैं। कोई जीव किसी जीव का कुछ भी नहीं कर सकता, इतना स्वतंत्र है यह जगत्! अपना ही फल अपने को मिलता है! बाकी कोई *ऊपरी* नहीं है। *ऊपरी* होता तब तो किसी का भी मोक्ष नहीं हो पाता! कोई व्यक्ति आपके काम में अवरोध नहीं डाल सकता है। आपकी ही भूलें आपकी *ऊपरी* हैं।

कोई जीव अगर आपको दु:ख देता है, तो वह तो निमित्त है। तेरी जेब कट गई, वह किसलिए? तब कहे, 'उस जेब काटने वाले को जेब काटने का व्यू पोइन्ट आया है। उसे जेब काटने में ही सुख मिलता है कि इसके अलावा और कुछ नहीं करना है। जेब काटने वाले को 360 डिग्री के सर्कल में जेब काटने का ही व्यापार करना है, ऐसा दृष्टिबिंदु नक्की हो चुका होता है। वह उसी को व्यापार मानता है। तब फिर उसके ग्राहक भी होते हैं न? कुदरत का संचालन कैसा है कि जिसकी भूल होती है, उसे जेबकतरे से मिलवा देती है। जिसने दु:ख भुगता उसी की भूल। 'भुगते उसी की भूल।' अँधेरे की भूलें उजाले में पकड़ में आती हैं। जिसकी जेब कटी तब भूल पता चली!

जो चोर नहीं है, उसकी जेब काटने वाला कौन है? जिसमें हिंसा का एक भी परमाणु नहीं है, उसे मारने वाला कौन? साँप नज़दीक ही हो, तब भी वह उसे मार नहीं सकता। एक चारित्रवान पुरुष हो और साँप से भरे हुए रूम में से वह गुज़रे तो साँप एक-दूसरे के ऊपर चढ़ जाएँगे और मार्ग दे देंगे। साँप उस तरफ होगा तो वह साँप जलकर भस्मीभूत हो जाएगा। ऐसा है शील का प्रताप! और आज तो मच्छरदानी बाँधी हो, फिर भी मच्छर काट जाते हैं।

भगवान ने शील किसे कहा है? किसी भी जीव को मन से, वाणी से, काया से, कषाय से, अंत:करण से कभी भी दु:ख नहीं देने का जिसे भाव है वह शीलवान है! उसे जगत् में कोई दु:ख कैसे दे सकता है?

जगत् व्यवहार स्वरूप

यह जगत् 'न्याय' स्वरूप नहीं है, 'व्यवहार' स्वरूप है। भगवान ने कहा है कि, 'न्याय मत देखना, नहीं तो बुद्धि विभ्रमित हो जाएगी।' व्यवहार देखना लेकिन न्याय मत देखना। यानी व्यवहार में न्याय करने जैसा नहीं है। व्यवहार जैसा है वैसा है, इतना समझ लेना है।

व्यवहार, व्यवहार स्वरूप है, वह आपको समझाता हूँ। आपके यहाँ विवाह हो और आपके सगे भाई के साथ आपने व्यवहार नहीं किया हो, मिठाई का उपहार नहीं भेजा हो और आपके भाई के वहाँ विवाह का अवसर आए तो क्या आप ऐसी आशा रखोगे कि उसके वहाँ से मिठाई आए? नहीं रखोगे, क्योंकि उस भाई के साथ वैसा ही व्यवहार था और यदि एक भाई के वहाँ से विवाह के अवसर पर सोलह लड्डू आए हों और दूसरे भाई के वहाँ से तीन लड्डू आए हों तो आपके ध्यान में क्या होना चाहिए कि, 'भले ही आज मेरे ध्यान में नहीं है लेकिन मैंने तीन ही लड्डू भेजे होंगे। मेरा व्यवहार ही ऐसा रहा होगा, तीन लड्डू होंगे इसलिए सामने से तीन आए।' व्यवहार में न्याय नहीं देखना होता है, व्यवहार व्यवहार स्वरूप ही है।

यह पंखा फुल स्पीड पर घूम रहा था। उसका रेग्युलेटर बिगड़ गया, हमें पता नहीं था इसलिए कहा कि, 'पंखा ज़रा कम करो।' तब कहने लगे कि, 'पंखा कम नहीं होता है।' तब हम तुरंत ही समझ गए कि उसका व्यवहार ही ऐसा है। तो फिर उसका न्याय करने कहाँ बैठूँ? इसलिए व्यवहार में न्याय नहीं करना होता।

इस घर में बेटे-बेटियों के साथ जो व्यवहार है, वही करना चाहिए। उसमें न्याय क्या करना? पति दु:ख दे तो क्या करना चाहिए? डायवोर्स लेना चाहिए? अरे, यह तो ऐसा ही व्यवहार है, इसमें क्या न्याय करने का रहा?

हर एक के साथ अपना व्यवहार होता है। उसे हमें समझ लेना है कि इसके साथ सीधा व्यवहार लाए हैं, इसके साथ ऐसा टेढ़ा व्यवहार लाए हैं। बेटी होकर भी सामने बोली, वही तेरा व्यवहार है। उसमें न्याय कहाँ देखेगा? और दूसरी बेटी हम थके हुए नहीं हों, फिर भी हमारे पैर दबाती रहती है, वह भी तेरा व्यवहार है। उसमें भी न्याय मत देखना।

ये न्याय देखने जाते हैं, उसी में फँस जाते हैं। व्यवहार तो खुलता जाता है और जैसा लाए होंगे, वैसा ही वापस मिलता है। जबकि न्याय तो क्या है कि 'सामने वाला ऐसा होना चाहिए, वैसा होना चाहिए' ऐसा दिखाता है। न्याय किसके लिए है? जिसे 'मेरी भूल है' ऐसा समझ में आता है, उसके लिए उस भूल को मिटाने के लिए, वह न्याय है। जिसे ऐसा है कि 'मेरी भूल होती ही नहीं', उसके समझने के लिए व्यवहार है। न्याय, वह तो कॉमन लॉ है। जिसे मोक्ष में जाना हो उसे न्याय देख-देखकर काम आगे चलाना है, और जिसे मोक्ष की नहीं पड़ी है और संसार में ही रहना है, उसका और कॉमन लॉ का कोई लेना-देना नहीं है। न्याय तो थर्मामीटर है। हमने जो किया उसे देख लेना है कि हमने किया वह न्याय में है या न्याय से बाहर है? न्याय में होगा तो ऊर्ध्वगति में जाएगा और न्याय से बाहर होगा तो अधोगति में जाएगा।

प्रश्नकर्ता : इस काल में वाणी का ही झंझट है न?

दादाश्री : सामने वाला क्या बोला, कठोर बोला या नरम बोला, उसके हम ज्ञाता-द्रष्टा। हम क्या बोले, उसके भी हम ज्ञाता-द्रष्टा। और उसमें यदि सामने वाले को शूल लगे ऐसा बोल दिया गया हो, तो वह

तो व्यवहार है। वाणी कठोर निकली, वह उसके व्यवहार के अधीन निकली, लेकिन यदि आपको मोक्ष में ही जाना हो तो प्रतिक्रमण करके उसे धो डालो। कठोर वाणी निकली और सामने वाले को दु:ख हुआ, वह भी व्यवहार है। कठोर वाणी क्यों निकली? क्योंकि आज सामने वाले का और अपना व्यवहार ज़ाहिर हुआ और भगवान भी इस व्यवहार को एक्सेप्ट करते हैं।

किसी व्यक्ति ने गाली दी, तो वह क्या है? उसने तेरे साथ का व्यवहार पूर्ण किया। सामने वाला जो कुछ भी करता है, जय-जय करे या गालियाँ दे, वह आपके साथ का सारा व्यवहार ही ओपन करता है। वहाँ पर व्यवहार को व्यवहार से भागाकार कर लेना चाहिए और व्यवहार एक्सेप्ट करना चाहिए। वहाँ तू बीच में न्याय मत लाना, न्याय लाएगा तो उलझ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : और यदि हमने कभी गाली दी ही नहीं हो तो?

दादाश्री : यदि गालियाँ नहीं दी हों तो सामने गाली नहीं मिलेगी। लेकिन यह तो आगे-पीछे का हिसाब है, इसलिए दिए बगैर रहेगा ही नहीं। बहीखाते में जमा हुआ होगा, तभी आएगा। किसी भी तरह का इफेक्ट आया, वह हिसाब के बगैर नहीं हो सकता। इफेक्ट, वह कॉज़ेज़ का फल है। इफेक्ट का हिसाब, वही व्यवहार है।

वाणी, सामने वाले के व्यवहाराधीन

व्यवहार किसे कहते हैं? नौ को नौ से भाग लगाना, यदि नौ में बारह का भाग लगाएँ तो व्यवहार कैसे चलेगा?

न्याय क्या कहता है? नौ में बारह का भाग लगाओ। वहाँ वापस उलझ जाता है। न्याय में तो क्या बोलता है कि, 'उन्होंने ऐसा-ऐसा बोला, तो आपको ऐसा-ऐसा बोलना चाहिए।' लेकिन आप एक बार बोलते हो, तब वह दो बार बोलता है। आप दो बार बोलोगे तो सामने वाला दस बार बोलेगा। ये दोनों लट्टू घूमेंगे, उतना व्यवहार है। इन दोनों का बोलना बंद हो गया तो व्यवहार पूरा हो गया, व्यवहार नि:शेष

हो गया। व्यवहार अर्थात् जो शेष नहीं बचे, वह। इसमें यदि आपको मोक्ष में जाना हो तो तुरंत ही प्रतिक्रमण करो।

आपको नहीं बोलना हो, फिर भी मुहँ से निकल जाता है न! उस सामने वाले का व्यवहार ऐसा है, उसी आधार पर निकलता है। किसी-किसी जगह पर जाँच करके देखना। कोई व्यक्ति आपका नुकसान कर रहा हो तब भी उसके लिए आपकी वाणी उल्टी नहीं निकलती और किसी ने आपका ज़रा भी नुकसान नहीं किया हो, फिर भी आपकी वाणी उल्टी निकलती है। वह किसलिए? तब कहे, वैसा सामने वाले के व्यवहार के अधीन होता है।

जैसे व्यवहार से लपेटा गया है उसी तरह के व्यवहार से खुलता है। अगर आप मुझसे पूछो कि, 'आप मुझे क्यों नहीं डाँटते?' तो मैं कहूँगा कि, 'आप वैसा व्यवहार नहीं लाए हैं। जितना भी व्यवहार आप लाए थे उतना आपको टोक दिया, उससे अधिक व्यवहार नहीं लाए थे।' हम 'ज्ञानी पुरुष' को कठोर वाणी होती ही नहीं, और सामने वाले के लिए कठोर वाणी निकले तो वह हमें पसंद नहीं आता। और फिर भी यदि निकली तब हम तुरंत ही समझ जाते हैं कि इसके साथ हम ऐसा ही व्यवहार लाए हैं। वाणी, वह सामने वाले के व्यवहार के अनुसार निकलती है। वीतराग पुरुषों की वाणी निमित्त के अधीन निकलती है। जिसे किसी भी प्रकार की कामना नहीं है, कोई इच्छा नहीं है, किसी भी प्रकार के राग-द्वेष नहीं हैं, ऐसे वीतराग पुरुषों की वाणी सामने वाले के निमित्ताधीन है। वह सामने वाले के लिए दुःखदायी नहीं होती। 'ज्ञानी पुरुष' को तो कठोर शब्द बोलने की फुरसत ही नहीं होती, फिर भी अगर कोई महापुण्यशाली आए तो उसे कठोर शब्द सुनने की बारी आ जाती है। सामने वाले का व्यवहार ऐसा है, इसलिए रोग निकालने के लिए हमें ऐसी वाणी बोलनी पड़ती है। नहीं तो ऐसा हमें कहाँ से हो? जो एक घंटे में मोक्ष देते हैं, उन्हें भला कहाँ कठोर शब्द कहने होते हैं? लेकिन उसका रोग निकालने के लिए ऐसी कठोर वाणी निकल पड़ती है! कवि क्या कहते हैं कि,

'मुओ जेने कहे ए तो अजर अमर तपे,
गाळ्युं जेणे खाधी एनां पूरवना पापोने वींधे।'

कोई कहेगा, 'इस भाई को दादा कठोर शब्द क्यों कह रहे हैं?' उसमें दादा क्या करें? वह व्यवहार ही ऐसा लाया है। कुछ तो बिल्कुल नालायक होते हैं, फिर भी दादा ऊँची आवाज़ से नहीं बोलते, तब से ही समझ में नहीं आ जाए कि वह खुद का व्यवहार कितना सुंदर लाया है! जो कठोर व्यवहार लाए होते हैं, वे हमारी कठोर वाणी देखते हैं।

हमारे लिए घर, ऊपर (की मंज़िल पर) चाय आती, तो कभी अगर चाय में चीनी ही नहीं डाली हो तब भी हम कुछ भी बोले बगैर पी लेते हैं। कई बार तो नीचे पता भी नहीं चलता। और पता चले तो, वे जब चाय पीते हैं तब पता चलता है। हम रोज़मर्रा की बातों में नहीं बोलते। बोलने का कहाँ होता है कि कुछ नवीन डालना हो तभी कहते हैं। और चीनी तो रोज़ डालते ही हैं। वे आज ही भूल गए हैं, तो उसमें बोलने की ज़रूरत नहीं है। चीनी डालनी तो व्यवहार है। इसलिए बिना चीनी की चाय आए तो हम समझ जाते हैं कि आज ऐसा व्यवहार आया है, तो चाय पी लेते हैं।

व्यवहार में 'न्याय' कौन सा?

व्यवहार ही सब जगह उलझन खड़ी करता है न? व्यवहार का और न्याय का कुछ लेना-देना नहीं है। लोग न्याय करने जाते हैं, न्याय को बुलाना ही नहीं होता। यदि बहू को सास परेशान करती है, वह भी व्यवहार और यदि बहू को सास भोजन करवाती है, वह भी व्यवहार है। सारे दिन केसर उँडेले वह भी व्यवहार है और परेशान करे वह भी व्यवहार है। यदि व्यवहार नहीं होगा, तब तो *पुद्गल* आएगा ही नहीं न! यह व्यवहार है, उसमें न्याय-व्याय देखने जाएँ तो निबेड़ा ही नहीं आए।

भगवान के साथ ग्यारह शिष्यों का व्यवहार था, उनमें किसी

शिष्य को किसी दिन बुरा लग जाए तो वह शिष्य सारी रात सोता नहीं था। उसमें भगवान क्या करें? उसमें कहीं न्याय देखना होता है? यदि व्यवहार को व्यवहार समझे तो न्याय समझ गया! पड़ोसी उल्टा क्यों बोल गए? क्योंकि अपना व्यवहार वैसा था इसलिए। और अपने से वाणी उल्टी निकले तो वह सामने वाले के व्यवहार के अधीन है। लेकिन हमें तो मोक्ष में जाना है, इसलिए उसका प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन तीर निकल गया उसका क्या?

दादाश्री : वह व्यवहाराधीन है।

प्रश्नकर्ता : ऐसी परंपरा रही तो बैर बढ़ेगा न?

दादाश्री : नहीं, इसीलिए तो हम प्रतिक्रमण करते हैं। प्रतिक्रमण मोक्ष में ले जाने के लिए नहीं हैं, लेकिन वह तो बैर रोकने के लिए भगवान के वहाँ का फोन है। प्रतिक्रमण में कच्चे पड़े तो बैर बंधेगा। जब भूल समझ में आए, तब तुरंत ही प्रतिक्रमण कर लो। उससे बैर बंधेगा ही नहीं। सामने वाले को बैर बाँधना हो तब भी नहीं बंधेगा क्योंकि हम सामने वाले के आत्मा को सीधे ही फोन पहुँचा देते हैं। व्यवहार निरुपाय है। आपको मोक्ष में जाना हो तो प्रतिक्रमण करो। जिसे 'स्वरूप ज्ञान' नहीं हो, उसे व्यवहार को व्यवहार स्वरूप ही रखना हो तो सामने वाला उल्टा बोला वही करेक्ट है, ऐसा ही रखो, लेकिन मोक्ष में जाना हो तो उसके प्रतिक्रमण करो, नहीं तो बैर बंधेगा।

निःशेष व्यवहार से हल

भगवान ने क्या कहा है कि, 'एक व्यवहार है और दूसरा निश्चय है।' व्यवहार का तो निःशेष भागाकार हो रहा है, नहीं तो हल कहाँ से आएगा? निरंतर व्यवहार को व्यवहार में रखना है और निश्चय को निश्चय में रखना है। व्यवहार में तो, जितना होगा उतना तो सामने आएगा ही न? व्यवहार तो, आप जितना व्यवहार लेकर आए हो, उतना

नकद ही देता है। व्यवहार क्या कहता है? नियमानुसार अठारह देने चाहिए और आठ ही क्यों दिए? क्योंकि आठ का ही व्यवहार था इसलिए आठ दिए ताकि व्यवहार शून्य हो जाए, पिछले कर्म शून्य हो जाएँ। लेकिन अगर 'ज्ञानी पुरुष' ने ज्ञान दिया हो तो चार्ज नहीं होता, नहीं तो चार्ज हो जाता है।

व्यवहार यानी दोनों की बातें शून्यता लाएँ, वह। स्थूल कर्म, पंचेन्द्रियों से दिखने वाले, अनुभव में आने वाले, कर्म शून्यता को प्राप्त करें वह व्यवहार है। स्वरूप के अज्ञानी को वह चार्ज करके जाता है और हमने जिन्हें ज्ञान दिया हो, जिसे स्वरूप का भान हुआ है उसका तो डिस्चार्ज हो जाता है और नया चार्ज नहीं होता। डिस्चार्ज किसी भी प्रकार का हो, लेकिन वह, जैसा सामने वाले का व्यवहार होगा वैसा ही डिस्चार्ज होगा।

कुछ लोग ऐसे होते हैं कि आप उपकार करो फिर भी वे अपकार करते हैं! उसमें न्याय करने जाओगे तो पागल बनोगे। सरकार, वकील सभी पागल बनते हैं। उसमें तो, यह उपकार करता है, वह व्यवहार है और सामने वाला अपकार करता है, वह भी व्यवहार है। उसमें न्याय करने जाओ और मध्यस्थ को बुलाओ तो मध्यस्थ बल्कि पहले ऐसा कहेगा, 'एय! चाय-पानी और नाश्ता लाओ।'

जहाँ व्यवहार कहा, वहाँ पर न्याय ढूँढने को रहा ही कहाँ? तू यह नहीं समझेगा तो व्यवहार खुद ही तुझे मार-ठोककर तुझसे व्यवहार करवाएगा। इसलिए समझ जा न कि यह तो व्यवहार ही है!

प्रश्नकर्ता : दादा, व्यवहार में भीतर जलन होती रहती है, वह *तरछोड़* (तिरस्कार सहित दुत्कारना) कहलाता है न?

दादाश्री : वह तो उसके साथ में रमणीय व्यवहार नहीं संभाल पाए थे, इसलिए ऐसा होता है। इस व्यवहार में किसी को हम डाँट रहे हों, लेकिन उसमें हमारा खुद का ज़रा सा भी स्वार्थ नहीं हो, तो वह रमणीय व्यवहार होता है। उसका फल सुंदर आता है। लेकिन

स्वार्थ के लिए लड़ें, पक्षपात के लिए लड़ें तो उसका फल कड़वा आता है। हमारा व्यवहार रमणीय होता है। बिना कार्य किए यश मिलता है। यों ही चरण रखते हैं और परिवर्तन हो जाता है, वह पूर्वजन्म का रमणीय व्यवहार है। अब तो अपना जितना और जैसा व्यवहार है वह पूरा करना है और फिर अब हमें नया व्यवहार कहाँ करना है? अब तो आपको व्यवहार के ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंद में रहना है।

अब अगर कोई व्यक्ति पूछने आए कि, 'मेरा बेटा ऐसा करता है, फलाँ ने ऐसा किया, ऐसा तो कोई करता होगा?' तो मैं कहूँगा कि, 'जो हो रहा है वही न्याय है।' न्याय तो थर्मामीटर है। दरअसल संज्ञा, वही दरअसल न्याय है। जो हो रहा है उसी को हम 'व्यवस्थित' कहते हैं। उसमें फिर न्याय-अन्याय ढूँढने का कहाँ रहा?

आज यह ग़ज़ब की बात निकली है! यह बात वर्ल्ड में सब से ऊँची बात है! द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के आधार पर निकल गई है, तमाम शास्त्रों के सार के रूप में निकला है! इस वाक्य का विवरण करने जैसा है।

व्यवहारिक सुख-दुःख की समझ

इस संसार के जो सुख-दुःख हैं, उन्हें भगवान ने सुख-दुःख नहीं कहा है। भगवान ने इसे वेदनीय कहा है। सुख को शाता वेदनीय कहा है और दुःख को *अशाता* वेदनीय कहा है।

प्रश्नकर्ता : वेदनीय क्यों कहा?

दादाश्री : क्योंकि उसकी मात्रा बढ़ जाए तो ऊब जाता है। यदि भोजन रोज़ एक ही प्रकार का दें तो ऊब जाएँगे। इसलिए वह भी वेदना ही है न! पुण्यकर्म से शाता वेदनीय और पापकर्म से *अशाता* वेदनीय है। शादी में सभी लोग आनंद में होते हैं और भाई के चेहरे पर अरंडी का तेल पिया हो ऐसा क्यों दिखता है? तब कहे, 'भीतर' *अशाता* वेदक है। तो वह कभी इधर से मारता है और कभी उधर से मारता है और कुछ भी करके दुःख के साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्सिस जमा कर देता है और इन्हें दुःख देता है। ऊपर कोई भगवान या ग्रह वगैरह दुःख नहीं देते हैं। ऊपर कोई बाप भी बेकार नहीं बैठा है आपको दुःख देने के लिए। यह तो भीतर वह वेदक है, वह ऐसा करवाता है। इसमें आत्मा नहीं है। आत्मा के अलावा दूसरी वस्तु है। यह तो पूरी सेना अंदर है। पुलिस वाला, फोज़दार, उसका *ऊपरी* वे सभी इस सेना में हैं।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी पुरुष' में ये दो वेदक नहीं होते हैं न, दादा?

दादाश्री : नहीं, 'ज्ञानी में भी होते हैं।' लेकिन ज्ञानी देखते और

जानते हैं। कुछ अपयश मिले तो हमें कहना चाहिए कि यह तो आपका हिसाब है इसलिए अपयश मिला। हमें तो ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंदी, यानी पड़ोसी की तरह रहना है। ये तो सब टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट हैं। किसी की दाढ़ दु:खने लगे तो वह क्यों ऐसा नहीं सोचता कि यह हमेशा दु:खती रहेगी तो? इन सब का टाइम होता है। काल पक जाए तब दु:खना बंद हो जाता है। एक अवस्था अड़तालीस मिनट से अधिक नहीं टिकती, इतना नियम वाला है यह जगत्!

अवस्था में सुख नहीं होता है। अवस्था तो निरंतर बदलती ही रहने वाली है। बगीचे में सुख होता है, फिर भी वापस घर आना पड़ता है, उसके बदले तो इस दु:ख की हाँडी में पड़े रहें, जिस जगह पर दु:ख है वहीं पड़े रहें तो सुख लगेगा। दु:ख सहन करने वाले को ऑटोमैटिक सुख आता रहता है, क्योंकि जो ताप में चलता है उसे बबूल के नीचे सुख लगता ही है, और यदि किसी को बबूल के नीचे सुख महसूस नहीं होता हो, तो उसे चार-पाँच घंटे गर्मी में घुमाएँ तो वहाँ भी उसे सुख लगेगा। इस संसार की कलुषित क्रियाएँ और उसके फल के रूप में सुख उत्पन्न होता है! फिर वह घर जाकर पंखा चलाकर बैठे तो, 'अहा, सुख मिला' कहता है। फिर वह चैन से चाय-पानी पीता है। और पूरे दिन घर में ही बैठे रहने वाले सेठ के लिए यदि पंखा चलाएँ, तो उसे अच्छा नहीं लगेगा, चाय-पानी पसंद नहीं आएँगे। इस संसार में जो कोई भी सुख है, वह थकान के फल स्वरूप है। तात्विक सुख, सनातन सुख आने के बाद कभी भी जाता नहीं!

कुछ जगहों पर औरत पति को दु:ख देती है तो किसी जगह पर पति औरत को दु:ख देता है। लेकिन वह दु:ख किसलिए लगता है? तब कहे, परिमाण से कम दु:ख दे रहे हैं, इसलिए। यदि परिमाण से अधिक दु:ख परोसेंगे तो सुख लगेगा। जबकि यहाँ ज्ञान क्या कहता है कि, 'यह मार तो पड़ती ही रहेगी।' उसके बाद फिर सुख उत्पन्न हो जाता है!

इन चक्रवर्ती राजाओं को महलों में सुख नहीं लगा और इन

गरीबों को झोंपड़ियों में सुख लगता है, वही आश्चर्य है न? सुख तो टिकाऊ होना चाहिए, आने के बाद फिर जाए नहीं। सुख तो, जैसा 'दादा' को है वैसा होना चाहिए, एक क्षण भी वह नहीं जाता, 'दादा' को निरंतर सहज समाधि रहती है!

प्रश्नकर्ता : जीव दूसरी जगह सुख किसलिए ढूँढता है?

दादाश्री : इस लड़के को यदि अच्छे दाल-चावल खाने को मिल जाएँ तो वह होटल में नहीं जाएगा। लेकिन घर पर ही संतोष नहीं रहे तो फिर वह बाहर खाने जाता है, उसी प्रकार सुख में असंतोष है, इसलिए सुख ढूँढता है। जीव अतीन्द्रिय सुख के लिए भटक रहा है। खुद का सुख किसी ने चखा ही नहीं है। यह कल्पित सुख तो कितना टिकेगा? 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो अतीन्द्रिय सुख मिल जाएगा! कल्पित सुख से तो तृप्ति नहीं होती। संतोष अवश्य होता है। जब तक ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, तब तक इंसान को उल्टे-सीधे का भान नहीं होता। बुद्धि है तो संसार के हिताहित का भान बताती है, लेकिन मोक्ष के हिताहित का भान नहीं बताती। वह तो 'मैं मर जाऊँगा' ऐसा बताती है!

यह जगत् क्रम से सेट है। पद्धति अनुसार जगत् है। किसी को भी मन के दु:ख नहीं है। एक मनुष्य नाम के प्राणी को ही दु:ख है। प्राणी किसलिए? कि प्राण के आधार पर जीवित रहता है। अन्य किसी जानवर के मन में दु:ख नहीं है। भूख लगे तो उन्हें वेदना होती है, लेकिन ज़रा खुराक मिली कि वेदना शांत हो जाती है। उन्हें लोभ ही नहीं है न! इन मनुष्यों को ही लोभ है। वह खुद के हिस्से का तो खाता ही है, लेकिन साथ वाले के हिस्से का भी छीनना चाहता है। लोभ से ही दु:ख खड़े हैं!

इन मनुष्यों को अगर बुढ़ापे में पैर दु:खें तो डॉक्टर के पास दौड़ते हैं, इलाज करवाते हैं। लेकिन क्या इन पक्षियों के या मछलियों के हैं डॉक्टर? उन्हें भुगतते ही रहना है। उनमें है एक भी विषय? आहार संज्ञा होती है इसलिए खाने को चाहिए, लेकिन जीभ के विषय

नहीं हैं। उन्हें भी यदि खाने-पीने के विषय होते तो उनकी भी दाढ़ें दु:खतीं, चश्मे लग जाते। जानवरों को भी बुढ़ापे में दु:ख आते हैं, लेकिन चुपचाप सहन करना पड़ता है उन्हें!

बैल से सारे दिन खेत में खेती करवाते हैं और खुद का बैल अपने खेत में कुछ खा न जाए इसलिए मुँह पर छींका बाँधते हैं, वह बैल समझ जाता है कि मुझे कुछ नहीं खाना है। एक किसान को रात में सिनेमा देखने का मन हुआ। वह बैल के सामने अच्छी-अच्छी घास रखकर चला गया, लेकिन छींका निकालना भूल गया। बेचारा बैल क्या करे? पेट में भूख लगी थी लेकिन करे क्या? किससे कहे? रात को बारह बजे किसान आया और सो गया। बैल की कुछ खोज-ख़बर ली नहीं। बैल तो जमीन पर पैर पटकता रहा सारी रात! उसने सुबह देखा तब पता चला कि छींका निकालना भूल ही गया था!

जीवन - तेली के बैल जैसे

अनंत जन्मों से तेली के बैल की तरह मज़दूरी की है, फल में मिला क्या? तो कहे, खल का एक टुकड़ा! ऐसे ही भाई सारे दिन तेली के बैल की तरह मेहनत करके मर जाता है, तब रात को हाँडवे (एक गुजराती व्यंजन) का एक टुकड़ा मिलता है। बहुत सारे दु:ख भुगते हैं। बेहिसाब मार खाई है। ये तो फिर कल्पित दु:खों को निमंत्रित करने के लिए पत्रिका भेजते हैं। विवाह में मौसी के मामा जी के बेटे को बुलाते हैं। ज़रूरत हो उसी को निमंत्रण भेज न! लेकिन यह तो सभी को निमंत्रण देता है और फिर सभी आते हैं। इस दु:ख को ऐसा नहीं है कि इनके यहाँ जाऊँ और इनके यहाँ नहीं जाऊँ। और सुख को भी ऐसा नहीं है कि इनके यहाँ जाऊँ और इनके यहाँ नहीं जाऊँ। लेकिन जिसे निमंत्रण भेजता है, वही आते हैं। फिर कहता है कि दु:ख क्यों आया?

ये गाँव की स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं और फिर सुख-दु:ख की बातें करती हैं। स्त्री कहती है कि, ''मुझे तो मेरे 'उनको' एक दिन झिड़की लगानी है'' और पुरुष इकट्ठे होकर बातें करते हैं कि, 'मुई

को दो धौलें लगाने जैसा है।' उसके बाद देखो। वह झिड़कती है और पति उसे दो धौलें मारता है ऐसा है यह संसार! इस संसार में ज़रूरत की चीज़ें कितनी? दो टाइम खाने को मिले और नहाने का पानी मिले तो ठीक है, लेकिन पीने का पानी तो चाहिए। इतने छोटे बाल हों तो उनमें रूसी होती है कभी? ये तो बाल बढ़ाते हैं और फिर रूसी होती है। ये तो बिना बात के दु:खों को निमंत्रण देते हैं।

संसार, वह तो निरा दु:ख का भंडार है। उसमें बोल नहीं सकते, कह नहीं सकते और सहा भी नहीं जाता! बस घुलते रहना है! इस बैल को तो पूरी ज़िंदगी मेहनत करनी और जब बूढ़ा हो जाए तब कट के मर जाना पड़ता है। उन्हें रिटायर होना होता है क्या? है ज़रा सा भी (खयाल) उन्हें टेन्शन में से निकलने का? यह तो, हम मनुष्यों को जो दु:ख हैं, उसके मुकाबले जानवरों को तो बेहिसाब दु:ख हैं। 'इन जानवरों के मुकाबले तो हमें कम दु:ख हैं न' ऐसे सोचना है। यह तो मुँह पर एक फुँसी हुई हो तो दु:ख हो जाता है!

दु:खों को न रोए वह खानदानी

जो रोकर खुद के दु:ख दूसरों को बताए, क्या वह खानदानियत कहलाएगी? लेकिन लोग तो सभी को दु:ख बताते फिरते हैं। दु:ख बताने की शक्ति हो फिर भी सहन करना और किसी से नहीं कहना, वह खानदानियत कहलाती है! बड़ा आदमी खुद के दु:खों को पी जाता है। क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि इसमें कहने जैसा क्या है? क्या सामने वाला अपना दु:ख ले सकता है? क्या ये जानवर आते हैं खुद के दु:ख बताने? अगर कुतिया का पैर मोटर के नीचे आ जाए तो वह किसे कहने जाती है? वह बेचारी पैर घसीट-घसीटकर चलती है, उसे दवाई-ववाई कुछ भी नहीं!

इन जानवरों के हैं कोई नन्दोई-वन्दोई? यह तो जब से मनुष्य में आए, तभी से हमारे नन्दोई, हमारे पति। कौन से जन्म में पति नहीं मिला था? कुत्ते में भी और गधे में भी - सभी जगह पति मिला था,

फिर भी ऐसा ही पसंद है लोगों को। वर्ना खुद परमात्मा ही है! यह जन्म मुक्ति के लिए मिलता है, लेकिन वह काम तो भूल गया। जिस काम के लिए आया है, वही काम भूल जाए तो उससे बड़ा मूरख कौन? इस संसार में ये मेरे ससुर, ये मेरी सास और यह मेरा पति और यह मेरी पत्नी, ऐसे मेरा-मेरा करते रहे हैं, लेकिन जब दांत में दर्द उठता है, तब कोई नहीं आता। बुढ़िया बहू से कहे कि, 'दाढ़ दुःख रही है तो अरे, कुछ रास्ता बता न!' तब मन में बहू सोचती है कि, 'यह बुढ़िया क्या किच-किच कर रही है!' लेकिन वह तो उसे दुःखेगा तब पता चलेगा। लेकिन उस घड़ी भूल चुकी होती है। गुनाह करके फिर भूल जाती है। फिर भुगतते समय कहती है कि, 'मुझे यह दुःख किसलिए आया?'

बहीखातों के हिसाब

यह संसार तो समझने जैसा है। ये चाचा क्या है? मामा क्या है? पति क्या है? पत्नी क्या है? ये तो बहीखाते के हिसाब हैं। लेकिन ऐसा तो जाना ही नहीं। यदि जान जाए तब तो हिसाब ही साफ करता जाए। और यह तो जानता नहीं है इसलिए फिर एक हिसाब चुकता है और दूसरा हिसाब बढ़ाता जाता है, और मामा का हिसाब बाकी हो तो किसी भी निमित्त से हिसाब चुके बगैर रहने वाला नहीं है न!

जगत् दुःख भोगने के लिए नहीं है, सुख भोगने के लिए है। जिसका जितना हिसाब हो उतना होता है। कुछ लोग सिर्फ सुख ही भुगतते हैं, वह किसलिए? कुछ सिर्फ दुःख ही भुगतते हैं, वह किसलिए? खुद ऐसे हिसाब लाया है इसलिए। इन समाचारों में रोज़ आता है कि, 'आज टैक्सी में दो लोगों ने इन्हें लूट लिया, फलाँ फ्लेट के मेमसाहब को बाँधकर लूट लिया।' यह पढ़कर अपने को कहीं डरने की ज़रूरत नहीं कि मैं भी लुट गया तो? यह विकल्प ही गुनाह है। इसके बजाय तू सहज रूप से चलता रह न। तेरा हिसाब होगा तो ले जाएगा, वर्ना कोई बाप भी पूछने वाला नहीं है। 'भुगते उसी की भूल।' इसलिए तू निर्भय होकर घूम। ये पेपर वाले तो लिखेंगे, इसलिए

क्या हम डर जाएँ? ये तो डायवोर्स थोड़े कम होते हैं, वह अच्छा है। फिर भी, यदि डायवोर्स ज़्यादा होने लगेंगे तो सभी को शंका का स्थान मिल जाएगा कि अपना भी डायवोर्स हो गया तो? एक लाख लोग जिस जगह पर लुट गए, वहाँ पर भी आप डरना मत। आपका कोई बाप भी *ऊपरी* नहीं है।

अपने को किसी ज्योतिषी ने हाथ देखकर कहा हो कि चार घात हैं, तो चार घातों में आपको सावधान रहना चाहिए। अब उसमें से एक घात गई तो आनंद मनाओ कि *सिलक* (जमापूँजी) में से एक कम हुई! वैसे ही अपमान, गालियाँ ऐसा सब अपने पास आए तो आनंद मानना कि *सिलक* में से एक दु:ख कम हुआ। लेकिन यह तो अवस्था में एकाकार रहता है, ऐसा नहीं होना चाहिए। किसी के साथ हज़ार गालियों का हिसाब हो तो वह एक गाली दे तो हमें ऐसा कहना चाहिए कि हज़ार में से एक तो कम हुई! अब नौ सौ निन्यानवे गालियाँ बाकी रहीं! ऐसा बोझ रहता हो कि, 'मुझे क्यों गालियाँ दी उसने', ऐसा नहीं होना चाहिए। और यदि आपके दु:ख दादा को सौंप दो, तब तो काम ही निकल जाएगा। 'हम' पूरे जगत् के दु:ख लेने आए हैं, जिन्हें सौंपने हों वे इन 'दादा' को सौंप जाएँ। आप 'दादा' से कहना कि, 'दादा, हम तो पहले से ही पागल हैं, इसलिए अब आप हाज़िर रहना।' तब दादा आएँगे ही।

जिस तरह मान के समय आनंद रहता है, उसी तरह अपमान के समय भी आनंद हाज़िर रहना ही चाहिए। अपमान के समय आनंद हाज़िर क्यों नहीं रहता? 'अपमान के समय आनंद हाज़िर रहेगा ही' ऐसा नहीं कहने से वह हाज़िर नहीं रहता, इसलिए अगर हम 'रहेगा ही' ऐसा कहेंगे तो रहेगा। लेकिन वह तो 'ध्यान नहीं रहता' ऐसा कहते हैं तो फिर वह ध्यान किस तरह हाज़िर रहे? भीतर आत्मा में अनंत शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। जैसा नक्की करे, वैसा हो जाए, ऐसा है।

इस संसार में सुख नहीं है, ऐसा हिसाब निकाला है क्या तूने?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा।

दादाश्री : जिसे इस संसार के बहीखातों का सार (लेखा-जोखा) निकालना आ गया, उसे मोक्ष की तीव्र इच्छा होती है। बहीखाता देखना नहीं आता तब भी मोक्ष की तीव्र इच्छा तो होती ही है। सार निकालने पर ही यह समझ में आता है कि किसमें सुख है? बाप बनने में सुख है? पति बनने में सुख है?

सत्सुख कब मिलता है?

प्रश्नकर्ता : खुद शुद्ध हैं, ये लोग क्या ऐसा जानते होंगे?

दादाश्री : किस तरह जानेंगे? खुद शुद्ध हैं ऐसा जान लें तो अपार सुख आएगा। लेकिन ऐसा नहीं जानने से ही ये सारे दुःख हैं। नासमझी के दुःख हैं। कुछ पता तो लगाना चाहिए न कि सुख किसमें है? यह तो गधे की तरह भाग-दौड़, भाग-दौड़ करता है। और फिर वापस गिर जाता है, टकरा जाता है। ऐसा कहीं होता होगा? इन मनुष्यों में जीवन जीने की कला नष्ट हो गई है। यह पीतल, ताँबा, लोहा, ये सभी धातुएँ उनके गुणधर्म में रही हुई हैं। लेकिन यह पंचधातु का पुतला बहुत विषम है! यह कुछ तृतियम् ही ढूँढ निकालता है! होता है खुद सेठ, लेकिन लोग कहेंगे कि, 'भाई, बात ही मत करना न उनकी तो!' कारण क्या है? कि सेठ किसी काम के हैं ही नहीं। यानी कोई मार्ग तो निकालना पड़ेगा न कि खुद किस तरह सुखी बने?

संसार में सुख नहीं है, ऐसा कब होता है? जब दुःख आएँ तब हिसाब निकलता है। ये सारे खाते तो अनंत दुःख वाले ही हैं। लेकिन जब सुख आए तब मस्त होकर घूमते हैं और दुःख आए तब समझ में आता है कि यह संसार तो खारा ज़हर है। लेकिन खुद का सारा सोना यदि समुद्र में फेंक दे, फिर बाद में मिलेगा क्या? फिर तो चीख-चीखकर रोना पड़ता है। यदि एक बार संसार बिगाड़ दिया तो फिर कैसे सुधरेगा? उसे तो सिर्फ वीतराग वाणी ही सुधार सकती है, और वही मोक्ष दे सकती है ऐसा है। इस देह का बंधन, वाणी का बंधन, मन का बंधन, बुद्धि का बंधन, अहंकार का बंधन, वह कैसे

पुसाए? ये सभी बंधन खुद से अलग ही हैं, लेकिन ये तो आपने जमा किए हैं। 'मैं ही मन हूँ, अहंकार वह मैं ही हूँ' उसके बाद मूढ़ात्म दशा हो जाती है। वर्ना यदि इनसे जुदा हो जाए तो खुद परमात्मा ही है। इन सभी विनाशी चीज़ों में सुख माना इसलिए मूढ़ात्मा बन गया है!

दु:ख तो नाम मात्र को भी नहीं है, लेकिन मान बैठता है उसके दु:ख हैं। ये ऊपर जाने के बाद, किसी के खत-वत आए हैं क्या आपको?

प्रश्नकर्ता : ना, वे तो कहाँ से आएँ?

दादाश्री : ऐसा है यह संसार। खाते में यदि पाँच सौ रुपये जमा हैं तो इस जन्म में वह हिसाब पूरा करने के लिए आ मिलते हैं। वे पुराने हिसाब पूरे हो जाते हैं, तब बिछड़ जाते हैं, मर जाता है और यदि फिर से नए हिसाब नहीं बाँधे हों तो फिर नहीं मिलते।

ये सौ रुपये के कप-प्लेट हैं वे, जब तक अपना हिसाब है, ऋणानुबंध है, तब तक वे जीवित रहेंगे। लेकिन हिसाब पूरा होने के बाद प्लेट फूट जाती है। वह फूट गई, वह व्यवस्थित है, फिर से याद नहीं करने होते हैं। और ये इंसान भी कप-प्लेट ही हैं न? यह तो दिखता है कि ये मर गए, लेकिन मरते नहीं हैं, फिर से यहीं पर आते हैं। इसीलिए तो जब हम मृत के प्रतिक्रमण करते हैं तो उसे पहुँचते हैं। वे जहाँ हों, वहाँ उन्हें पहुँचते हैं।

जो कड़वा पीए, वह नीलकंठ

प्रश्नकर्ता : दादा, कोई कड़वे शब्द कहे तो वे सहन नहीं होते, तो क्या करना चाहिए मुझे?

दादाश्री : देख इसका तुझे खुलासा करूँ। इस रास्ते के बीच काँटा पड़ा हो, और हज़ारों लोग निकलें लेकिन काँटा किसी को भी नहीं चुभता, लेकिन जब चंदूभाई जाएँ तो काँटा टेढ़ा हो, फिर भी ऐसा चुभता है कि पँजे में से आरपार निकल जाता है! कड़वे का स्पर्श होना, वह हिसाब वाला होता है। और कड़वे का स्पर्श होता है, तब

माननना चाहिए कि अपने कड़वे की रकम में से एक कम हुई। जितना कड़वा सहन करोगे, उतने आपके कड़वे कम होंगे। मीठा भी जब स्पर्श होता है, तब उतना कम होता है। लेकिन यह कड़वा स्पर्श होता है तब अच्छा नहीं लगता। यह कम होता है, फिर भी कड़वा क्यों अच्छा नहीं लगता? उससे कहें कि कड़वा फिर से दे न, तो भी वह नहीं देगा। ऐसी तो किसी के हाथ में सत्ता है ही नहीं। सभी कुछ हिसाब वाला है, *सिलक* के साथ में है, कोई गप्प नहीं है। मरने तक का सभी कुछ हिसाब सहित है। यह तो हिसाब के अनुसार होता है कि इनकी तरफ से 301 आएँगे, उसके पास से 25 आएँगे, इसके पास से 10 आएँगे। 'ज्ञान' यदि हाज़िर रहता हो तो कुछ भी सहन नहीं करना पड़े। यह तो सारा रिलेटिव रिलेशन है। कड़वा-मीठा सबकुछ हिसाब से मिलता है। रोज़ कड़वा देने वाला एक दिन ऐसा सुंदर दे देता है! ये सारे ऋणानुबंधी ग्राहक-व्यापारी के संबंध हैं!

हमारे पास भी कड़वे प्याले आए थे न। हमने पी लिए और खत्म भी हो गए! जो कुछ किसी ने कड़वा दिया था, वह हमने बल्कि आशीर्वाद देकर पी लिया! इसीलिए तो हम महादेव जी बन गए हैं!

प्रश्नकर्ता : ये कर्म खपाना इसी को कहते हैं?

दादाश्री : यही है, कि कड़वी भेंट आएँ तब स्वीकार कर लेनी चाहिए। लेकिन ऐसी कड़वी भेंट-सौगातें आएँ तब कहता है कि, 'अरे! तू मेरे साथ ऐसा क्यों कर रहा है?' ऐसा करने से कर्म नहीं खपते। नया व्यापार शुरू होता है। जिसे स्वरूप का भान है यानी कि जिसे इस दुकान का निकाल करना है वह हल ला देता है। जिसे स्वरूप का भान नहीं है उसका तो व्यापार चल ही रहा है, दुकान चल रही है।

सामने वाला कड़वा दे तब वह कौन से बहीखाते का है, जब तक वह नहीं जान लें तब तक वह अच्छा नहीं लगता। लेकिन यदि पता चले कि, 'अहो! यह तो इस खाते का है!' तब फिर वह अच्छा लगेगा। 'दादा' की तो रकम ही खत्म हो गई है, तब फिर कड़वा कौन दे? यह तो जब तक वह रकम *सिलक* में हो, तभी तक देने आते हैं।

यहाँ सत्संग निरंतर आनंद देने वाला है! और बाहर कहीं भी आनंद है ही नहीं। इसलिए कुछ चीज़ों में आनंद मानकर आनंद लेते हैं। 'समझे हुए' में से नहीं लेकिन 'माने हुए' में से आनंद लेते हैं। संसार के सुख तो रोंग बिलीफ़ से हैं। यह ज्ञान यदि होता न, तो भी कुछ चलता, लेकिन यह तो रोंग बिलीफ़ से आगे बढ़ता ही नहीं! विवरणपूर्वक उन सुखों को देखे न तो भी वे कल्पित सुख समझ में आ जाएँ, लेकिन यह तो जब तक रोंग बिलीफ़ नहीं जाती, तब तक उसी में सुख महसूस होता है।

सीधे संयोग मिलें तो सुख मिलता है और उल्टे संयोग मिलें तो दु:ख को निमंत्रण देता है। कोई व्यक्ति हो और उसे अगर जुए का और शराबी के साथ शराब पीने का कुसंग मिले, तो वह संयोग उसे दु:खी करता है। और सत्संग में बैठे तो सुख मिलता रहता है। यह तो, व्यक्ति कौन से संग में है, उस पर से उसे कैसा सुख होगा, वह समझ में आता है।

दु:ख तो किसे कहा जाता है?

खुद को दु:ख है ही नहीं। जबकि दु:ख पड़ता है दूसरे पर, लेकिन समझ में नहीं आता इसलिए खुद, अपने आप पर दु:ख ले लेता है। यदि तीन दिन खाने को नहीं मिले, पीने को नहीं मिले, तो उसे दु:ख कहते हैं। खाने-पीने का सबकुछ अच्छी तरह मिलता है, फिर भी यह दूषम मन सभी दु:ख इकट्ठे करता है और दु:ख को स्टॉक करता है। इन्हें तो भला दु:ख कहते होंगे?! दु:ख तो किसे कहते हैं? खाने को नहीं मिले, कपड़े पहनने को नहीं मिलें, सोने को नहीं मिले, वे सब दु:ख कहलाते हैं। ये सब मिल जाएँ तो फिर दु:ख किसे कहेंगे? ये तो संसार में दूषम मन के कारण दु:ख हैं, वह सुषम मन बन जाए, तब सुखी हो जाएँगे! जब मन बिगड़ जाता है, तब आधि (मानसिक पीड़ा) को निमंत्रण देता है, नहीं होती फिर भी आधि को बुलाता है। अगर कभी दाढ़ दु:खे तो उसे दु:ख कहा जा सकता है। बाकी दु:ख तो है ही नहीं, लेकिन लोगों ने सारा अजंपा (बेचैनी, अशांति, घबराहट) किया है।

जिसके उपाय मिल सकें, उसे दुःख कहा जाता है। उपाय हों, तभी दुःख कहलाता है। जिसका उपाय नहीं है, वह दुःख कहलाता ही नहीं। जो दुःखता है, उसका उपाय करते ही हैं न! यह पैर है, वह लड़ाई में कट जाए, तब तो वह पैर फिर से नहीं आ सकता, इसलिए वह दुःख नहीं कहलाता, क्योंकि उपाय नहीं है। लेकिन पैर में फुँसी पकी हो तो वह दुःख कहलाता है, क्योंकि वह मिटाई जा सकती है, उसका उपाय है।

कोई कहे, मुझे सब ओर से सुख है, फिर भी इस पैर में दाद हुआ है, ज़रा इतना ही दुःख है। अरे इसे दुःख कैसे कहेंगे? इसे तो हाथ अपने आप खुजलाता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, हमारे आर्थिक संयोग बदल गए हैं, वह?

दादाश्री : वे तो बदलते रहते हैं। ये दिन के बाद रात आती है न? यह तो आज नौकरी नहीं है, लेकिन कल नई मिल जाएगी। दोनों बदल जाते हैं। कई बार आर्थिक दुःख होता ही नहीं। लेकिन उसे लोभ लगा होता है। कल सब्ज़ी के पैसे हैं या नहीं इतना ही देख लेना होता है। उससे अधिक नहीं देखना होता। बोलो अब ऐसा दुःख है आपको?

प्रश्नकर्ता : ना!

दादाश्री : तो फिर उसे दुःख कहेंगे ही कैसे? यह तो बिना दुःख के दुःख गाते रहते हैं। उसके बाद फिर उससे हार्ट अटैक आता है, *अजंपा* रहता है और खुद दुःख मानता है। जिसका उपाय नहीं, उसे दुःख ही नहीं कहा जा सकता। जिसके उपाय हों उसके तो उपाय करने चाहिए, लेकिन यदि उपाय हो ही नहीं तो वह दुःख है ही नहीं।

यह काल कैसा है? इस काल के लोगों को तो, अभी कहाँ से लक्ष्मी ले आऊँ, कैसे दूसरों का छीन लूँ, किस तरह मिलावट वाला माल देना, *अणहक्क* के विषय को भोगते हैं, और उसमें से फुरसत

मिले तब और कुछ ढूँढेंगे न? इससे सुख कहीं बढ़े नहीं हैं। सुख तो कब कहलाता है? मेन प्रोडक्शन करे तो। यह संसार तो बाइ प्रोडक्ट है। पूर्व में कुछ किया होगा, उससे यह देह मिली, भौतिक चीज़ें मिलीं, स्त्री मिलती है, बंगले मिलते हैं। यदि मेहनत से मिल रहा होता, तब तो मज़दूर को भी मिलता, लेकिन वैसा नहीं है। आज के लोगों को गलतफ़हमी हो गई है। इसीलिए ये बाइ प्रोडक्शन के कारखाने खोले हैं। बाइ प्रोडक्शन का कारखाना नहीं खोलना चाहिए। मेन प्रोडक्शन यानी मोक्ष का साधन 'ज्ञानी पुरुष' से प्राप्त कर लें, फिर संसार का बाइ प्रोडक्शन तो अपने आप मुफ्त में आएगा ही। बाइ प्रोडक्ट के लिए तो अनंत जन्म बिगाड़े, दुर्ध्यान करके! एक बार तू मोक्ष प्राप्त कर ले, तो तूफान खत्म हो जाए!

प्रश्नकर्ता : कोई आत्महत्या करके मर जाए तो क्या होता है?

दादाश्री : भले ही आत्महत्या करके मर जाए, लेकिन वापस फिर से यहीं पर कर्ज़ चुकाने आना पड़ेगा। इंसान है तो उसके सिर पर दु:ख तो आएँगे ही, लेकिन उसके लिए कहीं आत्महत्या करते हैं? आत्महत्या के फल बहुत कड़वे हैं। भगवान ने उसके लिए मना किया है, बहुत खराब फल आते हैं। आत्महत्या करने का तो विचार भी नहीं करना चाहिए। ऐसा जो कुछ भी कर्ज़ हो तो वह वापस दे देने की भावना करनी चाहिए, लेकिन आत्महत्या नहीं करनी चाहिए।

दु:ख तो रामचंद्र जी को था। उनके चौदह साल के वनवास के एक दिन का दु:ख, वह इन चिड़ियों (कमज़ोर इंसानों) की पूरी ज़िंदगी के दु:ख के बराबर है! लेकिन अभागे 'चें-चें' करके सारा दिन दु:ख गाते रहते हैं।

सुख-दु:ख तो निमंत्रित मेहमानों जैसे हैं, आएँ तब धक्का नहीं मार सकते बल्कि उनका तो सत्कार करना चाहिए। संसार, वह दु:ख का सागर है। व्यवहार अच्छी तरह चलाने में किसी का डर नहीं होना चाहिए। धौल खाना पसंद नहीं हो, और यदि बहीखाता बंद करना हो

तो धौल देते समय सोचना कि वापस आएगी, तब वह सहन की जा सकेगी या नहीं?

तीन प्रकार के दु:ख हैं। देह के दु:खों को 'कष्ट' कहते हैं, जिसे प्रत्यक्ष दु:ख कहते हैं। दाढ़ दु:खे, आँखें दु:खें या पक्षाघात हो जाए तो वे सभी दु:ख, वे देह के दु:ख हैं। दूसरे हैं वाणी के दु:ख, उन्हें 'घाव' कहते हैं। हृदय में घुस जाएँ तो फिर जाते नहीं। और तीसरे मन के दु:ख, वे 'दु:ख' कहलाते हैं। अपने को मन के दु:ख या वाणी के घाव नहीं रहने चाहिए, लेकिन कष्ट तो आएँगे। जो भी सहन करना पड़ता है, वह सब कष्ट ही कहलाता है। लेकिन हमें ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहकर सहन करना चाहिए। लेकिन ये वाणी के घाव और मन के दु:ख नहीं होने चाहिए। ये इन्कम टैक्स के ऑफिसर कहें कि 'आपके ऊपर इतना टैक्स लगा देंगे', ऐसा बोलें तो वह तो टैप रिकॉर्ड है। इसलिए उस वाणी का घाव हमें नहीं लगना चाहिए।

किसी को हार्ट अटैक आया था, तब उसे छाती में दु:ख रहा था, तो कभी इन भाई को छाती में दु:खने लगे तो कहता है कि मुझे हार्ट अटैक आ जाएगा तो? यह तो निरा दु:ख बढ़ाता है। इसके बजाय तो यदि ऐसा विचार आए तो कहना कि 'तू बाहर जा।' यह देह तो जाने वाली है, वह कभी न कभी तो जाएगी ही और वह 'व्यवस्थित' के अधीन है न? तो फिर उस विचार से दु:ख किसलिए? कितने कष्ट पड़े हैं वे देखने हैं, और कष्ट नहीं हैं तो रह न मस्ती में! *'दादा, दादा बोलता न थाकूँ'* - उसमें रह न!

भगवान ने कहा था कि जितने देह के कष्ट हैं, उतने को ही दु:ख मानना, बाकी के सब दु:ख, वे असल में दु:ख नहीं हैं। जानवरों को दु:ख क्यों नहीं है? क्योंकि उनका मन सीमित है। उनके लिए खाने का ले जाएँ तो गाय दौड़ती हुई आती है, खाना मिलेगा इसलिए। लकड़ी लेकर जाएँ तो भाग जाती है। इतना ही है उनका मन। लेकिन इसके अलावा है क्या उन्हें कोई और झंझट? इन गायों को मन का चक्कर नहीं है, इसलिए उन्हें मन के दु:ख नहीं हैं और उनका संसार

तो अपने संसार जैसा ही है। यानी उन्हें अक़्ल नहीं फिर भी उनका चलता है तो फिर अपना क्यों नहीं चलेगा? और ऊपर से हमारे पास मन का चक्कर है, वह अतिरिक्त, तो उसका लाभ लो न! यह मन का चक्कर दु:खदायी कैसे हो सकता है? यदि दु:ख के विचार आएँ तो सभी को डिसमिस कर दें और न हो तो अंत में उन्हें एक्सेप्ट न करें।

जैसे इन गायों-भैंसों को कष्ट हैं, वैसे ही हमें भी कष्ट हैं, लेकिन उन्हें वाणी का झंझट नहीं है। हम गालियाँ दें तो उन्हें हर्ज नहीं है। उनका मन सीमित है और बुद्धि भी सीमित है। इन अतिरिक्त दु:खों को तो डिसमिस कर देना है। इन गायों-भैंसों को है कोई झंझट? उनके बच्चों की शादी करवाने की है उन्हें कोई चिंता?

यह कैसा है कि फुल लाइट में बिच्छू घुसा तो फिर भीतर घबराहट और डर लगता रहता है। लेकिन यदि फुल लाइट को डिम कर दें तो फिर बिच्छू नहीं दिखेगा, वह फिर नहीं डरेगा। फुल लाइट को डिम किया जा सकता है, लेकिन डिम को फुल नहीं किया जा सकता। इन गायों-भैंसो का चल जाता है तो क्या अपना नहीं चलेगा? जिन्हें भान नहीं है, ऐसे लोगों का भी चलता है न? पूरी दुनिया ही चल रही है तो फिर छोड़ न यह सब!

हम स्वरूप ज्ञान देते हैं, उसके बाद दु:ख किसे कहेंगे? इस देह को स्पर्श करे-वह, इन कपड़ों को स्पर्श करे-वह नहीं। यह तो कपड़ों को स्पर्श करे तब भी कहेगा, 'मुझे दु:ख हुआ!' शादी में जा रहे हों और ऊपर से किसी ने थूक दिया तो कहेगा कि, 'इसने मुझ पर थूका।' तो हम कहते हैं कि, 'हाँ, उसने तुझ पर थूका वह ठीक है। लेकिन वह कुछ तेरा दु:ख नहीं है।' दु:ख तो किसे कहते हैं कि जो देह को स्पर्श करे वह।

पत्नी को स्पर्श करने वाला दु:ख तो पत्नी को स्पर्श किया कहा जाएगा। उसे हम 'मन पर' किसलिए लें? उसे तो ज्ञान में लेना चाहिए।

हम हर एक बात का पृथक्करण कर देते हैं। व्यापार में नुकसान

हो तो कहते हैं कि व्यापार को नुकसान हुआ। क्योंकि हम लोग फ़ायदे-नुकसान के मालिक नहीं है, तब फिर नुकसान हम किसलिए सिर पर लें? हमें फायदा-नुकसान स्पर्श नहीं करते। और यदि नुकसान हुआ और इन्कम टैक्स वाला आए तो व्यापार से कह देते हैं कि, 'हे व्यापार, तेरे पास चुकाया जा सके उतना हो तो इन्हें चुका दे, तुझे चुकाना है।'

तू कहे कि, 'कान दुःख रहा है', तो मैं तेरी सूनूँगा, 'दाढ़ दुःख रही है।' तो भी मैं सूनूँगा। 'भूख लगी है', वह भी मैं सूनूँगा। उसे दुःख कहते हैं। और तू कहे कि, 'खिचड़ी में घी नहीं है', तो वह नहीं सूनूँगा। इस देह में तो इतनी सी खिचड़ी डालें तो वह शोर नहीं मचाती। फिर तुझे जो ध्यान करना हो वह करना, नहीं तो दुर्ध्यान करना हो तो वह कर, तुझे पूरी छूट है!

ये तो बिना काम के दुःख सिर पर लेकर फिरते हैं। घर में कढ़ी ढुल जाए तो सेठ उसे सिर पर ले लेता है कि 'करम फूटे हैं जो कढ़ी ढुल गई', उसे दुःख मानता है। उसी तरह व्यापार में भी सेठ दुःख सिर पर लेकर फिरता है। कितने ऑफिस के दुःख होते हैं और कितने समाज के भी दुःख होते हैं। लेकिन उन्हें दुःख नहीं कहा जा सकता। हम तो व्यापार का दुःख व्यापार के सिर पर और समाज का दुःख समाज के सिर पर डाल देते हैं। अगर तेरे बाल काट ले तो उसे दुःख नहीं कहेंगे। कान काटे तो उसे दुःख कहा जाता है क्योंकि वेदना होती है। फिर भी, अपने सत्संग में आए तो वह दुःख भी भूल जाता है, कान की वेदना भी भूल जाता है!

एक बाप था। वह एक डॉक्टर का परिचित था। उसके बेटे को उँगली में चोट लगी थी, वह फिर पक गया। इसलिए उसका ऑपरेशन करना था। बाप ने बेटे को बहुत बिगाड़ रखा था। बाप बहुत पैसे वाला था। अब डॉक्टर ने कहा कि 'मैं घड़ी भर में ही ऐसे ऑपरेशन कर दूँगा, आप चिंता मत करना।' लेकिन सेठ ने कहा कि, 'मुझे ऑपरेशन थियेटर में बैठने दो।' सेठ तो बड़े आदमी, इसलिए डॉक्टर को उन्हें बैठने देना पड़ा। अब बाप बैठा हुआ था ऐसे आठ फुट दूर

और डॉक्टर ने उँगली का ऑपरेशन करने के लिए चीरा लगाया। अब वहाँ तो कोई तार नहीं जोड़ा था, कुछ भी नहीं था, फिर भी इस मूर्ख को बिना तार के आँख में से पानी निकलने लगा। ऐसे बिना तार के पानी निकले तो क्या होगा? उसे तो बेवकूफ ही कहना पड़ेगा। रोने जैसा नहीं है यह जगत्। और जहाँ रोने की नौबत आए, वहाँ पर हँसना। यह कैसा है कि अच्छी रकम से भाग लगाएँ तो खराब रकम पूरी उड़ जाती है। जहाँ दु:खों का भागाकार करना हो, वहाँ उनका गाना गाकर उनका गुणा करता है, इसके बजाय तो हँसकर उस रकम को मिटा दे, तो शेष नहीं बचेगा!

एक व्यक्ति कह रहा था कि, 'बिरादरी में मेरी इज़्ज़त गई।' वह बिरादरी का दु:ख, उसमें तुझे किसका दु:ख? दु:ख तो देह को स्पर्श करे वह कहलाता है। महावीर भगवान की देह को दु:ख ने स्पर्श किया था। उनके कानों में नरकट डाल दिए थे, वे जब निकाले तब ऐसी वेदना हुई कि आँखों में से पानी निकल पड़ा और ज़ोर से चीख निकल गई। ऐसा तो सभी को होता है। देह और आत्मा तो अलग हैं, लेकिन जब तक माना हुआ आत्मा रहता है, तब तक देह जीवित रहती है। प्रतिष्ठित आत्मा कन्ज़्यूम हो जाए, काम में आ जाए, उसके बाद देह खत्म हो जाती है।

अत: दु:ख किसे कहते हैं? स्पर्श करे, उसे। बेटे की उँगली कट जाए तो क्या? वह तो बेटे को दु:ख हुआ, लेकिन उसमें तो बाप भी दु:ख अपने सिर ले लेता है। भगवान क्या कहते हैं कि हमने बेटे को एक पाउन्ड दु:ख दिया था, उसमें से बाप आधा पाउन्ड लेकर घूमता है और माँ पाव पाउन्ड लेकर घूमती है। अब इन्हें मूर्ख नहीं तो क्या कहेंगे?

तू मुझे कहे कि, 'दादा, पेट में दर्द हो रहा है।' और वहाँ पर मैं कहूँ कि, 'तू आत्मा है न?' तब तो मैं ज्ञानी नहीं कहलाऊँगा। वह तो हमें सुनना ही पड़ेगा। लेकिन 'खिचड़ी में घी नहीं मिला' ऐसा कहे, तो वह हम नहीं सुनेंगे। इसे दु:ख नहीं कहते।

यह बहुत गहन बात है। यदि कोई भी दु:ख है तो उस दु:ख का उपाय होता ही है। दाढ़ दु:खे तो उसे दु:ख कहते हैं, क्योंकि डॉक्टर के पास जाकर इलाज करवा सकते हैं, दाढ़ निकलवाई जा सकती है। दु:ख तो किसे कहते हैं? जिनके उपाय हों, उन्हें। जिनके उपाय नहीं हों, उन्हें दु:ख कहेंगे ही नहीं। यह तो बेटे को एक पाउन्ड दु:ख था और उसमें तूने किसलिए और आधा पाउन्ड ले लिया? कुत्ते के बच्चे (पिल्ले) को चोट लगे तो कुत्ते नहीं रोते, उसे चाटकर घाव भर देते हैं। उसकी लार में घाव भरने की शक्ति होती है। उसे खुद को कुछ हो जाए तो चीखता-चिल्लाता है! और इस निराश्रित (मनुष्य) को तो दूसरों को हो जाए, तब भी खुद सिर पर ले लेता है!

एक व्यक्ति आया था। वह बोला, 'मुझ पर तो भारी पीड़ा आ पड़ी है।' मैंने पूछा, 'क्या है?' तो वह कहता है, 'पत्नी को डिलीवरी होने वाली है।' पत्नी डिलीवरी के लिए गईं तो वह कुछ नया है? इन कुत्ते-बिल्ली सभी को डिलीवरी होती है न? पोस्ट वाले भी डिलीवरी करते हैं, उसमें नए जैसा है ही क्या? अंदर डरता है कि पड़ोसी की स्त्री डिलीवरी के समय खत्म हो गई थी, तो मेरी पत्नी का क्या होगा? उसके बाद हमने उसे बात समझाई, और उसे समाधान करवा दिया। कोई मंत्र बता देते हैं कि, 'यह बोलना', ताकि उसमें उसका ध्यान रहे। वर्ना वही के वही विचार करता रहेगा कि, 'ऐसा हो गया था, वह ऐसा हो जाएगा तो?' ऐसे विचार करेगा तो फिर वैसा असर भी होगा न? यह तो, यदि इसे दु:ख माने और उसका ही विचार करे, तब उससे तो कुछ होने वाला नहीं हो, फिर भी वैसा हो जाता है। विचारों के असर से ही तो बिगड़ता है सब! जिसका विचार नहीं आता, वह काम सफल होता है। जहाँ विचार आए, उतना बिगड़ा, क्योंकि निराश्रित के विचार हैं न? आश्रित के विचार होते तो अलग था!

यह कहे कि, 'वह स्त्री मुझे ऐसा कहती है और यह ऐसा कहती है।' वह स्पर्श नहीं हुआ है, उसे दु:ख नहीं कह सकते। यह जो इन्वाइट करते हैं, उसे दु:ख नहीं कहा जा सकता।

इस बेटे का दु:ख एक-एक सेर ले लेता है। बेटा चला जाता है, तब तू क्यों नहीं चला जाता? लेकिन वहाँ तो नहीं जाता।

ज्ञानी तो बहुत समझदार होते हैं, उन्होंने सब तरह से हिसाब निकाल लिए होते हैं। ऐसा काल आता है तो क्या उसमें उन्हें दु:ख नहीं आते होंगे? आते हैं। लेकिन सेटिंग करके रखते हैं। पोस्ट ऑफिस में सोर्टिंग के ख़ाने होते हैं न? यह नडियाद का ख़ाना, यह सूरत का ख़ाना, वैसे ही ज्ञानी ऐसी व्यवस्था करके चैन से सो जाते हैं कि यह व्यापार का ख़ाना, यह समाज का ख़ाना, यह ऑफिस का ख़ाना।

स्वरूप का ज्ञान मिलने के बाद बिल्कुल भी दु:ख नहीं रहता, ऐसा है!

अगर सिनेमा की सीलिंग(छत) गिर पड़े तो हमें या किसी और को नहीं लगे तो अच्छा। अगर किसी को लग जाए तो 'कोई मरा तो नहीं है, इसलिए अच्छा हुआ', इस तरह समझ का अवलंबन लेना चाहिए।

हमारे कान्ट्रैक्ट के काम में समाचार आए कि पाँच सौ टन लोहा समुद्र में डूब गया तो पहले हम पूछते हैं कि, 'अपना कोई आदमी मर तो नहीं गया न?' मरते तो सब खुद के उदय से हैं, लेकिन अपने निमित्त से नहीं होना चाहिए।

जिसका जिस खाते का हो, उस खाते में रख देना चाहिए। जो शरीर को स्पर्श करता है, उतनी ही झंझट है। फादर को हुआ हो तो हमें वह सिर पर नहीं लेना है। फिर भी खोज-खबर रखनी चाहिए कि क्या हुआ? कहाँ चोट लगी? फिर सभी दवाइयाँ वगैरह सब तुरंत ही ले आनी चाहिए, लेकिन ड्रामेटिक। यदि ड्रामेटिक नहीं होता तो बाप मरे, तब बेटे को भी साथ में जाना ही चाहिए न? ये मरते समय ड्रामा और जब चोट लगे उसमें 'ड्रामा' नहीं, ऐसा कैसे चलेगा?

'ज्ञानी पुरुष' किसलिए हमेशा आनंद में रहते हैं? क्योंकि सभी सेटिंग करनी आती है और वही आपको सिखाते हैं। आपको यह आता नहीं है, इसीलिए तो आपने हमें यहाँ आसन पर बैठाया है!

ये मास्टर जी होते हैं, वे बच्चे को दो सवाल गुणा के सिखाते हैं और यदि बच्चे को वह नहीं आता तो उसे मारते हैं। घर में मास्टर बन न? लेकिन पत्नी के पास मास्टर नहीं बनता, नहीं तो पत्नी ही मारे!

सत्ता का उपयोग करे वह मूर्ख

सत्ता प्राप्त होने के बाद जो सत्ता चलाता है, वह मूर्ख कहलाता है। जो सत्ता का उपयोग करे, वह मूर्ख कहलाता है। सत्ता प्राप्त नहीं हुई हो तब तक भाव रहता है कि सत्ता का उपयोग करूँगा। लेकिन सत्ता प्राप्त हो जाए तो उसका उपयोग नहीं करना चाहिए। जब हम ऐसा कहते हैं कि, 'सत्ता का उपयोग करने वाला वह मूर्ख कहलाता है' तब उसका रोग निकल जाता है। अभी तक किसी ने गाली नहीं दी है और कोई गाली देगा भी नहीं। उसके बिना रोग नहीं निकलेगा। बाहर तो 'आओ सेठ, आओ सेठ' ऐसा किसलिए कहते होंगे? कोई काम पड़ेगा न, इसलिए। ये काम वाले सभी! वह तो कोई निष्काम पुरुष हों और जब वे डाँटें तब काम होता है।

हमारे पास एक वकील आए थे, उन्हें तो हमने बेहिसाब डाँटा था। तब उसने अपने भाई के घर जाकर कहा कि, 'ऐसे करुणा वाले व्यक्ति तो मैंने देखे ही नहीं!' ये लोग तो कैसे हैं कि इन्हें डॉक्टर, वकील वगैरह काम के हैं, लेकिन ये सब किस काम के? वह तो इतनी खिचड़ी मिल गई तो काम की, और कुछ भी काम का नहीं। यह तो जब खिचड़ी नहीं मिले तब पता चल जाता है कि कौन काम का है?

'ज्ञानी पुरुष' को मान या अपमान की कुछ भी नहीं पड़ी होती। मान के सुख, वे विषय सुख हैं। 'मेरा मानभंग होगा' जब तक ऐसा भय रहेगा तब तक कुछ भी ज्ञान प्राप्त ही नहीं हुआ, ऐसा कहा जाएगा। यह तो मूल वीतराग ज्ञान ही प्राप्त करना होता है, और कुछ भी नहीं चाहिए न!

ये दु:ख के मारे हुए कितने तो यहाँ आते हैं, लेकिन सच्ची जिज्ञासा से आएँ, तब तो बहुत काम हो जाए। यह तो दु:ख आए तब

भगवान को बुलाते हैं, लेकिन भगवान क्या कहते हैं कि, 'अरे, सुख के टाइम पर तूने मुझे नहीं बुलाया, तब एक चिट्ठी भी नहीं लिखी, इसलिए अब तू इस दु:ख के समय में चिट्ठी लिख रहा है तो मैं जवाब नहीं दूँगा।'

लोग तो कैसे हैं कि कार्य रूप में आज दु:ख उत्पन्न होता है, फिर भी वैसे के वैसे दु:ख के कारणों को बार-बार खड़े करते हैं। पिछले दु:ख के कारणों से जो दु:ख आता है उसमें नए कारण खड़े नहीं होने दें, वह काम का है।

काम निकाल लेने जैसा 'यह' एक ही स्टेशन आया है। इसलिए खाओ, पीओ और प्राप्त संयोगों को सुख से भोगो और अप्राप्त संयोगों के लिए झंझट मत करना।

सुख तो अंदर से आएँगे। और यह तो बाहर से शहद की बूँद चखने में पड़ा हुआ है!

साधु बनने के विचार क्यों आते हैं? क्योंकि अनंतकाल से उसने जो मार खाई है वह याद आती है कि सास के दु:ख, ससुर के दु:ख, पति के दु:ख, पत्नी के दु:ख, बच्चों के दु:ख, ये सभी दु:ख अनंतजन्मों से भुगते हैं, वे याद आते हैं और कहने वाले निमित्त भी मिल आते हैं कि 'इस संसार में कहाँ सुख है?' इसलिए उसे विचार आता है कि मुझे तो दीक्षा ही लेनी है, और फिर वह दीक्षा लेता है!

'ज्ञानी पुरुष' के पास तो आपका हर एक दु:ख अवश्य मिट ही जाएगा। 'इन' ज्ञानी के पास तो हर एक दु:ख दूर होगा लेकिन आप इच्छा ही नहीं करोगे तो! पैर में यदि चोट लगी हो और पट्टी लगाई हो और 'ज्ञानी' ने कहा हो कि, 'इसे उखाड़ना मत।' और फिर भी यदि उखाड़ता रहे तो उसका क्या उपाय है? यह तो ज्ञानी ने कहा है, उसे फिर क्यों हिलाना चाहिए?

व्यवहार में रोज़ सुबह उठते ही 'दादा' को याद करके निश्चय करना और पाँच बार बोलना कि, 'इस मन-वचन-काया से जगत् के

किसी भी जीव को किंचित्मात्र भी दुःख न हो, न हो, न हो!' इतना निश्चय किया तो फिर अंदर पुलिस विभाग सचेत हो जाता है। अंदर तो तरह-तरह की वंशावलियाँ हैं, बहुत बड़ी सेना है। 'ज्ञानी पुरुष' की हाज़िरी में इतना करने से शक्तियाँ आ जाती हैं, और फिर जाती नहीं। ऐसा नक्की करके, दादा को सामने बैठाकर, अगर 'वह' वंशावली खड़ी हो जाए, फिर भी उसे कुछ भी खाने-पीने का नहीं देना चाहिए!

कंटाला (बोरियत) का स्वरूप

दादाश्री : *कंटाला* का अर्थ क्या है?

प्रश्नकर्ता : कुछ अच्छा नहीं लगे, वह।

दादाश्री : *कंटाला* यानी काँटों के बिस्तर पर सोने से जो दशा होती है, वह! जब *कंटाला* आता है, तब इलाज करते हो? ड्रगिस्ट से कोई दवाई लाते हो?

प्रश्नकर्ता : वह तो कहीं भी नहीं मिलती।

दादाश्री : लेकिन कुछ तो करते होंगे न?

प्रश्नकर्ता : बाहर घूमने चला जाता हूँ।

दादाश्री : यह तो माँगने वाले को वापस बाहर निकालने जैसा है। जब *कंटाला* (ऊब जाना, बोरियत होना) आता है, तो वह क्या कहता है? नेचर क्या कहता है? कि इसका पेमेन्ट कर दो। तब वह कहता है, 'नहीं, हम ऐसा नहीं करेंगे।' और भाग-दौड़ करके रख देता है, वह तो *कंटाले* को वापस निकाल देता है। लेकिन जब वह एक साथ माँगने आएगा तब क्या होगा? जब *कंटाला* आए तब सिनेमा देखने चला जाता है। यह तो अन्य उपाय किया, विरोध किया। *कंटाला* आए तब जो स्थिर बैठा रहे तो वह शोध कर सकेगा कि, 'किस वजह से आया, यह क्या है?' तो वहाँ पर पुरुषार्थ धर्म जागृत हो सके, ऐसा है, जबकि वहाँ पर उल्टा उपाय करता है और उसे वापस धकेल देता है।

प्रश्नकर्ता : बाहर जाने से *कंटाला* नहीं मिटता है।

दादाश्री : *कंटाला* आता है तब बाहर जाता है न, उससे ब्लड सरक्युलेशन होता है इसलिए कंटाले के संयोग बिखर जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : जब *कंटाला* आए तब कुछ लोग तो व्हिस्की पीते हैं।

दादाश्री : ये तो, कंटाले का उपाय करते हैं, इसलिए ब्रांडी पीते हैं, भागदौड़ करते हैं। यह भी एक प्रकार की मूर्च्छा ही है। *कंटाला* आता है लेकिन सहनशक्ति नहीं है, वर्ना जब *कंटाला* आए तब सोचता कि 'क्यों आया? कौन सी भूल रह गई?' ऐसी सब खोज करनी चाहिए। लेकिन यह तो कुछ भी नहीं करता और भागदौड़ करता रहता है और पीता है। उससे राहत मिलती है लेकिन फिर जब पावर उतरे तब वापस *कंटाला* शुरू हो जाता है। इस संसार के दुःख एक क्षण भर के लिए भी शांति दें ऐसे नहीं हैं।

इंसान को *कंटाला* अच्छा नहीं लगता। कुछ तो जी भी जलाते हैं। जी मत जलाना। कपड़े जलाए तो नए लाए जा सकते हैं लेकिन जी जलाएगा तो फिर नया कहाँ से लाएगा?

ठाकुर जी की पूजा

दादाश्री : पूजा करते समय तो *कंटाला* नहीं आता न?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : पूजा करते हो तो पूज्य पुरुष की करते हो या अपूज्य की?

प्रश्नकर्ता : मैं तो पुष्टिमार्गी हूँ। सेवित ठाकुर जी की स्थापना की है, उनकी पूजा करता हूँ।

दादाश्री : हाँ, लेकिन वे पूज्य हैं, इसलिए स्थापना की है न? जो पूज्य नहीं हों, उनकी पूजा नहीं करनी चाहिए। पूज्य बुद्धि से पूज्य की पूजा करनी चाहिए। पूजा सिर्फ करने की खातिर ही नहीं करनी चाहिए। लेकिन पूज्य बुद्धि से पूजा करनी है। ठाकुर जी पर पूज्य बुद्धि तो है न? ठाकुर जी कभी आपके साथ बातचीत करते हैं क्या!

प्रश्नकर्ता : अभी तक तो लाभ नहीं मिला है।

दादाश्री : ठाकुर जी किस कारण से आपके साथ बात नहीं करते? मुझे लगता है कि ठाकुर जी शर्मीले होंगे या फिर आप शर्मीले हो? मुझे लगता है दोनों में से एक शर्मीला है!

प्रश्नकर्ता : पूजा करता हूँ, लेकिन ठाकुर जी को बुला नहीं सकता।

दादाश्री : बुला नहीं सकते न? हम रामचंद्र जी के वहाँ जयपुर में और अयोध्या में गए थे तो वहाँ रामचंद्र जी बोल रहे थे। हम जहाँ नई मूर्ति देखते हैं वहाँ प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। ये बिरला ने जयपुर में और अयोध्या में मंदिर बनवाए हैं, वहाँ हमने रामचंद्र जी की मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा की थी। दोनों जगह पर आश्चर्य खड़ा हुआ था। हमारे महात्मा, पैंतीस लोग बैठे थे और वहाँ के पुजारी को तो रामचंद्र जी बहुत हँसते हुए दिखाई दिए। उसने तो जब से मंदिर बना था तब से रामचंद्र जी को रूठे हुए ही देखे थे। यानी मंदिर भी रूठा हुआ और दर्शन करने वाले भी रूठे हुए। रामचंद्र जी की मूर्ति हँसी, वह देखकर पुजारी दौड़ता हुआ आकर हमें फूलमाला पहना गया। मैंने पूछा, 'क्यों?' तो वह तो फूट-फूटकर रोने लगा। कहने लगा कि, 'ऐसे दर्शन तो कभी हुए ही नहीं। आज आपने खरे रामचंद्र जी के दर्शन करवा दिए।' हमने कहा, 'यह लोगों के कल्याण के लिए किया है। अभी तक रामचंद्र जी रूठे हुए थे, इससे लोगों का क्या कल्याण होता? अब रामचंद्र जी हँसने लगे हैं। अब हमेशा के लिए हँसते छोड़कर जा रहे हैं। जो देखेगा वह भी हँसने लगेगा। हमने प्रतिष्ठा कर दी है। कभी सच्ची प्रतिष्ठा ही नहीं हुई थी।' ये जो प्रतिष्ठा करते हैं वे वासना वाले लोग हैं। प्रतिष्ठा तो आत्मज्ञानी, ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' करें तभी वह फल देती है। वासना मतलब समझ में आया न? कुछ न कुछ इच्छा कि, 'चंदूभाई काम आएँगे' इसे वासना कहते हैं। जिसे इस जगत् में किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है, पूरे जगत् का सोना दें तो भी ज़रूरत नहीं है, विषयों की ज़रूरत नहीं है, कीर्ति की ज़रूरत नहीं है, जिसे किसी प्रकार की भीख नहीं है, वे निर्वासनिक कहलाते हैं, ऐसे 'ज्ञानी पुरुष'

चाहे सो करें, मूर्ति को बोलती हुई बना देते हैं। आप मूर्ति के साथ बातचीत नहीं करते? लेकिन आपको बोलने की छूट है न? वे नहीं बोलें तो आप बोलना, उसमें क्या हो गया? 'भगवान आप क्यों नहीं बोलते? क्या मुझ पर विश्वास नहीं आता?' उनसे ऐसा कहना। इन लोगों से ऐसा कहें तो वे हँस नहीं पड़ते? उसी तरह मूर्ति भी हँस पड़ती है, एक मूर्ति है या दो?

प्रश्नकर्ता : एक।

दादाश्री : नहलाते-धुलाते हो क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, रोज़ नहलाता हूँ।

दादाश्री : गरम पानी से या ठंडे से?

प्रश्नकर्ता : गुनगुने पानी से।

दादाश्री : वह ठीक है। नहीं तो बहुत ठंडे पानी से नहलाने पर ठंड लगती है और बहुत गरम पानी से नहलाने पर जल जाते हैं। इसलिए हलका गरम पानी चाहिए। ठाकुर जी को रोज़ खाना खिलाते हो या रोज़ *अगियारस* (एकादशी) करवाते हो?

प्रश्नकर्ता : *अगियारस* तो मैं भी नहीं करता।

दादाश्री : आप नहीं करते उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन ठाकुर जी को भोजन करवाते हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : कितने बजे भोजन करवाते हो?

प्रश्नकर्ता : सुबह आठ बजे भोजन करवाकर, सुलाकर, फिर प्रसाद लेकर ऑफिस जाता हूँ।

दादाश्री : फिर दोपहर को खाना खाते हो?

प्रश्नकर्ता : भूख लगे तब कहीं भी खा लेता हूँ।

दादाश्री : हाँ, लेकिन उस समय ठाकुर जी को भूख लगी है या नहीं उसका पता लगाया?

प्रश्नकर्ता : वह किस तरह करूँ?

दादाश्री : वे फिर रोते रहते हैं बेचारे! भूख लगे तो क्या करेंगे? इसलिए आप मेरा कहा हुआ एक काम करोगे? करोगे या नहीं करोगे?

प्रश्नकर्ता : ज़रूर करूँगा, दादा।

दादाश्री : तो आप जब खाओ न तो उस समय ठाकुर जी को याद करके, अर्पण करके 'आप खा लीजिए, फिर मैं खाऊँगा, आपको भूख लगी होगी' ऐसा कहकर फिर खाना। ऐसा करोगे? ऐसा हो सके तो हाँ कहना और नहीं हो सके तो ना कहना।

प्रश्नकर्ता : लेकिन साहब, मैं ठाकुर जी को सुलाकर आता हूँ न!

दादाश्री : ना, सुला देते हो लेकिन भूखे रहते हैं न? इसलिए वे बोलते नहीं हैं न! वे कितनी देर सोते रहेंगे फिर! इसलिए बैठते हैं और सो जाते हैं, फिर बैठते हैं और सो जाते हैं। आप ऐसी खुराक तो नहीं खाते हो न, कि जो उनके लिए चले नहीं। सात्विक खुराक होती है न? तामसी खुराक हो तो हमें नहीं खिलाना चाहिए। लेकिन सात्विक खुराक हो तो आप उनसे कहना कि, 'लीजिए, भोजन कर लीजिए ठाकुरजी।' इतना आपसे हो सके ऐसा है? तो कभी ठाकुर जी आपके साथ बोलेंगे, वे खुश हो जाएँगे उस दिन बोलेंगे। क्यों नहीं बोलेंगे? अरे, ये दीवारें भी बोलती हैं! सभी बोल पड़ें, ऐसा है इस जगत् में! भगवान को रोज़ नहलाते हैं, धुलाते हैं गुनगुने पानी से नहलाते हैं, तो क्या हमेशा *अबोला* (रूठकर बोलना बंद कर देना) ही रखेंगे? कोई व्यक्ति शादी करने जाए और पत्नी लेकर आए और वह *अबोला* कर ले, तो फिर क्या फायदा? बोले ही नहीं उसका क्या करे? यानी भगवान भी बोलेंगे, यदि अपना भाव होगा तो बोलेंगे। आप यह जो पूजा करते हो, वह आपके घर के अच्छे संस्कार हैं।

प्रश्नकर्ता : मैं दूसरे शहर जाता हूँ तो भगवान को साथ ही लेकर जाता हूँ।

दादाश्री : भगवान के बिना तो कोई क्रिया करनी ही नहीं चाहिए। वास्तव में तो ठाकुर जी यह तामसी खुराक लेने को मना करते हैं, लेकिन अब क्या करें? बहुत हुआ तो *अबोला* ले लेंगे, तो बोलना बंद कर देंगे, वर्ना वैष्णवजन को तो बाहर का छूना भी नहीं चाहिए, पानी भी नहीं पीना चाहिए। कितना अच्छा पक्का वैष्णव कहलाता है! मूर्ति को नहलाता है, धुलाता है, वह पक्का वैष्णव कहलाता है। लेकिन क्या करे? अभी संयोगों के हिसाब से किसी को टोकने जैसा नहीं है। संयोगों के अनुसार होता है न? इसलिए मूर्ति नहीं बोलती, वर्ना मूर्ति बोलती है। यदि हर प्रकार से उनके नियमों का पालन करें न, तो क्यों नहीं बोलेंगे? पीतल की मूर्ति है या सोने की?

प्रश्नकर्ता : चाँदी की।

दादाश्री : आज तो सोने की मूर्ति हो तो बच्चे बाहर जाकर बेच आएँ, आपको मेरी बात पसंद आई न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा, बहुत पसंद आई।

दादाश्री : अब यदि बाहर खाना खाओगे न, तब भी ठाकुर जी को खिलाकर खाना, उससे आपकी ज़म्मेदारी खत्म हो जाएगी।

राग-द्वेष

प्रश्नकर्ता : राग किसे कहते हैं?

दादाश्री : जहाँ खुद नहीं है वहाँ पर 'मैं हूँ' ऐसा बोलना, वही सब से बड़ा राग, वही जन्मदाता है। 'मैं चंदूलाल' वही राग है, यह राग टूटा तो सभी राग टूटे। जिसे 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह लक्ष्य है, उसके सभी राग टूट गए हैं और जिसे 'मैं आचार्य हूँ, मैं कलक्टर हूँ' ऐसा भान है, उसके सभी राग खड़े हैं! ये तो ऐसे तंतीले हो गए हैं कि एक बात टेढ़ी कही हो तो आँखों में से ज़हर टपकने लगता है। वीतराग की बात को समझे नहीं हैं। 'मैं चंदूलाल हूँ' वह भान हो, तब सभी राग खड़े हो जाते हैं और शुद्धात्मा का भान हुआ और जहाँ पर है, वहाँ 'मैं हूँ' बोलता है, वह राग नहीं है, लेकिन वीतराग का लक्ष्य है। शुद्धात्मा वीतराग ही है, उसे लक्ष्य में रखने से 'बाहर' का रिलेटिव सब शुद्ध होता जाता है। वीतराग कौन? 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह अथवा 'दादा' याद आएँ, तो वह भी वीतराग का लक्ष्य है। वीतराग कौन? ज्ञानी में जो प्रकट हुए हैं, वे संपूर्ण वीतराग हैं! और ज्ञानी ने दिया है वह लक्ष्य है, वह संपूर्ण वीतराग का लक्ष्य है। यह ग़ज़ब का पद आपको दिया है!

प्रश्नकर्ता : मुझे मेरे बेटे पर बहुत राग होता है, तब फिर वह क्या है?

दादाश्री : आत्मा में राग नाम का गुण है ही नहीं, और लोग

कहते हैं कि मेरा आत्मा रागी-द्वेषी है। लेकिन यह क्या है? इस देह में इलेक्ट्रिक बॉडी है, इसलिए जब मिलते-जुलते परमाणु आते हैं तब पूरी बॉडी लोहचुंबक की तरह खिँच जाती है। उसे लोग कहते हैं कि, 'मैं खिंचा', 'मुझे राग हो रहा है', लेकिन उसमें आत्मा ज़रा सा भी नहीं खिंचता है। आत्मा में राग नाम का गुण है ही नहीं, वह तो खुद वीतराग ही है। वीतराग क्या कहते हैं कि यह पुतला जैसे नाचे, उसे जानो कि पुतला किस ओर खिंचा और किस ओर नहीं खिंचा? वीतरागों का यह शुद्ध, निर्मल मत है और वही हमने आपको दिया है।

आत्मस्वरूप हुए बिना छूट नहीं पाएँगे। गच्छ मतलब चूल्हा और मत भी चूल्हा, तो चूल्हे में कोई पड़ता होगा क्या? वह तो पोइज़न कहलाता है। मत तो सिर्फ आत्मा के लिए ही होना चाहिए, यह तो 'हमारा' और 'आपका' में पड़े हैं। भगवान तो निष्पक्षपाती मत के हैं!

राग-द्वेष, वे तो आत्मा की वृत्ति के सामने आकर्षण-विकर्षण हैं। आकर्षण के सामने रुकावट आए, वहाँ पर द्वेष होता है।

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष सजातीय और विजातीय के कारण हैं?

दादाश्री : लोहचुंबक जैसा है। राग बहुत अलग ही चीज़ है। जीवित लोगों के प्रति जो आकर्षण होता है, लोग उसे राग कहते हैं, लेकिन वह वीतरागों की भाषा का राग नहीं है। परमाणुओं का आकर्षण है, तो उसे राग कहते हैं और विकर्षण को द्वेष कहते हैं।

जब से खुद का और पराया ऐसे दो भेद डाले, तभी से राग-द्वेष खड़े होने लगते हैं, पराया कहा तो द्वेष खड़ा हो जाता है। यह तो मस्जिद देखे तो अच्छा नहीं लगता, शिव का मंदिर आए तो यह हमारा नहीं, यह पराया है, ऐसा कहते हैं तब तक द्वेष खड़ा रहता है और सभी जगह अपना लगे तो राग-द्वेष मिटते हैं। ऑपोज़िट की तरफ चला जाए तो ऑपोज़िशन नहीं रहता। किसी को सट्टे पर राग होता है और किसी को सट्टे पर द्वेष होता है तो राग वाला कहता है कि, 'सट्टा अच्छा है' और द्वेष वाला कहता है कि, 'सट्टा बुरा है' यह धंधा

अच्छा नहीं है। ये दोनों के विचार हैं। तब यदि वह ऑपॅज़िशन में से हट जाए तो ऑपॅज़िशन नहीं रहेगा।

स्त्री को छोड़ा, करोड़ों रुपये छोड़े, सब छोड़कर जंगल में गए, फिर भी राग-द्वेष होते हैं, हो ही गया न सब काम! बाधक कौन है? अज्ञान। राग-द्वेष तो बाधक नहीं हैं, लेकिन अज्ञान बाधक है। वेदांतियों ने मल, विक्षेप और अज्ञान निकालने को कहा है और जैनों ने राग, द्वेष और अज्ञान निकालने को कहा है। अज्ञान दोनों में कॉमन है, और अज्ञान किसका? तब कहे, 'स्वरूप का अज्ञान।' वह गया तो सबकुछ चला जाता है। अज्ञान निकालने के लिए आत्मा के ज्ञानी की ज़रूरत है।

जहाँ राग-द्वेष हैं, वहाँ संसार है। जहाँ राग-द्वेष नहीं हैं, फिर भले ही वह राजमहल में रह रहा हो या होटल में रह रहा हो, फिर भी वह अपरिग्रही है। और कोई गुफा में रह रहा हो, और एक भी परिग्रह नहीं दिखाई दे, फिर भी उसे यदि राग-द्वेष हों तो उसे भगवान ने परिग्रही कहा है। जिसके राग-द्वेष जाएँ वह वीतराग बन जाता है। 'मैं चंदू हूँ' वह परिग्रह है। राग-द्वेष, वही परिग्रह है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह अपरिग्रह है।

आपको ज्ञान देने के बाद आपका झगड़ा हो रहा हो फिर भी आपको राग-द्वेष नहीं होते, यह भी आश्चर्य है न? अज्ञानी को झगड़ा नहीं हुआ हो फिर भी राग-द्वेष रहते हैं। झगड़े से राग-द्वेष नहीं होते, लेकिन तंत रहे उसका नाम राग-द्वेष।

प्रश्नकर्ता : तंत मतलब क्या, दादा?

दादाश्री : *ताँता* अर्थात् तंत (सिलसिला)। पत्नी के साथ आपका झगड़ा हुआ हो और वह सुबह उठकर चाय का कप रखते समय ज़रा प्याला पटककर रखे तो हम नहीं समझ जाएँगे कि अभी तक रात के झगड़े का तंत चल रहा है? वह तंत कहलाता है। जिसका तंत गया वह वीतरागी हो गया! जिसका तंत टूट गया उसके मोक्ष की गारन्टी हम लेते हैं!

जहाँ अज्ञान है, वहाँ राग-द्वेष है और जहाँ ज्ञान है, वहाँ वीतरागता!

प्रश्नकर्ता : कोई चीज़ याद आती रहे तो वह क्या है?

दादाश्री : याद, वह राग-द्वेष के कारण है। यदि याद नहीं आ रहा होता तो पड़ी हुई गुत्थियों को भूल जाता। आपको क्यों कोई फॉरेनर्स याद नहीं आते और मृत लोग क्यों याद आते हैं? यह हिसाब है और यह राग-द्वेष के कारण है, उसका प्रतिक्रमण करने से राग-द्वेष(लगाव) खत्म हो जाएगा। जिसके ऊपर राग होता है, वह रात को भी याद आता है और जिसके ऊपर द्वेष होता है, वह भी रात को याद आता है। पत्नी पर राग करता है! लक्ष्मी पर राग करता है! राग तो सिर्फ एक 'ज्ञानी' पर ही करने जैसा है। हमें राग भी नहीं है और द्वेष भी नहीं है, हम तो संपूर्ण वीतराग हैं!

'मैं चंदूलाल हूँ' वह आरोपित जगह पर राग है और इसलिए अन्य जगह पर द्वेष है! इसका अर्थ यह है कि स्वरूप में द्वेष है। नियम कैसा है? एक जगह पर राग हो तो उसके सामने द्वेष अवश्य होता ही है, क्योंकि राग-द्वेष, वे द्वंद्वगुण हैं। इसलिए वीतराग बन जाओ, 'वीतराग', वह द्वंद्वातीत है।

लाख रुपये उधार दिए होंगे तो कोई आपके पास नहीं आएगा, लेकिन कोई माँग रहा होगा, उधार होगा, तो वह आपके पास माँगता हुआ आएगा। और उधार किसका है? रिवेन्ज का उधार है। यह तो राग हुआ और उसमें से ही बैर का उधार होता है। और उसके बाद फिर से राग होता है। और उसमें फिर से बैर बंधता है। यही संसार की परंपरा है। वीतराग जानते थे कि, संसार की इतनी कढ़ाइयों में तला जाएगा, उसके बाद मोक्ष होगा। वीतराग मोक्ष में ले जाएँगे, यह भान हो जाए, उसके बाद फिर हल आ जाता है। वीतराग के पास तो सिर्फ मोक्ष मिलता है, और कुछ नहीं मिलता।

बखान करने पर राग नहीं हो और निंदा करने पर द्वेष नहीं हो, ऐसा होना चाहिए। यह बखान करना और निंदा करना, ये दोनों एक

ही माँ के बेटे हैं, तो फिर उनके साथ जुदाई किसलिए? इसलिए हम तो बखान भी कर सकते हैं और निंदा भी कर सकते हैं। उन दोनों में मुँह सिल नहीं जाना चाहिए, मात्र भाव में फर्क है। बाकी, दोनों ही, बखान करना (*वखाणवुं*) - निंदा करना (*वखोडवुं*) चार अक्षर के हैं और 'व' 'व' से ही शुरू होते हैं। निंदा नहीं करने की 'कसम' खा लें, तो कभी न कभी वह भी छोड़नी ही पड़ेगी।

वीतरागता कहाँ है? दोनों ही, बखान करें या बदगोई करें फिर भी समदृष्टि रहे। हम नग्न सत्य बोलते हैं, लेकिन भाव में समदृष्टि ही रहती है। यह बखान और बदगोई, आपको इन दोनों के साथ निभा लेना चाहिए। फिर कोई आपको दोनों में से एक भी दे तो भी आपको वह छूएगा नहीं। बाहर यदि दोनों समान दिखेंगे तो अंदर भी दोनों समान दिखेंगे। सभी पाये समान तो दिखने ही चाहिए न! यदि पलंग के चारों पाये समान नहीं हों, तब उसे भी आधार देना पड़ता है न? जबकि ये दोनों तो एक ही माँ के बेटे हैं, तो फिर उनमें भेद क्यों? इस द्वंद्व के कारण तो जगत् खड़ा है। बखानना और बदगोई करना, ये दोनों द्वंद्व ही हैं। दोनों द्वंद्वों से द्वंद्वातीत होना पड़ेगा, वीतराग होना पड़ेगा।

पसंद-नापसंद में से राग-द्वेष

पसंद और नापसंद, ये दो भाग हैं। पसंद यानी ठंडक और नापसंद यानी अकुलाहट? यह पसंद आने वाला यदि अधिक प्रमाण में हो जाए तो वह फिर नापसंद हो जाता है। आपको जलेबी खूब भाती हो और आपको रोज़ आठ दिन तक रात-दिन जलेबी ही खिलाते रहें तो आपको क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह अच्छी नहीं लगेगी, ऊब जाएँगे उससे।

दादाश्री : पसंद-नापसंद यदि एक्सेस हो जाएँ तो वे राग-द्वेष में परिणामित होते हैं और वे यदि सहज ही रहें तो कुछ बाधक नहीं होता। क्योंकि पसंद-नापसंद, वह नोकर्म है, हल्के कर्म हैं, *गाढ़* नहीं।

उनसे किसी को नुकसान नहीं होता। ये 'ज्ञानी पुरुष' भी, यदि यहाँ पर गद्दी हो और पास में चटाई हो तो वे गद्दी पर बैठेंगे क्योंकि विवेक है और वह सभी को मान्य है। लेकिन कोई कहे कि यहाँ से उठकर वहाँ बैठिए तो हम वैसा भी करेंगे। हमें भी पसंद-नापसंद रहता है। आप हमें यहाँ से उठाकर नीचे बिठाओ तो हम वहाँ लाइक करके बैठ जाएँगे, हमें लाइक-डिस्लाइक का थोड़ा-बहुत पूर्व पर्याय है। बाकी, आत्मा को ऐसा नहीं होता। पसंद-नापसंद वह चेतनता का फल नहीं है। यह सब्ज़ी ज़रा कड़वी लगे तो तुरंत ही नापसंदगी हो जाती है, क्योंकि वह साग़-सब्ज़ी है। जिसमें पसंद-नापसंद लगे, वे सभी सब्ज़ी-भाजी हैं, वह चेतनता का फल नहीं है। 'दादा' को तो कभी भी कुछ नापसंद जैसा नहीं होता। 'दादा' तो सुबह जागते हैं तब भी ऐसे और सोते समय भी ऐसे के ऐसे ही। 'दादा' की निरंतर एक ही परिणति होती है! निरंतर आत्मरमणता में और परमानंद में ही होते हैं!

राग-द्वेष वाली वाणी कैसी होती है कि सगे भाई को मान से नहीं बुलाते और डॉक्टर को 'आओ साहब, आओ साहब' करते हैं, क्योंकि भीतर मतलब होता है कि कभी काम आएँगे। हमारी वाणी वीतराग होती है। वीतराग वाणी क्या कहती है कि, 'तू अपना काम निकाल लेना, हमें तुझसे कोई काम नहीं है।' वीतराग वाणी काम निकालकर निपटारा लाने को कहती है। 'मोक्ष हाथ में लेकर यहाँ से जा' ऐसा कहती है।

द्वेष से त्याग किया हुआ राग से भोगता है

जब तक तुझे राग-द्वेष है, तब तक तू वीतराग नहीं हुआ है। यदि नीबू का त्याग किया हो और फिर किसी भोजन में भूल से नीबू डल गया हो, तो चिढ़ जाता है। इसका अर्थ यह है कि जिसका राग से त्याग किया गया हो उसे द्वेष से भुगतना पड़ता है और जो द्वेष से त्यागा हो उसे राग से भुगतना पड़ता है। किसी ने बीड़ी नहीं पीने की कसम खाई हो और उसे यदि बीड़ी पिला दे तो उसे ऐसा हो जाता है कि मेरी कसम तुड़वा दी, तब उसे भीतर क्लेश हो जाता है। राग-

द्वेष से त्याग करना यानी क्या? कि एक चीज़ पसंद हो फिर भी द्वेष से त्याग कर देता है कि मुझे यह पसंद नहीं है, इसके बावजूद जब वह चीज़ सामने आती है तब वापस टेस्ट आ जाता है। द्वेष से त्याग करने जाए तो राग से भोगता है। यह तो सभी ने राग से त्याग दिया है इसलिए द्वेष से भुगतना पड़ता है।

जब व्याख्यान दे रहे हों, तब महाराज के राग-द्वेष नहीं दिखते, वीतराग जैसे दिखते हैं। लेकिन महाराज के विरोधी पक्ष वाले आ जाएँ तो बैरभाव दिखता है। अरे! यहाँ 'ज्ञानी पुरुष' के पास भी यदि एक पक्ष के महाराज के पास दूसरे पक्ष के महाराज आकर बैठें तो भी उन्हें सहन नहीं होता। अभी तो जहाँ-जहाँ स्पर्धक, वहाँ-वहाँ द्वेष होता है। जबकि दूसरी सभी जगहों पर वीतराग रहता है, लेकिन यदि जान जाए कि मुझसे ऊँचे पद पर हैं, तो द्वेष हो जाता है। इसलिए हम कहते हैं न कि स्पर्धारहित बनना है।

दो हीरों के व्यापारी हों और स्पर्धक बनें तो द्वेष हो जाता है, फिर राग भी उसी पर होता है, तब वापस चाय भी पीते हैं साथ में बैठकर।

भगवान राग किसे कहते हैं? 'मैं चंदूलाल हूँ', 'मैंने भोजन किया' उसे राग कहते हैं और 'मैं निराहारी मात्र उसे जानता हूँ', वह राग नहीं है। 'मैं और मेरा' वही राग है।

अज्ञान के प्रति जो राग है, वही 'राग' और ज्ञान के प्रति राग हो तो वह 'वीतराग'।

इन सभी ने राग का उल्टा अर्थ लिया है। विषयों पर राग हो, उसे वे राग कहते हैं, लेकिन वह तो आकर्षण गुण है, आसक्ति है। पूरा जगत् 'राग' में फँसा है। आसक्ति मतलब आकर्षण।

अज्ञान के प्रति प्रेम, वह राग और ज्ञान के प्रति प्रेम, वह वीतराग।

बैर

यह जगत् किससे खड़ा है? बैर से। यदि बैरभाव गया तो सबकुछ गया। यह तो बैर से ही जगत् खड़ा है, इसलिए हम समभाव से फाइलों का निकाल करने को कहते हैं। ऐसे *निकाल* करने से पुराने बैर का निकाल हो जाता है, बाद में नया बैर मत बाँधना।

दो भाई हों, एक दिन दोनों के मन जुदा हो जाएँ, तो दूसरे दिन और अधिक जुदा हो जाएँगे। फिर तो धीरे-धीरे वह भाई नापसंद हो जाएगा और फिर तो बैर बंधेगा। फिर वे दोनों कितने दिन साथ में रहेंगे? देह को बहुत पटाना नहीं चाहिए। ये 'दो भाग' एक होते हैं, उसी से तो यह जगत् खड़ा है। लोग क्या कहते हैं कि, 'मैं नहीं करता, फिर भी क्यों हो जाता है?' यह एकाकार होने से दखल हो जाती है, उसमें फिर गड़बड़ हो जाती है। उससे होली तो सुलगी हुई ही रहती है। यह तो दो भाग अलग हो गए फिर भले ही होली जले, हम तो उसके ज्ञाता-द्रष्टा हैं।

यह ग्राहक और व्यापारी के बीच का संबंध तो होता है न? और व्यापारी दुकान बंद करे तो वह संबंध छूट जाता है? नहीं छूटता। ग्राहक तो याद रखता है कि 'इस व्यापारी ने मुझे ऐसा किया, ऐसा खराब माल दिया था।' लोग तो बैर याद रखते हैं, उससे फिर इस जन्म में भले ही आपने दुकान बंद कर दी हो, लेकिन वह अगले जन्म में क्या आपको छोड़ देगा? नहीं छोड़ेगा, वह तो बैर का बदला लेकर

ही रहेगा। इसीलिए भगवान ने कहा है कि, किसी भी तरह से बैर छोड़ो। हमारे एक पहचान वाले रुपये उधार लेकर गए, फिर वापस देने ही नहीं आए। तो हम समझ गए कि यह बैर से बाँधा हुआ होगा, वह भले ही ले गए और ऊपर से हमने उन्हें कहा कि, 'तू अब हमें रुपये वापस मत देना, तुझे छूट है।' ये पैसे छोड़कर भी यदि बैर मिटता हो तो मिटाओ। किसी भी रास्ते बैर छोड़ो, नहीं तो एक ही व्यक्ति के साथ का बैर भटका देगा।

इनको कैसे पहुँच पाएँगे? इन पर तो यदि बंदूकें चलाएँगे तो गोलियाँ व्यर्थ जाएँगी ऐसा है! ऊपर से बैर बंधेगा, वह अलग। एक व्यक्ति के साथ बैर बंधे तो सात जन्म बिगाड़ता है। वह तो ऐसा ही कहेगा कि, 'मुझे तो मोक्ष में नहीं जाना है, लेकिन तुझे भी मैं मोक्ष में नहीं जाने दूँगा!' पार्श्वनाथ भगवान का कमठ के साथ आठ जन्म तक कैसा बैर था? वह बैर, जब भगवान वीतराग हुए, तब जाकर छूटा। कमठ द्वारा किए गए उपसर्ग तो भगवान ही सहन कर सकते थे! आज के इंसानों के बूते की बात ही नहीं है। पार्श्वनाथ भगवान पर कमठ ने अग्नि बरसाई, बड़े-बड़े पत्थर डाले, मूसलाधार बारिश बरसाई, फिर भी भगवान ने सबकुछ समताभाव से सहन किया और ऊपर से आशीर्वाद दिए और बैर धो डाला।

बिल्ली को जैसे चूहे की सुगंध आती है, वैसे ही बैरियों को एक-दूसरे की सुगंध आती है, उन्हें उसमें उपयोग नहीं देना पड़ता। इसी तरह जब पार्श्वनाथ भगवान नीचे ध्यान में बैठे थे, तब कमठ देव ऊपर से (आकाश मार्ग से) जा रहे थे। उन्हें नीचे दृष्टि नहीं डालनी थी फिर भी नीचे पड़ी और फिर तो भगवान पर उपसर्ग किए। बड़े-बड़े पत्थर डाले, अग्नि बरसाई, मूसलाधार वर्षा की, सबकुछ किया। तब धरणेन्द्र देव कि जिनके ऊपर भगवान का पूर्व जन्म का उपकार था, उन्होंने अवधिज्ञान में यह सब देखा और आकर भगवान के सिर पर छत्र बनकर रक्षण किया! और देवियों ने भी पद्मकमल की रचना करके भगवान को उठा लिया! और भगवान तो इतना सबकुछ हुआ

फिर भी ध्यान में ही रहे! उन्हें घोर उपसर्ग करने वाले बैरी कमठ के प्रति किंचित्मात्र द्वेष नहीं हुआ और उपकारी धरणेन्द्र देव और देवियों के प्रति किंचित्मात्र राग नहीं हुआ। ऐसे वीतराग पार्श्वनाथ भगवान स्पष्ट वीतराग मुद्रा में स्थित दिखते हैं! उनकी वीतरागता साफ दिखती है! ग़ज़ब की वीतरागता में रहे थे। चौबीसों तीर्थंकरों की मूर्तियों में वीतराग के दर्शन के लिए पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति ग़ज़ब की है!

आज तो इन लोगों को सहन करने को कुछ भी नहीं है, फिर भी रोज़ रोते रहते हैं! सारी ज़िंदगी का लेखा-जोखा निकाला जाए तो भी महान पुरुषों के एक दिन के दुःख के बराबर भी नहीं होगा, फिर भी रोते रहते हैं!

हमें निरंतर ज्ञान में दिखता है कि जगत् के लोग बैर से ही बंधे हुए हैं, और इसीलिए तो चेहरा, अरंडी का तेल पिया हो, ऐसा दिखता है! बैर से क्लेश होता है। पार्श्वनाथ भगवान को यदि थोड़ा भी पहचान लो तो वीतरागता के अंकुर फूटेंगे, लेकिन पहचानेंगे किस तरह? साँप वाले पार्श्वनाथ और सिंह वाले महावीर स्वामी! लोग तो आम को इस प्रकार पहचानते हैं कि यह रत्नागिरि है या वलसाड़ी। लेकिन उन्हें भगवान की पहचान नहीं हो पाती! अब इन्हें कैसे पहुँच पाएँ?

सुखी होने का मार्ग यही है कि किसी को भी हम से दुःख न हो!

हमें रात को बाहर से आना हो तो हमारे जूतों की आवाज़ से कुत्ता जाग नहीं जाए, इसलिए हम संभलकर चलते थे। कुत्ते की भी नींद तो होती है न! उस बेचारे को बिस्तर-विस्तर तो, राम तेरी माया! तो उसे शांति से सोने भी नहीं देना चाहिए?

एक बार रात को हमारे मुहल्ले का एक पहचान वाला व्यक्ति ज़ोरों से दौड़ता-दौड़ता जा रहा था। अब दो सौ किलो का वह बोरा रास्ते में गिर पड़ा। इसलिए दो-तीन बार लुढ़क गया! उसे मैंने पूछा कि, 'भाई, इतनी रात को इतना दौड़ते-दौड़ते क्यों जा रहा है?' तो

कहता है कि, 'जलेबी लेने दौड़ रहा हूँ! हम ताश खेल रहे थे, तो एक जना शर्त हार गया इसलिए दस रुपये की जलेबी लेने जा रहा हूँ। देर हो गई है, वह दुकान बंद न हो जाए, इसलिए दौड़ रहा हूँ!'

धत् तेरे की! यह जलेबी जड़ और तू चेतन, तो इतनी सी जलेबी इस दो सौ किलो को खींचती कैसे हैं? यह भी आश्चर्य है न?

संग असर

दादाश्री : सत्संग किसे कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : ईश्वर के घर की अच्छी बातें हों, उसे सत्संग कहते हैं।

दादाश्री : ईश्वर को तो जाना नहीं कि वे कौन हैं और कौन नहीं, उसके बिना किस तरह उनकी बातें हो पाएँगी?

सत्संग तो बहुत प्रकार के हैं। पुस्तकें आदि का आराधन करते हैं वह भी सत्संग है। संतपुरुष का संग भी सत्संग है, सत्पुरुष का संग करें, वह भी सत्संग है और 'ज्ञानी पुरुष' का संग, वह भी सत्संग है और फिर अंत में वीतराग का संग, वह भी सत्संग कहलाता है। लेकिन उन सभी के प्रकार में फर्क है।

संतपुरुष किसे कहते हैं? जिनका चित्त निर्मल हो चुका है, वे संतपुरुष। संतपुरुष को निज के स्वरूप का भान नहीं होता। जिन्हें निज स्वरूप का भान होता है, जिन्हें हम स्वरूप का ज्ञान देते हैं, वे सत्पुरुष कहलाते हैं, और उससे आगे हैं 'ज्ञानी पुरुष' जो कि मुक्ति देते हैं, जो मोक्ष का दान दे सकते हैं, वे मोक्षदाता पुरुष हैं और उनसे भी आगे वीतराग हैं जिनके दर्शन मात्र से मोक्ष हो जाता है, वे वीतराग भगवान!

ज्ञानी पुरुष, वे खुद सत् हैं इसलिए उनका संग वह सत्संग, और उसे भगवान ने परमहंस की सभा कहा है। यहाँ तो रियल की ही बात

होती है। जिस तरह हंस चोंच डुबोते ही नीर और क्षीर को अलग कर देता है, उसी तरह 'ज्ञानी पुरुष' से ज्ञान मिलते ही आत्मा और अनात्मा दोनों अलग ही हो जाते हैं, इसलिए उसे भगवान ने परमहंस की सभा कहा है। जहाँ आत्मा की, दरअसल आत्मा की बातें नहीं हैं, फिर भी धर्म की बातें होती हैं, रिलेटिव धर्म की बातें होती हैं, वह हंस की सभा है। उस जगह हिताहित के बारे में बताते हैं, वे शुभ का चारा चरते हैं और वे कभी न कभी मोक्ष पाएँगे। जहाँ पर समझदार लोग इकट्ठे नहीं होते और जहाँ लोग सिर्फ वाद-विवाद ही करते रहते हैं, एक-दूसरे की सुनने को तैयार ही नहीं हैं, उस सभा को कौओं की सभा कहा गया है। हंस की सभा में तो अनंत जन्मों से बैठते आए हैं, लेकिन यदि एक जन्म परमहंस की सभा में बैठेगा तो मुक्ति मिल जाएगी। परमहंस की सभा में आत्मा और परमात्मा की, दो ही बातें होती हैं और यहाँ तो निरंतर देवी-देवता भी हाज़िर रहते हैं। हर एक जीव मात्र को आत्मज्ञान की ही इच्छा अंतिम है। लोग तप और त्याग कर-करके मर गए, लेकिन भगवान मिलते नहीं। जिसकी भावना सच्ची होती है, उसकी ही भगवान से भेंट होती है। यहाँ हमारे पास जो चीज़ चाहिए वह मिलती है। जहाँ सभी प्रकार के खुलासे होते हैं, वह परम सत्संग। हमारा इलकाब (पदवी) क्या है, पता है? हम मोक्षदाता पुरुष हैं, आप जो माँगो वह हम देते हैं! आपको काम निकालना आना चाहिए!

अभ्युदय और आनुषंगिक फल

कविराज ने गाया है :

'सत्संग है पुण्य संचालित, चाहूँ अभ्युदय आनुषंगिक।'

'ज्ञानी पुरुष' से मिलें, तभी से दो फल मिलते हैं : एक 'अभ्युदय' यानी संसार का अभ्युदय होता जाता है, संसार फल मिलता है और दूसरा 'आनुषंगिक' यानी मोक्षफल मिलता है। दोनों फल साथ में मिलते हैं। यदि दोनों फल साथ में नहीं मिलें तो वे 'ज्ञानी पुरुष' नहीं हैं।

यह तो, बेहिसाब ओवरड्राफ्ट हैं इसलिए दिखता नहीं है। यह सत्संग करते हो, इसलिए वे ओवरड्राफ्ट पूरे होंगे ही।

यहाँ सिर्फ मोक्षफल ही नहीं है, यदि ऐसा होता तब तो एक कपड़ा भी पहनने को नहीं मिलता। लेकिन नहीं, मोक्षफल और संसारफल दोनों साथ में होते हैं।

राजा के वहाँ सर्विस तय हो जाए और राजा से मिलने जाएँ तो दृष्टिफल मिलता है। नौकरी की तनख़्वाह मिलती है, वह सेवाफल, लेकिन दृष्टिफल यानी राजा की दृष्टि पड़े और वे भाई से पूछें कि, 'आप कहाँ रहते हो?' ऐसा जानने के बाद उसे रहने के लिए अच्छी जगह मिल जाती है, वह दृष्टिफल। सिर्फ राजा की दृष्टि से ऐसा फल मिले तो 'ज्ञानी पुरुष' की दृष्टि से क्या नहीं मिल सकता? राजा तो अधूरा है, उसे तो राज्य बढ़ाने का लालच है, जबकि ये तो 'ज्ञानी पुरुष' हैं, जो संपूर्ण निरीच्छक दशा में बरतते हैं! और उनकी दृष्टि का फल तो कैसा होता है? यहाँ सत्संग में आया, तो यहाँ से वह अवश्य दृष्टिफल लेकर ही जाता है। सेवाफल में तो राजा से ढाई सौ रुपये मिलते हैं। राजा को वंदन करके आया इसीलिए तो दृष्टिफल मिलता है।

'ज्ञानी पुरुष' के दर्शन किए उससे तो सब से बड़ा फल, अभ्युदय और आनुषंगिक मिलते हैं और उससे तो उच्चतम प्रकार की शांति रहती है। संसार के विघ्न बाधक नहीं होते और मोक्ष का काम होता है, दोनों साथ में ही होते हैं।

यदि वीतराग भगवान के दर्शन करना आए, तो भले ही वे मूर्ति हैं, फिर भी अभ्युदय और आनुषंगिक फल मिलता है। लेकिन वह दर्शन करना तो 'ज्ञानी पुरुष' समझाएँ तब आता है। वर्ना किसी को आता नहीं है न। 'ज्ञानी पुरुष' तो मूर्तामूर्त हैं, इसलिए उनके दर्शन से तो अभ्युदय और आनुषंगिक दोनों फल मिलते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' के दर्शन के लिए तो कोटि जन्मों के पुण्य का चेक भुनाना पड़ता है। हज़ारों सालों में 'ज्ञानी पुरुष' प्रकट होते हैं, और उसमें भी ये तो

'अक्रम ज्ञानी', यानी कोई जप-तप नहीं और बिना मेहनत के मोक्ष! 'ज्ञानी पुरुष' से दृष्टिफल मिलता है और उससे मोक्षफल मिलता है और सेवाफल से संसार का अभ्युदय होता है। यहाँ सेवा में परम विनय रहे, वही सेवा। यहाँ 'ज्ञानी पुरुष' को कोई कमी होगी? वे किसी चीज़ के भिखारी (इच्छुक) नहीं होते। फूल से विनय, वही सेवा! जिन्हें सांसारिक अड़चनें हों, वे 'ज्ञानी पुरुष' को फूल चढ़ाएँ तो अड़चनें दूर हो जाती हैं। भगवान ने भावपूजा और द्रव्यपूजा दोनों साथ में रखी हैं। फूल तोड़कर आप सूँघो या और कोई उपयोग करो तो उससे आपका उतना ही नुकसान है, लेकिन यदि सिर्फ तोड़ा ही हो तो तोड़ने का ही नुकसान है। लेकिन यदि भगवान को चढ़ाने के लिए फूल तोड़े हैं तो विशेष फ़ायदा होगा। अभ्युदय और आनुषंगिक, भावपूजा के ये दो फल हैं, मोक्ष में भी ले जाते हैं और साथ में वैभव भी रहता है। संसारी को द्रव्यपूजा करनी है, और आत्मज्ञानियों को सिर्फ भावपूजा ही करनी होती है। लेकिन इस काल में इस क्षेत्र से मोक्ष नहीं है, इसलिए अभी तो दो-तीन जन्म शेष होने के कारण द्रव्यपूजा और भावपूजा दोनों करनी चाहिए।

भगवान महावीर थे तब अभ्युदय और आनुषंगिक, ये दोनों शब्द थे और उनके फल मिलते थे। फिर तो वे शब्द, शब्द ही रह गए। यदि आनुषंगिक फल मिले तो अभ्युदय फल सहजरूप से मिलता ही है। अभ्युदय, वह तो बाइ प्रोडक्ट है। जिसने अंतिम स्टेज की आराधना की, आत्मा का आराधन किया, उसे बाइ प्रोडक्ट में जिस चीज़ की ज़रूरत होती है वह अवश्य पूर्ण होती है। 'ज्ञानी पुरुष' मिलें और सांसारिक अभ्युदय नहीं हो तो साधु बन जाएगा।

यहाँ 'सत्संग' में बैठे-बैठे कर्म के बोझ कम होते जाते हैं और बाहर तो निरे कर्म के बोझ बढ़ते ही रहते हैं। निरी उलझनें ही हैं। हम आपको गारन्टी देते हैं कि जितना समय यहाँ सत्संग में बैठोगे उतने समय तक आपके काम-धंधे में कभी भी नुकसान नहीं होगा और लेखा-जोखा निकालोगे तो पता चलेगा कि फायदा ही हुआ है। यह

सत्संग, यह क्या कोई ऐसा-वैसा सत्संग है? केवल आत्मा हेतु ही जो समय निकाले, उसे संसार में नुकसान कहाँ से होगा? सिर्फ फायदा ही होगा। लेकिन ऐसा समझ में आए, तब काम होगा न? यहाँ सत्संग में कभी-कभी किसी समय ऐसा काल आ जाता है कि यहाँ पर जो बैठा हो, उसका तो एक लाख साल का देवगति का आयुष्य बंध जाता है या फिर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेता है! इस सत्संग में बैठे तो यहाँ पर आना यों ही बेकार नहीं जाता। यह तो कैसा सुंदर काल आया है! भगवान के समय में सत्संग में जाना हो तो पैदल चलते-चलते जाना पड़ता था जबकि आज तो बस या ट्रेन में बैठे कि तुरंत ही सत्संग में आया जा सकता है। ऐसे काल में यह स्वरूप ज्ञान मिल जाए तब तो फिर काम ही निकाल लेना है न! आत्मानुभवी पुरुष कहीं पर होते ही नहीं हैं और कभी जब ऐसे पुरुष प्रकट हों तब तो काम निकाल ही लेना चाहिए। आत्मानुभवी पुरुष के अलावा अन्य किसी की वाणी दिल को ठंडक देने वाली नहीं होती है, और होगी भी नहीं!

इस वर्ल्ड में सिर्फ यही एक रियल सत्संग है और अन्य सभी जगह पर तो रिलेटिव है। उसे कुछ न कुछ चाहिए ही होता है। वह लक्ष्मी का भिखारी होता है, नहीं तो विषयों का भिखारी होता है, नहीं तो मान या शिष्य बनाने का भिखारी होता है। यदि दुकान पर बोर्ड लगाया हो कि 'क्रोध की दुकान' और वहाँ शांति खोजने जाओ तो दिन बदलेंगे? नहीं बदलेंगे। इसलिए दुकानदार से पहले पूछ लेना और पक्का कर लेना। गुरु जी से कहें कि, 'आप कहें तो छः महीने-बारह महीने बैठे रहने को तैयार हूँ लेकिन यदि मुझे मोक्ष मिल रहा हो तो, मुक्ति मिल रही हो तो, मेरी सारी ही चिंताएँ चली जाएँ तो, वर्ना मैं दूसरी दुकान की खोज़ करूँ।' अनंत जन्मों से इन तरह-तरह की दुकानों में किश्तें ही जमा करवाते आए हैं न! फिर भी मोक्ष तो मिला ही नहीं। इसलिए गुरु जी से कहें कि, 'यदि मोक्ष दे सकते हैं तो मैं किश्तें जमा करवाऊँ।' ऐसे थोड़ा छेड़ कर देखने में कोई हिंसा नहीं हो जाती। और फिर यदि गुरु जी गुस्से हो जाएँ तो समझ लेना चाहिए कि हमें तुरंत ही जवाब मिल गया! इस दुकान में तो मोक्ष मिले, ऐसा

है ही नहीं। फिर भी गुरु जी को खुश करके, सौ-दो सौ रुपये खर्च करके, इतने से ही पूरा हो गया, ऐसा समझकर निकल जाना।

सत्संग, वह किसलिए है? सभी के समाधान के लिए, आपके पज़ल सोल्व करने के लिए है। मोक्ष का मार्ग जानने के लिए है!

कुसंग, तो दुःख लाता है

दो प्रकार के संग : एक कुसंग और दूसरा सत्संग। सत्संग में आने से प्रकाश होता है, जलन बंद कर देता है और कुसंग जलन खड़ी करता है। पटाखे (हवाई का बारूद) हवा में उछालें, तब धोती जलती है और जला देती है, वैसा ही इस कुसंग का है इसलिए कुसंग को प्रत्यक्ष अग्नि समझना। इतना परहेज़ रखना है। परहेज़ रखें तो रोग फिर से उत्पन्न नहीं होता। होटल में खाना, वे खराब परमाणु हैं, वह कुसंग है। इस जगत् में कुछ भी जानबूझकर नहीं कटता है, अनजाने में कट जाता है। इसलिए सचेत रहना।

पूरा संसार कुसंग स्वरूप है और फिर कलियुग का प्रभाव! सत्संग से कुसंग के परमाणु निकल जाते हैं और नए शुद्ध परमाणु प्रविष्ट होते हैं।

सत्संग किया, ऐसा कब कहा जाएगा कि जब सभी दुःख जाएँ तब, यदि दुःख नहीं जाएँ तब तो कुसंग किया कहलाएगा। चाय में चीनी डालें तो मीठी ही लगेगी न? सत्संग से सर्वस्व दुःख जाते हैं।

कुसंग के कारण दुःख मिलते हैं। कुसंग दुःख भेजता है और सत्संग सुख देता है और यहाँ का यह सत्संग तो मोक्ष देता है। 'ज्ञानी पुरुष', पूरे जगत् में से निष्ठा, जगत् में भटकती वृत्तियों को उठाकर ब्रह्म में बैठा देते हैं। और काम हो जाता है। यह तो मुक्ति का धर्म है। 'हम' 'स्वरूप ज्ञान' दें तो निरंतर खुद का स्वरूप ही याद रहता है। नहीं तो किसी को खुद का स्वरूप याद ही नहीं रहे। लेकिन प्रकट 'ज्ञानी पुरुष', वे दीपक जला दें तो साक्षात्कार हो जाता है।

कुसंग से पाप घुसता है और फिर वह पाप काटता है। यदि फ़ुरसत में हो और कोई कुसंग मिल जाए तो फिर कुसंग से निंदा में पड़ता है और निंदा के दाग़ पड़ जाते हैं। ये सारे दुःख हैं, वे उसी के हैं। हमें किसी के बारे में बोलने का क्या अधिकार है? हमें अपना देखना है। कोई दुःखी हो या सुखी, लेकिन हमें उसके साथ क्या लेना-देना? ये लोग तो यदि राजा हो, तो उसकी भी निंदा करते हैं। खुद को कुछ भी लेना-देना नहीं होता, ऐसी पराई बात! ऊपर से द्वेष और ईर्ष्या, और उसी के दुःख हैं। भगवान क्या कहते हैं कि वीतराग बन जा। तू है ही वीतराग, ये राग-द्वेष किसलिए? तू नाम में पड़ेगा, तभी राग-द्वेष हैं न? और अनामी हो जाएगा तो वीतराग हो गया!

भगवान ने कहा था कि, 'जब तक 'ज्ञानी पुरुष' नहीं मिलते, तब तक तू जिस तालाब में पड़ा हो उसी तालाब में पड़ा रहना, अन्य किसी तालाब में जाना ही मत। अन्य किसी तालाब में तैरने जाएगा तो कीचड़ में घुसता जाएगा, और वापस उस तालाब के कीचड़ के दाग़ लगेंगे। ज्ञानी मिलें तो उस तालाब में से जल्दी से बाहर निकल जाना। 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो सभी तालाबों का तू मालिक बन जाएगा और तेरा काम बन जाएगा, वे तुझे तालाब में से तार लेंगे।

'ज्ञानी पुरुष' के संग से ज्ञानी का 'पुट' चढ़ जाता है। यदि हींग का पुट किसी पतीले में लग जाए तो छः महीने के बाद भी उस पतीले में खीर पकाएँ तो वह बिगड़ जाती है। यदि हींग के पुट का असर छः महीने तक रहता हो तो यदि कुसंग का पुट चढ़े, तब तो आपके अनंत काल बिगाड़ दे, ऐसा है। इसी तरह सत्संग का पुट भी उतना ही रहता है, लेकिन सत्संग ज़्यादा समय तक मिलना चाहिए।

यदि यह एक ही शब्द अंदर घुसा कि, 'अरे, यह दुनिया चलाने के लिए ऐसा तो करना ही चाहिए', तो हो गया! संस्कार बिगड़े बिना रहेंगे ही नहीं। ये संस्कार तो कब बिगड़ जाएँ, वह कहा नहीं जा सकता। यह ज्ञान हो, तभी संस्कार टिकते हैं।

कोई संतपुरुष हों जो दूध का व्यापार करते हों और पूरी ज़िंदगी

संतपुरुष की तरह रहे हों और उन्हें कोई व्यक्ति मिल जाए और कहे, 'अरे देख तो सही, तेरा पड़ोसी कितना कमाता है और तू तो बिल्कुल ऐसा ही रहा।' तब संतपुरुष पूछता है, 'उसने किस तरह कमाया?' तब वह व्यक्ति जवाब देता है, 'दूध में पानी डालकर ही तो न', और यह एक ही शब्द उसके अंदर उतर जाए तो बस हो चुका। इस एक ही शब्द से उसकी सारी ज़िंदगी के सभी संस्कारों पर पानी फिर जाता है।

अपने को विषय में नहीं पड़ना हो तो भी लोग डाल देते हैं। यह तो संगदोष से है सारा, यदि अच्छा संग मिले तो कुछ भी नहीं होता। यह तो, अच्छे संग से गुलाब मिलें और कुसंग से काँटें मिलें, ऐसा है। कोई ज़बरदस्ती दारू पिलाए तो नहीं पीने के लिए *तायफा* (जान-बूझकर किसी को परेशान करने के लिए किया गया फज़ीता,नाटक) करना पड़ता है। कह देना कि डॉक्टर ने मना किया है या फिर कहना कि घर में ही नहीं घुसने देंगे। इस तरह जैसे-तैसे करके उसे टाल देना चाहिए। कुसंग से तो दूर ही भले।

'वीतराग' भगवान कितने पक्के होंगे कि समझ-बूझकर मुक्त हो गए। जिनसे धूप का दुःख सहन नहीं होता, वे कीचड़ में पड़े हुए हैं। भगवान तो कहते हैं कि, 'यहाँ गर्मी में तपे तो भी अच्छा, कीचड़ में जा गिरा तब तो हो चुका!' तपा हुआ तो फिर कभी न कभी ठंडा होगा, लेकिन कीचड़ वाला कब छूटेगा? एक बार कीचड़ में गिरा फिर तो कषायों का संग्रहस्थान खड़ा हो ही जाता है, लेकिन अगर धूप में तपे तो कषाय तो हल्के पड़ेंगे! यह तो, अगर किसी कीचड़ में पड़े हुए की संगत हो जाए, तब उससे तो अगर अपने कषाय कम हों, फिर भी सामने वाले के कषाय अपने में आ जाते हैं। एक बार कीचड़ में गिरो तो फिर बहुत भारी प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए कि, 'अब फिर से नहीं गिरूँ।' लेकिन वह मिथ्यात्वी के संग में पड़ा तब तो वह कषायी, तो क्या उससे अपने में कषाय खड़े हुए बिना रहेंगे?

सत्संग निरंतर मारता रहे वह अच्छा, लेकिन कुसंग रोज़ाना दाल-चावल-लड्डू खिलाए तो भी काम का नहीं। एक ही घंटा कुसंग

मिले तो कितने ही काल के सत्संग को जला देता है। इन जंगल के पेड़ों को बड़ा करने में पच्चीस साल लगते हैं, लेकिन उन्हें जलाने में कितनी देर लगती है? 'ज्ञानी पुरुष' तो कितना कर सकते हैं? रोज़ जतन करके जंगल में पौधे उगाते हैं और जतन करके बड़े करते हैं। उन्हें फिर सत्संग रूपी पानी पिलाते हैं। लेकिन कुसंग रूपी अग्नि को उन पौधों को जलाने में कितनी देर? सब से बड़ा पुण्य तो कुसंग नहीं मिले, वह है। कुसंगी क्या अपने को ऐसा कहते हैं कि हमारे ऊपर भाव रखो? उनके साथ तो दूर से ही 'खिड़की में से ही जय श्री कृष्ण' कहना चाहिए। सच्चिदानंद संग क्या नहीं कर सकता? केवलज्ञान की प्राप्ति करवाता है!

प्रकट ज्ञानी का सत्संग

'दादा' का यह संग, यह सत्संग तो शुद्धात्मा का संग है, सब से अंतिम संग यहाँ दिया जाता है। केवलज्ञान के अलावा अन्य कुछ भी नहीं दिया जाता। लेकिन यह काल ऐसा है न कि 360 डिग्री तक की पूर्णता तक जाने नहीं देता। ज्ञान तो वही का वही है, लेकिन जो प्रवर्तन रहना चाहिए, काल के कारण वह रह नहीं पाता।

इस ज्ञान में हमने जो देखा है, वह हकीकत हमारे पास है। 'ज्ञानी पुरुष' कभी मिल जाएँ, तब जो पूछना हो वह पूछ लेना। तब यदि खुद का काम नहीं निकाल ले तो किस काम का? 'ज्ञानी पुरुष' यानी जिन्हें कुछ भी जानना शेष नहीं है।

सत्संग यानी 'ज्ञानी पुरुष' का व्यवहार देखने के लिए इकट्ठे होना, वही।

प्रश्नकर्ता : क्या मुक्ति के लिए भक्ति करनी चाहिए?

दादाश्री : भक्ति तो यदि मुक्तिमार्ग के साधनों के साथ भक्ति करें तो मुक्ति के लिए साधन मिलते हैं।

जो किसी भी चीज़ का इच्छुक हो, उसका सत्संग मोक्ष के लिए

किसी काम का नहीं है, देवगति के लिए ऐसों का सत्संग काम आता है। मोक्ष के लिए तो जो किसी भी चीज़ का इच्छुक नहीं है, उसका सत्संग करना चाहिए।

व्यवस्थित से हमें कह देना है कि, 'सत्संग के लिए राहत देना', तो वह वैसा कर देगा और अगर हम नहीं कहेंगे तो नहीं करेगा।

भीतर तो अपार सुख छलकता है, लेकिन बाहर तो देखो सुख के लिए लूट मचाते हैं, और वह भी कपट से।

कुछ भी करके सत्संग में ही पड़े रहने जैसा है और नहीं तो घर पर पड़े रहने जैसा है, लेकिन एक क्षण भी कुसंग को छूने जैसा नहीं है। वह तो विष स्वरूप है।

अपनी मेहनत व्यर्थ नहीं जाए, दिन व्यर्थ नहीं बीतें और सत्संग में रहा जा सके ऐसा करना चाहिए। 'इस' सत्संग की अधिकता रही तो काम हो गया। पूरे जगत् पर कुसंग का दबाव है। मंदिर या उपाश्रय में नहीं जा पाते, व्याख्यान में नहीं जा पाते और उसके लिए *कढ़ापा-अजंपा* भी करते हैं कि जाने की बहुत इच्छा है। मंदिर में भी नहीं जा पाते। कारण क्या है? क्योंकि कुसंग की भरमार में है इसलिए वह जाने नहीं देता और अपने यहाँ तो सत्संग की ही भरमार और कैसे जगत् विस्मृत रहता है! सभी कुछ अनिवार्य है, लेकिन जिसके लिए सत्संग अनिवार्य हो, वह तो ग़ज़ब का पुण्यशाली कहलाता है और फिर, आपको तो अलौकिक सत्संग मिल रहा है। बाहर सभी जगह जगत् में अनिवार्य रूप से कुसंग ही है। अब अनिवार्य रूप से सत्संग आया है, अनिवार्य सत्संग और वह भी घर बैठे आता है!

सत्संग में चल-विचल हुए तो भारी जोखिमदारी आ पड़ेगी। व्यवहार में चल-विचलपन चलेगा। इस धर्म में तो अगर चल-विचल हुआ तो आत्मा खो देगा, आवरण लाएगा।

जगत् का नियम है कि जहाँ रोज़ाना सत्संग होता हो वहाँ दस-पंद्रह दिनों में वह पुराना लगता है। लेकिन इस जगह पर, जहाँ परमात्मा

प्रकट हुए हैं, वहाँ सौ साल बैठो फिर भी सत्संग नित्य अनोखा लगता है, रोज़-रोज़ नया लगता है। भगवान ने कहा है कि, 'जहाँ परम ज्योति प्रकट हुई है, वहाँ सत्संग करना।'

बाहर तो धोती पाँच दिन पहनते हैं, और फिर ऐसा लगता है कि ऊब गए। बाहर तो बोध वासित लगता है, वासनामय। भगवान ने कहा है कि, 'जहाँ तीर्थंकर या आत्मज्ञानी होते हैं, वहाँ बोध निर्वासनिक होता है।' बाकी, उनके बाद तो बोध वासित ही होता है। किंचित्मात्र भी जिन्हें संसार की वासना है वह बोध वासित कहलाता है, वासना वाला बोध कहलाता है। जो ऐसा बोध दे, उसे खुद को संसार में बड़े बनने की वासना रहती है। ज्ञानी नहीं हों, तब तक वासना वाले बोध का आधार रहता है, यानी कि वासित बोध का आधार रहता है। लेकिन ज्ञानी हों, तब निर्वासनिक बोध का आधार रहता है, और उसी से मोक्ष होता है। यहाँ सत्संग में महात्मा एक-दूसरे का काम करते हैं, लेकिन अभेद भाव से, खुद का ही हो वैसे।

यह बाहर का बोध 'बासी' नहीं है लेकिन 'वासित' है। बासी तो देर से भी पच जाता है, लेकिन यह तो वासना वाला। जहाँ वासना नहीं होती, वहाँ मोक्ष होता है।

वासना बोध दो प्रकार के हैं। दूसरों के लिए वासना करे, उसे अच्छा कहा है लेकिन यदि खुद के लिए करे तो उसके लिए तो भगवान ने भी मना किया है।

जो सच्चे दिल से व्याख्यान सुनने जाएँ उन्हें अभ्युदय फल मिलता है। सच्चे दिल से सुनने वाले, व्याख्यानकारों की भूल नहीं निकालते और व्याख्यान देने वाले की सच्चे दिल से महावीर भगवान की आज्ञा पालन करने की इच्छा है न! सच्चे दिल से सुनने की इच्छा, उसका मेल कब बैठेगा? कि कभी भी भूल नहीं निकाले, तब। यह तो ओवरवाइज़ हो गए हैं, इसलिए भूलें निकालते हैं।

बाहर चाहे कैसा भी सत्संग हो, बुद्धि को कितना भी समझाएँ

कि 'श्रद्धा रख', लेकिन बुद्धि कितना मानती है? वहाँ पर मन, बुद्धि सब अलग हो जाते हैं। जबकि यहाँ तो बुद्धि खुद ही श्रद्धा रखती है। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार चारों एक हो जाते हैं। जहाँ सभी एकमत हो जाएँ, वहीं पर मोक्ष खड़ा है।

इन 'दादा' के लिए कवि क्या गाते हैं?

'परमार्थे सत्संग देता, पोताना पैसा खरची
जगहिते गाळी काया, जोता ना ठंडी गरमी।'

ये लोग भी कहाँ सर्दी-गरमी देखते हैं? माँ चार बजे उठकर बेटे के लिए पोहे छौंक कर नाश्ता बनाती है। वह कहेगी कि, 'मेरे बेटे को स्कूल जाना है इसलिए बना रही हूँ, बच्चे को सुबह नाश्ता तो चाहिए न?' तब बच्चा कहेगा, 'रोज़-रोज़ क्या यही का यही बनाती हो?'

ये देखो, लोग भी कहीं सर्दी-गर्मी देखते हैं? फिर भी किया हुआ सभी व्यर्थ जाता है, सारी शक्ति उल्टे रास्ते व्यर्थ खर्च हो रही है। न तो मोक्ष का काम होता है और न ही संसार का काम होता है। घर में भी कोई यश नहीं देता, और ऊपर से कहेंगे कि, 'यह तो ऐसी है, यह तो वैसी है!' निरे अपयश की ही पोटलियाँ मिलती रहती हैं!

सत्संग में, 'दादा' के परम सत्संग में जाने को मन होता रहता है, इसे अंतराय टूटने की शुरूआत होना कहा जाएगा और वहाँ जाने में हरकत-रुकावट नहीं आए, उसे अंतराय टूट चुके हैं, ऐसा कहा जाएगा।

यहाँ सत्संग में बैठकर जो कुछ परिवर्तन हुआ लगता है, उसे विस्तार से समझ लेना चाहिए, और वही पुरुषार्थ है। 'ज्ञान' पोइन्ट टु पोइन्ट धीरे-धीरे समझ लेना चाहिए। सत्संग से भी अधिक... सब से आसान रास्ता यह है कि 'दादा' को राज़ी रखना।

यदि 'हमारा' संग नहीं मिले तो हमारे वाक्यों का संग, वह सारा सत्संग ही है। सत्संग यानी शुद्धात्मा के रिलेटिव का संग, अन्य किसी

का संग रखने जैसा नहीं है, फिर भले ही वह साधु हो, सन्यासी हो या कोई भी हो। हमें तो भीतर माल देख लेना है, फिर बाकी का कुछ भी आँखों को स्पर्श करने देने जैसा नहीं है। गायों-भैंसों में भी शुद्धात्मा है, ऐसा पक्का हो जाने के बाद दिखने ही चाहिए न? फिर यदि नहीं दिखाई दें तो वह प्रमाद कहलाएगा।

जिनके यहाँ इन 'दादा' की आरती उतरती है, उनके वहाँ तो वातावरण ही बहुत उच्च कोटि का बरतता है। आरती तो विरति (राग या आसक्ति का अभाव, उदासीनता) है! जिनके घर में आरती होती है उनके घर पर तो वातावरण पूरा ही बदल जाता है। खुद तो 'शुद्ध' होता जाता है और घर के सभी बाल-बच्चों को भी ऊँचे संस्कार मिलते हैं। यह आरती ठीक से बोली जाए तो घर पर 'दादा' हाज़िर हो जाते हैं और 'दादा' हाज़िर हो जाएँ, तब सभी देवी-देवता हाज़िर हो जाते हैं और सभी देवी-देवताओं की कृपा रहती है। आरती तो घर पर नियमित करनी चाहिए और उसके लिए एक समय निश्चित कर दिया जाए तो बहुत ही अच्छा। घर में यदि एक ही क्लेश हो जाए तो पूरा वातावरण बिगड़ जाता है। लेकिन यह आरती उसकी प्रतिपक्षी है। उससे क्या होता है? कि वातावरण सुधर जाता है, शुद्ध और पवित्र हो जाता है।

आरती के समय हम आप सब पर जो फूल डालते हैं, वे हम पहले देवताओं को चढ़ाते हैं और फिर वही फूल आप पर डालते हैं! जगत् में किसी को भी देवों को चढ़ाए गए फूल नहीं चढ़ते, ये तो आपको ही चढ़ते हैं। उससे मोक्ष तो रहता है और ऊपर से आपको संसारी विघ्न नहीं आते।

आत्मस्वभाव तो संग में रहने के बावजूद भी असंगी है। उस पर कोई दाग़ नहीं लगता, लेकिन जब 'ज्ञानी पुरुष' मिलें और असंग आत्मज्ञान मतलब कि दरअसल आत्मा प्राप्त करवा दें, तब। नहीं तो इस संसार में तो जो-जो क्रिया करेगा, उसका मैल चढ़े बिना रहेगा ही नहीं और मोक्ष मिलेगा नहीं। इसलिए जा, पहुँच जा 'ज्ञानी पुरुष' के पास।

त्रिमंत्र विज्ञान

भगवान ऋषभदेव, जो सभी धर्मों के मुख हैं, सभी धर्मों वाले जिन्हें मान्य करते हैं, उन्होंने संसार व्यवहार के विघ्नों को टालने के लिए लोगों से कहा था कि, 'त्रिमंत्र साथ में बोलना।' त्रिमंत्र में पंच परमेष्टि नवकार मंत्र, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय और ॐ नम: शिवाय - इस प्रकार तीनों मंत्र साथ में बोलना, ऐसा भगवान ने कहा था। भगवान ने कहा कि, 'आपको अपनी सहूलियत के लिए मंदिर बाँटने हों तो बाँट लेना लेकिन तीनों मंत्र तो साथ में ही बोलना। हर एक धर्म का रक्षण करने वाले रक्षक देवी-देवता होते हैं, शासन देवी-देवता होते हैं। ये तीनों मंत्र साथ में बोलने से सभी धर्मों के देवी-देवता हम पर खुश रहेंगे। यदि एक ही मंत्र बोलो तो बाकी धर्मों के देवी-देवता खुश नहीं रहेंगे। हमें तो सभी को खुश करके मोक्ष में जाना है न? अभी तो लोगों ने मंत्र बाँट दिए हैं। मंत्र तो मंत्र, लेकिन एकादशी भी बाँट ली हैं! शैव लोगों की एकादशी अलग और वैष्णवों की अलग। जैनों में भी एक तिथि के लिए झगड़े कर-करके अलग पंथ बना लिए हैं। मोक्ष में जाना हो तो निष्पक्षपाती बनना पड़ेगा, सभी रिलेटिव धर्मों की सत्ता मान्य करके, रियल का काम निकाल लेना है!

प्रश्नकर्ता : मंत्र क्या हैं?

दादाश्री : मंत्र, मन को आनंद देते हैं, मन को शक्ति देते हैं और मन को 'तर' करते हैं। जबकि भगवान के दिए गए मंत्र विघ्नों का नाश करते हैं। हमारा दिया हुआ 'त्रिमंत्र' सर्व विघ्नों का नाश

करता है। इस 'त्रिमंत्र' की आराधना से तो भाले का घाव सूई जैसा लगता है। बाकी सभी मंत्र तो मन को तर करते हैं!

प्रश्नकर्ता : इस नवकार मंत्र में तो तमाम शास्त्र आ जाते हैं न?

दादाश्री : यदि ऐसा होता तब तो फिर भगवान महावीर ने गौतमस्वामी से पैंतालीस आगम नहीं लिखवाए होते और एक ही मंत्र देकर मुक्त हो जाते। नवकार मंत्र तो क्या करता है कि आपके आने वाले विघ्नों को टालता है। सौ मन का पत्थर गिरने वाला हो तो कंकड़ से ही विघ्न टल जाता है।

प्रश्नकर्ता : क्या त्रिमंत्र बोलने से कर्म हल्के हो जाते हैं?

दादाश्री : हाँ, मंत्र बोलने से कर्म हल्के हो जाते हैं, राहत मिलती है, क्योंकि शासन देवी-देवताओं की तरफ से सहायता मिलती है। लेकिन मंत्र तो मन-वचन-काया की एकाग्रता से बोलने चाहिए तभी फल देते हैं। ये लोग जब सो जाएँ, तब मन-वचन-काया की स्थिरता से विधि हो पाती है, लेकिन जब लोग जाग जाएँ तो भीतर अस्थिरता हो जाती है। ये तो उठते हैं तभी से स्पंदन खड़े होते हैं और आत्मा स्व-पर प्रकाशक है। इसलिए यदि नगीनदास उठ गए हों और वे हमें याद करें तो हमें भी वे याद आते हैं, क्योंकि तुरंत ही स्पंदन खड़े हो जाते हैं। इसीलिए तो लोग चार बजे विधि, मंत्र बोलने का नियम लेते थे न।

प्रश्नकर्ता : दादा, नवकार मंत्र का अर्थ क्या है?

दादाश्री : 'नमो अरिहंताणं' का मतलब क्या कि अरिहंत भगवान जिन्होंने क्रोध-मान-माया-लोभ रूपी दुश्मनों का नाश कर दिया है, फिर भी देह सहित यहाँ पर विचरते हैं, उन्हें नमस्कार करता हूँ। 'सिद्ध भगवान' को नमस्कार करता हूँ, जो मोक्ष में विराजमान हों, वे सिद्ध भगवान। सिद्ध भगवान और अरिहंत भगवान में कोई फर्क नहीं है। मात्र अरिहंत भगवान की देह है और सिद्ध भगवान विदेही हैं। तीसरा 'आचार्य भगवंतो' को नमस्कार। खुद संपूर्ण आत्मज्ञानी हैं और दूसरों

को ज्ञानदान देते हैं, वे आचार्य भगवंत कहलाते हैं। फिर 'उपाध्याय भगवंतों' को नमस्कार। उपाध्याय यानी जिन्होंने खुद आत्मज्ञान प्राप्त किया है और अभी तक संपूर्ण होने के लिए खुद अभ्यास कर रहे हैं और दूसरों को उपदेश देकर अभ्यास करवाते हैं, वे। 'नमो लोए सव्व साहूणं' यानी इस लोक के सभी साधुओं को नमस्कार। लेकिन साधु कौन? ये गेरुआ या सफेद पहन लेते हैं वे? नहीं, आत्मदशा साधें, वे साधु। 'ऐसो पंच नमुक्कारो' - इन पाँचों को नमस्कार करता हूँ। 'सव्व पावप्पणासणो' - सर्व पापों का नाश करने वाला है। 'मंगलाणं च सव्वेसिं', 'पढ़मं हवई मंगलम्' - सर्व मंगलों में सर्वोच्च यह प्रथम मंगल है।

भगवान ने सभी प्रकार के धर्म दिए हैं, मोक्ष का मार्ग दिया और शुभाशुभ का मार्ग भी दिया, उन्होंने अशुद्ध का मार्ग नहीं दिया। मंत्रों से कर्म हल्के हो जाते हैं। *गाढ़* कर्म हल्के हो जाते हैं, लेकिन मंत्र बोलना भी एक एविडेन्स है। ज्ञानी मिलें, वे तो निमित्त होते हैं। यदि सब परिवर्तन होने वाला हो, तभी निमित्त मिलते हैं, ऐसा है। कर्म किसी को छोड़ते नहीं हैं। यह तो, जब विघ्न टलने वाला हो तभी वह निमित्त आ मिलता है और मंत्र में विघ्न टालने की शक्ति होती है। ये जो ब्राह्मण होते हैं, वे सभी ज्योतिष आदि देखकर बेटी की विवाह पत्रिका बनाते हैं, फिर देखते हैं कि इसमें विधवा होने का आ रहा है इसलिए फिर टाइम बदल देते हैं, फिर भी वह लड़की विधवा होने वाली होगी तो होगी ही। उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। यह तो नींद में हो तब जाने देता है, जागता हुआ नहीं जाने देता, ऐसा है यह जगत्।

आप तो जैन हो, तो नवकार मंत्र बोलते हो क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, रोज़ बोलता हूँ।

दादाश्री : तो फिर परेशानियाँ मिट गई होंगी न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन संसार में परेशानियाँ तो होती ही हैं न?

दादाश्री : जजमेन्ट जज के हाथ में होता या कारकून के हाथ में?

प्रश्नकर्ता : जज का ही।

दादाश्री : वह नवकार मंत्र भी जज जैसों का दिया हुआ होना चाहिए। नवकार मंत्र समझकर बोलते हो या पहचाने बिना बोलते हो? यदि घी की पहचान नहीं हो तो घी किस तरह से लाओगे? ये लोग तो घी के नाम पर दूसरा कुछ थमा देते हैं। मंत्र तो, जो 'ज्ञानी पुरुष' द्वारा दिया हुआ होगा, वही यथार्थ फल देगा। जो हमारी आज्ञा से यह त्रिमंत्र बोलता है, उसके संसार के विघ्न दूर हो जाते हैं, खुद धर्म में रहता है और मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है, ऐसा है!

'सर्व साधुभ्याम् नमः' जो बोलते हैं, नवकार मंत्र भी बोलते हैं, लेकिन नवकार आज इस धरती पर है ही नहीं। नवकार तो, हमने जिन्हें स्वरूप का ज्ञान दिया है, वे नवकार में आते हैं। बाकी, नवकार वहाँ, अन्य क्षेत्रों में पहुँचता है। इसलिए नवकार बोलना है। इन्हें नवकार नहीं पहुँचता, क्योंकि वे तो ऐसा समझते हैं कि 'मैं आचार्य हूँ'।

प्रश्नकर्ता : हम मन में नवकार बोलें तो ऑटोमैटिकली पंच परमेष्टि भगवंतों को पहुँच जाता है?

दादाश्री : नवकार ऐसी चीज़ है कि आप जिन्हें पहुँचाना चाहते हो, उन्हें वह पहुँच जाता है!

ये इतने सारे नवकार मंत्र बोलते हैं और लोग कहते हैं कि, 'ये सारी चिंताएँ जाती क्यों नहीं हैं?' अरे! सच्चे नवकार मंत्र कोई बोलता ही नहीं। ये लोग 'इन्हें' पहुँचाने के लिए मंत्र बोलते हैं, और 'ये' उसके अधिकारी नहीं हैं, 'यह' उनके नाम की चिट्ठी नहीं है। अब उनके नाम की चिट्ठी नहीं हो और उसके ऊपर c/o उपाश्रय करके पोस्ट करें, तब तो कुदरती रूप से उस तक पहुँचता ही नहीं, इसलिए वह डेड लेटर ऑफिस में जाता है। यानी अपना लेटर बेकार गया और चिंता खड़ी ही रही। हमें ऐसा नक्की करना चाहिए कि हिन्दुस्तान में, अपने देश में, भरतक्षेत्र में जहाँ पर भी सच्चे नवकार हों, वहाँ पर नवकार पहुँचे, यथार्थ साधुओं को, यथार्थ आचार्यों को और यथार्थ उपाध्यायों को पहुँचे। इन तीन लोगों को ही पहुँचाने हैं। सिद्धों और अरिहंतों को तो पहुँचते ही है।

प्रश्नकर्ता : यानी ऐसे ऑटोमैटिकली नवकार पहुँच ही जाता है?

दादाश्री : हाँ, ऑटोमैटिकली पहुँच ही जाता है। अब ये नमो अरिहंताणं बोलते हैं, लेकिन जानते हैं कि वे यहाँ भरतक्षेत्र में हैं नहीं, इसलिए वह फिर वहीं पर पहुँचता है। जहाँ अरिहंत होते हैं वहाँ। और नमो सिद्धाणं, वह सिद्धों को पहुँचता ही है, लेकिन जितने भाव से बोलते हैं, उतना पहुँचता है।

यह सब समझना चाहिए। जैन धर्म अर्थात् समझना, समझकर गाओ कहते हैं। ये अपने नरसिंह मेहता हो चुके हैं न, वे नागरों के मुहल्ले में रहते थे। उनका मुहल्ला तो नागरों का था न? मेहता जी तो रोज़ प्रातः काल जल्दी उठकर प्रभाती गाते थे, और दूसरे नागर उनका मज़ाक उड़ाते थे। तो सुबह दातुन करते-करते भगत जो भी गाते थे, नागर लोग तेज़ आवाज़ में वही गाने लगते, यानी पूरा मुहल्ला गाने लगता। लोग उनकी नकल करने लगे, वे बोलते वैसा ही गाने लगे। इसलिए फिर नरसिंह मेहता ने ऐसा कहा कि,

'मेरा गाया हुआ जो गाएगा, वह बहुत मार खाएगा, और समझकर गाएगा तो वैकुंठ जाएगा।'

मेरा गाया हुआ मत गाना, बहुत मार खाएगा।

उसी तरह यह नवकार मंत्र समझकर बोलो। यह मंत्र किस-किसको पहुँचता है, कहाँ-कहाँ पहुँचता है, उतना समझकर पहुँचाओ। भगवान ने साधु तो किसे कहा है? जो आत्मदशा साधें, वे साधु। हमें तो भगवान महावीर की बात को सच मानना चाहिए। हमें 'नमो वीतरागाय' बोलना चाहिए।

यह नवकार मंत्र बोलते हैं न, वह समझकर गाओ। यह ब्रह्मांड बहुत बड़ा है, बीस तीर्थंकर हैं, पंच परमेष्टि बहुत सारे हैं। मंत्र समझकर बोलने से फिर भले ही अज्ञानी हो, लेकिन ॐ का फल मिलता है। तीर्थंकर किसे कहते हैं? पंच परमेष्टि किसे कहते हैं? यह सब समझकर बोले तो ॐ का फल मिलता है।

ॐ की यथार्थ समझ

प्रश्नकर्ता : दादा, ॐ क्या है?

दादाश्री : नवकार मंत्र बोलें, एकाग्र ध्यान से, वह ॐ और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उसके सहित नवकार बोले तो 'ॐकार बिंदु संयुक्तम्' है।

ॐकार बिंदु संयुक्तम्, नित्यम्, ध्यायन्ति योगीन:
कामदं, मोक्षदं चैव, ॐकार नमो नम:

बाहर नवकार बोलते हैं, लेकिन यदि सच्चे दिल से, एकाग्रता से बोलें तो ॐकार सुंदर बोला जाएगा, वह सभी पंच परमेष्टि भगवानों को पहुँचता है। ॐ बोलते हैं, तब भी पंच परमेष्टि भगवान को पहुँचता है और नवकार बोलें तो भी उन सभी को पहुँचता है। सारे बैर को भुलाने के लिए हमने तीनों मंत्र साथ में रखे हैं, क्योंकि शुद्धात्मा हो जाने के बाद निष्पक्षपातीपन उत्पन्न होता है। अपना यह, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह लक्ष्य ॐकार बिंदु संयुक्तम् कहलाता है और उसका फल क्या है? मोक्ष। ये बाहर ॐ का जो कुछ भी चल रहा है, उसकी लोगों को ज़रूरत है। क्योंकि जब तक सही बात पकड़ में नहीं आती, तब तक स्थूल चीज़ पकड़ लेनी पड़ती है। सूक्ष्म प्रकार से ज्ञानी पुरुष, वे ॐ कहलाते हैं। जिन्होंने आत्मा प्राप्त किया है ऐसे सत्पुरुषों से लेकर पूर्णाहुति स्वरूप तक के लोगों को ॐ स्वरूप कहते हैं, और उससे आगे जाने पर मुक्ति होती है। मुक्ति कब होती है? जब ॐकार बिंदु संयुक्तम् हो जाए तब। यहाँ आपको हम ज्ञानप्रकाश देते हैं, तब ॐकार बिंदु संयुक्तम् हो जाता है और ॐकार बिंदु संयुक्तम् हो जाए तो मोक्ष होता है। फिर कोई भी उसका मोक्ष रोक नहीं सकता!

नवकार मंत्र सन्यस्त मंत्र कहलाता है। जब तक व्यवहार में हैं तब तक तीनों मंत्र – नवकार, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय और ॐ नम: शिवाय – इस प्रकार से साथ में बोलने होते हैं जबकि सन्यस्त लेने के बाद सिर्फ नवकार बोलें तो चलता है। यह तो सन्यस्त लेने से पहले सिर्फ नवकार मंत्र को पकड़कर बैठ गए हैं।

जगत् - पागलों का हॉस्पिटल

एक व्यक्ति मेरे पास आया था। उसने मुझसे कहा कि, 'मैं आपके दर्शन-वर्शन सब करूँगा, लेकिन मुझे मोक्ष नहीं चाहिए।' तब मैंने कहा, 'ठीक है भाई, हमारे पास भी मोक्ष इतना सस्ता कहाँ है? और तेरे पास भी जो तुझे चाहिए वह है ही न -बंधन!'

हम पागलों के हॉस्पिटल में जाएँ और पागलों की टोली में जाकर कहें, 'एय, हाथ ऊँचा-नीचा मत करना' और इस तरह से इशारा कर रहा हो न तो उसे ऐसा लगता है कि यह पागलों जैसा क्यों कर रहा है? उन्हें समझदार कौन लगता है? उन्हें तो उनके पागल ही समझदार लगते हैं। उनकी भाषा मेल खाती है और उन समझदारों की भाषा उस पागल को अलग लगती है। इसलिए उसे समझदार व्यक्ति पागल लगता है! इसलिए ऐसी जगह पर हमें उनकी भाषा में बात करनी हो तो ही मेन्टल हॉस्पिटल में रहना चाहिए। पूरे वर्ल्ड का कन्वर्ज़न मेन्टल हॉस्पिटल में हो गया है। मैं 1942 में कहता था कि धीरे-धीरे वर्ल्ड का कन्वर्ज़न मेन्टल हॉस्पिटल में हो रहा है। वह एक दिन मेन्टल हॉस्पिटल बन जाएगा! तो आज हमें ऐसा ही लगता है, ये मेन्टल हॉस्पिटल के लोग हैं या क्या? हाँ, वे ही हैं। आप क्या कहते हो और वे क्या कहते हैं। किसी के भी सवाल-जवाब एक्ज़ेक्ट सुनने को नहीं मिलते, ऐसा यह सब पागलों के हॉस्पिटल जैसा हो गया है। तो फिर मेन्टल हॉस्पिटल की बात ही क्या करनी? पूरे दिन लोग पागलपन ही करते रहते हैं न! एक कप फूट गया हो न तो

उसके भी झगड़े चलते रहते हैं, उसे मेन्टल हॉस्पिटल कहते हैं। मनुष्य तो कैसा होना चाहिए? जो मानवतावादी हो, समझदार हो, वह तो अगर कप फूट जाए और कोई उस बारे में दोबारा बात करे कि 'आज तो कप फूट गया' तो कहेगा, 'अरे फिर से ऐसी बात नहीं करते।' फूट गया सो फूट गया, फिर से उसकी बात करना मूर्खता है, पुनरुक्ति दोष लगता है। यह तो पूरे दिन रोता ही रहता है, कि कप फूट गया!

किसी मिल मालिक का जूता खो जाए तो वह, 'जूता खो गया, जूता खो गया' ऐसे करता रहता है। 'अरे! मिलमालिक होकर कहीं जूतों की बात की जाती होगी?' रोज़ एक-एक जूता खो जाए तब भी किसी को कहना नहीं चाहिए। खुद ऐसे सोचना चाहिए कि मेरे पुण्य खराब हो गए, इसलिए ये चोरी हो जाते हैं। बल्कि तुझे तो गुप्त रखना चाहिए। यह तो एक कप फूट गया हो तो भी झगड़े चलते हैं, है न? ऐसा कई जगहों पर आपको देखने को मिला है न?

अनंतकाल से लोग पीतल को ही सोना मानकर खरीदते रहे हैं, लेकिन जब बेचने जाएँगे तब पता चलेगा, तुझे कोई चार आने भी नहीं देगा। आपके खुद के दु:ख मिटें, तभी समझना कि, यहाँ पर ज्ञानी हैं। लेकिन दु:ख नहीं मिटें तो उस ज्ञानी का हमें क्या करना? अपना दु:ख मिटे नहीं, अपना समाधान हो नहीं, तो उनकी दुकान में बैठे रहने का अर्थ ही क्या है? ये तो बुद्धिवादी के तुक्के हैं, उसका दोष नहीं है। लोग ऐसे हैं, भान ही नहीं है सार-असार का। कीट-पतंगे ऊपर से आ गिरें तो उसमें लाइट क्या करे? यह तो इतनी ऊँची बात मिली और समझ में नहीं आई तो कहेंगे, वहाँ पर चलो। बात ऊँची है, खुद को समझ में नहीं आई इसलिए और कहीं पर चला जाता है। यह तो बुद्धुओं की टोली है। बड़े-बड़े बुद्धिशाली बुद्धू बन जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : मेन्टल हॉस्पिटल कहा, ऐसा ही है न?

दादाश्री : हाँ, मेन्टल हॉस्पिटल है, वर्ना क्या मेन्टल हॉस्पिटल कहना अच्छा लगता होगा? अच्छा नहीं लगता। लेकिन बहुत हो जाए तब कह देना पड़ता है कि, 'मेन्टल हॉस्पिटल जैसी दशा है'। मेन्टल

हो गए हैं सभी, मेन्टल हॉस्पिटल में रख दिए हों न, वैसे दिखते हैं। सार-असार का भान ही चला गया है। हिताहित का भान तो उसे विचार में ही नहीं आया, 'मेरा हित किसमें है और मेरा अहित किसमें है', ऐसा विचार ही नहीं आता। सार-असार का भान नहीं है, हिताहित का भान नहीं है, किसी भी प्रकार का भान नहीं है।

मेन्टल हॉस्पिटल में मन भी पागल हो गया है, वाणी भी पागल हो गई है और देह की गति-विधियाँ भी पागल हो गई हैं। अब ये तीनों भाग पागल हो गए हैं, अब रिपेयर भी किस तरह करें? किस तरह रिपेयर होंगे? एकाध भाग पागल हो गया हो तो उसे रिपेयर किया जा सकता है। अब ये तीनों ही भाग इम्पोर्ट कहाँ से करें? किसी भी जगह पर होते नहीं हैं न? इसलिए पागल के हॉस्पिटल में टकरा-टकराकर और कुटकर सारी दवातें टूट जाएँगी! सभी लट्टू टूट जाएँगे, टकरा-टकराकर। बाकी, जगत् तो पागलों का हॉस्पिटल बन गया है।

हिन्दुस्तान में तो यदि सौ घर होते थे, तब बहुत हुआ तो उनमें से पचास घर दुर्जनों के होते थे और पचास सज्जनों के होते थे, तो उन पचास में से पाँच ही घर क्लेश वाले होते थे और पैंतालीस घर तो क्लेश रहित होते थे, वैसा यह हिन्दुस्तान! यदि समझदारों का हिन्दुस्तान होता तो पैंतालीस घरों में क्लेश नहीं होता। सौ घरों में पचास तो दुर्जनों के घर होंगे, वे तो समझो क्लेश-कलह में ही जीते हैं, लेकिन बाकी के पचास में से पाँच ही घर क्लेश वाले, बाकी के पैंतालीस घर क्लेश रहित होते थे, सौ में से पैंतालीस प्रतिशत, लेकिन यह तो हज़ार क्या लाखों में भी एक घर क्लेश रहित नहीं है। इसलिए पागलों का हॉस्पिटल कहलाएगा क्योंकि धर्मस्थानों में तो संपूर्ण शांति ही बरतनी चाहिए, जबकि वहाँ तो संपूर्ण अशांति है!

एक साहब रोज़ मोटर में ऑफिस जाते थे, तो एक दिन मोटर बिगड़ गई तो साहब चलते-चलते जा रहे थे और वापस खुद ही बोल रहे थे और खुद ही सुन रहे थे, मुझे आश्चर्य हुआ कि, 'यह किस

तरह का रेडियो बज रहा है?' मैं उनके पास गया, मैंने उनसे पूछा, 'क्यों आज बिना मोटर के? आप क्या बोल रहे थे?'

तब उन्होंने कहा, 'कुछ नहीं, कुछ नहीं।'

वे खुद का छिपा रहे थे।

अरे! मन में विचार करे उसमें हर्ज नहीं, लेकिन ये विचार मुँह से निकल जाते हैं? यह तो बड़ा ऑफिसर है, फिर भी ऐसा हो जाता है! यह तो सोचने की चीज़ मुँह से निकल जाए तो दशा ही बिगड़ जाए न! लोग पूछें कि 'भाई, क्या बड़बड़ा रहे हो?' यह तो सोच रहा था कि सेठ को गोली मारनी है और सोचने वाली बात यदि मुँह से लीक हो जाए तो! ये तो सभी छेद वाले, एक भी घड़ा साबुत नहीं। सास-बहू के बीच बवाल हो गई हो तो बड़बड़ाती रहती है! इन्हें तो फूटे हुए घड़े कहा हैं।

अपना घड़ा कैसा होना चाहिए कि ज़रा सा भी छेद नहीं होना चाहिए, पानी भी नहीं रिसना चाहिए। 'रिसना' किसे कहते हैं? सामने वाला व्यक्ति सार निकाल लेता है कि, 'ये क्या बड़बड़ा रहे हैं।' ऐसा नहीं होना चाहिए। अरे! बेटे को भी कुछ पूछना हो तो कहेगा, 'फिर पूछूँगा, अभी नहीं।' बाप बड़बड़ा रहा हो तो बच्चे भी समझ जाते हैं न?

उस ऑफिसर का बॉस के साथ कुछ झंझट हो गया होगा, इसलिए बड़बड़ा रहा था। बॉस तो कौन? कि जो झंझट करे उसका नाम बॉस! हमें किसी को अन्डरहैन्ड रखना हो तो हमारा कोई बॉस तो बनेगा ही न?

आज का वर्ल्ड तो पागलों के हॉस्पिटल जैसा हो गया है, वह अभिप्राय देकर फिर कब बदल डाले वह कहा नहीं जा सकता। अभी कहे कि, 'आप तो बहुत समझदार हो।' और किस घड़ी 'आप बेअक़्ल हो' ऐसा सर्टिफिकेट थमा दे, वह कहा नहीं जा सकता। ऐसे मेन्टल लोगों के सर्टिफिकेट से क्या डरना? ये तो कैसा बोलेंगे, वह कहा

नहीं जा सकता। सयाने मेन्टलों के बीच रहने जाएँगे तो नहीं रह पाएँगे। अभी तो सारे ही मेन्टल हैं, ये गायें-भैंसें समझदार कही जाएँगी।

रास्ते पर लोगों को देखें तो क्या ऐसा होता है कि चलो साल भर साथ में रहें? अरे, आजकल तो उल्टी आए ऐसे लोग हैं। चारों कालों में से फेंका हुआ माल, उसमें रिलेशन क्या रखना? तू चोकर (बचा-खुचा माल) और वह भी वैसा ही चोकर माल!

आज तो रूबरू मिलने वाले संदेशे भी सही नहीं मिलते हैं। इन्हें तो पूछें क्या और ये बोलते क्या हैं? ऐसा विचित्र हो गया है!

भगवान के समय में लोग बहुत नाज़ुक थे, इसलिए भगवान बहुत संभल-संभलकर बोलते थे। गायों का झुंड हो और एक ही आवाज़ दें तो भाग जाएँ, तब क्या ज़्यादा बोलना पड़ेगा? ना। तो भगवान के काल में ऐसे लोग थे। इसलिए भगवान ने बस भ्रांति कहकर छोड़ दिया। और कुछ गायें तो चारा लेकर जाओ तो भी हिलती नहीं हैं, उन्हें मेन्टल कहना पड़ता है। और ये लोग भी मेन्टल ही हैं न? घर का खाते हैं, घर के कपड़े पहनते हैं और चिंता करते हैं! घर का किसलिए खाते हैं? अंत:करण शांत रहे इसलिए। अंत:करण शांत किसलिए रखना है? तब कहे, पागलपन कम करने के लिए। लेकिन यह तो घर का ही खाते हैं और चिंता करते हैं। यह तो पैन्ट पहनकर कूल्हा 'थपथपाते' रहते हैं। कोई बाप भी तुझे देखने के लिए खाली नहीं बैठा है। वे भी अपनी चिंता में ही होते हैं, वे खुली आँखों से भी तुझे नहीं देख पाते। तू तो फटे हुए कपड़े पहनकर भी जाए न, तो भी तुझे देखने के लिए कोई फालतू नहीं है। ऐसा सुंदर मुंबई शहर, वहाँ पैन्ट को पीछे से थपथपाता रहता है! यह मुंबई कितना सुंदर शहर है! चमचमाते सुंदर रास्ते! भगवान के काल में तो चलते-चलते दम निकल जाता था। अभी तो भोगने में कितना मज़ा आता है! फिर भी कोई भोगता नहीं है! मुंबई में तू गेरुआ कपड़ा पहनकर जाए न तो भी तुझे देखने के लिए कोई खाली नहीं बैठा है। उनके साथ हमेशा बैठने वाला फ्रेन्ड हो न, वह भी हिसाब लगाएगा कि लगता तो है

सात, लेकिन उसके साथ में नौ है, इसलिए अपना फ्रेन्ड नहीं हो सकता, होगा कोई और!

हिन्दुस्तान – 2005 में वर्ल्ड का केन्द्र

जगत् मेन्टल हॉस्पिटल क्यों बन गया है? क्योंकि संस्कृत भाषा वालों को बहुत विकृत सिखलाया गया। संस्कृत भाषा वालों को प्राकृत चल सकता है, लेकिन विकृत तो कर ही नहीं सकते। विकृत भाषा आई इसलिए यह मेन्टल हॉस्पिटल बन गया। लेकिन इस हॉस्पिटल में जो लोग मेन्टल हुए हैं न, उनके पेट से जो बच्चे पैदा होंगे, वे समझदार होंगे, सचमुच में समझदार होंगे। इसलिए ये जो मेन्टल लोग जी रहे हैं, वह अच्छा है। उनके बच्चे समझदार निकलेंगे। बाल बढ़ाएँगे, ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे, लेकिन अंत में वे समझदार निकलेंगे क्योंकि मेन्टल हॉस्पिटल के मेन्टल लोगों के बच्चे हैं। इसलिए बच्चे सभी अच्छे होंगे!

और हिन्दुस्तान 2005 में पूरे वर्ल्ड का केन्द्र बन चुका होगा! इन मेन्टल लोगों के बच्चों को बाहर के लोग पूछने आएँगे कि 'हम खाएँ किस तरह? हम पढ़ें क्या-क्या?' ऐसा पूछने आएँगे। इन मेन्टल लोगों के बच्चे समझदार होंगे, इसलिए ये मेन्टल हो गए, वह अच्छा हुआ। ऐसे मेन्टल हो जाने से फायदा क्या हुआ? कि पिछली जो सारी संस्कृति थी न, वह पूरी की पूरी अबॉलिश (ध्वस्त) हो गई, वॉश आउट (खत्म) हो गई। यह सब अच्छा हुआ है, बुरा नहीं हुआ। पिछले संस्कार सड़कर खत्म हो चुके थे!

तिरस्कार वृत्ति ने न्योता पतन को

प्रश्नकर्ता : मेरी माता को देखता हूँ और मेरी पोती को देखता हूँ तो दोनों में मुझे इतना अधिक फर्क लगता है कि पूछो मत! अभी की प्रजा बिगड़ी हुई लगती है।

दादाश्री : और आपके दादा के समय में, दादा आपके लिए क्या कहते थे?

प्रश्नकर्ता : अभी मैंने जो कहा, वही कहते थे।

दादाश्री : हम बाज़ार से सुंदर, अच्छी लौकी लेकर आए हों और सब्ज़ी तो बनानी ही है, इसलिए काटनी तो पड़ेगी ही न? और जब काटें तब कहेंगे कि, 'मत काटना, उसका सुंदर रूप बिगड़ जाएगा' लेकिन यदि सब्ज़ी खानी हो तो उसके रूप को छोड़ना ही पड़ेगा। भारत यदि डेवेलप हुआ है, तो जैसा किसी काल में नहीं हुआ था, यह भारत अब वैसा डेवेलप होना शुरू हुआ है। ये तो बिल्कुल अनाचारी और दुराचारी ही थे। सौ में से पाँच या दो प्रतिशत लोग ही अच्छे निकलते थे। बाकी, सब वहम में और सारे दिन क्लेश, कलह और तिरस्कार में ही बिताते थे। पूरा दिन तिरस्कार करते थे। निचले वर्णों के प्रति तिरस्कार रखते थे, दूसरों के प्रति तिरस्कार रखते थे, खुद के भाई का यदि कभी ज़रा भी आचार कम दिखाई देता था न तो उसके प्रति भी तिरस्कार रखते थे, शिष्य का आचार थोड़ा कम दिखाई देता था तो उसके प्रति भी तिरस्कार रखते थे, जहाँ-तहाँ तिरस्कार ही करते थे, बहुत बिगड़ गया था यह देश। अभी की प्रजा में जो सुधार होता हुआ दिखाई देता है, उसके कारण पहले के लोगों जैसा बिगाड़ कम होने लगा है। उनमें जो जंगलीपन था वह चला गया और दूसरा जंगलीपन उत्पन्न हुआ। पहले के लोगों को यह पसंद नहीं आया। पुराने ज़माने में तो निरा तिरस्कार ही था। हिन्दुस्तान की दशा बिल्कुल बिगड़ गई थी, जिसे धर्मनिष्ठ भी नहीं कहा जा सकता था। क्योंकि बगैर सोची-समझी हुई बात थी। आटा अच्छी तरह से गूँधा हुआ था ही नहीं। यों ही अधकचरे आटे के लड्डू बना दिए थे! बस यों ही गूँधे बगैर, अभी ये गूँधे जा (संवर) रहे हैं।

आज के बच्चों में 'ऐसा' दिखाई देता है लेकिन वे संवर रहे (गढ़े जा रहे) हैं। हमेशा ही जब सही देखभाल होती है न, तब ऐसा होता है। अभी आपका बेटा होटल में से बाहर निकले न तो भी उस पर आपको बहुत तिरस्कार नहीं होता है। और पहले तो आप घर जाकर पोइज़न लेने लग जाते, या फिर पोइज़न दे देते! अरे, होटल के

साथ तेरा क्या झगड़ा है? किस तरह के लोग हो? क्या महावीर ऐसा डिप्रेशन करने को कह गए हैं? वीतराग क्या कहकर गए हैं? अबव नॉर्मल इज़ द पोइज़न और बिलो नॉर्मल इज़ द पोइज़न। हर बात में अबव नॉर्मल हो गए थे। निरा द्वेष, द्वेष और द्वेष और दुराचार का भी कोई अंत नहीं था। दुराचार इतना अधिक एक्सेस बढ़ गया था कि अत्यधिक दुराचार हो गया था। उसके बजाय तो आज का यह दुराचार अच्छा, यह खुला दुराचार कहलाता है। देश ही पूरा ऐसा हो गया था और उसके कारण ये कष्ट पड़े हैं। देश को भयंकर कष्ट पड़े हैं।

कोई स्त्री विधवा हो गई तो उसकी तरफ तिरस्कार, तिरस्कार और तिरस्कार। विधवा का तो जंगली लोग भी तिरस्कार नहीं करते हैं कि बेचारी विधवा हो गई है इसलिए उसके आसपास के सारे अवलंबन टूट गए हैं। अवलंबन टूट गए हैं, इसलिए वह बेचारी हर तरह से दुःखी है। मूलतः पति के आधार पर सुख था वह भी चला गया है, तो उसके ऊपर सभी को करुणा रखनी चाहिए। लेकिन इन लोगों ने उस पर भी भयंकर तिरस्कार बरसाया। अरे, जैसा वर्ल्ड में कहीं भी नहीं होगा, हरिजनों के प्रति वैसा तिरस्कार किया। दूसरी सभी जगहों पर भी तिरस्कार, सगा भाई हो तो उस पर भी तिरस्कार – भयंकर तिरस्कार किया। अब, उसे सुधरा हुआ देश कहा ही कैसे जाए?

हम जब छोटे थे, तब सभी ओल्ड लोग क्या कहते थे, 'अरे बिगड़ गए हैं, बिगड़ गए हैं।' फिर मैंने उनसे पूछा कि, 'आपको आपके दादा क्या कहते थे?' यह तो जंगलीपन है, ऐसा अनादि काल से जंगलीपन चला आ रहा है। कहते हैं कि, 'हमने किया, वैसा करो।' मैं जिस कुएँ में पड़ूँ उसी कुएँ में तुम पड़ो। अरे, अब उस कुएँ में पानी नहीं है, बड़े-बड़े पत्थर हैं, सांप हैं। अब अगर पड़ूँगा तो मर जाऊँगा। पहले तो पानी था, अब उसी कुएँ में पड़ो, ऐसा कहते हैं। वैष्णव के या जैन के या फँला-फँला कुएँ में ही पड़ो। अब कहाँ तक इस कुएँ में पड़ते रहें? कहेंगे, 'हमने किया, वह करो!' अरे, आपके

चेहरे पर नूर नहीं दिखता। पूरे दिन कषाय, कषाय और कषाय ही करते रहते हैं। और खाना खाने जाएँ न, तो ऐसा ही समझते हैं कि आज किसी के यहाँ हमने मुफ्त में खाया है। आज मुफ्त का मिला है। भारत के डेवेलप्ड लोग जब किसी के यहाँ खाना खाने जाएँ तो उन्हें ज्ञान हाज़िर हो जाता है कि 'आज फ्री भोजन करना है! तो डटकर अच्छी तरह खाना।' ऐसे हैं अपने सब डेवेलप्ड बूढ़े! ये सभी लोग डेवेलप्ड थे। उनमें से कोई-कोई तो, अगर खाने पर बुलाया होता न तो डेढ़-दो दिन पहले से तो भूखे रहते थे, घर का बिगड़े नहीं न इसलिए, और खाने बैठते तो इतना सारा खा लेते थे कि फिर दो दिन तक खाना नहीं पड़े। यानी ऐसा ही समझते कि मैं मुफ्त का खा रहा हूँ, फ्री ऑफ कॉस्ट। मतलब कि नीयत कितनी चोर है? और उसी के दु:ख भोगे हैं। विधवाओं को जिन्होंने परेशान किया था, आज उन सभी के घर पर बेटियाँ पैदा हुई और उन बेटियों ने डाइवोर्स लेकर जो तबाही भरा तूफान मचा दिया है, उन्होंने अपने बाप को मार लगाई है, उन विधवाओं ने ही इन सब को परेशान किया है! मेरे यहाँ आकर क्यों परेशान नहीं करतीं? मैं था ही नहीं वैसा।

विधवा तो गंगास्वरूप होती है, उसका नाम कैसे लिया जाए? और फिर कहते क्या हैं? गंगास्वरूप। और कोई विधवा सामने मिल जाए तो कहते हैं कि, 'मुझे अपशुकन हो गए, अच्छा काम करने जा रहा था और मुझे अपशुकन हो गए!' ऐसे लोगों का क्या करना चाहिए? लेकिन भगवान ने क्या कहा है कि 'यह अधिकार अपने हाथ में मत लेना।' भगवान इंसानों से कहते हैं कि, 'यह अधिकार आप अपने हाथ में मत लेना।' नैचुरल नियम ही है। नेचर कहता है कि, 'ऐसों का तो हम हिसाब कर ही लेते हैं, हमारा नियम ही है। वह अधिकार आप मत लेना।' और आज बहुत कष्ट उठा रहे हैं! ये सभी जो कष्ट उठा रहे हैं, वे खुद के ही कष्ट उठा रहे हैं। और ये तो डेवेलप हो रहे हैं, अन्डर डेवेलप्ड नहीं हैं। फिर भी हमें बात आचार की करनी चाहिए कि, 'बहन, उम्र हो गई है, यह जगत् फँसाव वाला है। यदि आपको सुख ही चाहिए तो सोच-समझकर कदम बढ़ाना और कदम रखो तो हमें पूछ

लेना। पूछोगी तो मैं आपत्ति नहीं उठाऊँगा। पूछना, सलाह के तौर पर।' इस वकील की सलाह लेते हैं तो क्या बाप वकील से भी गया-बीता है? वकील के बजाय तो बाप पर अधिक विश्वास होता है न?

हिन्दुस्तान सुधरा हुआ नहीं था, मन में से निकाल देने जैसा था, पोइज़नस था सारा, ज़हरीला था सारा। इस देश की दशा तो देखो कैसी हो गई है? लेकिन उसमें किसी का दोष नहीं था। कोई इंसान दोषित नहीं होता। एविडेन्स खड़े हो जाते हैं, उसमें सरकमस्टेन्सेज़ खड़े हो जाते हैं। अब यह बदलाव शुरू हो गया है।

अब यह उच्च प्रकार का हो रहा है, ग़ज़ब के स्थल पर जा रहा है वर्ल्ड में आज! हिन्दुस्तान वर्ल्ड में ग़ज़ब के स्थल पर पहुँच गया है! वर्ना क्या मोक्ष की बात कर सकते थे? मोक्ष तो लिखने के लिए भी नहीं था, किसी को मोक्ष शब्द लिखने का भी अधिकार नहीं था। ये सभी आचार्य, महाराज, साधु थे न, वे सब ओवरवाइज़ हो गए थे, उनमें दो-पाँच एक्सेप्शनल केस हो सकते थे शायद। बाकी तो, ओवरवाइज़ यानी चिनाई के काम में भी न आए वैसी ईंट, डिफॉर्म हो चुकी उस *खेंगार* ईंट (ज़्यादा पकी हुई ईंट) जैसे! जो ओवरवाइज़ हैं उन्हें *खेंगार* कहते हैं। जो ईंट कच्ची हो, अंडरवाइज़ हो, उस ईंट को *आमरस* ईंट कहते हैं।

भगवान के वहाँ तो सयानेपन की ही ज़रूरत है, जबकि यह सारा ओवरवाइज़ हो गया था और जानवर से भी अधिक खराब आचार हो गए थे। क्योंकि जानवरों में दुराग्रह नहीं होता, कदाग्रह नहीं होता, हठाग्रह नहीं होता अतः मनुष्य में वे तो होने ही नहीं चाहिए और यदि हों तो कुछ हद तक रहें, तब तक मनुष्यपन है क्योंकि डेवेलप्ड हैं। यानी कि जानवरों की तुलना में इनमें विशेष आग्रह होता है, वह कुछ हद तक रहे तब तक ठीक है, नहीं तो फिर जानवरों से भी अधिक बुरा कहलाएगा। इसे मनुष्यपन कैसे कहोगे? गलत पकड़ पकड़ना, गलत दुराग्रह, गलत कदाग्रह, खुद के ही विचारों से धर्म को मानना और मूल्यांकन करना। धर्म तो कैसा होना चाहिए? कि छोटे

बालक के पास से भी जानने का प्रयत्न करना चाहिए। जानवरों से भी यह जानने का प्रयत्न होना चाहिए कि इनमें कैसे-कैसे गुण हैं?

इस कुत्ते को एक ही दिन पूड़ी दी हो, तो तीन दिन तक वह हमें जहाँ भी देखे, वहाँ दुम हिलाता रहता है। उसमें हेतु लालच का है कि फिर से दे तो अच्छा - लेकिन वह उपकार तो नहीं भूलता है न! वह उपकार को लक्ष्य में रखकर लालच रखता है। और मनुष्य? चाहे जो हो लेकिन आज तो यह भारत डेवेलप हुआ है, नहीं तो क्या मोक्ष की बात तो सुनाई देती? अरे, समकित का भी ठिकाना नहीं था न! भगवान महावीर के जाने के बाद आज दो-दो हज़ार सालों से ठिकाना नहीं था, और उनसे पहले भी नहीं था। भगवान का जन्म हुआ तब 250 साल में दो बार लाइट कौंध गई, पार्श्वनाथ और महावीर - दो। उस समय बस कुछ ही लोगों का काम हो पाया था। अन्य किसी को लाभ-वाभ नहीं मिला। भगवान का प्रभाव तोड़ने के लिए भी लोगों ने बहुत उपाय किए थे। जहाँ पर भगवान चलते वहाँ पर इस तरह खड़े काँटें रास्ते में बिखेरे। वे कीकर के काँटें ऐसे खड़े रखे होते थे लेकिन जब भगवान उस पर चलते तब काँटें ऐसे टेढ़े हो जाते थे, ऐसे प्रत्यक्ष देखते थे फिर भी हिन्दुस्तान के दूसरे धर्म के लोगों ने उन्हें स्वीकार नहीं किया, कहते थे, 'यह तो जादू है, यह विद्या है' ऐसा स्वीकार कर लिया, लेकिन सत्य का स्वीकार नहीं किया। ऐसे ग़ज़ब के साइन्टिस्ट, उन्हें स्वीकार नहीं किया! बहुत ही जंगलीपन। प्रपंच! प्रपंच! प्रपंच! धर्म में ही व्यापार किए! व्यापार कहाँ शुरू कर दिए थे? धर्म के अंदर ही व्यापार! इसलिए ऐसा जो पुराना डेवेलपमेन्ट था, वह निकाल देने जैसा था। वह बिल्कुल खत्म हो चुका स्ट्रक्चर है, उसे गिर जाने दो, नया खड़ा हो रहा है वर्ना मोक्ष की बात तो सुनने को ही नहीं मिलती!

जैसे-जैसे यह कल्चर्ड होता जाएगा, वैसे-वैसे वे पुस्तकें टाँड़ पर चढ़ा देंगे, रद्दी में चली जाएँगी। क्योंकि जब तक डेवेलप नहीं होते, तब तक उनकी कीमत है। गीता को समझने वाले और वेदांत

को समझने वाले निकलेंगे अब! अब डेवेलप हो रहे हैं। उसमें निमित्त बने हैं अंग्रेज़। इस अच्छी बात में अंग्रेज़ निमित्त बने हैं।

प्रश्नकर्ता : उन्होंने ज्ञान का अनावरण किया?

दादाश्री : नहीं, ज्ञान का नहीं। लेकिन लोग जो एब्नॉर्मल हो गए थे उसमें बैकिंग (वापस ले आए) करवाया, मतलब नॉर्मेलिटी की तरफ लाए। अपने लोगों ने क्या कहा कि, 'ये लोग अपने धर्म और अपने आचार नष्ट करने आए हैं' यानी उन्होंने इतना नष्ट किया, तभी तो यह नॉर्मेलिटी पर आ रहे हैं। अपने लोग क्या शोर मचा रहे थे? कि ये लोग धर्म और आचार सब तोड़ डालेंगे और अपना सब खत्म कर डालेंगे! ना, उन्होंने उतना कम कर दिया। 85 डिग्री तक की मात्रा एब्नॉर्मल हो गई थी और हमें नॉर्मेलिटी के लिए 50 डिग्री की ज़रूरत थी, तब उन लोगों ने आकर 30-35 डिग्री निकाल दी, जड़ बना दिया, जड़ अर्थात् दारू पीना सिखा दिया, माँसाहार, कपड़े-लत्ते सभी कुछ मोहनीय बना दिया, इसलिए 'पहले वाले' दुर्गुण चले गए! जो तिरस्कार के दुर्गुण थे न, वे चले गए, फ्रेक्चर हो गए। यह सब से अच्छा काम किया उन लोगों ने।

अंग्रेज़ों का एक उपकार

अंग्रेज आए और उनकी भाषा लाए, वह अपने परमाणुओं के साथ आती है। हर एक भाषा हमेशा खुद के परमाणु लेकर आती है। इसलिए उनके जो गुण थे न, साहजिक गुण थे, टाइम-वाइम सब एक्ज़ेक्ट होना चाहिए, वे साहजिक गुण नए सिरे से शुरू हो गए। ये तो सब स्वार्थी हो चुके थे। सिर्फ खुद के घर की ही पड़ी थी, बाकी सब लोगों के घर जल रहे हों तो सोते रहते थे मज़े से। प्रपंची, स्वार्थी! सभी तरह से तिरस्कार वाले, यूज़लेस हो गए थे।

ब्राह्मण कहते थे कि, 'भगवान का मुख हम हैं और ये क्षत्रिय छाती तक हैं और ये जो सारे वैश्य और शूद्र हैं, वे निम्न हैं।' दुरुपयोग, सिर्फ दुरुपयोग ही किया! जिसका सदुपयोग करना था, उसी का दुरुपयोग किया। हम ब्राह्मण मतलब हम मुखारविंद, इसलिए हम जो

कुछ भी कहें उस पर आपको आपत्ति नहीं उठानी है। तो उन्होंने उस पावर, वीटो पावर का उपयोग किया। उसके कारण वे भयंकर यातनाओं में फँस गए। इस प्रजा का तो जो होना होगा वह होगा, लेकिन उस वीटो का उपयोग किया, उस वजह से आज उनके पैरों में चप्पल तक नहीं मिलते! उनकी वैल्यू भी चली गई और चप्पल भी चले गए! दोनों साथ में चले गए! दुराचारों के कारण उनकी दशा तो देखो!

लालची है, उसके कारण मार खा रहा है यह जगत्। लालच क्या होना चाहिए मनुष्य को? लालच दीनता करवाता है और दीनता पैठी कि मनुष्यपन गया।

पुराने जमाने की प्रजा ने निचले वर्ण पर भयंकर अत्याचार किए। उन्हें रास्ते पर से जाना हो तो उन्हें उनकी छाती पर कटोरा और पीछे झाड़ू बाँधना पड़ता था! कटोरा इसलिए कि थूकना हो तो वे रास्ते पर नहीं थूकें, कटोरे में थूकें। पीछे झाड़ू इसलिए कि रास्ते पर से उनके पैरों के निशान मिटते जाएँ! ऐसा तो आतंक मचाया! मेरे जैसे हाज़िर जवाब होते न तो सिर फोड़ डाले वैसा जवाब देते कि इन कुत्तों को थूकने की और दूसरी सब छूट, उनके पैरों के निशान चलते हैं और इन मनुष्यों के नहीं चलेंगे? ऐसे कैसे मेन्टल हो गए हो? यह तो एक्सेस हो गया था।

बेटियों का जन्म होता तो तुरंत ही उसे 'दूध पीती' कर देते थे, मार डालते थे। राजपूत प्रजा में कैसा? कि बेटी का विवाह करते समय दहेज देना पड़ता था, वह अच्छा नहीं लगता था और मूलतः पढ़े-लिखे नहीं थे, अनपढ़ थे। स्त्रियाँ भी अनपढ़ और पुरुष भी अनपढ़ लेकिन खुद अपने आप को न जाने क्या समझते थे? इन्होंने तो दूसरों पर बहुत अत्याचार किए।

बिल्ली आकर आपके दूध में मुँह डाल जाए तो वह दूध चला लेते हो, तो यहाँ भी चलाना चाहिए या नहीं? चलाने की भी हद होती है!

गाँव का ठाकुर हो और उसका चचेरा भाई हो तो वह घोड़े पर

सवार होकर नहीं चल सकता था, उसे उतरकर चलते हुए गाँव में जाना पड़ता है। घोड़ा और वह दोनों साथ में जाएँ तो उसमें तेरा क्या जाता है? ऐसा तो कौन सा तुम्हारा भारी अहंकार घायल हुआ? यदि घोड़े पर जाए तो मारा-मारी और खून-खराबे तक पहुँच जाते थे!

इन्हें आर्यपुत्र कैसे कहा जाए? मिलावटी सोना और असली सोना होता है। उसमें, मिलावटी सोने में यदि सोने के गुण नहीं हों तो उसकी क्या कीमत? एक हिन्दुस्तानी में तो अनंत शक्तियाँ हैं, लेकिन सभी व्यर्थ ही नष्ट हो रही हैं। वह तो 'ज्ञानी पुरुष' से मिले तो शक्ति सीधी राह पर मुड़े और काम में आए। यह शक्ति व्यर्थ किस तरह की? यह भाई आई.ए.एस. का कर रहे हैं तो मैं भी निश्चय करता हूँ कि मुझे आई.ए.एस. होना है। ऐसे नकल कर-करके शक्तियाँ व्यर्थ नष्ट कीं। सिर्फ मेन्टेनेन्स के लिए अथाग शक्तियाँ व्यर्थ नष्ट कीं! और वह भी कलुषित भाव से ज़बरदस्त शक्तियाँ व्यर्थ नष्ट कीं! ऐसे नकल करने से तो भीतर की जो *सिलक* (जमा पूजी) थी, वह भी चली गई। आंतरिक सुख का बैलेन्स मत तोड़ना। यह तो जैसा ठीक लगे वैसे *सिलक* का उपयोग कर दिया। तो फिर आंतरिक सुख का बैलेन्स कैसे रहे? नकल करके जीना अच्छा है या असल? असल। जबकि ये लड़के तो एक-दूसरे की नकल करते हैं। हिन्दुस्तान के लोगों को तो, कोई असल लिखकर लाए न, तो उसकी नकल नहीं करनी चाहिए। हम लोगों को नकल नहीं करनी चाहिए, बल्कि यह तो ऐसा होना चाहिए फॉरेन वाले अपनी नकल कर जाएँ। लेकिन यह तो फॉरेन वालों ने यहाँ थोड़े हिप्पी भेजे तो यहाँ के लोगों ने उनकी नकल कर ली! तो फिर भी उससे हिन्दुस्तान का कुछ बिगड़ने वाला नहीं है, सुधरने वाला ही है।

ये जो मोही लड़कियाँ हैं न आज की, तो उन्हें देखकर लोगों को ऐसा लगता है कि ये लड़कियाँ मोही हैं, मूर्छित हैं, लेकिन उनकी कोख से बच्चे अच्छे पैदा होने वाले हैं।

प्रश्नकर्ता : उसका क्या कारण है, दादा?

दादाश्री : वह तिरस्कार वाला भाग चला गया न, डाउन हो गया है न, इसलिए अब तिरस्कार भाग उत्पन्न नहीं होगा। तिरस्कार गया कि नॉर्मल में आ गए। सुधरे हुए तो थे ही। लेकिन तिरस्कार के कारण लोग बिल्कुल खत्म हो गए थे। यूज़लेस हो गए थे। तिरस्कार गया कि अपनी नॉर्मेलिटी आ गई, ऑल राइट हो गए।

बुद्धि का उपयोग इन लोगों ने तिरस्कार और प्रपंच करने में ही किया। बुद्धि का दुरुपयोग किया, ज्ञान तो था नहीं, सिर्फ बुद्धि थी। उस बुद्धि का दुरुपयोग किया। बुद्धि क्यों बढ़ी? क्योंकि महावीर ब्रेन टॉनिक पिया था और कृष्ण ब्रेन टॉनिक पिया था। जीवजंतुओं को नहीं मारे और अन्य किसी को नहीं मारे तो फिर बुद्धि बढ़ जाती है। फिर जीवजंतुओं को एक ओर रखकर मनुष्यों पर अटैक करने लगे!

अब हिन्दुस्तान तो बहुत अच्छी दशा की ओर जा रहा है। यह संस्कृति का प्रलयकाल है। कौन सी संस्कृति? आदर्श संस्कृति? ना। विकृत संस्कृति का प्रलयकाल है। अपनी संस्कृति में संस्कृत भाषा थी, वह यदि बहुत लो हो जाए, नीचे उतर जाए, तो बहुत हुआ तो प्राकृत तक चला सकते हैं, लेकिन विकृत हो जाए तो नहीं चला सकते। इसमें फायदा क्या हुआ? कि ऐसे-वैसे जो विकृत संस्कार थे न, वे वॉश आउट (खत्म) हो गए। और अब नए सिरे से नई बात! नई चीज़ और सबकुछ नया ही चलेगा और अलग ही प्रकार की ग़ज़ब की, जैसी भगवान महावीर के समय में थी वैसी शांति बरतेगी! और आज के ये बाल बढ़ाने वाले पागल, ये ही अक़्लमंद कहलाएँगे। जिन्हें घनचक्कर कहा जाता है, वे ही समझदार बनकर घूमेंगे और बाल कटवाने वाले तो मेन्टल हॉस्पिटल के लोग! उन्होंने दो विभाग कर दिए। मेन्टल हॉस्पिटल वाला कौन सा भाग और मेन्टल हॉस्पिटल में कौन नहीं? वैसे दो भाग इन बाल बढ़ाने वालों ने अलग कर दिए!

आज के बच्चों ने तो बल्कि बाल बढ़ाकर ओपन किया है कि जो बाल कटवाते हैं वे मेन्टल हॉस्पिटल के लोग हैं और हम मेन्टल होस्पिटल से बाहर वाले हैं और मेन्टल हॉस्पिटल के लोग इन्हें फिर

कहते हैं, कि 'ये मेन्टल हैं!' इसलिए हिन्दुस्तान को कोई नुकसान होने वाला नहीं है। ये 'ज्ञानी पुरुष' के आशीर्वाद हैं।

कुदरत में बुद्धि मत लगाओ

द वर्ल्ड इज़ द पज़ल, इटसेल्फ पज़ल हो चुका है। उसमें ये लोग क्या उसे नाप सकते थे? ये लोग इस पज़ल को नापने में लगे हुए हैं। कहते हैं कि, '1947 में जनसंख्या इतनी थी तो 2000 में इतनी हो जाएगी।' अरे, चक्कर, घनचक्कर! पहले साल में एक बच्चा था, तीसरे साल में दूसरा हुआ, इसलिए अस्सी साल की उम्र में तो 30-40 हो जाएँगे?! हिसाब क्या निकाल रहा है? अरे पागल, घनचक्कर हो या क्या हो? घनचक्कर! कैल्क्युलेशन नहीं निकालते, मनुष्यों का, सारा हिसाब लगाने बैठे हैं, ये सभी घनचक्कर हैं। लड़का पाँच साल का था तब तक सवा-दो फुट का था और सोलह साल की उम्र में पौने पाँच फुट लंबा है, इसलिए अस्सी की उम्र में इतना लंबा हो जाएगा! हे घनचक्करों, हिन्दुस्तान के मनुष्य का तोल क्यों कर रहे हो? 2000 में इतने हो जाएँगे और 3000 में इतने हो जाएँगे। यदि आप ऐसा कहते हो कि दो हज़ार में इतना हो जाएगा, तो आज से पाँच हज़ार साल पहले कितने थे, वह बताओ न! यदि आपको यह गिनती करनी आती हो तो कह दो कि तब कितने लोग थे। तब वे कहेंगे कि, 'वह हमें मालूम नहीं।' तो फिर पगले तुझे पत्नी का पति बनना नहीं आता। तो पत्नी को माँ कह जाकर! कैसे घनचक्कर पैदा हुए हो! तेरी पत्नी को माँ बुलाना, तब तेरा काम होगा! बेटा माँ कहता है और तू भी माँ कहना, यानी पति-पत्नी नहीं चाहिए रास्ते में। घनचक्कर! जनसंख्या गिनने निकले हैं, कैल्क्युलेशन करने बैठे हैं कि 1980 में इतने और 1990 में इतने हो जाएँगे और 2000 में इतने हो जाएँगे! तो इन्हें कोई पकड़ने वाला भी नहीं निकलता! सरकार भी एक्सेप्ट करती है। ऐसी बात जो करे न, जो बात नॉनसेन्स लगती हो, ऐसों को तो पकड़ लेना चाहिए और जेल में डाल देना चाहिए। क्यों ऐसी बात करता है? इससे तो पब्लिक खराब हो जाएगी।

हिन्दुस्तान का कुछ बिगड़ने वाला नहीं है और जिस देश में संतपुरुष हैं, सत्पुरुष हैं और प्रकट 'ज्ञानी पुरुष' हैं, वहाँ पर क्या बिगड़ने वाला है? इन तीनों की हयाती हो वहाँ कुछ भी नहीं बिगड़ सकता है, बल्कि बिगड़ा हुआ सुधरने लगा है। भयंकर रूप से बिगड़ चुका था, हिन्दुस्तान की तरह इस दुनिया का कोई भी देश इतनी अधोगति में नहीं गया था। भयंकर बिगड़ गया था। अनाचार को ही सदाचार माना था और सदाचार को तो देशनिकाला ही दे दिया था, एक्सपोर्ट! तो अब एक्सपोर्ट हो चुका माल इम्पोर्ट हो रहा है। इसलिए तो ये बाल बढ़ा रहे हैं न। ये जो बाल बढ़ा रहे हैं न, वे इम्पोर्ट कर रहे हैं! बाल कटवाकर एक्सपोर्ट कर दिया था।

पूरा वर्ल्ड मेन्टल हॉस्पिटल बन गया है, तो ये बच्चे भी अभी मेन्टल ही कहे जाएँगे न? फिर क्या हो सकता है? पूरा हॉस्पिटल ही मेन्टल, ऐसे में 'ज्ञानी पुरुष' भी 'बाहर' से तो मेन्टल ही कहे जाएँगे न? पूरा हॉस्पिटल ही मेन्टल है, तभी तो 'ज्ञानी पुरुष' अंदर आए न? क्योंकि 'ज्ञानी पुरुष' की देह भी मेन्टल के जमाने में जन्मी, इसलिए मेन्टल तो है ही न? सब मेन्टल कहा जाएगा। मेन्टल हॉस्पिटल ही है यह तो। अब यह परिवर्तन आ रहा है।

हिन्दुस्तान 2005 में पूरे वर्ल्ड का केन्द्र बन चुका होगा! अब 31 साल बाकी बचे हैं। तब ये बच्चे 56-60 साल के हो जाएँगे, तब उनमें मेन्टलपन रहेगा नहीं। उनके लंबे बाल थे न उससे एक दिन मेन्टलपन निकल जाएगा, तब एक दिन कटवा देंगे। एक लंबे बाल वाला लड़का मोटर में मेरे आगे बैठा था। तो मैंने उसे कहा कि, 'भाई, तूने इतने बाल क्यों बढ़ाए हैं कि जिससे ये उड़कर पीछे वाले को परेशान करें?' जबकि उसके बाल मुझे कुछ परेशान नहीं कर रहे थे, फिर भी मैंने यों ही कहा। तो वह लड़का तुरंत बाल कटवाकर आया और मुझे नमस्कार करके गया। और फिर उसने दृढ़ निश्चय किया कि फिर से नहीं बढ़ाऊँगा!

आज के ये ही बच्चे सयाने और समझदार होकर एक दिन बाल

कटवा देंगे, फिर मेन्टलपन गया और ये जो बाल कटवाकर सयाने–सज्जन होकर फिरते हैं न और अनाचार को सदाचार मानते हैं! कैसे? अनाचार को सदाचार, भाषा ही बदल डाली इन लोगों ने! 'मेन्टल!' और पूरा दिन झगड़े–झगड़े, और झगड़े बगैर का एक भी घर नहीं है। कुछ का कुछ बखेड़ा हुआ ही होता है। तीन इंसानों में तैंतीस मतभेद पड़ चुके होते हैं शाम तक! ग्यारह–ग्यारह हर एक के हिस्से में आए न!

मतभेद, मनभेद और तनभेद

दादाश्री : मतभेद होता है तब अच्छा लगता है? तब कुछ होता है तुझे?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वरीज़ होती हैं।

दादाश्री : मतभेद में इतना सब होता है तो मनभेद हो जाए तब क्या से क्या हो जाएगा? मतभेद होता है तब झगड़ा होता है और मनभेद होता है, तब डिवॉर्स ले लेते हैं और तनभेद होता है तब अर्थी निकलती है! वैसा यह भेद, भेद और भेद वाला जगत् है।

कंटाले वाला (काँटों की शैया पर लेटे हों ऐसा दुःख) जीवन तुझे पसंद है क्या?

प्रश्नकर्ता : जीवन दिया इसलिए जीना तो पड़ेगा ही न? फिर भले ही कैसा भी जीवन हो।

दादाश्री : जीवन देने वाला कौन है? ऐसा कौन मूर्ख आदमी होगा कि इस तरह इन सब लोगों को दुःख में जलन के बीच जीने के लिए जीवन देता होगा? ऐसा कौन होगा? कोई होगा ऐसा? क्योंकि मालिक–वालिक पागल–वागल हो गया है या वह भी मेन्टल हो गया है? पचास प्रतिशत मेन्टल हो तो शायद फिर भी चला लेंगे, लेकिन ये तो सभी मेन्टल, तब क्या मालिक मेन्टल बन गया है? कौन इसका चलाने वाला होगा?

प्रश्नकर्ता : भगवान।

दादाश्री : उनका तू नाम लेता है कभी?

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी लेता हूँ।

दादाश्री : किस नाम से पुकारता है?

प्रश्नकर्ता : भगवान के तो हज़ारों नाम हैं, किसी भी एक नाम से पुकार लेता हूँ।

दादाश्री : तुझे कौन सा नाम पसंद है?

प्रश्नकर्ता : श्री कृष्ण।

दादाश्री : उनसे कह न कि आपने दुनिया बनाई तो ऐसी क्यों बनाई? आपकी क्या रानियाँ-वानियाँ भाग गई हैं या फिर सभी हैं? उनसे कह न कि किसलिए हमें दुःख दे रहे हो? हमें उन्हें डाँटना चाहिए, लेकिन हम लोग उन्हें डाँटते नहीं हैं और प्रसाद चढ़ाते रहते हैं, इसलिए वे समझते हैं कि ये सभी सुखी हैं! या फिर उन्हें बहरे कानों से सुनाई नहीं देता कि हम क्या कहना चाहते हैं? तो हमें उन्हें डाँटना पड़ेगा कि रानियाँ-वानियाँ भाग गई हैं? आपके बेटे-बेटियाँ भटक गए हैं या क्या? ऐसा कहेंगे तब वे कहेंगे कि, 'नहीं, रानियाँ हैं।' तो हम कहें कि 'फिर यह सब ऐसा क्यों जलने लगा है? पूरा जगत् जल रहा है, और आप अकेले बगैर घर-बार के ऐसे भटकते रहते हो? रानियाँ लेकर आओ यहाँ पर।' ऐसा उन्हें कहना पड़ेगा। ऐसा नहीं कहेंगे तो किस तरह उन्हें बहरे कान से सुनाई देगा?

इस तरह भगवान को डाँटना पड़ता है। यदि आपकी सच्ची भक्ति हो तो भगवान को क्यों नहीं डाँट सकते? और तभी भगवान आपकी सुनेंगे। लेकिन कोई डाँटता ही नहीं है न भगवान को? सभी प्रसाद चढ़ाते रहते हैं।

संयोग विज्ञान

जगत् में 'शुद्धात्मा' और 'संयोग', दो ही चीज़ें हैं। बाहर जो मिलते हैं वे संयोग हैं, हवा ठंडी लगती है। विचार आएँ वे संयोग, लेकिन बुद्धि से 'यह खराब है और यह अच्छा है' ऐसा दिखता है, और इसलिए राग-द्वेष करता रहता है। ज्ञान क्या कहता है कि, 'दोनों संयोग एक जैसे ही हैं। संयोगों से तू खुद मुक्त ही है, तो फिर दखल क्यों करता है? ये संयोग, तुझे खुद को क्या करने वाले हैं?' ये तो संयोग हैं, वे कुछ भी नहीं करने वाले लेकिन बुद्धि दखल करवाती है। बुद्धि तो संसार का काम करके देती है। बुद्धि मोक्ष में नहीं जाने देती, जबकि ज्ञान मोक्ष में ले जाता है। दुनिया में जिस बुद्धि का उपयोग होता है, वह सम्यक् नहीं है। यह तो विपरीत बुद्धि का चलन है। खुद के हिताहित का भान नहीं है, इसलिए सभी ओर जैसा-तैसा चल रहा है न? और स्वरूप ज्ञान प्राप्त होने के बाद बुद्धि सम्यक् हो जाती है, हिताहित का भान रहता है। सम्यक् बुद्धि क्या कहती है कि यह संयोग आया है, अपने तो चुप रहो, नहीं तो मार पड़ेगी। और विपरीत बुद्धि तो क्या करती है कि ऐसे समय पर चुप तो नहीं रहती लेकिन ऊपर से मार पड़वाती है। विपरीत बुद्धि की काई जम गई है। तो उसे ज़रा हटाना पड़ेगा, तब ज़रा उजाला हो! मुझ में से तो विपरीत बुद्धि की सारी काई निकल चुकी है!

इस बुद्धि ने तो तरह-तरह के संयोगों के भेद डाल दिए हैं। कोई कहे कि यह अच्छा, जबकि कोई कहेगा कि, 'यह खराब है!'

एक को जलेबी का संयोग पसंद है तो वह उसे अच्छा कहता है और दूसरे को वह नापसंद हो तो वह उसे खराब कहता है। उसमें वापस अभिप्राय देता है कि, यह अच्छा और यह खराब। उससे फिर राग-द्वेष खड़े हो जाते हैं। उसी से तो संसार खड़ा है। एक छोटे बच्चे को हमने एक हीरा और काँच दिए हों तो वह काँच रख लेता है और बाप हीरा ले लेता है, क्योंकि बाप बुद्धि से हीरा लेता है। बुद्धि से तो संसारफल मिले, ऐसा है।

वास्तव में संसार में बुद्धि का उपयोग हिताहित के लिए ही होना चाहिए। नौकरी में कहाँ-कहाँ जमा करना है, कहाँ-कहाँ उधार करना, सेठ का उलाहना नहीं मिले, वैसा करना है, यह भोजन की थाली में कोई जीव-जंतु गिर गया हो तो उसे निकालना है, ऐसा बुद्धि बताती है। इतने तक ही बुद्धि का उपयोग होना चाहिए, और वह भी ज़रूरत पड़े तब बुद्धि की लाइट सहज रूप से हो ही जाती है और सांसारिक काम हो जाते हैं। लेकिन यह तो रात-दिन बुद्धि की दखल होती रहती हो तो क्या हो? हमें कोई कहे कि, 'दादा, आप में अक़्ल नहीं है।' और कोई दूसरा कहे कि, 'दादा तो 'ज्ञानी पुरुष' हैं।' तब हमें वे दोनों संयोग एक समान ही लगते हैं। हम तो 'अबुध' हैं। इसलिए वे दोनों संयोग हमें एक समान लगते हैं, जबकि बुद्धि क्या कहती है? 'दादा तो ज्ञानी पुरुष हैं', वह संयोग अच्छा लगता है, और 'दादा में अक़्ल नहीं है', वह अच्छा नहीं लगता। इसलिए हम तो पहले से ही अबुध बन गए। यह तो संयोग मात्र है। तो कभी बोलेगा कि, 'दादा ज्ञानी हैं' और कभी बोलेगा कि, 'दादा में अक़्ल नहीं है।' और फिर वह भी है 'व्यवस्थित'! 'व्यवस्थित' तुझे किसी भी संयोग में से छोड़ेगा नहीं। उसमें बुद्धि का उपयोग करेगा तो पसंद और नापसंद दोनों की मार लगे बिना रहेगी ही नहीं। इसलिए भले ही बोले, 'हमें क्या है?' ऐसा कोई बोले तब हमें कहना चाहिए कि, ''बोलो रिकॉर्ड 'हम' आपको सुन रहे हैं!'' यह बोलते हैं वह तो रिकॉर्ड किया हुआ है, वह किसी भी प्रकार से बदल नहीं सकता। मूल खुद मालिक नहीं बोलता है, यह तो टेप हो चुका है वह रिकॉर्ड बोलता है, वह बदलेगा नहीं।

लोगों को जो नहीं भाता वह पसंद नहीं है और जो भाता है वह पसंद है, लेकिन एक ही चीज़ है, दोनों संयोग ही हैं। लेकिन यह तो एक को अनुकूल - ईष्ट संयोग और दूसरे को प्रतिकूल - अनिष्ट संयोग रखा, फिर कोई अनिष्ट संयोग आ जाए तो कहेगा, 'यह कहाँ चाय पीने आ गया?' और ईष्ट संयोग आ जाए तब उसे नहीं पीनी हो, फिर भी जबरन उसे चाय पिलाता है। इसके पीछे रूट कॉज़ क्या है? 'यह अच्छा और यह खराब है' ऐसा कहते हैं, वह? ना, लेकिन वह मिथ्यात्व दृष्टि है, इसलिए ऐसा करता है। मिथ्यात्व दृष्टि के कारण सही क्या और गलत क्या उसका भान ही नहीं है।

आत्मा और संयोग दो ही हैं और उसमें संयोग अनंत हैं, संयोग आत्मा को अपने साथ मिला लेते हैं। वह किस तरह, यह आपको मैं समझाता हूँ। जैसे कि एक हीरा है जो सफेद उजाला देता है, प्रकाश में उसमें से सफेद किरणें निकलती हैं। अब उसके नीचे लाल कपड़ा रखा हो तो पूरा हीरा लाल दिखता है और हरा कपड़ा रखा हो तो हीरा हरा दिखता है और प्रकाश भी हरा निकलता है। आत्मा भी ऐसा ही है, लेकिन जैसे संयोग आते हैं वैसा हो जाता है। क्रोध आए तब गरम-गरम हो जाता है। वास्तव में तो शुद्धात्मा खुद तो कभी भी बिगड़ा ही नहीं है। तेल और पानी को मिलाकर चाहे जितना हिलाएँ, फिर भी तेल और पानी कभी भी एक नहीं होते हैं। उसी प्रकार आत्मा भी कभी बिगड़ा ही नहीं। अनंत जन्मों में आत्मा कटा नहीं है, कुचला नहीं गया है, साँप में गया या बिल्ली में गया या भले ही किसी भी योनि में गया लेकिन खुद अंश मात्र भी नहीं बिगड़ा है, सिर्फ अलग-अलग आकार-प्रकार (रूप-रंग) ही बदले हैं।

कुछ लोगों को दिन अनुकूल आता है और रात अनुकूल नहीं आती, लेकिन ये दोनों संयोग रिलेटिव हैं। रात है तो दिन की कीमत है और दिन है तो रात की कीमत है!

वीतराग भगवान क्या कहते हैं कि, 'ये सभी संयोग ही हैं, और दूसरा, आत्मा है, उसके सिवा तीसरा कुछ भी नहीं।' उनके लिए

सही-गलत, अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं होता। 'व्यवस्थित' क्या कहता है कि, 'इन संयोगों में तो किसी का किंचित्‌मात्र भी नहीं चल सकता, सारा पिछले खाते का हिसाब मात्र ही है।' वीतरागों ने क्या कहा है कि सारे संयोग एक समान ही हैं। देने आया या लेने आया, सभी एक ही हैं, लेकिन यहाँ पर बुद्धि दखल करती है। संयोगों के मात्र ज्ञाता-द्रष्टा ही रहने जैसा है। ये संयोग तो वियोगी स्वभाव वाले हैं। इकट्ठे होने के संयोग खत्म हो जाने पर बिखर जाता है, तब जो एक मन (40 सेर) का था, वह फिर 38 सेर का हो जाता है, फिर 36 सेर का हो जाता है, फिर क्रमशः वह खत्म हो जाता है।

संयोग कम्प्लीट वियोगी स्वभाव के हैं। वह तो एक संयोग आता है और ग्यारह बजकर पाँच मिनट हो जाएँ, तब जाने लगता है। उसे कहें कि, 'ले, खड़ा रह, भोजन करके जा।' फिर भी वह खड़ा नहीं रहता। जब उसका काल पके तब जाने ही लगता है। लेकिन यह तो कैसा है कि दो मिनट के बाद वापस वियोग होने वाला हो, तब वह राह देखता है कि 'अभी तक नहीं गया, अभी तक नहीं गया, कब जाएगा?' तो वे दो मिनट उसे दस मिनट जैसे लगते हैं। यह इंतजार करने से तो काल लंबा लगता है। बाकी, संयोग तो वियोगी स्वभाव वाले ही हैं।

किसी भी संयोग में हमें खुद को एकाकार होने जैसा नहीं है, उसके तो हम सिर्फ ज्ञाता-द्रष्टा मात्र हैं। संयोगों के साथ हमें झगड़ा करने की भी ज़रूरत नहीं है या फिर उनके साथ बैठे रहने की भी ज़रूरत नहीं है। कोई भी संयोग आए तो कह देना चाहिए कि, 'गो टु दादा।' सभी संयोग तो निरंतर बदलते ही रहने वाले हैं और हम उनसे भिन्न हैं। विचार आए, वह संयोग और उनमें एकाकार होकर हिल जाएँ, वह भ्रांति है, उन्हें तो मात्र देखना और जानना चाहिए।

संसार में रिलेटिव में भय सिर पर आए, तब वह पूरा आत्मा में घुस जाता है और आत्मा का अनुभव हो जाता है! यह छोटा बच्चा हो, वह ऐसे तो खुद का खिलौना छोड़ता नहीं है, हटाने जाएँ तो ज़िद

करता है और इतने में बिल्ली आ जाए तो डरकर सबकुछ छोड़कर भाग जाता है! जिसे स्वरूप ज्ञान मिला हो उसे तो यदि कभी बड़ा भय आए न, तब तो उसे संपूर्ण आत्मानुभव, केवलज्ञान ही हो जाए। हमें भी संयोग मिलते हैं, फिर भी हम लोगों को कौन से संयोग पसंद करने चाहिए? जो रियल में हैल्प करें वे, जो रियल का मार्गदर्शन दें उन संयोगों को पसंद करना चाहिए। जो रिलेटिव का मार्गदर्शन दें, उन संयोगों को पसंद नहीं करना चाहिए। जगत् के लोग संयोगों के दो भाग कर देते हैं – एक फायदे वाले और दूसरे नुकसान वाले। लेकिन हम तो जानते हैं कि फायदा-नुकसान वह किसकी सत्ता है? वह अपनी सत्ता नहीं है! हम लोगों को तो सत्संग मिले, वे ही संयोग पसंद करने योग्य हैं! अन्य सभी संयोग, वे तो संयोग ही हैं। अरे, सब से बड़े तो रात-दिन साथ ही सोने वाले संयोग, मन-वचन-काया के संयोग वे ही दुःखदायी हो पड़े हैं, तो फिर दूसरा कौन सा संयोग सुख देगा? हमें तो, ये संयोग छोड़ें ऐसा नहीं है, लेकिन वहाँ पर समभाव से *निकाल* करना है! इसमें कैसा है कि जैसे-जैसे विपरीत संयोग बढ़ते हैं वैसे-वैसे यह ज्ञान अधिक विकसित हो जाता है, ऐसा है। फिर भी, विपरीत संयोग खरीदकर लाने जैसा नहीं है, जो है उसका निकाल कर देना है।

संयोग सुधारकर भेजो

दादाश्री : कैसी है आपकी माता जी की तबियत?

प्रश्नकर्ता : यों तो अच्छी है, लेकिन कल ज़रा बाथरूम में गिर गई थीं, बुढ़ापा है न?

दादाश्री : संयोगों का नियम ऐसा है, कि कमज़ोर संयोग आएँ तब दूसरे कमज़ोर संयोग दौड़ते हुए आते हैं और यदि एक सबल संयोग मिले तो दूसरे सबल संयोग साथ में दौड़ते हुए आते हैं। यह बुढ़ापा, वह कमज़ोर संयोग है इसलिए उन्हें दूसरे कमज़ोर संयोग मिलते हैं, ज़रा धक्का लगे तो भी गिर जाते हैं, हड्डियाँ टूट जाती हैं। कमज़ोर के पीछे कमज़ोर संयोग आते हैं। यह तो जैसे-तैसे हल लाना

है! दुनिया के लोग कैसे होते हैं? जो भी कमज़ोर, दबा हुआ मिल जाए, उसे झिड़कते रहते हैं। भगवान ने कहा है कि, 'अरे, तू जितने दूसरों के संयोग बिगाड़ रहा है, उतने तू तेरे खुद के ही संयोग बिगाड़ रहा है। तो तुझे ही वैसे संयोग मिलेंगे।'

संयोग तो फाइलें हैं और उनका समभाव से *निकाल* करना है। यह तो अनंत जन्मों से संयोगों का तिरस्कार किया है इसलिए अभी इस काल में लोगों को जहाँ-तहाँ तिरस्कार मिले, उस तरह के संयोग मिलते हैं। संयोग तो व्यवस्थित के हिसाब के परमाणुओं से ही मिलते हैं। कड़वे लगें वैसे संयोगों को लोग धकेलते रहते हैं और उन्हें गालियाँ देते हैं। संयोग क्या कहते हैं कि, 'हमें व्यवस्थित ने भेजा है। तू हमें गालियाँ दे रहा है लेकिन फिर तुझे व्यवस्थित पकड़ेगा' और जब मीठा संयोग आता है, तब लोग 'आओ भाई! आओ भाई!' ऐसा करते हैं। यह कैसा है कि यदि तू संयोगों के साथ रहेगा तो संयोग तो विनाशी हैं, तो तू भी विनाशी बन जाएगा लेकिन अगर संयोगों से अलग 'स्व' में रहेगा तो तू अविनाशी ही रहेगा।

यह तो कैसा है कि, कड़वे संयोगों को मना करने पर भी वे आते हैं और मीठे संयोगों को 'आओ, आओ' कहें फिर भी वे चले जाते हैं! ऐसा कर-करके तो अनंत जन्म बिगाड़े हैं, कुध्यान किए हैं। मोक्ष चाहिए तो शुक्लध्यान में रहना और संसार चाहिए तो धर्मध्यान रखना कि किस तरह सब का भला करूँ। धर्मध्यान तो, कभी कोई व्यक्ति उल्टा बोले, तो खुद ऐसा मानता है कि मेरा कोई हिसाब बाकी होगा, इसलिए ऐसा कड़वा संयोग मिला लेकिन उसके बाद फिर उस कड़वे संयोग को मीठा करता है, संयोग सीधा करता है। कोई व्यक्ति लड़ता हुआ आए कि, 'आपने मुझे पच्चीस रुपये कम दिए', तो उसे पच्चीस में पाँच और मिलाकर, देकर खुश करके, किसी भी तरह उस संयोग को सुधारकर भेजना है। संयोग को उजला करके भेजें तो अगले जन्म में सीधे संयोग मिलेंगे। जहाँ-जहाँ उलझनें पड़ी हैं वहाँ-वहाँ पर वह संयोग उलझनों वाला आता है, वही बाधक होता है। इसलिए उल्टे

संयोग को उल्टा मत देखना, लेकिन उन्हें सीधा और मीठा करके भेजना ताकि जिससे अगले जन्म में बगैर उलझन के संयोग मिलें।

इन लोगों ने कहा है कि, 'आप शांताबहन, इनकी समधन, इनकी माँ।' और वह सब आपने मान लिया और फिर वैसी ही बन गईं! ऐसा है कि इंसान जब गहरी सोच में पड़ा हो, तब खुद का नाम भी भूल जाता है। उसी तरह इन संयोगों से घिर गया और खुद को भूल गया, इसका नाम संसार! इसमें अज्ञानता का ही एग्रीमेन्ट और अज्ञानता की ही पुष्टि की!

वह कहता है कि, 'इसका जमाई और इसका ससुर।' अरे! तू जमाई कैसा? तो कहता है कि, 'मैंने शादी की है न?' यह तो, मार खाकर भोगते हैं, वह शादी है। ऐसा है, यह शादी तो एक जन्म का एग्रीमेन्ट है, लेकिन इसे तो हमेशा का मानकर बैठ गया है! और ऊपर से इनाम में एक जन्म में ही बेहद मार खाता है! यह तो, भगवान खुद का भान भूल गए, इसलिए संसार खड़ा हो गया!

'ये संयोग अच्छे हैं और ये खराब हैं' इसी से संसार खड़ा है, लेकिन यदि 'ये सारे संयोग दुःखदायी हैं' ऐसा कहा तो फिर हो गया मोक्षमार्गी! यही वीतराग भगवान का साइन्स है, भगवान महावीर कितने बड़े साइन्टिस्ट थे! वीतराग तो जानते थे कि जगत् मात्र संयोगों से खड़ा हो गया है। लोगों ने संयोगों को अनुकूल और प्रतिकूल माना और उन पर राग-द्वेष किए, जबकि भगवान ने तो दोनों को ही प्रतिकूल माना और वे मुक्त हो गए।

'एगो मे शाषओ अप्पा, नाण दंश्शण संज्जूओ।'

मैं एक शाश्वत आत्मा हूँ, ज्ञान-दर्शन वाला ऐसा शाश्वत शुद्धात्मा हूँ, मैं सनातन हूँ, सिर्फ सत् ही हूँ।

'शेषा मे बाहिराभावा, सव्वे संयोग लख्खणा।'

ये जो शेष बचे हैं वे सारे बाहरी भाव हैं। उन भावों के लक्षण

क्या हैं? वे संयोग लक्षण वाले हैं। 'बाहिराभावा' कौन से? संयोग लक्षण, मतलब टेढ़ा विचार वह संयोग, शादी करने के विचार आएँ वह संयोग, विधवा हो जाने का विचार आए, वह संयोग। ये सभी 'बाहिराभावा' कहलाते हैं और ये सभी संयोग लक्षण वाले हैं। इन सभी के लक्षण संयोग स्वरूप हैं। जिनका वियोग हो जाना है, वे सभी संयोग हैं, वे भूल से बुला लिए थे इसलिए आए हैं।

'संजोगमूला जीवेण पत्ता दुःखम् परम्परा,
तम्हा संजोग संबंधम् सव्वम् तीवीहेण वोसरियामी।'

सभी संयोग जीव के दुःखों की परंपरा के मूल में हैं। उन सभी संयोगों को दादा भगवान को– वीतराग को अर्पण करता हूँ, यानी कि समर्पण करता हूँ, और इसलिए हम उनके मालिक नहीं रहे। ये संयोग कितने सारे हैं? अनंता हैं। इन अनंत संयोगों को, एक के बाद एक कब छोड़ पाएँगे? इसके बजाय तो उन सभी संयोगों को दादा को अर्पण कर दिए, तो हम छूट गए!

आत्मा की अनंत शक्तियाँ हैं, वे इतनी सारी हैं कि एक घंटे में ही करोड़ संयोग कमा लेता है, उसी तरह एक ही घंटे में करोड़ों संयोग निकाल भी सकता है। लेकिन निकालने का अधिकार किसे हैं? 'ज्ञानी पुरुष' को!

संयोग और संयोगी, इस तरह दो ही हैं। जितनी हद तक संयोगी सीधा है, उतनी हद तक संयोग सीधे और यदि टेढ़ा संयोग आए तो तुरंत ही समझ लेना है कि 'हम टेढ़े हैं इसलिए वह टेढ़ा आया।' संयोगों को सीधे करने की ज़रूरत नहीं है लेकिन हमें सीधा होने की ज़रूरत है। संयोग तो अनंत हैं, वे कब सीधे होंगे? जगत् के लोग संयोगों को सीधा करने जाते हैं, लेकिन खुद सीधा हो जाए तो संयोग अपने आप सीधे हो ही जाएँगे, खुद के सीधा होने के बावजूद भी थोड़े समय तक संयोग टेढ़े दिखते हैं, लेकिन बाद में वे सीधे ही आएँगे। कोई *ऊपरी* है नहीं, वहाँ टेढ़ा संयोग क्यों आएगा? यह तो खुद टेढ़ा हो गया है इसलिए टेढ़े संयोग आते हैं।

पेचिश होती है तब क्या उसके तुरंत के ही बोये हुए बीज होते हैं? ना, वह तो बारह साल पहले बीज पड़ चुके होते हैं उनके कारण अभी पेचिश होती है और पेचिश हुई यानी बारह साल की भूल तो मिटेगी न? फिर से भूल नहीं की तो फिर से पेचिश नहीं होगी। गाड़ी में चढ़ने के बाद भीड़ वाली जगह मिलती है, क्योंकि खुद ही भीड़ वाला है। खुद यदि भीड़ रहित हो चुका हो, तो जगह भी बिना भीड़ वाली मिलती है। खुद की भूलें ही *ऊपरी* हैं, वह अपने को समझ में आ गया फिर है कोई भय? यह हमें देखकर कोई भी खुश हो जाता है। हम भी खुश हो जाते हैं इसलिए अपने आप सामने वाला भी खुश हो जाता है। यह तो सामने वाला हमें देखकर खुश तो क्या लेकिन आफ़रीन हो जाता है। सामने वाला हमारा ही फोटो है!

संयोगों में खुद कौन?

खुद के पुण्य हों तो सभी संयोग, जो भी आते हैं वे सभी मदद करते जाते हैं और पाप का उदय हो, तब जो संयोग आते हैं वे टेढ़े आते हैं और साथ में जाते-जाते डंडे जड़ते हुए जाते हैं! ये कुछ लोग बोलते हैं न कि, 'मेरे संयोग अच्छे नहीं हैं।' वह तो ज्ञानी का वाक्य कहलाता है, लेकिन उसमें तू कौन और यह सब क्या है? अन्य सभी संयोग हैं। तो फिर तू कौन है? उसका पता लगा!

जब बीमार होता है तब, उसे ठीक करने वाले संयोग हैं और उसे अधिक बीमार करें, वे भी संयोग हैं। ठीक करने वाली दवाई भी उसे अधिक बीमार कर देगी, यदि अधिक बीमार पड़ने के संयोग होंगे तो। एक कमज़ोर संयोग मिलता है तो सभी कमज़ोर संयोग मिलते जाते हैं। अकाल का संयोग आए, तो साथ में भैंस मर जाती है, तो फिर कमज़ोर पर कमज़ोर संयोग आते हैं। यदि ये सभी संयोग हैं तो तू कौन है?

ये संयोग निरंतर समसरण होते ही रहते हैं, उसका आपको एक

उदाहरण देता हूँ। शाम के पाँच बजे आप जा रहे हों, तो सामने बादल आ गया हो, तो वह दिखता है, लेकिन फिर थोड़ी ही देर में एक बादल में इन्द्रधनुष दिखाई देता है, तो वह किसने बनाया? पहले वह क्यों नहीं था? क्योंकि बादल हैं, किसी खास जगह पर सूर्य है, तो वे उस प्रकार से सभी संयोग इकट्ठे हो जाते हैं और फिर हम किसी खास जगह पर हो तभी इन्द्रधनुष दिखता है!

आत्मा और संयोग दो ही हैं, लेकिन उन संयोगों में आत्मा उलझ गया है। उलझन, वह भी आत्मा का स्वाभाविक गुण नहीं है, लेकिन *उपाधि* के भाव से है। अब संयोग आत्मा से निरंतर रगड़ खाते ही रहते हैं और फिर वे स्पर्श से चार्ज हो जाते हैं, और वे ही अगले जन्म में डिस्चार्ज होते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' यदि मिल जाएँ तो वह जो चार्ज होने वाली आपकी बेटरी है उसे आठ फीट दूर रख देते हैं। इसलिए चार्ज बंद हो जाता है और फिर संसार बंद हो जाता है!

अनुकूल संयोग फूड (भोजन) हैं और प्रतिकूल संयोग हैं विटामिन हैं। इसलिए हम कहते हैं कि विटामिन को व्यर्थ मत जाने देना।

स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग और वाणी के संयोग पर हैं और पराधीन हैं।

तप

भगवान ने ऐसा कहा है कि, 'ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप, ये चार मोक्ष के आधार स्तंभ हैं'। लेकिन लोग उनकी खुद की भाषा में ले गए। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह ज्ञान है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसी प्रतीति रहे, वह दर्शन है और ज्ञाता-द्रष्टा रहे, वह चारित्र है। अगर बाहर कुछ हो जाए, तब हृदय तपे तो उसे देखना और जानना वह तप हैं, उसे अंतर तप, अदीठ तप कहा है। मोक्ष में जाने के लिए अंतर तप चाहिए, मोक्ष में जाने के लिए बाह्य तप की ज़रूरत नहीं है। बाह्य तप से अच्छी गति मिलती है, लेकिन मोक्ष नहीं मिलता। अदीठ तप ऐसा होता है जो दिखाई नहीं देता। फॉरेन में प्रवेश नहीं करना और होम में ही रहना उसे ही भगवान ने सच्चा तप कहा है। आत्मा और अनात्मा की संधि (के किनारों) को एक नहीं होने देना, वह खरा तप है। और यह तप किसलिए करना है? क्योंकि अनादि से फॉरेन का अध्यास है इसलिए तप करना पड़ता है, इसके बावजूद इस तप से तपना नहीं होता।

मोक्षमार्ग अर्थात् बिल्कुल सहज मार्ग, यानी क्रियाकांड नहीं होते, मेहनत नहीं होती। तप, त्याग, जप, ये सभी क्रियाएँ फल देने वाली होती हैं। फल मिलने तक रहना हो तो मुकाम करो और फिर फल चखोगे, लेकिन फल आएँ तब किस तरह के विचार होंगे, उसका क्या भरोसा? बीज बोया हो तब त्यागी दशा में होता है और फल आया तब गृहस्थ दशा में होता है, पंचेन्द्रिय के विचारों में पड़ा हुआ होता है। तप, त्याग से देवगति मिलती है, मोक्ष नहीं मिलता। मोक्ष तो तभी होता है जब सहज हो जाते हैं। ये तप, त्याग की मेहनत करने में तो हैन्डल लगाने पड़ते हैं।

हम पूछें कि, 'तबियत ठीक नहीं है इसलिए नहीं खा रहे हो?' तब वह कहेगा, 'मैं तप कर रहा हूँ।' 'कितने दिन भूखे रहोगे?' तो वह कहता है, 'चार दिन।' तो आप तप करके तपे हुए रहोगे या ठंडे? लेकिन वह तपा हुआ ही रहता है। ऐसे तपे हुए व्यक्ति को बेटे ने कुछ कह दिया तो ऐसी आग उगलता है कि बेटा सोचता है कि, 'इससे तो बाप नहीं होता तो अच्छा था!' भगवान ने कहा था कि, 'पेट में दुःख रहा हो, अजीर्ण हुआ हो तो एकाध पहर का भोजन करना।' अधिक खाएगा वह भी पोइज़न है और नहीं खाएगा वह भी पोइज़न है। इसलिए भगवान ने *ऊणोदरी* (जितनी भूख हो उससे आधा भोजन खाना) तप करने को कहा था यानी कैसा कि रोज़ चार रोटियाँ खाता हो तो तीन खाकर शुरूआत करना और चावल आधे खाना, तो फिर तुझे तप करने की ज़रूरत नहीं रहेगी। पेट को जीने लायक भोजन देना। अफ़रा चढ़े, वह गुनाह है। खीर खाई हो और सत्संग में कहें कि 'इतना पाठ करना।' वह सोते-सोते पाठ करने जाता है तो सुस्ती चढ़ती है। उतना खाना ही नहीं चाहिए कि आँख लग जाए।

जो बहुत दिनों तक भूखे रहते हैं, उसे तो भगवान ने '*ढोरलांघण*' (मालिक की गफलत की वजह से मवेशी का भूखा रहना) कहा है, लेकिन वह कष्ट का सेवन है, वह फल दिए बगैर जाएगा नहीं, देवगति मिलेगी। विलास करो तो भी फल मिलेगा। भगवान ने नॉर्मल रहने को कहा है, 'सहज मार्ग से चला जा' ऐसा कहा है। लेकिन भगवान की बात कोई समझा ही नहीं और लोग नासमझी से तप करने जाते हैं।

प्राप्त तप ही करने जैसा है

यह तप किसी और का सीखकर करने जैसा नहीं है। तेरा मन ही रात-दिन तपा हुआ है न! तेरा मन, वाणी और वर्तन जो तपे हुए हैं, उन्हें तू शांतभाव से सहन कर, वही खरा तप है! जब मन, वाणी और वर्तन तपे हुए होते हैं, तब उस समय उनमें तन्मयाकार रहता है, और जब कुछ भी तपा हुआ नहीं होता, तब तप करने बैठ जाता है। लेकिन फिर उस समय किस काम का? तप तो कब करने को कहा

है भगवान ने? जब सभी ज़हर देने वाले आएँ, उस समय भीतर अंतर तपे तो भी सहन कर लेना, लाल-लाल हृदय हो जाए तो भी शांत भाव से सहन कर लेना। भगवान ने तप को बुलाकर लाने को नहीं कहा है, आ पड़े तप का हँसते मुख से स्वागत कर लेने को कहा है। तब ये लोग तो आ पड़े तप को इधर-उधर धकेलते हैं, मुँह बिचकाते हैं, यानी जो वह तप देने आता है, अनेक गुना करके उसी को वापस दे देते हैं, और नहीं आए हुए तप को बुलाने जाते हैं, नहीं हो वहाँ से। किसी का देखकर सीख आते हैं और तप करने बैठ जाते हैं! अरे, तप भी किसी का सीखकर किया जाता होगा? तेरा तप अलग है, उसका तप अलग है, हर एक का तप अलग-अलग होता है। हर एक के कॉज़ेज़ अलग-अलग होते हैं। और आज के काल में तप तो सामने से ही आसानी से आ पड़ें, ऐसा है।

भगवान महावीर ने कहा था कि, 'कलियुग में सावधानी से चलना, तुझे जो तप प्राप्त हो उसे भोगना और अप्राप्त तप खड़ा मत करना।' सामने वाला व्यक्ति टकरा जाए और तुझे यहाँ पर लग जाए तो उस तप में शांति से तपना, जबकि वहाँ तो झगड़ा करता है और घर आकर कहेगा कि, 'कल तो मुझे उपवास करना है।' 'अरे, ऐसा किसलिए करता है? तुझे यदि शरीर की अनुकूलता नहीं हो तो एक-दो पहर का उपवास कर ले, उसमें हर्ज नहीं है, वह सहज स्वभाव है। ऐसा जानवरों में भी होता है। लेकिन ऐसा तूफान करने की ज़रूरत ही नहीं है।' भगवान ने कहा है कि, 'तीनों काल में द्वापर, त्रेता और सत्युग में त्याग करना, तप करना, लेकिन चौथे काल में, कलियुग में तो तुझे तप-त्याग ढूँढने नहीं जाना पड़ेगा, मोल लेने नहीं जाना पड़ेगा।' वह तो जिस काल में मोल लेने जाना पड़ता था, उस काल में ये तप थे, क्योंकि पूरे दिन ढूँढने पर भी तप मिलता ही नहीं था न! वे काल चले गए सारे। अभी तो कितने तप मिलते हैं।

महावीर भगवान को तप खोजने जाना पड़ता था उस काल में भी! लोग तप वाले थे, लेकिन भगवान को तप नहीं आता था न?

भगवान को तप नहीं आ रहे थे इसलिए उनके मन में विचार आया कि, 'ये सभी भिक्षा देते हैं तो ध्यान रखकर मेरे लिए खाना बनाते हैं और फिर देते हैं। कोई मुझे गालियाँ नहीं देता, कोई मुझे कुछ भी नहीं करता। अभी तो मेरे भीतर कर्म के उदय बाकी हैं', उसका उन्हें खुद को पता चल जाता था। जैसे कि किसी को वॉमिट (उल्टी) होने वाली हो तो उसे उसका पता चल जाता है, उसी तरह अगर बहुत समय बाद कर्म की वॉमिट होने वाली हो तो, ज्ञानियों को वह भी पता चल जाता है। ऐसे कर्मों की ज्ञानी *उद्दीरणा* (भविष्य में फल देने वाले कर्मों को समय से पहले जगाकर वर्तमान में खपाना) करते हैं, मनुष्य में *उद्दीरणा* की सत्ता है। इसलिए महावीर भगवान ने सोचा कि, 'लाओ, आर्य देश में से अनार्य देश में जाऊँ तो मेरे ये कर्म झड़ जाएँगे। कर्म का हिसाब है।' आर्यदेश के लोग तो 'पधारो, पधारो' करते थे और भगवान पर पुष्प बरसाते थे, इसलिए भगवान को हुआ कि अनार्यदेश में जाऊँ। अब अनार्यदेश साठ मील दूर था, तो मुख्य सड़क पर से जाने को नहीं मिला। पूरे गाँव के लोग साथ में बिदा करने आए थे। लोगों ने भगवान से विनती की कि, 'भगवान, आप इस सकड़े रास्ते पर से मत जाइए। उस रास्ते पर चंडकोशिया नाग रहता है, वह नाग इस जंगल में किसी को भी प्रवेश ही नहीं करने देता, जो जाता है उसे जीवित नहीं निकलने देता। भगवान, वह आप पर उपसर्ग करेगा।' लेकिन भगवान ने कहा कि, 'आप सब मना कर रहे हो, लेकिन मुझे तो यहीं से होकर जाने की ज़रूरत है। मुझे मेरे ज्ञान में ऐसा दिख रहा है। मैं आग्रही नहीं हूँ, लेकिन मेरे ज्ञान में दिख रहा है इसलिए आप सब शांतिपूर्वक रहो और मुझे जाने दो।' तब गाँव के सभी लोग वहीं खड़े रहे। कोई जंगल में घुसा ही नहीं न! चंडकोशिया का नाम जाने, तब फिर कौन जाए? 'भगवान को जाना हो तो जाएँ', कहेंगे! चंडकोशिया की बात आई तब तो भगवान-वगवान सब छोड़ देंगे! छोड़ देंगे या नहीं छोड़ देंगे ये लोग?

भगवान तो जंगल के रास्ते से गए। वहाँ चंडकोशिया को सुगंध आई, तो फिर वह फुफकारता ही न? वह तो किसी जानवर को भी जंगल में नहीं आने देता था, वह फुफकारता हुआ भगवान के सामने

आया और भगवान के पैर में डंक मार दिया। डंक मारते ही थोड़ा खून उसके मुँह में आ गया। खून मुँह में जाते ही उसे पिछले जन्म का भान हुआ। तब भगवान ने वहाँ उसे उपदेश दिया, 'हे चंडकोशिया! बूझ-बूझ! क्रोध को शांत कर।' पिछले जन्म में चंडकोशिया साधु था और शिष्य पर क्रोध किया इसलिए उसकी यह दशा हुई! 'इसलिए अब शांत हो जा। जैसा तुझे ज्ञान हुआ है, तू वैसा ही शुद्धात्मा है'। चंडकोशिया होश में आ गया, पूर्वजन्म का उसे ज्ञान हो आया, पिछले जन्म में साधुपन था। उसने शिष्य पर क्रोध किया था, कैसा भयंकर क्रोध? ऐसा-वैसा नहीं। ये लोग पत्नियों पर करते हैं, वैसा नहीं। शिष्य तो फँस गया, फिर क्या गुरु उसे छोड़ देते? फिर उस फँसे हुए को गुरु धमकाते ही रहते! उसके बाद साँप वहीं पर छटपटाकर मर गया। उसके ऊपर खूब चींटियाँ चढ़ गई थी, क्योंकि छटपटाया इसलिए खून निकला और खून निकला तब चींटियाँ चढ़ने लगीं और फिर चींटियाँ खींचातानी करने लगीं! चंडकोशिया को अत्यंत जलन होने लगी। लेकिन उसने शांति से तप किया और वह अच्छी गति में पहुँच गया।

भगवान वहाँ से अनार्य, अनाड़ी देश में विचरे। वहाँ पर लोगों ने उन्हें, 'अरे, साधु आया है, इसे पत्थर मारो, यह कैसा साधु है? कपड़े-वपड़े नहीं पहनता। मारो इसे।' तो भगवान को तो अंदर घुसने से पहले ही प्रसाद मिलने लगा! भगवान तो जानते थे कि, 'मैं कहाँ प्रसाद खा रहा हूँ?' तो उन्हें तो, 'वास्तव में प्रसाद' मिलने लगा। किसी जगह पर कोई दयालु व्यक्ति हो तो वह रोटी का टुकड़ा दे देता था। आर्यदेश में तो मिठाइयाँ मिलती थीं, वे यहाँ कहाँ से लाते? भगवान ने कुछ काल अनाड़ी देश में बिताकर, जब कर्म क्षय हो गए तब वापस लौटे। अभी तो सब को घर बैठे ही अनाड़ी देश है, तो भी लोग झंझट करते हैं! अरे, महावीर भगवान को साठ मील चलकर जाना पड़ा था न?

आप तो कितने पुण्यशाली हो कि आपके लिए घर बैठे ही अनाड़ी देश है। घर में घुसते ही अनाड़ी देश। जहाँ खाना खाएँ वहीं

पर, खाते–पीते हैं वहीं पर अनाड़ी देश होता है। अब यहाँ पर तप में तपना है। भगवान को तप ढूँढने के लिए साठ मील विचरना पड़ा था, अनाड़ी देश ढूँढने के लिए! जबकि आज तो घर बैठे ही लोगों को अनाड़ीपन नहीं लगता? तो मुफ्त का तप मिला है तो शांति से सहन कर लो न! इस काल के लोग भी कितने पुण्यशाली हैं! इसे प्राप्त तप कहते हैं। अड़ोसी–पड़ोसी, पार्टनर, भाई, पत्नी, बच्चे, सभी तप करवाएँ, ऐसा है! पहले के काल में तो घर में ही अनुकूलता रहती थी। यह प्रतिकूल काल आया है, घर बैठे ही प्रतिकूलता है, बाहर ढूँढने नहीं जाना पड़ता। यह काल ही ऐसा है कि कहीं भी एडजस्टमेन्ट हो ही नहीं पाता। घर में, बाहर, पड़ोसी, सब तरफ से ही डिस्एडजस्टमेन्ट आ पड़ता है, उसे तू सहन कर और एडजस्ट हो जा।

प्राप्त तप अर्थात् जो आ पड़ा है वह तप, उसे शांतिपूर्वक आराम से भोग ले, सामने वाले को ज़रा सा भी दुःख नहीं हो, सामने वाले को अपने निमित्त से दुःख तो नहीं हो, लेकिन अपना मन सामने वाले के लिए थोड़ा सा भी नहीं बिगड़े, वह प्राप्त तप है। अन्य तप करने को भगवान ने अभी मना किया है। तो भी देखो न लोग तरह–तरह के तप लेकर बैठे हैं! अरे समझ न! शिष्य के साथ पूरे दिन क्रोध करता है और अगले दिन उपवास करता है, अब इसका अर्थ क्या है? मीनिंगलेस हैं ये सारी चीज़ें! यह मीनिंगलेस नहीं लगता आपको? कहेगा कि, 'मुझे दो उपवास करने हैं।' अरे भाई, अभी तो ऐसा है न कि, किसी दिन राशन का ठिकाना नहीं पड़े, तब थोड़े चावल से चला लेना पड़ता है। उस दिन महाराज 'इतने ही चावल मिले तब उतना ही भोजन', वहाँ ऐसा करो न! प्लस–माइनस कर दो न! एक दिन बिल्कुल ही न खाए, उसके बजाय तो रोज़ थोड़ा–थोड़ा प्लस–माइनस करके हम एडजस्ट हो जाएँ न! कभी यदि दो बजे तक खाने का ठिकाना नहीं पड़े तब वहाँ शांत भाव से सहन कर ले न! या भोजन का ठिकाना ही नहीं पड़े, वहाँ पर तू शांत रह। यह पेट तो, अंदर थोड़ा–बहुत गया तो फिर शोर नहीं मचाएगा। रात को इतनी खिचड़ी और सब्ज़ी दे दी हो तो फिर शोर मचाता है? नहीं मचाता। फिर आपको जिस तरह के ध्यान में रहना

हो वैसे रहने देता है। पेट को तो हर्ज नहीं है, यह भूल खुद की है। मन भी वैसा नहीं है, खुद अनाड़ी है। खुद अनाड़ी है, इसलिए खुद तो दु:ख भोगता है, लेकिन दूसरों को भी दु:ख भुगतवाता है। अनाड़ीपन!

लोग आमने-सामने कहते हैं न कि यह अनाड़ी है? अरे, मुंबई में किसे अनाड़ी नहीं कहें, वह ढूँढ निकालना मुश्किल है, यानी कि आमने-सामने अनाड़ी कहते रहते हैं। अरे, नहीं कहना चाहिए। वह तो भगवान जिन्हें ढूँढ रहे थे, वह अनाड़ीपन तो आपको घर बैठे मिल रहा है। इसलिए इन 'दादा' ने आपसे कहा है कि खाओ, पीओ, मज़े करो और जो तप आ पड़े उसे शांति से भुगतना। तप को तो बुलाने जाना पड़े ऐसा है ही नहीं। निरे तप में ही तपते हैं न ये लोग! और दूसरे प्रकार के तप वाले तो कैसे होते हैं कि आ पड़े तप को नहीं भुगतते और जो नहीं आया है उसे बुलाते रहते हैं। बुलाकर तप करते हैं। फिर हम उसे कुछ कहने जाएँ तो वह इतना अधिक तप चुका होता है कि यदि ज़रा सी भी भूल हुई तो वह फट पड़ता है। तप वाले कैसे होते हैं? तप्त होते हैं। तप्त मतलब सुलगते दबे हुए अंगारे, यदि ज़रा सी हमारी बीड़ी छू जाए कि तुरंत ही विस्फोट हो जाए। इसलिए भूल से भी वहाँ पर कुछ नहीं करना चाहिए। भगवान ऐसे नहीं थे, भगवान तो बहुत समझदार थे।

प्राप्त तप की क्या अभी कोई कमी है? कुछ नहीं तो दाँत दु:खता है और दम निकल जाए ऐसा दु:खता है। दाढ़ दु:खती है, पेट दु:खता है, फलाँ दु:खता है, सामने वाला टकराता है, ये सभी प्राप्त तप! वर्ना किसी दिन यदि सत्संग में से लौटते हुए देर हो जाए तो वाइफ कहेगी, 'आपका ठिकाना नहीं है। इतनी देर तक कहीं बाहर भटकते होंगे? कहाँ भटक रहे थे?' अब पत्नी क्या जाने कि आप सत्संग में बैठे थे या भटक रहे थे? अब वाइफ ऐसा बोले तब आप सीधे नहीं रहे तो अपनी मूर्खता ही है न? हम जानते हैं कि आज तप में तपने का आया है! अब वहाँ यदि तप में नहीं तपो और पत्नी से कहो, 'चुप, एक अक्षर भी मत बोलना।' तब फिर पत्नी एक तरफ कारतूस भरती रहती है! 'बहन, किसलिए कारतूस भर रही हो?' तो कहती है, 'ये तो अभी फोड़ूँगी।'

फिर भोजन के बाद बहन कारतूस फोड़ती रहती है। और रात को दोनों वापस वहीं के वहीं, उसी कमरे में सो जाते हैं! यदि दूसरे किसी कमरे में सो जाना होता तो हम जानें कि इस बला से छूटे, लेकिन बला के साथ में ही सोए रहना है वापस! अरे, जहाँ सोए रहना हो वहाँ पटाखे नहीं फोड़ते, कोई पटाखा फोड़े न और अपने पैर पर पड़े तो हमें उसे बुझा देना चाहिए। बाहर जो कुछ करना हो, वह करना लेकिन घर में जहाँ रात-दिन रहना हो, वहाँ ऐसा नहीं करते। ज्ञानी बहुत समझदार होते हैं, खुद का हित किसमें हैं वह तुरंत ही समझ जाते हैं कि इसने तो पटाखा फोड़ा। वह तो अकुलाती है, इसलिए फोड़ा और मेरे पैर पर डाला, लेकिन अब मैं वापस उसके पैर पर डालूँगा तो वह मेरे सिर पर डालेगी! अब रखो न एक तरफ! अपने इस केस को एक तरफ रख दो न!

तप करे और उसका किसी को भी पता नहीं चलने दे, वह खरा तप! तप में यदि किसी से कहें, तो वह सुनता है और फिर वह हमें आश्वासन दे जाता है, यानी कि वह अपने पास से दो आने जितना हिस्सा ले जाता है और ऊपर से उल्टे रास्ते चढ़ा देता है। तब फिर किए गए तप के बारे में किसी को क्यों बताएँ? बिना वजह कमिशन कौन देगा? प्राप्त तप में जितना आश्वासन लेता है, उतना तप अधिक करना पड़ता है। हमने तो कभी भी किसी से आश्वासन नहीं लिया है। आश्वासन लेने पर तप करना पड़ता है। नहीं तो भीतर तपता रहता है और तप को ही अंदर समाते रहना पड़ता है। उसका उफान आता है, फिर वह बैठ जाता है। उसका टाइम हो जाएगा, तब उफान आएगा ही। यह ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप कहा है, अर्थात् तप में हमें जो आ पड़े हैं, ऐसे तप का तप करना है। आलूबड़े खाने का भाव हो जाए और नहीं मिलें तो उस दिन तप करना है!

प्रश्नकर्ता : दादा, ये आपके पैरों में निशान कैसे पड़ गए?

दादाश्री : वह तो हमने आत्मा प्राप्त करने के लिए तप किया था। वह कैसा तप कि बूट में कील ऊपर उठ गई हो तो उसे ठोकते नहीं थे, ऐसे ही चलाते रहते थे। उसके बाद हमें पता चला कि यह

तो हम उल्टे रास्ते पर हैं। हमने जैनों वाला तप किया है। 'बूट की कील बाहर निकले और चुभे उस समय यदि आत्मा हिल जाए, तब तो फिर आत्मा प्राप्त ही नहीं हुआ', मैं ऐसा मानता था। इसलिए वह तप होने देता था, लेकिन उस तप का दाग़ अभी तक भी नहीं गया है! तप का दाग़ पूरी ज़िंदगी नहीं जाता। यह उल्टा मार्ग है ऐसा हमें समझ में आ गया था। अंदरूनी तप होना चाहिए।

तप, क्रिया और मुक्ति

प्रश्नकर्ता : तप और क्रिया से मुक्ति मिलती है क्या?

दादाश्री : तप और क्रिया से फल मिलते हैं, मुक्ति नहीं मिलती। नीम बोएँ तो कड़वे फल मिलते हैं और आम बोएँ तो मीठे फल मिलते हैं। तुझे जैसे फल चाहिए, तू वैसे बीज बोना। मोक्ष प्राप्ति का तप तो अलग ही होता है, अंतरतप होता है।

मोक्ष के चार स्तंभ हैं - ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। कुछ लोग बिना समझे उसमें से सिर्फ तप का ही स्तंभ पकड़ बैठे हैं। जैसे पलंग के चार पैरों में से एक पैर पकड़ते हैं, वैसे इस तप को पकड़ लिया। देह को नहीं तपाना है, मन को तपाना है और वह भी इस तरह कि बाहर कोई जान नहीं पाए। लेकिन आज तो सिर्फ बाह्य तप ही करते हैं यानी जो स्टेशन आया, उसी को पकड़ लिया। बाह्य तप से बाप जी को फल क्या मिला? देह तेजस्वी हो गई। देह को तपाया, तो वह देह प्रकाशमान हो जाती है, लेकिन क्या देह साथ में आने वाली है? वह तो जला देनी है। जब तक यह देह है, तब तक खुद का ही काम निकाल लेना है। त्याग वालों ने त्याग की कसरत की। ये सभी कसरतशालाएँ हैं। उससे आत्मा के लिए कुछ भी नहीं होता। कुछ भी उपकार नहीं होता। पत्नी के बिना जी सकते हैं या नहीं, जिसने उसकी कसरत की, वह पत्नी को छोड़कर भाग जाता है। पत्नी बारह महीने के लिए पीहर नहीं जाती? यानी कि घर पर भी जीया जा सकता है न, किसलिए भाग जाते हैं? माँ, बेटे के पापा के साथ रोज़ झगड़ा करती

है, तो बेटा गांठ बाँध लेता है कि, 'अब ऐसा नहीं होना चाहिए, पत्नी नहीं होनी चाहिए', ऐसी मजबूत बाँधी हुई गांठ फिर उदय में आती है, फिर वह भाग जाता है। उसके बजाय तू यह सहन कर न! इस प्राप्त तप को सहन करते-करते मोक्ष में जा पाएगा। प्राप्त दुःख, उसे तो इनाम कहते हैं। भले ही फिर वह सहन करना पड़े, लेकिन कुछ गया तो नहीं न? अपने को कुछ मिला तो वह इनाम ही कहलाएगा न?

तप और त्याग करते हैं वह तो विषय है, सब्जेक्ट्स हैं। उससे मात्र हिम्मत बढ़ानी होती है। तप से शरीर में शक्ति है ऐसा पता चलता है, लेकिन 'त्यागे सो आगे', जिसका त्याग किया, वह अनंतगुना होकर सामने आता है और मोक्ष नहीं मिलता। लेकिन जब तक 'ज्ञानी पुरुष' नहीं मिल जाएँ तब तक शुभ में पड़े रहना।

त्याग किसका करना है?

भगवान ने ऐसे तप-त्याग करने के लिए नहीं कहा था, उन्होंने तो वस्तु की मूर्च्छा का त्याग करने के लिए कहा था। उसे ज्ञानमंदिर वाला त्याग कहा और लोग जिसे मानते हैं, वह बालमंदिर का त्याग है। यह पर्स है, यदि यह खो जाए फिर भी कुछ नहीं हो, उसे मूर्च्छा का त्याग कहते हैं। बालमंदिर के त्याग में तो, 'कुछ भी छोड़ना है' वही ध्येय होता है, लेकिन उसका कुछ न कुछ फल मिलेगा। पत्नी-बच्चे छोड़ेंगे तो लोग 'गुरु जी, गुरु जी' करके पूजेंगे। वस्तु की मूर्च्छा का त्याग, वही खरा त्याग है, बाकी, जो पत्नी और बच्चों का त्याग करता है, वह तो दूसरे नियम के आधार पर त्याग करता है। उदयकर्म के आधार पर प्रकृति त्याग करवाती है लेकिन देख लोटे पर मूर्च्छा है न! शिष्य पर द्वेष हो जाता है तो इसे त्याग कैसे कहा जाएगा?

सच्चा मार्ग मिला नहीं है इसलिए ये सब गोते खाते हैं, उसमें उनका दोष नहीं है। फिर भी, यह उलाहना किसे देना है? जो अहंकार कर रहा है उसे, कि यह कुछ समझा नहीं है और पत्नी-बच्चों का त्याग कर दिया। घर से तीन घंट छोड़कर आया और यहाँ एक सौ आठ शिष्यों के घंट गले में लटकाए हैं, इसलिए कहना पड़ता है!

भगवान ने कहा है कि, बंगले में रहने पर भी बंगले की मूर्च्छा नहीं है, मूर्च्छा के ऐसे त्याग को त्याग कहा है। जेब कट जाए फिर भी कोई मूर्च्छा नहीं आती, अत: वह त्यागी है। यदि मूर्च्छा के ऐसे त्याग को त्याग नहीं कहा होता तो संसारी को केवलज्ञान होता ही नहीं, भगवान ने क्या कहा है कि वस्तु का त्याग कोई कर ही नहीं सकता। चीज़ें अनंत हैं, उनका किस तरह त्याग किया जा सकता हैं? वस्तुओं का तिरस्कार करने से वे जाती हैं क्या? ना। लेकिन यदि अनंत वस्तुओं में से मूर्च्छा का त्याग हो जाए तो वह वस्तुओं का त्याग करने के समान है।

ये त्याग करते हैं वे तो अहंकार करके ही त्याग करते हैं, लेकिन जहाँ ग्रहण-त्याग में मूर्च्छा नहीं है उसे भगवान ने खरा त्याग कहा है, सहज ही बरते, ऐसे त्याग को त्याग कहा है।

त्याग में विषमता

ये लोग भले ही कितना भी बाह्य त्याग करें, लेकिन त्याग में विषमता आ जाए तो खुद की गलतियाँ नहीं दिखती, लेकिन अगर त्याग में समता आ जाए तो खुद की गलतियाँ दिखने लगती हैं। महाराज भिक्षा लेने गए हों, लेकिन उसमें एकाध आलू दिख जाए तो विषमता हो जाती है! तो फिर गलतियाँ कैसे दिखेंगी? त्याग में समता रहनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : त्याग में विषमता यानी क्या?

दादाश्री : किसी व्यक्ति ने किसी चीज़ का त्याग किया हो कि मुझे लहसुन-प्याज़ नहीं खाने हैं, फिर भी भूल से प्याज़ का टुकड़ा उछलकर खाने में गिर जाए और खाते समय हाथ में आ जाए तो दिमाग़ का पारा चढ़ जाता है, चिल्लाता है। कितने लोग तो प्याज़ देखने को भी राज़ी नहीं होते। देख लें तो भी अच्छा नहीं लगता, तब उसकी स्थिति कौन सी? तब क्या उसे समता रहती है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, विषमता रहती है।

दादाश्री : इस त्याग का फल विषमता आया, इससे तो त्याग नहीं किया होता तो अच्छा था। भगवान ने क्या कहा है कि अगर एक

आलू का टुकड़ा भूल से आ गया तो तुझे क्या नुकसान हो गया? ये सब आलू ही हैं न? जो भोगे जाते हैं, वे सभी आलू ही हैं न! यह तो भान ही नहीं है, इसलिए बुद्धि से भेद डाल दिए। भूल से आ गया तो हमें उसका हल लाना है। इतना तो आना चाहिए न?! समता कभी भी नहीं छोड़नी चाहिए। त्याग में समता रहे तो वह मोक्ष में ले जाती है। यह त्याग समता बढ़ाने के लिए किया या विषमता के लिए? त्याग तो समता बढ़ाने के लिए है और यदि समता नहीं रहे तो वैसा त्याग बेवकूफी है। ज्ञानी से यह समझने के बाद त्याग करना, वर्ना त्याग मत करना। यह तो बहुत बड़ा अस्पताल है, इसलिए ज्ञानी से पूछ कि क्या करूँ? तब वह कहेगा कि, ''नहीं, 'ये' तो संसारी हैं।'' तो तू अपने आप दवाई बनाकर पी न! किसने मना किया है? तुझे यदि मोक्ष में जाना हो, त्याग में समता लानी हो तो ज्ञानी से पूछ, नहीं तो अपने आप दवाई बनाकर सौदेबाज़ी चलने दे। वीतरागों ने भी किसी को डाँटा नहीं, कैसे समझदार थे वीतराग! वीतराग तो मूलरूप से ही झगड़ालू नहीं होते, उनके शिष्य दग़ा करें, लेकिन वे डाँटते नहीं। अपना भी वही ध्येय है न? यह तो हमारे हिस्से में आया है! चौबीस तीर्थंकर माल रखकर गए कि 'जाओ, बाद में 'दादा' आने वाले हैं, वहाँ जाओ', वह 'हमारे' हिस्से में आया है। 'हमारा' उलाहना तो 'करुणा' का उलाहना है। 'हमारा' स्वभाव तो वीतरागी है लेकिन '*जेवा रोग तेवा औषध, श्रीमुख वाणी झरते*' जैसा सामने वाले का रोग होता है, वैसी ही यह नैमित्तिक वाणी निकलती है।

हमारी कारुण्य बुद्धि से बहुत कठोर शब्द निकलते हैं और काल भी ऐसा है। यदि फ्रिज में ठंडी हो चुकी सब्ज़ी हो तो क्या होता है? फिर सोडा वगैरह सब डालें, तब सब्ज़ी पकती है, इसलिए हमें सोडा आदि सब डालना पड़ता है! हमें क्या यह सब अच्छा लगता होगा?

इतने सारे जंजालों में भी आप महात्माओं को यहाँ पर निर्विकल्प समाधि प्राप्त हो जाती है। आलू का टुकड़ा तो आ सकता है, लेकिन उसे धीरे से, कोई नहीं जान पाए वैसे फेंक देना चाहिए, समता से। जिसे विषम स्थिति हो जाती है वह क्या कहता है? 'कहाँ से ले आया यह? जा फेंक दे।' हमारी दाल में माँस का टुकड़ा आ जाए तो हम

तुरंत ही उसे निकालकर धीरे से कपड़े में डाल देंगे। भले ही कपड़ा बिगड़े, लेकिन हम दूसरों को नहीं हिलाते। हिलाएँगे तो जो वह दाल खाएगा वह रोगी हो जाएगा। ये लोग तो ऐसे कितने ही कोक्रोच और कितनी ही छिपकलियाँ खा चुके हैं। उससे फिर रोग होते हैं, कोढ़ निकलता है, और अन्य कई रोग होते हैं। बाहर का जो सब खाते हैं उसमें कोई बाप भी सावधानी नहीं रखता और अंदर जीवजंतु गिर जाते हैं और लोग टेस्ट से खाते हैं। हम तो माँस का टुकड़ा छुपाकर 'व्यवस्थित' पर छोड़ देंगे। जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो, ऐसे बरतेंगे, जबकि सेठ का तो खून जल जाएगा, शोर मचाकर रख देता है जिससे घर के पत्नी-बच्चे स्थंभित हो जाते हैं। हम तो समझते हैं कि इस (पकानेवाली) स्त्री ने क्या जान-बूझकर माँस का टुकड़ा डाला होगा? ना। वह तो कुछ लेने गई होगी और ऊपर से कौआ रोटी का टुकड़ा लेने आया हो और उसके मुँह में माँस का टुकड़ा होगा तो वह दाल में गिर गया होगा। एविडेन्स कैसे-कैसे सर्जित होते हैं? इसलिए इंसान को पूरी तैयारी रखनी चाहिए। क्या-क्या होता है, वह सभी लक्ष्य में रखना चाहिए न?

जितना त्याग किया उतना अहंकार बढ़ता है और उतना ही ज़बरदस्त क्रोध बढ़ता है। 'मैं, मैं' करते हैं उससे तो विलासी अच्छा, वह कहता है कि, 'मुझे तो इसमें कुछ भी समझ में नहीं आता।' हर एक व्यक्ति जाति भेद देखता है कि, 'यह तो त्यागी है। वह सबकुछ कर सकता है जबकि हम तो संसारी हैं।' ऐसा लिंगभेद रहता है। अगर लिंगभेद रहेगा तो संसारी काम कैसे निकाल सकेगा? तो उसके लिए भी उदाहरण के रूप में हम हैं। हम भी गृहस्थलिंग हैं, इन्कम टैक्स भरते हैं। इसलिए आपको लिंगभेद नहीं रहता और हिम्मत आती है!

भगवान ने त्यागियों के मोक्ष के लिए भी मना किया है और गृहस्थियों के मोक्ष के लिए भी मना किया है। एक व्यक्ति को चाय का त्याग नहीं है और वह चाय ग्रहण करता है, तो वह ग्रहण करने का अहंकार करता है। जबकि दूसरा चाय का त्याग करता है और चाय ग्रहण नहीं करता, तो वह त्याग करने का अहंकार करता है। ये दोनों जो करते हैं वह इगोइज़म है, और इगोइज़म है तब तक मोक्षमार्ग

नहीं है। फिर भी, उस मार्ग में, क्रमिक मार्ग में अहंकार से अहंकार को धोना है। साबुन खुद का मैल छोड़ता है और कपड़ा धुल जाता है, साबुन का मैल निकालने के लिए टिनोपॉल डालना पड़ता है, जबकि टिनोपॉल खुद का मैल रखता है और साबुन का मैल निकालता है, ऐसे अंत तक चलता है। गुरु खुद का मैल शिष्य पर छोड़ता जाता है, वह तो गुरु का मैल उस पर खुद पर चढ़ा हुआ होता है इसलिए मैल से मैल निकालना ही पड़ता है न! क्योंकि गुरु, वे भी मैले ही हैं न! जबकि 'ज्ञानी पुरुष' संपूर्ण शुद्ध होते हैं, इसलिए कोई मैल नहीं चढ़ता। क्रमिक मार्ग में गुरु शिष्य पर मैल चढ़ाते जाते हैं और यहाँ अक्रम मार्ग में सीधा शुद्ध ही प्राप्त हो जाता है। जिसका संग किया, वह उसका खुद का मैल तो चढ़ाएगा ही लेकिन सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही संपूर्ण शुद्ध होते हैं इसलिए कोई मैल नहीं चढ़ता।

सच्चा त्यागी!

संसारियों के दुःख मेरे हो जाएँ और मेरे सुख संसारियों के हो जाएँ, जिसे ऐसी भावना रहती है वह त्यागी कहलाता है। जो खुद ही *अशाता* में रहता हो, तो वह दूसरों को कैसे सुख दे पाएगा? ऐसा धर्ममार्ग रहे, तब भी शांति रहे।

जगत् भोगने के लिए है तो इसे भोगो, लेकिन किसी को दुःख मत देना और जिसे त्यागी बनना हो तो बनो लेकिन किसी को दुःखी मत करना। पत्नी से साइन करवा लेना कि, 'मेरी संपूर्ण राज़ीखुशी से पति जा रहे हैं', लेकिन यह तो ज़बरदस्ती साइन करवा लेता है। सब को राज़ी करने के बाद ही त्याग ले सकते हैं।

भगवान ने क्या कहा है कि, 'खरा त्यागी पुरुष कैसा होता है? जिसका मुँह देखते ही हमें आनंद हो उठे, उनके पैर छूने का मन करता रहे, उन्हें देखते ही अगर इन्कम टैक्स की चिंता हो, फिर भी उसे भूलकर आनंद आ जाए, दिल को ठंडक हो जाए।

आत्मा क्षण भर के लिए भी अनात्मा नहीं हुआ है। उसे एक क्षण भर के लिए भी अनात्मा की इच्छा नहीं हुई है। आत्मा को त्याग

नहीं है, जप नहीं है, तप नहीं है। त्यागी को आत्मा के त्याग की भ्रांति है और संसारी को आत्मा के संसार की भ्रांति है।

ज्ञानी की आज्ञा, वही धर्म और तप

मोक्ष के मार्ग में कुछ भी खर्च करने की ज़रूरत नहीं है, तप, त्याग, कुछ भी नहीं करना होता है। मात्र यदि 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो ज्ञानी की आज्ञा, वही तप और वही धर्म। 'ज्ञानी' मिलने के बाद नया तप खड़ा होता है - आंतरिक तप। आंतरिक तप से मोक्ष होता है और बाह्य तप से संसार मिलता है! कोई गालियाँ दें तो अंदर तुरंत ही नकद प्रतिक्रमण करो, इसे आंतरिक तप कहते हैं।

जन्म हुआ, तभी से मन-वचन-काया लेकर आया है। मुख्य मोह और मुख्य परिग्रह ये ही हैं। इन तीनों से ही अन्य अनेक मोह और परिग्रह उत्पन्न होते हैं इसलिए सब का त्याग नहीं किया जा सकता। जगत् क्रमबद्ध है, कभी भी क्रम नहीं टूटता। किसी व्यक्ति को क्रम में त्याग मिला तो वह त्याग करता है और आगे जाकर उसी के फलस्वरूप संसार मिलता है। परिग्रह तो अनेकों हैं। तू लाख परिग्रह लेकर आए, फिर भी हम तुझे यों सिर पर हाथ रखकर अपरिग्रही बना देंगे! अपरिग्रही तो समझ के भेद के कारण है। यह अक्रम मार्ग है और वह क्रमिक मार्ग है। क्रमिक मार्ग में, लाख सब छोड़कर जंगल में जाए, लेकिन मन-वचन-काया साथ में हैं इसलिए परिग्रह साथ में ही होता है, उसी से नया संसार खड़ा कर देता है। जबकि अक्रम मार्ग में परिग्रहों में अपरिग्रही रहकर मोक्ष है। भरत राजा को कैसा था? महल, राजपाट और तेरह सौ-तेरह सौ तो रानियाँ थीं, फिर भी ऋषभदेव भगवान ने उन्हें 'अक्रम' ज्ञान दिया, उसी से सारे वैभव सहित रहते हुए भी वे मोक्ष में गए!

कुछ लोग कपड़ों को परिग्रह मानते हैं और एक सौ आठ शिष्य रखते हैं। क्या ये कपड़े काटते हैं? खरा परिग्रह तो यह जीवंत परिग्रह ही है।

हमें कैसा रहता है? कि यह मकान जल रहा हो फिर भी उसका परिग्रह नहीं होता! सहज रहता है। यह हमारे सामने खाने की थाली

रखी हो और कोई उठाकर ले जाए तो हम उसे विनती करते हैं कि, 'भाई, सुबह से भूखा हूँ।' यदि भूखे होंगे तो विनती करके माँग लेंगे और फिर भी उठाकर ले ही जाए तो हमें कोई हर्ज नहीं। माँगना, उसे परिग्रह नहीं माना जाता। भले ही ज्ञानी हों, लेकिन माँगना पड़ता है। हमें भोजन की थाली की मूर्च्छा नहीं रहती। ये सभी परिग्रह हैं, उनमें अपरिग्रही बन जाए तो अंत आएगा। सत्सुख को पाएगा। लेकिन आज ये लोग आड़ी गली में घुस गए हैं, लेकिन इसमें इनका दोष नहीं है, यह तो कालचक्र के अधीन हैं। हमें कोई दोषित नहीं दिखता है। भीतर जो विराजमान हैं, वे दरअसल, संपूर्ण वीतराग हैं! यह तो आश्चर्य उत्पन्न हो गया है! यह अक्रम ज्ञान उत्पन्न हुआ है और वह 'विक्रम' शिखर पर है!

यह ज्ञान प्राप्त करने के बाद, कोई व्यक्ति आपके पास आए और वह आपको कड़वा पिलाए, तो उस समय भीतर में हार्ट लाल हो जाता है, उस समय आप यदि ज्ञान में स्थिर रहकर हार्ट को देखते रहो कि कितना तप रहा है तो इसी को भगवान ने 'ज्ञानतप' कहा है। संसारावस्था, वह कुदरती रचना है, उसमें अस्थिर क्या होना?

भगवान ने तो कहा है कि ज्ञान नहीं होगा, लेकिन यदि भान होगा तो भी चलेगा। भगवान ने ऐसा नहीं कहा है कि भान नहीं होगा तो चलेगा। भान होने के बाद ही ज्ञान-तप शुरू होता है। भगवान ने प्रयत्नदशा में एब्नॉर्मल होने के लिए मना किया है और अप्रयत्न दशा में भी एब्नॉर्मल होने के लिए मना किया है। भगवान कहते हैं कि सब तरफ से नॉर्मेलिटी में आ जाओ! तू एब्नॉर्मेलिटी में जो कुछ भी करता है, भगवान ने उसे विषय कहा है।

यह तप-त्याग जो करते हो, वह समष्टि करवाता है आपसे। और उसे आप ऐसा मानते हो कि, 'मैं तप कर रहा हूँ।' यह रिलेटिव चीज़ है, रिलेटिव में कोई कुछ कर ही नहीं सकता। हमने तो अंतिम बात कह दी है कि, 'तू तप करे या जप करे, त्याग करे या वेष बदले, जो भी करे वह सारा तेरा लट्टू स्वरूप ही है! जब तक शुद्धात्मा प्राप्त नहीं हो जाता तब तक सबकुछ प्रकृति करवाती है, इसलिए तू लट्टू ही है।'

त्याग

त्याग दो प्रकार के, (1) अहंकार से त्याग, (2) सहज वर्तन में बरता हुआ त्याग।

वास्तव में त्याग शब्द में ही अहंकार समाया हुआ है। अहंकार के बिना त्याग हो ही नहीं सकता और इसीलिए ऐसा *लक्ष* में रहा करता है कि मैंने त्याग किया, जबकि बरता हुआ त्याग *लक्ष* में रहता ही नहीं। जब त्याग करने की चीज़ें याद ही नहीं आएँ तब, त्याग को जीत लिया, ऐसा कहा जाएगा और अत्याग करने की चीज़ें भी याद न आएँ तब ऐसा कहा जाएगा कि अत्याग को जीत लिया। त्याग बरतता है, ऐसा किसे कहते हैं? जिसे त्याग करने का विचार भी नहीं आता है, उसे। और अत्याग बरतता है, ऐसा किसे कहते हैं? कि परिग्रह जिनकी स्मृति में - स्मरण में भी नहीं होते! मोक्षमार्ग में त्याग की भी शर्त नहीं है और अत्याग की भी कन्डिशन नहीं है!

इस जगत् में भगवान ने दो ही चीज़ों का त्याग करने के लिए कहा है (1) अहंकार और (2) ममता, अर्थात् मैं और मेरा - इन दोनों का त्याग करने के बाद संसार में तुझे त्याग करने का रहा ही नहीं न!

भगवान ने कहा है कि एक प्रकार का त्याग वह कहलाता है कि जो उदयकर्म करवाता है, वह त्याग वीतरागता वाला नहीं है। उदयकर्म उपवास करवाता है, सामायिक करवाता है, तो कहता है कि,

'मैंने किया।' प्रकृति जो-जो जबरन करवाती है वह सब उदयकर्म के अधीन है। प्रकृति जो त्याग करवाती है, उससे आत्मा पर क्या उपकार? उसे वीतरागता से त्यागा हुआ नहीं कहा जाएगा। वीतरागता का त्याग, वह अंतरत्याग है उसमें कैफ़ नहीं होता। जब उदयकर्म के अधीन त्याग होता है और कहे कि, 'मैंने त्याग किया', वह तो निरा अहंकार ही कहलाता है। ऐसे त्याग से तो निरा कैफ़ चढ़ता है। त्याग का जो कैफ़ चढ़ता है, वह तो अत्यधिक सूक्ष्म कैफ़ है। वह कैफ़ तो अत्यंत कष्ट से भी नहीं उतरता, तो फिर मोक्ष तो कब होगा? निष्कैफ़ी का मोक्ष होता है, कैफ़ी का नहीं। इससे तो शराबी का स्थूल कैफ़ अच्छा है कि पानी छिड़कें तो तुरंत ही उतर जाता है। लोग त्याग-वैराग्य करके भी भटकते रहते हैं, इस तरह से मोक्ष मिलना आसान नहीं है।

त्याग तो उसे कहते हैं कि मोह उत्पन्न ही नहीं हो। ये त्यागी तो त्याग करने के मोह में ही रहते हैं, उसे त्याग कहा ही कैसे जाए? त्याग तो शूरवीरता का काम है। त्याग तो सहज ही बरतता है, करना नहीं पड़ता। त्याग-अत्याग की मूर्च्छा संपूर्ण रूप से उड़ जाए, वही खरा त्याग है। तादात्म्य अध्यास, वही राग है और तादात्म्य अध्यास नहीं है, वह त्याग है। प्रचलित भाषा में कहे जाने वाले त्याग को त्याग कहते ज़रूर हैं, लेकिन वह अंतरंग त्याग के हेतु के रूप में है, फिर भी असल त्याग नहीं है।

एक साधु रोज़ गाते थे : 'त्याग टिके नहीं वैराग्य बिना।' तो मैंने उनसे पूछा कि, 'महाराज, लेकिन वैराग्य किसके बिना नहीं टिकता?' तब महाराज ने कहा, 'वह तो पता नहीं।' तब मैंने उनसे कहा, 'विचार के बिना वैराग्य नहीं टिकता।' यह तो क्रमिक मार्ग की बात हुई। क्रमिक मार्ग तो बहुत कठिन है, अनंत जन्मों से 'चूल्हे में से भट्ठी में और भट्ठी में से चूल्हे में जाने का सिलसिला बना हुआ है।' मात्र त्याग से ही आत्मा नहीं मिल जाता, त्याग तो कष्ट साध्य है। यदि त्याग से मोक्ष मिल जाता तो मोक्ष भी कष्ट साध्य होता। भगवान ने तो मोक्ष को सहज साध्य कहा है।

क्रमिक मार्ग में भी यदि त्याग करो तो वह, क्रोध-मान-माया-लोभ निवृत्त करने के लिए हो, तभी करना। जिस त्याग से क्रोध-मान-माया-लोभ बढ़ें, वह त्याग नहीं हो सकता।

भगवान ने क्या कहा है कि, 'शुद्ध उपयोग में ही रहो।' फिर भी यदि संसार का लोभ हो, भौतिक सुख चाहिए तो जो लोगों को पसंद नहीं, वैसा मत करना और लोगों को सुख उपजे ऐसा करना, वैसा ग्रहण करना और लोगों को दुःख पहुँचे ऐसे कार्य का त्याग करना, लेकिन मोक्ष चाहिए तो शुद्ध उपयोग में ही रहना।

अपनी ज़रूरत के मुताबिक ही चीज़ें रखना, उसे त्याग कहते हैं। चार कमीज़ों की ज़रूरत हो और बारह नहीं रखें तो उसे त्याग कहते हैं। जो निबाह लेते हैं, उन्हें त्यागी कहते हैं। त्याग तो कौन कर सकता है? जिनके साथ 'ज्ञानी पुरुष' के आशीर्वाद हों, वे ही त्याग कर सकते हैं, उनके सिवा कोई कुछ भी त्याग करने जाए, तो उसका उसे कैफ़ चढ़ता जाता है।

त्यागीलिंग और गृहस्थीलिंग ऐसे दो लिंग कहे गए हैं, जब त्यागीलिंग में कैफ़ बढ़ जाता है, तब गृहस्थलिंग में (ज्ञान) प्रकाश हो जाता है और गृहस्थलिंग में कैफ़ बढ़ जाए, तब त्यागीलिंग में प्रकाश बढ़ जाता है। भगवान ने क्या कहा है कि, 'किसी भी दशा में वीतराग हो सकते हैं, चाहे किसी भी लिंग में वीतराग हो सकते हैं। अरे! स्त्री भी संपूर्ण वीतराग हो सकती है, सिर्फ मनुष्यत्व होना चाहिए, यह किसी लिंग या दशा विशेष का ठेका नहीं है।'

मोक्ष के लिए त्याग करने की ज़रूरत नहीं है, त्याग तो बरतना चाहिए। फिर अन्य किसी त्याग की ज़रूरत नहीं है, दूसरा त्याग तो भ्रांति की भाषा का त्याग है। भगवान का त्याग शुद्ध भाषा का त्याग था। यह भ्रांति की भाषा का त्याग क्या है? बीड़ी पीने वाला समझता है कि मैंने बीड़ी का त्याग किया और प्रतिज्ञा करवाने वाला समझता है कि मैंने उससे त्याग करवाया। इस भ्रांति के त्याग को तो छोटा बच्चा भी समझता है कि आज से चाचा ने बीड़ी छोड़ दी है।

यह तो कैसा त्याग?

एक स्थानकवासी सेठ थे। उन्होंने मुझसे कहा कि, 'आप रोज़ घूमने निकलते हैं तब घंटा-आधा घंटा आना, हम साथ में बैठेंगे।' सेठ अच्छे आदमी थे। इसलिए हम पाव घंटा, आधा घंटा उनके साथ बैठते थे। एक दिन सेठ ने इतनी बड़ी (बारह इंच की) बीड़ी खुद बनाई। रोज़ तो इतनी छोटी बीड़ी होती थी, लेकिन एक दिन इतना बड़ा बीड़ा बनाकर पीने लगे। तब मैंने सेठ से कहा, 'क्यों इतना बड़ा बीड़ा पी रहे हो?' तब सेठने कहा, 'महाराज ने मुझे ऐसा कहा है कि रोज़ की चार ही बीड़ियाँ पीना।' मैंने कहा कि, 'महाराज मुझसे नहीं रहा जाएगा।' तब महाराज ने मुझसे कहा कि, 'ना, आपको हमारी आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा।'

'हं... इसलिए आप इस आज्ञा का पालन कर रहे हो?(!)' वह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि धन्य है इस काल को(!) थोड़ी देर हुई तो जो बीड़ी पी रहे थे वह आधी हो गई। उन सेठ ने फिर क्या किया कि दो पत्ते लेकर नीचे से चढ़ाने लगे! मैंने कहा, 'सेठ, यह क्या कर रहे हो?' तब सेठने कहा, 'चार से पूरा नहीं पड़ता इसलिए।'

धन्य है यह! ऐसा तो भगवान महावीर भी नहीं जानते थे! भगवान महावीर को जो ज्ञान केवलज्ञान में भी नहीं आया, वह ज्ञान आपको है! धन्य है, धन्य है! ऐसा मन भी होता होगा, यह तो मैंने आज ही जाना। धन्य है आपकी वैश्यबुद्धि को! नहीं तो चार बीड़ियाँ ही पीऊँगा, ऐसा बोले मतलब बोले-बस, नहीं तो नहीं बोलते। महाराज से साफ-साफ कह देना चाहिए था कि मुझसे आपकी आज्ञा का पालन नहीं किया जा सकेगा। और बोले यानी क्षत्रिय! फिर देखो न इतने बड़े पटाखे बनाए! और ऊपर से उस मोटे बीड़े को देखकर लगा कि बनिये तो ऐसे ही होते हैं, लेकिन जब नीचे से दो पत्ते डालने लगे तब मुझे आश्चर्य हुआ कि ऐसा ज्ञान तो भगवान महावीर को भी केवलज्ञान में नहीं आया था, वैसा ज्ञान आपको है! आप तो कैसे हो? अब आश्चर्य नहीं होगा मुझे? और फिर मुझे नाश्ता करवाया! ऐसे लोग हैं!

बहुत तरह के लोग मैंने देखे हैं, लेकिन भगवान के केवलज्ञान में भी नहीं आया होगा, वैसा तो मैंने इन सेठ के वहीं पर देखा! कहना पड़ेगा सेठ! वे सेठ अभी भी याद आते हैं! फिर सेठ मुझसे क्या कहने लगे कि, 'आपकी समताधारी बात सुनते हैं, तब हमें ऐसा होता है कि अंबालालभाई के पास ही बैठे रहें।' धन्य है इस सेठ को, धन्य है उन महाराज को भी! फिर सेठ मुझसे कहने लगे कि, 'महाराज मेरे पीछे हाथ धोकर पड़े हैं।' महाराज को ऐसा रहता है कि इन्हें कुछ संयम प्राप्त करवाऊँ। संयम का अर्थ ही नहीं समझे।

त्याग तो किसे कहते हैं कि जो बरते, वह। जो याद ही नहीं आए, उसे त्याग कहते हैं। भगवान ने त्याग किसे कहा है? कि मन में जो-जो विचार उत्पन्न हों, वाणी के जो-जो परमाणु उड़ें, उनमें खुद तन्मयाकार नहीं हो, उसे शुद्ध त्याग कहा है। मन में जो-जो विचार आएँ, फिर भले ही कितने भी अच्छे हों, पसंद हों या नापसंद हों, लेकिन उनसे जुदा रहे और तन्मयाकार नहीं हो, उसे भगवान ने त्याग कहा है। फिर, वाणी के जो-जो परमाणु उड़ते हैं, उनमें से किसी में भी खुद तन्मयाकार नहीं हो, उसे भगवान ने सर्वस्व त्याग कहा है, वही मोक्ष दे सके, ऐसा है। भ्रांत भाषा में बाह्यत्याग के लिए भी त्याग का अर्थ अलग ही है, लेकिन रियल भाषा में उसे त्याग नहीं कहा है। 'यहाँ' का एक आना भी 'वहाँ' काम नहीं आएगा। तन्मयाकार नहीं होना, ऐसा कब हो सकता है? कि जब खुद शुद्ध बन जाएगा तब। खुद जो अशुद्ध है, उसमें से 'ज्ञानी पुरुष' शुद्ध पद दे दें, तब भगवान की भाषा का त्याग बरतेगा। 'ज्ञानी पुरुष' शुद्ध पद में बिठा देते हैं, उसके बाद मोक्ष हो जाता है। यह तो कितना सरल है! नहीं तो अनंत जन्मों तक भी ठिकाना नहीं पड़े ऐसा है!

बाह्य त्याग का अर्थ भी यदि समझ जाएँ तो भी वह कितना सार्थक हो जाए! एक तरफ पत्नी-बच्चों का तिरस्कार करता है और दूसरी तरफ मोक्ष ढूँढता है, उसमें आपत्ति है। यह तो कहेगा कि, 'मेरे उदयकर्म हैं।' अरे, तिरस्कार किया, उसे उदयकर्म नहीं कह सकते।

आस-पड़ोस वालों, घर पर बीवी-बच्चे, माँ-बाप सभी को राज़ीखुशी रखकर जाए, उसे खरा उदयकर्म कहते हैं। तिरस्कार करके छोड़ना भी उदयकर्म है, लेकिन वह राज़ीखुशी से नहीं है, इसलिए खरा उदयकर्म नहीं कहलाता। भगवान महावीर को भी जब उनके भाई ने अनुमति दी, तभी उन्होंने दीक्षा ली। घर के किसी भी सदस्य को - पत्नी को, छोटी बच्ची को, किसी भी जीव को तिरस्कृत करके मोक्ष में नहीं जा सकते। जहाँ थोड़ा सा भी तिरस्कार हो, वह मोक्ष का मार्ग नहीं है।

भावहिंसा

जगत् गप्प नहीं है, लेकिन लोग उल्टा मान बैठे हैं। काफ़ी कुछ लोग कहते हैं कि भगवान ऊपर हैं, लेकिन वह सच नहीं है, लोगों की समझ उल्टी है। इसीलिए हमें स्पष्ट कहना पड़ता है कि इस वर्ल्ड में कोई ऐसा परमाणु बाकी नहीं बचा कि जहाँ मैं घूमा नहीं होऊँगा। ब्रह्मांड के अंदर रहकर और ब्रह्मांड से बाहर रहकर, 'जैसा है वैसा' मैं देखकर बता रहा हूँ और गारन्टी देता हूँ कि ऊपर कोई बाप भी नहीं है। यह तो ऊपर वाला, ऊपर वाला करके बिना बात की दखलंदाज़ी की, इसलिए आपकी चिट्ठी भगवान को नहीं पहुँचेगी और कागज़ के पैसे बेकार जाएँगे और भावना भी बेकार जाएगी। जहाँ है वहाँ पर बात करो न, भीतर जहाँ बाप बैठा है, तो कभी न कभी तेरी अर्ज़ी पहुँचेगी। या फिर मूर्ति की पूजा कर क्योंकि वह प्रत्यक्ष आँखों से दिखती है, फिर भले ही वह पत्थर की है, लेकिन लोगों ने मान्य की है। भले ही तुझे मान्य नहीं हो, लेकिन लोगों को मान्य है, लोगों के आरोपित भाव हैं, वहाँ पर चैतन्य वाले का आरोपित भाव है। वह मान्यता भी रोंग मान्यता है कि ऊपर भगवान है, वह रोंग एड्रेस है। बिना एड्रेस की चिट्ठी डालेंगे तो किसे पहुँचेगी? भीतर वाले को देख न! भगवान भीतर ही बैठे हैं, अन्य कहीं भी नहीं हैं। उन भगवान का सच्चा एड्रेस तुझे बताता हूँ – गॉड इज़ इन एवरी क्रीचर व्हेदर विज़िबल ओर इनविज़िबल (भगवान प्रत्येक जीव में विद्यमान है, भले ही वे जीव दृष्टिगोचर हैं या नहीं)।

एवरी क्रीचर (प्रत्येक जीव) में भगवान देख न, तो तुझे क्रीचर मारने का भाव ही उत्पन्न नहीं होगा और तब तू भावहिंसा से बच जाएगा। निरंतर भावहिंसा ही कर रहा है। क्रोध-मान-माया-लोभ का मतलब क्या? कि भावहिंसा; भगवान ने इसी में अहिंसक बनने को कहा है। जबकि ये लोग तो गायों को, हाथी आदि तक को बचाने के लिए निकल पड़े हैं! हाथी को बचाने वाला तू कौन पैदा हुआ है? तब फिर इनका जन्मदाता कौन होगा? बड़ा बचाने वाला आया है! किसी को मुँह से ऐसा नहीं कहना चाहिए कि, 'मैं इन खटमलों को मारने वाला हूँ।' 'खटमलों को मैं मारूँगा' ऐसा भाव निकाल देना, नहीं तो तेरे ही आत्मा की तू हिंसा कर रहा है। खटमल तो जब मरने वाला होगा तब मरेगा, और मारने का अधिकार किसे है? कि जो एक खटमल बना सके उसे। भगवान ने क्या कहा है, 'जितना तू कन्स्ट्रक्ट(निर्माण) करता है, उतना ही तू डिस्ट्रक्ट(ध्वस्त) कर सकता है। तेरा जितना कन्स्ट्रक्शन होगा, उतने के डिस्ट्रक्शन में हम हाथ नहीं डालते, इसलिए तू खटमल को डिस्ट्रक्ट मत करना।' ऐसी सादी भाषा तो समझ में आ सकती है न? एक खटमल बनाना हो तो वह बनाया जा सके, ऐसी चीज़ नहीं है। उसमें ये मूर्ख चाहें जो करते हैं, कितने ही जीवजंतु मार डालते हैं! निरे जीवजंतु मार डालते हैं।

जैसे भाव - हम वैसे ही निमित्त बनते हैं

इस जन्म में तो भाव करने के अलावा अन्य कुछ नया नहीं होता है लेकिन जन्मोंजन्म तक भाव करने के कारण, अब जो जीवजंतु मरने वाले हैं न, वे इसके हिस्से में आते हैं, और कुछ भी नहीं होता। जीवजंतुओं के मरने का टाइमिंग होता है, तब वह किसके हिस्से में आता है? जिसने मारने का भाव किया होगा, उसके हिस्से में आता है। किसी को मारने की सत्ता है ही नहीं, लेकिन हर एक जीव का मरने का टाइम तो होता ही है न? कुछ खटमल सत्रह दिन जीते हैं, कुछ तीन महीने जीते हैं और कुछ पाँच साल तक भी जीते हैं। उन सब के मरने का टाइमिंग है न? यानी जब उसके मरने का समय होता

है, तब वह चंदूलाल के हिस्से में आकर खड़ा हो जाता है, क्योंकि चंदूलाल ने निश्चित किया था, दुकान लगाई हुई थी कि, 'हम मारने के लिए ही हैं।' और जैनों ने 'नहीं मारने हैं' ऐसा निश्चित किया था, इसलिए उनके हिस्से में नहीं आता, इतना ही है। इस बात का अहंकार करने जैसा नहीं है। वह तो सिर्फ भाव ही किया था कि 'नहीं मारना है', वही अभी काम कर रहा है।

जीवजंतुओं को कोई बचाता ही नहीं है, उसी तरह जीवजंतुओं को कोई मारता भी नहीं है। वह तो उसे जीवजंतुओं को मारने का भाव है, इसीलिए वह योग उसे आ मिलता है, क्योंकि टाइमिंग होता है। हर एक जीव मात्र का टाइमिंग आया होता है, उसके मरणकाल से पहले कोई जीव मर सके, ऐसा है ही नहीं। जीव के मरणकाल से पहले यदि कोई उसे मार सकता तो उसे 'मारता है' ऐसा कह सकते हैं। लेकिन नहीं, मरणकाल से पहले कोई मार ही नहीं सकता। वह तो जब उसका काल पकता है, तब चंदूलाल के हिस्से में आता है। हत्कर्मी के हिस्से में 'हत्कर्मी भाव वाला' आता है और सत्कर्मी के हिस्से में 'सत्कर्मी भाव वाला' आता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन चंदूलाल निमित्त तो बनते हैं न?

दादाश्री : हाँ, चंदूलाल निमित्त बनते हैं, सिर्फ निमित्त बनते हैं। मारने के भाव किए थे इसलिए वह निमित्त बनता है। बाकी, जीवजंतुओं के जन्म से पहले ही, मृत्यु कब होगी उसका हिसाब तय होता है – जीव मात्र का। यह तो गलत अहंकार करता है।

भगवान क्या कहते हैं कि, 'कोई मनुष्य किसी जीव को मार ही नहीं सकता, भाव-मरण करता है, बस उतना ही है।' जितने जीवजंतु हों उतने मारने हैं ऐसा निश्चित करता है, वह भाव-मरण है। खेत में चार साँप हैं उन्हें मारने हैं, मारे जा सकें या नहीं भी मारे जा सकें, उसका कोई ठिकाना नहीं। वे पकड़ में आएँ या नहीं भी आएँ, लेकिन जब से उसने खुद ने भाव किए तब से खुद उसके ही आत्मा का

मरण हो रहा है। फिर साँपों को तो मरना होगा तब मरेंगे, उनका टाइमिंग होगा तब मर जाएँगे। यानी हम एक ही वाक्य कहते हैं कि सभी जीवों के जन्म से पहले ही यह निश्चित है कि वे कब मरने वाले हैं। अब इतनी ही बात यदि समझ जाए तब तो काम ही निकल जाए न! जन्म से पहले ही जिनका मरण निश्चित हो चुका है, उसे मारने वाले हम कौन होते हैं? वह तो जिस-जिसने मारने के भाव किए होते हैं, 'साँप मारने ही चाहिए' ऐसे भाव निश्चित किए हों, उस गाँव में जब साँप निकलते हैं, तब ऐसे दो-तीन साँप मारने वाले लोग गाँव में जन्म ले ही चुके होते हैं। यानी आपको तो सिर्फ आवाज़ ही लगानी पड़ती है कि, 'मेरे घर में साँप निकला है', तो वे दौड़ते हुए आ जाते हैं, क्योंकि दुकान लगाई हुई ही होती है!

अहिंसक भाव वाला तीर मारे तो ज़रा सा भी खून नहीं निकलता और हिंसक भाव वाला फूल डाले, तब भी किसी को खून निकल जाता है। तीर और फूल इतने इफेक्टिव नहीं हैं, जितनी इफेक्टिव भावना है। इसलिए हमारे एक-एक शब्द में निरंतर हमें ऐसा भाव रहता है कि 'किसी को दुःख नहीं हो, जीव मात्र को दुःख नहीं हो'। जगत् के जीव मात्र को इस मन-वचन-काया से किंचित्मात्र भी दुःख नहीं हो, इस भावना से ही हमारी वाणी निकलती है। चीज़ काम नहीं करती, तीर काम नहीं करते, फूल काम नहीं करते, लेकिन भाव काम करते हैं। इसलिए हम सभी को भाव कैसे रखने चाहिए कि, प्रातःकाल निश्चित करना चाहिए कि, 'जीव मात्र को इस मन-वचन-काया से किंचित्मात्र भी दुःख नहीं हो।' ऐसा पाँच बार बोलकर, यदि सच्चे भाव से बोलकर निकलें और बाद में यदि आपसे गुनाह हो गया तो यू आर नॉट एट ऑल रिस्पोन्सिबल (आप तनिक भी ज़िम्मेदार नहीं हो), ऐसा भगवान ने कहा है। ऐसा क्यों कहा? तो कहते हैं, 'साहब मेरी तो ऐसी भावना नहीं थी।' तो भगवान कहते हैं कि, 'यस, यू आर राइट!' जगत् ऐसा है। यदि आपने किसी को भी, एक भी जीव को नहीं मारा हो और आप ऐसा कहो कि, 'जितने भी जीव आएँ,

उन्हें मारना ही चाहिए' तो पूरे दिन की जीव हिंसा के आप हिस्सेदार बनते रहते हैं। यानी कि ऐसा है जगत्!

दया, आत्मभाव की रखो

जगत् तो समझने जैसा है। भगवान कहते हैं कि, 'जंतुओं को मारना या नहीं मारना, वह सत्ता तेरे हाथ में नहीं है, संडास करने की भी तेरी खुद की स्वतंत्र शक्ति नहीं है।' वह तो जब अटके तब पता चलेगा कि यह सत्ता मेरी नहीं है। एक बार तू तेरी सत्ता जान ले। भगवान कहते हैं कि, 'एक जीव को मारना, यानी कितने सारे कारण इकट्ठे हों तब वह कार्य होता है।' मारने वाला सिर्फ भाव ही नक्की करता है कि, 'मुझे मारना है।' तो यह दुनिया कोई सिर्फ तेरे बाप की नहीं है। तेरे बाप की दुनिया होती तो कभी का खाली नहीं करवा देता? यह तो कब 'टप' हो जाएगा, उसका क्या ठिकाना? बस इतना ही है कि अहंकार यों ही बदनाम होता है। बिना वजह अहंकार नज़र में आ जाता है, इतना ही है। भगवान ने तो यहाँ तक कहा है कि, 'आपको भावदया रखनी है।' भावदया यानी उन जंतुओं को बचाने की नहीं, उस जीव को मारने का भाव होता है न उससे तुम्हारे आत्मभाव का मरण होता है। अपने आत्मभाव का मरण हुआ इसलिए कहते हैं कि, 'तू अपने भावमरण के लिए दया रखना', उसे भाव दया कहा है। तू अपनी भाव दया संभालना, उसका तो वह लेकर आया हुआ है ही। जीवमात्र खुद का सभी कुछ लेकर ही आया हुआ है, स्वतंत्र है। नहीं तो अमरीका वाले इतने सालों तक शीतयुद्ध रहने देते क्या? वे कहते, 'एक घंटे में ही हम पूरा रशिया खाली कर सकते हैं, ऐसा है!'

बचाता है - वह भी अहंकार

इसमें तेरी खुद की कुछ भी सत्ता नहीं है, इसलिए तू अपने आप सावधान हो जाना कि तेरे आत्मभाव का मरण नहीं हो। तू दूसरों को मारने की भावना करेगा तो तेरे आत्मभाव का मरण होगा और इसीलिए भावदया रखना। सामने वाले पर दया रखने को नहीं कहा

है। जबकि ये तो सामने वाले पर दया रखने में पड़ गए! 'अरे पागल, तेरा ठिकाना नहीं है, तो तू सामने वाले पर कैसे दया रखेगा?' उसमें तो वापस अहंकारी बन चुके होते हैं! 'मुझे बहुत दया आती है, मुझे बहुत दया आती है!' अरे अभागे तू खुद पर ही दया रख न! किस प्रकार का जीव है तू?

भगवान के पास एक कसाई गया और यहाँ के एक संघपति गए। कसाई के हाथों से गायें छुड़वाकर लाने वाले उस संघपति ने कहा, 'साहब मैंने दस गायें छुड़वाई हैं।' तब भगवान कहते हैं, 'आपकी बात सच है कि आपने दस गायों को छुड़वाया।' तब वह कसाई कहता है, 'साहब, मैंने दस गायें मारीं। अब हम दोनों में से पहले किसका मोक्ष होगा?' तब भगवान ने कहा, 'मोक्ष की बात किसी को भी नहीं करनी है, आप दोनों अहंकारी हो, आप मोक्ष के लायक नहीं हो। यह मारने का अहंकार कर रहा है और तू बचाने का अहंकार कर रहा है।' तेरे पिता जी बूढ़े हो गए हैं, उन्हें बचा न! इसे किसलिए बचा रहा है? पिता जी अस्सी साल के बूढ़े हो गए हैं, उन्हें मरने दे रहा है? पिता जी को क्यों मरने देता है? तू बचाने वाला है, हमेशा के लिए बचाने वाला है तो बाप को बचा न! यह तो ज़रूरत से ज़्यादा अक़्लमंदी है, इसे ओवरवाइज़-मेडनेस कहा है। इस जगत् के जंजाल में हाथ मत डालना, उसमें कुछ लिमिट तक ही रहना। ये तो ओवरवाइज़ हो चुके हैं, सब कीर्ति के पीछे पड़े हुए हैं। क्या चाहिए इन्हें? कीर्ति। शायद यहाँ पर कीर्ति मिल जाए लेकिन वहाँ उनका बाप अच्छी तरह खबर लेगा, वहाँ पर दरअसल न्याय हो रहा है, वहाँ किसी का कुछ चलने वाला नहीं है। भगवान ने क्या कहा है कि, 'तू दस गायें बचाने का अहंकार कर रहा है और वह दस गायों को मारने का अहंकार कर रहा है, इसलिए आप दोनों को ही यहाँ पर मोक्ष की बात सुनने-करने नहीं आना है। तुझे बचाने का फल मिलेगा और तुझे मारने का फल मिलेगा। उन जीवों को तूने बचाया है, वे तेरे ऊपर उपकार करके बदला चुकाएँगे और वह जिसने जीवों को मारा है, वे ही जीव उसे

दुःख देंगे। यह बस इतना हिसाब है। हम बीच में हाथ नहीं डालते हैं। मोक्ष का और इसका कुछ भी लेना-देना नहीं है।

अब यदि तूने कॉलेज में जिन दो लड़कों को पास किया हो, वे लड़के बड़े होकर कहें कि, 'इन्होंने हमें पास किया था', तो वे उसका लाभ आपको देते हैं। स्वाभाविक रूप से, वैसा ही इन जीवों को बचाने में भी है। आप जीव बचाओ या नहीं बचाओ, भगवान ने उसे मोक्ष के लिए आवश्यक नहीं बताया है। यह तो ज़रूरत से ज़्यादा समझदार हो गए हैं। इतने अधिक समझदार कि गाय बचाने के लिए कसाई के वहाँ से चार सौ-चार सौ रुपये देकर गायें छुड़वा लाते हैं लेकिन फिर क्या उसे उपाश्रय में या मंदिर में थोड़े ही बाँधकर रखते हैं! फिर तो किसी ब्राह्मण को मुफ्त में दे देते हैं कि, 'भाई ले, तू ले जा।' फिर वह कसाई ध्यान रखता है कि ये गाय को किसके यहाँ पर बाँध रहे हैं! वह ब्राह्मण को गाय देते हैं, तब वह कसाई वहाँ से फिर उस ब्राह्मण के पास जाता है, और कहता है, 'अरे, तुम पर कुछ कर्ज़ हो गया है क्या?' तब वह कहेगा, 'हाँ भाई, सौ-डेढ़ सौ का कर्ज़ हो गया है।' तब वह कसाई कहेगा, 'पचास देता हूँ।' तब ब्राह्मण कहता है, 'डेढ़ सौ दे तो गाय दे दूँ तुझे।' डेढ़ सौ रुपये देकर वह कसाई गाय वापस ले आता है। इसने चार सौ में दी और डेढ़ सौ में छुड़वा लाता है वापस। इन लोगों को मूर्ख बना देता है। ये कीर्ति में पड़े हैं, ओवरवाइज़ हो गए हैं!

अरे, किस तरह जन्म लेता है और किस तरह मरता है उसमें तू मत पड़। तू तेरा भावमरण बचा। सब सब की संभालो। तेरा भावमरण उत्पन्न नहीं हो, भावहिंसा नहीं हो, तू उसका ध्यान रख। आप किसी पर क्रोध करते हो तो उसे तो शायद दुःख होता होगा, लेकिन आपसे तो एक बार हिंसा हो गई, भावहिंसा! इसलिए भावहिंसा होने से बचाओ, ऐसा भगवान ने कहा है। इतने तक ही कहा है, इससे ज़्यादा कुछ भी नहीं कहा है। मैं क्या कह रहा हूँ, वह व्यू पोइन्ट समझ में आ रहा है आपको? बाहर यह केस कितना बिगड़ चुका है? अब

यह कैसे उजला हो पाएगा? काले पड़ चुके बर्तनों के लिए किस तरह का एसिड इस्तेमाल किया जाए, वही मुझे समझ में नहीं आता। बहुत साल नहीं हुए हैं, 2500 साल ही हुए हैं भगवान महावीर को गए हुए। उनमें से 500 सालों तक तो अच्छा रहा और 2000 साल में इतना अधिक ज़ंग लग गया? कृष्ण भगवान को गए हुए 5100 साल हुए हैं। इतने में कितना अधिक ज़ंग चढ़ गया है। हमें इतना कठोर किसलिए बोलना पड़ता है? हमारी 'ज्ञानी पुरुष' की ऐसी कठोर वाणी नहीं होती। लेकिन अत्यंत करुणा होने के कारण सामने वाले के रोग निकालने के लिए ऐसी करुणाभरी वाणी निकल रही है।

मरणकाल ही मारे

आपकी समझ में आया कि मैं क्या कहना चाहता हूँ? यह गहन बात है, यह कोई बाज़ारू बात नहीं है। इसमें ऐसी बातें हैं कि सभी शास्त्रों का तोल करके एक ओर रख दें क्योंकि टाइमिंग के बिना कोई मार सके, ऐसा है नहीं, इसलिए भगवान क्या कहना चाहते हैं कि, 'आप यह भावबीज मत पड़ने देना।' यदि बीज नहीं पड़ने दिया तो फिर आप बंद आँखों से चलोगे, फिर भी आपका कोई नाम देने वाला नहीं है और खुली आँखों से चलोगे और यहाँ पैर के नीचे आ गया होगा तो मरने के लिए आकर भी नहीं मरेगा, आपसे कुचल गया होगा, फिर भी मरेगा नहीं और हिंसकभाव वाले के हाथों वह मरेगा। इतना अधिक गहन साइन्स है। टाइमिंग के बिना कुछ भी नहीं हो सकता ऐसा इस जगत् में है। कभी न कभी तो यह सही बात समझनी ही पड़ेगी न!

ज्ञानयोग : अज्ञानयोग

प्रश्नकर्ता : योगसाधना करते हैं, उससे विकास होता है न?

दादाश्री : पहले हमें तय करना चाहिए कि योगसाधना करके हमें क्या प्राप्त करना है? किसकी प्राप्ति के लिए हम योगसाधना कर रहे हैं, पैसे कमाने के लिए या सीखने के लिए?

प्रश्नकर्ता : सभी प्रकार के दैहिक विकास के लिए।

दादाश्री : ये जो सभी साधनाएँ करते हैं, वे तो मन की या देह की साधना कर रहे हैं न?

प्रश्नकर्ता : आचार्य के साथ रहकर करें फिर भी?

दादाश्री : मार्गदर्शन दो प्रकार का होता है - एक रिलेटिव और एक रियल। रिलेटिव के लिए तो बाहर कई मार्गदर्शक हैं। इसलिए पहले हमें तय करना चाहिए कि कौन सा चाहिए? यदि सर्व दुःखों से मुक्त होना हो तो यह रियल मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए। तो आपको कौन सा चाहिए? यह पैसा-वैसा तो बाहर रिलेटिव में मिल जाएगा, क्योंकि मेहनत से फल तो मिलेगा न? लेकिन यहाँ पर तो आत्मा की योगसाधना की जाती है, इसलिए सभी प्रकार से काम पूरा हो जाता है!

प्रश्नकर्ता : ध्यान और योग में क्या फर्क है?

दादाश्री : चार प्रकार के योग हैं। पहला-देहयोग, देह में पीछे चक्र होते हैं वहाँ पर एकाग्रता करना, उसे देहयोग कहते हैं। उस योग की कीमत कितनी? तब कहें, व्यग्रता का रोग है इसलिए एकाग्रता की दवाई चुपड़ते हैं। एकाग्रता की ज़रूरत तो, जिसे व्यग्रता का रोग है, उसे है। जिसे जैसा रोग होता है, उसे वैसी दवाई की ज़रूरत है। वह तो सिर्फ टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट है, उससे तो सिर्फ टेम्परेरी रिलीफ मिलता है। यदि इस रिलीफ को अंतिम स्टेशन मानें तो उसका हल कब आएगा? यदि इस एकाग्रता की दवाई से क्रोध-मान-माया-लोभ चले जाते हों तो वह काम का है। यह तो पच्चीस साल तक एकाग्रता करता है, योगसाधना करता है, उससे यदि क्रोध-मान-माया और लोभ नहीं जाएँ तो किस काम का? जिस दवाई से क्रोध-मान-माया और लोभ जाते हैं, वही दवाई सही है। यह योग साधना तू करता है, वह किसकी करता है? 'जान लिया' उसकी या अनजान की? आत्मा से तो अनजान है, तो उसकी साधना किस तरह से होगी? देह को ही जानता है और देह की ही योगसाधना तू करता है, उससे तूने आत्मा पर क्या उपकार किया? और इसलिए तू मोक्ष को कब प्राप्त कर सकेगा?

दूसरा योग - वह वाणी का योग है, वह जप योग है; उसमें पूरे दिन जप करता रहता है। ये वकील वकालत करते हैं, वह भी वाणी का योग कहलाता है!

तीसरा योग - वह मनोयोग है, किसी भी प्रकार का मानसिक ध्यान करते हैं, वह। लेकिन ध्येय निश्चित किए बगैर ध्यान करने से कुछ नहीं होता। गाड़ी से जाना हो तो स्टेशन मास्टर से कहना पड़ता है न कि मुझे इस स्टेशन की टिकट दो। स्टेशन का नाम तो बताना पड़ता है न? यह तो 'ध्यान करो, ध्यान करो', लेकिन किसका? यह तो बता! लेकिन यह सब अंधाधुंध चल रहा है, बिना ध्येय का ध्यान वह तो अंधाधुंध कहलाता है। ऐसे ध्यान में तो आकाश में भैंसा दिखता है और उसकी लंबी पूँछ दिखती है बस, ऐसा ध्यान किस काम का? यों ही गाड़ी चल पड़ेगी तो कौन से स्टेशन पर रुकेगी, वह भी तय

नहीं है। ध्येय तो सिर्फ एक 'ज्ञानी पुरुष' के पास ही है, वहाँ पर जीवंत ध्येय प्राप्त होता है, उसके बिना यदि 'मैं आत्मा हूँ' बोलेंगे तो काम नहीं होगा। वह तो, जब 'ज्ञानी पुरुष' पाप जला देते हैं, ज्ञान देते हैं, तब ध्येय निश्चित हो पाता है स्वरूप ज्ञान देते हैं, तब ध्येय प्राप्त होता है उसके बिना 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलने से कुछ भी नहीं होता। वह किसके जैसा है? नींद में 'मैं प्रधानमंत्री हूँ' ऐसा बोले तो कुछ फल आता है? मन के योग में ध्यान, धर्म करता है, लेकिन वे सभी रिलीफ रोड हैं। अंतिम आत्मयोग, उसके हुए बिना कुछ भी परिणाम नहीं आ सकता। आत्मयोग प्राप्त नहीं हुआ है, इसीलिए तो ये सब पज़ल में डिज़ोल्व हो गए हैं न!

हम सब यहाँ पर 'शुद्धात्मा' में रहते हैं, तो वह आत्मयोग है। स्वरूप का ज्ञान, वह आत्मयोग है यानी कि वह खुद का स्थान है, बाकी के सभी देहयोग हैं। उपवास, तप, त्याग करते हैं, वे सभी देहयोग हैं। वे तीनों ही योग (मन-वचन-काया) फिज़िकल है। इस फिज़िकल योग को पूरा जगत् अंतिम योग मानता है। ये सभी योग मात्र फिज़िकल प्राप्त करने के लिए ही है। फिर भी इस फिज़िकल योग को अच्छा कहा गया है। ऐसा कुछ भी नहीं करेगा तो शराब पीकर सट्टा खेलेगा, उसके बजाय तो यह सब करता है वह अच्छा है और इसका फायदा क्या है? कि बाहर का कचरा भीतर नहीं घुसता और रिलीफ मिलता है और मनोबल मज़बूत होता है। बाकी, अंतिम आत्मयोग में आए बिना मोक्ष नहीं हो सकता।

योग से आयुष्य का एक्सटेन्शन?

प्रश्नकर्ता : योग से मनुष्य हज़ारों-लाखों सालों तक जीवित रह सकता है क्या?

दादाश्री : लाखों तो नहीं, लेकिन हज़ार-दो हज़ार सालों के लिए ज़रूर जी सकता है। वह योग कैसा होता है? यों तो आत्मा पूरे शरीर में व्याप्त है, लेकिन योग से आत्मतत्व ऊपर खिंचता है, उसे

जब ठेठ ऊपर ब्रह्मरंध्र में खींच लेता है, तब हार्ट, नाड़ी सभी बंद हो जाते हैं। आत्मा कमर तक रहे, तभी तक हृदय, नाड़ी वगैरह सब चलता है लेकिन उससे ऊपर चला गया तो सारी मशीनरी बंद हो जाती है। किसी ने यह योग पंद्रह साल, तीन महीने, तीन दिन, तीन घंटे और तीन मिनट की उम्र में शुरू किया हो और वह एक हज़ार साल के बाद पूरा हो तो उसका आयुष्य फिर से पंद्रह साल, तीन महीने, तीन दिन, तीन घंटे और तीन मिनट बाद शुरू होगा। यहाँ पर धड़कन शुरू हुई यानी आयुष्य खर्च हुआ और जितनी धड़कनें सलामत हैं, तो उतना आयुष्य सलामत। आपसे यह आयुष्य को सलामत नहीं रखा जा सकता। योग वाले कर सकते हैं और जब तक देह में आत्मा की हाज़िरी है, तब तक शरीर सड़ता नहीं, मुरझाता नहीं, बदबू नहीं मारता, देह वैसे का वैसा ही रहता है! फिर भले ही योग द्वारा हज़ार सालों के लिए पत्थर जैसा हो चुका हो।

प्रश्नकर्ता : उसमें आत्मा की क्या दशा होती है?

दादाश्री : बोरे में भरकर रखने जैसी। उसमें आत्मा पर क्या उपकार हुआ? यह तो इतना ही कि मैं हज़ार साल तक योग में रहा ऐसा सिर्फ अहंकार रहता है। फिर भी, सांसारिक दुःख बंद रहते हैं लेकिन सुख तो उत्पन्न नहीं ही होता। सुख तो, जब आत्मा का उपयोग करते हैं, तभी उत्पन्न होता है, और आत्मा का उपयोग कब होता है? हार्ट चले तब होता है। उसके बिना तो कुछ नहीं हो सकता।

कुछ योगी उनके शिष्यों से कहकर रखते हैं कि आत्मा ब्रह्मरंध्र में चढ़ा लूँ, उसके बाद तालू में (खोपड़ी पर) नारियल फोड़ना, लेकिन ऐसे कहीं मोक्ष में जाया जाता होगा? ये तो ऐसा मानते हैं कि तालू में से जीव निकले तो मोक्ष में जाता है, इसलिए ऐसा प्रयोग करते हैं। लेकिन ऐसा मानने से कुछ नहीं हो सकता, वह तो नैचुरली तालू से प्राण निकलना चाहिए। कोई कहेगा कि आँख में से जीव जाए तब ऐसा होता है, तो क्या आँखों में मिर्ची डालकर जीव आँखों में से भेजें? ना। नैचुरली होने दे न!

प्रश्नकर्ता : जहाँ से द्वार खुलते हैं, आँख, नाक वगैरह उनमें से जीव जाता है?

दादाश्री : हाँ, वे लक्षण कहलाते हैं। पाँच लक्षण हैं और लक्षित अनंत हैं, उसमें कहाँ ठिकाना पड़े? मुँह से जीव जाए तो अनंत जगहों पर जा सके, ऐसा है। वे सारी तो ढुल-मुल बातें हैं, इनमें स्पष्टता नहीं मिलती।

कुंडलिनी क्या है?

प्रश्नकर्ता : 'कुंडलिनी' जगाते हैं, तब प्रकाश दिखता है। वह क्या है?

दादाश्री : उस प्रकाश को देखने वाला शुद्धात्मा है, जो उस प्रकाश के साथ तन्मयाकार हो जाता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। उसमें दो-चार घंटों तक तन्मयाकार रहे, तो उससे आनंद रहता है, लेकिन जब उसकी गैरहाज़िरी रहे तो वापस, थे वहीं के वहीं। किस रंग का प्रकाश दिखता है?

प्रश्नकर्ता : कभी नहीं देखा हो, ऐसा सफेद होता है।

दादाश्री : जिसमें तन्मयाकार हुआ, उसमें उसे आनंद होता है। लुटेरों की किताब पढ़ता है तो भी आनंद होता है, लेकिन उससे गलत कर्म बंधते हैं। जबकि इस एकाग्रता से अच्छे कर्म बंधते हैं। यह कुंडलिनी जागृत करता है, इसके बजाय तो आत्मा को जगा न! यह तो सिर्फ कुंडलिनी के स्टेशन पर ही घूमता रहता है। इन्हें गुरु महाराज अगर ऐसे स्टेशन पर उतार दें, जहाँ काली जमीन पर बरसात हो रही हो, तो वह किस काम का? आपको तो यहाँ पर अंतिम स्टेशन मिल गया है। अनंत प्रकार के स्टेशन हैं, उनमें गुरु न जाने कहाँ उलझाकर रख दें। फिर भी उससे स्थिरता रहती है, लेकिन मोक्ष के लिए वह किस काम का?

कुंडलिनी जाग्रत करता है लेकिन उससे दृश्य दिखता है, लेकिन

वह तो था ही न पहले से! दृष्टि द्रष्टा में पड़ेगी और ज्ञान ज्ञाता में पड़ेगा, तभी निर्विकल्प होगा!

प्रश्नकर्ता : दादा, मुझ में कुंडलिनी की लाइट उत्पन्न हो जाती है।

दादाश्री : एकाग्रता का साधन है इसलिए लाइट उत्पन्न होती है और आनंद आता है। लोग उस लाइट को आत्मा मानते हैं, लेकिन वह लाइट आत्मा नहीं है, जो उस लाइट को देखता है, वह आत्मा है। यह लाइट तो दृश्य है और उसे देखने वाला द्रष्टा-वह आत्मा है। आपको यहाँ जो यथार्थ आत्मा दिया है, वह इस लाइट का द्रष्टा है!

प्रश्नकर्ता : वह एकाग्रता करता है, इसलिए लाइट जैसा दिखता है और उससे आनंद आता है!

दादाश्री : लेकिन वह सारा आनंद रिलेटिव आनंद है, वह किसके जैसा है? बर्फी खाने पर जो आनंद आता है, वैसा। फिर भी, यह अच्छा है। इस संसार के अनेक दु:खों में ठंडक के लिए कोई साधन तो चाहिए न? और जब तक सही मार्ग नहीं मिल जाता, तब तक वह ठीक है।

अनाहत नाद

प्रश्नकर्ता : अनाहत नाद अर्थात् क्या?

दादाश्री : शरीर के किसी भी भाग का नाद पकड़ लेते हैं, वह हार्ट के पास, कोहनी के पास, कलाई के पास नाद आता है, उस नाद के आधार पर एकाग्रता हो जाती है और उसमें से आगे बढ़ते हैं। वह किस प्रकार का स्टेशन है वह भी समझ में नहीं आता। बहुत प्रकार के स्टेशन हैं, लेकिन उनसे आत्मा नहीं मिलता। वह मार्ग आत्मप्राप्ति वाला मोक्षमार्ग नहीं है। वह ध्येय नहीं है, लेकिन रास्ते में आने वाले स्टेशन हैं, केन्टीनें हैं। यदि आत्मा बन गया है, ब्रह्म बन गया है, तो फिर ब्रह्मनिष्ठ बनना है और तभी काम पूरा होगा, वर्ना यदि महाराज

खुद ही ब्रह्मनिष्ठ नहीं बने होंगे, वे ही जगत्‌निष्ठा में होंगे, तो अपना क्या भला होगा?

ब्रह्म तो है ही सभी में लेकिन उन्हें जगत्‌निष्ठा है। अभी जगत् के लोगों की निष्ठा जगत् में है। जगत् के सभी सुखों को भोगने की निष्ठा है। लेकिन 'ज्ञानी पुरुष' उस पूरी निष्ठा को उठाकर ब्रह्म में बैठा देते हैं इसलिए जगत् निष्ठा फ्रेक्चर हो जाती है और तभी अंतिम स्टेशन आता है और फिर सभी जगह आराम से घूमता है। इन बीच के स्टेशनों पर बैठने से कुछ नहीं होगा, उससे तो एक भी अवगुण नहीं जाएगा। अवगुण किस तरह जाएगा? उनमें मैं ही हूँ, ऐसा रहता है न! वेदांत ने भी कहा है कि, 'आत्मज्ञान के बिना कुछ भी नहीं हो सकता।'

यह अनाहत नाद क्या सूचित करता है? वह तो पौद्‌गलिक है। उसमें आत्मा का क्या भला हुआ? वह नहीं है आत्मा। आत्मा का अनाहत नाद होगा या आत्मा का आनुषंगिक होगा तो कोई परेशान नहीं करेगा, लेकिन यदि पूरण-गलन की वंशावली होगी तो परेशान करेगी। आत्मा और आत्मा के आनुषंगिक में कोई अवरोध डाल सके, ऐसा नहीं है, लेकिन अगर *पूरण-गलन* की वंशावली होगी तो विघ्न डाले बिना रहेंगे ही नहीं। तो फिर क्या, उसे पहचानना नहीं पड़ेगा कि वह वंशावली किसकी है?

फिर भी जिसे इसमें पड़ना हो उसे हम नहीं हिलाते, उसका जो भी स्टेशन है, वह ठीक है। जब तक उसे यह आत्मज्ञान नहीं मिलता, तब तक वह अवलंबन ठीक है।

ध्यान

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि – ये सभी योग के अष्टांग हैं। यहाँ पर यह ज्ञान मिला इसलिए आपके लिए ये पूरे हो गए। उससे आगे आत्मा का लक्ष्य भी आपको बैठ गया है। हमें तो यहाँ देह को भी सहज रखना है और आत्मा को भी सहज रखना है। आपको आत्मा का अनुभव, लक्ष्य और प्रतीति रहा करेगी। प्रतीति से नीचे के स्टेज में आप कभी भी नहीं उतरोगे।

जगत् के लोग ध्यान में बैठते हैं, लेकिन क्या ध्येय निश्चित किया? ध्येय की फोटो देखकर नहीं आया है, तो फिर किसका, भैंसे का ध्यान कर रहा है? बिना ध्येय का ध्यान, वह अपध्यान है। भगवान ने शब्द-आत्मा का ध्यान करने के लिए नहीं कहा था। ध्यान तो किसे कहा जाता है? आत्मा के सारे ही गुण एट ए टाइम ध्यान में ले, तो आत्मा के वे गुण ध्येय कहलाते हैं और ध्याता तू खुद बन जाए तो वह तेरा ध्यान कहलाता है। यह सब एट ए टाइम कुछ रहता होगा? इन लोगों को समाधि की क्या ज़रूरत है? दिन को आधि में, रात को व्याधि में और विवाह में *उपाधि* में रहता है तो ये क्या देखकर समाधि माँग रहे हैं?

प्रश्नकर्ता : ये जो श्वासोच्छ्वास पर ध्यान धरने को कहते हैं, उससे क्या होता है?

दादाश्री : इसमें ध्यान करो कहते हैं, वह क्या है? नाक में से

श्वास निकले उस पर ध्यान रखो, श्वास अंदर जाता है उस पर ध्यान रखो! श्वास तो आता है और निकलता है, उस ध्यान का क्या करना है? उस नाक की नली का क्या करना है? छोड़ो न। जब दमे का श्वास उठता है तब कर न ध्यान? तब तो वह कैसे कर पाएगा? यह तो कहेगा कि श्वास लिया वह 'सो' और श्वास निकला वह 'हम्', यानी 'हमसो', 'हमसो', 'सोहम्' होता है, उसका ध्यान करो ऐसा कहेंगे लेकिन आत्मा सोहम् भी नहीं है और हमसो भी नहीं है। आत्मा शब्द में नहीं है, वह तो वीतरागों ने 'आत्मा', यों शब्द से संज्ञा की है। आत्मा पुस्तक में नहीं होता और शास्त्रों में भी नहीं होता, उन सभी में तो शब्द-आत्मा है। रियल आत्मा तो ज्ञानी के पास ही होता है। ये श्वासोच्छ्श्वास देखते रहते हैं, तो क्या उन्हें उससे समाधि रहती है? नहीं। उससे क्या होता है? कि मन टूट जाता है। मन तो नाव है। संसार सागर में से किनारे तक जाने के लिए मन की नाव की ज़रूरत पड़ती है।

खुद के स्वरूप का ध्यान, वह ध्यान कहलाता है। दूसरा, खिचड़ी का ध्यान रखें तो खिचड़ी बनती है। ये दो ही ध्यान रखने चाहिए, बाकी के सब तो पागल ध्यान कहलाते हैं। इन 'दादा' के ध्यान में रहना है तो भले ही रहे, उसे भले ही और कोई समझ नहीं हो, लेकिन फिर भी खुद उस रूप होता जाएगा। ज्ञानी पुरुष, वे खुद अपना ही आत्मा है और इसीलिए फिर वह खुद 'उस' रूप होता जाता है।

आत्मा प्राप्त हुआ, वह आत्मध्यान है और संसारी ध्यान में खिचड़ी का ध्यान करना है। लोग ये जो सारे ध्यान सिखाते हैं, वे तो बल्कि बोझ बन जाते हैं। वह तो, जिसे व्यग्रता का रोग हो, उसे एकाग्रता का ध्यान सिखाना पड़ता है, लेकिन औरों को उसकी क्या ज़रूरत है? वह ध्यान उसे कौन सी जगह ले जाएगा, उसका क्या ठिकाना?

भगवान ने क्या कहा है कि इतना ध्यान रखना, 'खिचड़ी का ध्यान रखना और पति का ध्यान रखना, नहीं तो स्वरूप का ध्यान

रख।' इनके सिवा और किसी ध्यान का क्या करना है? समाधि के लिए और कौन से ध्यान करने हैं? बाकी ये बाहर वाले तो पर-ध्यान हैं जो मात्र कान को प्रिय लगता कि, 'बहुत अच्छा है, बहुत अच्छी आवाज़ है'। कुछ के मन को प्रिय लगता है तो कुछ की बुद्धि को प्रिय लगता है। वह तो सब की मति के अनुसार लगता है। भगवान महावीर की सभा में भी सेठ लोग भगवान की वाणी सुनने आते थे। उनकी (सर्वज्ञ की) वाणी इतनी मीठी और मधुर होती है कि वह कान को अत्यंत प्रिय लगती है। वे सेठ लोग सुनने को बैठे रहते थे और सभा में ही रोटी और सब्ज़ी मँगवाकर खा लेते थे, घर पर भी नहीं जाते थे और वह बस उनके कान को ही प्रिय लगती थी। उन सेठों को आज भी मैं पहचानता हूँ, वे भी दुकान में कपड़ा खींच-खींचकर देते हैं! तू किसी से पूछ तो सही कि यह कौन सा ध्यान बरत रहा है। यह तो रौद्रध्यान है। वे सेठ कहेंगे कि, 'लेकिन दूसरा व्यापारी भी कपड़े खींचकर बेचता है न!' अरे, दूसरा व्यापारी तो कुँए में गिरेगा, तू किसलिए गिर रहा है?

चित्तशुद्धि की दवाई

हमारी वाणी तो, किसी भी काल में नहीं सुनी हो, वैसी ग़ज़ब की अपूर्व है। इस वाणी को सुन-सुनकर भीतर धारण करे, और धारण करके वे ही शब्द खुद बोले और वे धारण रहें, तब उस समय चित्त की ग़ज़ब की एकाग्रता होती रहती है! शुद्ध चित्त तो शुद्ध ही है, लेकिन व्यवहारिक चित्त है, वह इसके धारण होने से तत्क्षण शुद्ध हो जाता है। सिनेमा के गीत सुनने से उतने टाइम तक चित्त अशुद्ध होता रहता है, मूल अशुद्ध तो था, वह और अधिक अशुद्ध हुआ! और दूसरा, कवि के पद गाते समय जितने समय तक वे पद धारण होते हैं, उतने समय तक चित्त शुद्ध होता है! बिना समझे, यह छोटा बच्चा भी यदि धारण करके बोले, तब भी वह बहुत काम निकाल लेगा। धारण हुए बगैर बोला जा सकता है? जितना धारण करके बोलता है, उतने समय तक भीतर सभी पाप धुल जाते हैं! बाहर कपड़े तो धोने

आते हैं, लेकिन अंदर का किस तरह से धोएगा? इस जगत् में चित्तशुद्धि की दवाइयाँ बहुत कम है। अन्य कहीं पर बीस साल तक गाने से भी जितनी चित्त शुद्धि नहीं होती, उतनी शुद्धि यहाँ हमारी उपस्थिति में एक ही बार पद गाए, तो उतने में चित्त शुद्ध हो जाता है! खुद बोले और फिर धारण करे और वैसा ही फिर से बोले न तो उससे ग़ज़ब की चित्तशुद्धि होती है!

ध्याता, ध्येय और ध्यान, वे तीनों एकरूप हो जाएँ, उसके बाद ही 'लक्ष्य' बैठता है। इसलिए यहाँ हमारी उपस्थिति में आपको ध्यान करने की ज़रूरत नहीं है। लक्ष्य अधिक रहे तो, उसे अनुभव कहते हैं। शुद्धात्मा के ध्यान में रहे, वह शुक्लध्यान है। हम शुद्धात्मा के ध्यान में हों और फाइल आ जाए तो उसका समभाव से *निकाल* करते हैं, वह धर्मध्यान है। साध्य वस्तु प्राप्त हो जाने के बाद साधन की क्या ज़रूरत है? ध्येय प्राप्त हो जाने के बाद ध्याता और ध्यान की क्या ज़रूरत है?

जगत् के सभी मार्ग साधन मार्ग हैं और हमारा यह साध्य मार्ग है! ध्याता तो है नहीं और ध्येय निश्चित करने जाते हैं! ध्याता कब हुआ जा सकता है? जब जगत् विस्मृत हो जाए, तब ध्याता हुआ जा सकता है। यह तो यदि ध्यान में बैठा हुआ हो और पूछें कि, 'आप कौन हो?' तो वह कहेगा कि, 'मैं मजिस्ट्रेट हूँ।' मतलब कि उसका ध्यान मजिस्ट्रेट में है, तब फिर ध्याता कैसे निश्चित होगा?

फिर भी, जगत् के लोगों को जब तक 'ज्ञानी पुरुष' नहीं मिल जाएँ और उनके पास से स्वरूप का भान नहीं हो जाए, तब तक मन की शांति के लिए किसी साधन की ज़रूरत तो है। कोई गुरु जी हों, उन्हें भले ही आत्मज्ञान नहीं हो, लेकिन चोखे हों, जिन्हें विषय और लक्ष्मी की भूख नहीं हो, तो भले ही उनके फोटो का ध्यान करना, फिर भले ही वे अहंकारी हों, फिर भी उनका ध्यान शांति देगा। यह रिलेटिव ध्यान कहलाता है, टेम्परेरी ध्यान कहलाता है और दूसरी तरफ, रियल ध्यान तो, जब 'ज्ञानी पुरुष' मिलें, तब प्राप्त होता है और फिर

तो परमानेन्ट शांति मिल जाती है। इस रिलेटिव ध्यान में जो शांति प्राप्त करते हो, वह तो जब सास कहती है कि, 'आप में अक़्ल नहीं है' तो वह ध्यान टूट जाता है और *उपाधि* खड़ी हो जाती है! टेम्परेरी ध्यान काम नहीं आता। 'ज्ञानी पुरुष' क्या करते हैं? कि निरंतर समाधि रहे, वैसा निर्लेप ज्ञान दे देते हैं। जब ज्ञानी मिल जाएँ तब क्या करना होता है? क्रिया-कांड वगैरह कुछ नहीं करना है, मात्र आज्ञा, वही धर्म और आज्ञा वही तप!

नाभिप्रदेश में आत्मा खुला हुआ है। हम आवरण तोड़ देते हैं तब भगवान दिखाई देते हैं। नाभिप्रदेश के शुद्ध भगवान प्रकट हो जाएँ, तो खुद निर्लेप हो जाता है। जैसे पीपल पर लाख चिपका हुआ होता है, वैसे ही आत्मा से कर्म चिपके हुए हैं, इसलिए प्रकाश नहीं दिखता। पाँच छिद्र हैं उनमें से भी सच्चा नहीं दिखता है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान सच्चा नहीं होता है। ज्ञानी अतीन्द्रिय सुख, शाश्वत सुख में होते हैं। आत्मा को जगाने के लिए तो 'ज्ञानी पुरुष' की ही आवश्यक्ता है, इसमें औरों का काम नहीं है।

हेन्डल समाधि

प्रश्नकर्ता : दादा, मुझे चार-चार घंटों तक समाधि रहती है।

दादाश्री : जब समाधि रहती है तब तो रहती है, वह ठीक है, लेकिन फिर क्या वह थोड़ी-बहुत चली जाती है?

प्रश्नकर्ता : वह तो चली ही जाती है न!

दादाश्री : तो वह टेम्परेरी समाधि कहलाएगी या परमानेन्ट?

प्रश्नकर्ता : वह तो टेम्परेरी ही कहलाएगी न!

दादाश्री : इस जगत् में जो चल रही है वह सब टेम्परेरी समाधि है, जड़ समाधि है। समाधि तो निष्क्लेश और हमेशा के लिए रहनी चाहिए। ये सभी तो टेम्परेरी समाधि करते हैं। आप समाधि का मतलब क्या समझे हो?

प्रश्नकर्ता : उसमें मन एक जगह कुछ समय तक टिकाकर रखना हो तो रखा जा सकता है।

दादाश्री : लेकिन उससे लाभ क्या है? प्राणों को कंट्रोल किया हो तो लाभ होता है, लेकिन स्थायी ठंडक हो जाती है? यह तो अँगीठी के पास बैठे उतने समय तक ठंड उड़ती है, फिर वही की वही ठंड! सिगड़ी तो स्थायी चाहिए, ऐसी कि जिससे कभी भी ठंड नहीं लगे। समाधि तो अलग ही चीज़ है। हाथ से यदि पंखा करना हो तो उससे ठंडक लगती है लेकिन हाथ दुखते हैं, ऐसी हेन्डल समाधि किस काम की? यदि नाक दबाने से समाधि हो जाती तो बच्चे को भी नाक दबाने से समाधि हो जाएगी। तो ज़रा छोटे बच्चे का नाक दबाकर देखना, वह क्या करेगा? तुरंत ही चिढ़कर काट खाएगा। यह क्या सूचित करता है कि इससे तो कष्ट होता है, ऐसी कष्ट-साध्य समाधि किस काम की? समाधि तो सहज होनी चाहिए। उठते, बैठते, खाते-पीते समाधि रहे, वह सहज समाधि है। अभी तो मैं आपके साथ बात कर रहा हूँ, और नाक तो दबाई नहीं है, तो फिर मुझे समाधि होगी न? मैं निरंतर समाधि में ही रहता हूँ और कोई गालियाँ दें तो भी हमारी समाधि नहीं जाती। ये नाक दबाकर जो समाधि करने जाते हैं, उसे तो हठयोग कहते हैं। हठयोग से कहीं समाधि हो पाती होगी? गुरु का यह फोटो यदि किसी ने उठा लिया हो तो भी उसे भीतर क्लेश हो जाता है। समाधि तो निष्क्लेश होनी चाहिए और वह भी फिर निरंतर, उतरे नहीं उसका नाम समाधि और उतर जाए उसका नाम *उपाधि*! छाया में बैठने के बाद धूप में आए तब बेचैनी होती है, ऐसा! आधि, व्याधि और *उपाधि* में भी समाधि रहे, उसका नाम समाधि! समाधि तो परमानेन्ट ही होनी चाहिए।

सच्ची समाधि

प्रश्नकर्ता : समाधि परमानेन्ट हो सकती है, ऐसा तो मैं जानता ही नहीं था!

दादाश्री : पूरे जगत् को बंद आँखों से समाधि रहती है, वह

भी सब को रहे या न भी रहे, जबकि यहाँ अपने को खुली आँखों से समाधि रहती है! खाते, पीते, गाते, देखते हुए सहज समाधि रहती है! आँखों पर पट्टी बाँधकर तो बैल को भी समाधि रहती है, वह तो कृत्रिम है और अपने को तो खुली आँखों से भगवान दिखते हैं। रास्ते पर चलते-फिरते भगवान दिखते हैं। बंद आँखों से तो सभी समाधि करते हैं, लेकिन यथार्थ समाधि तो खुली आँखों से रहनी चाहिए। आँखें बंद करने के लिए नहीं हैं। आँखें तो सब देखने के लिए हैं, भगवान जिनमें हैं उनमें यदि देखना आ जाए तो! असल में तो जैसा है वैसा देख, जैसा है वैसा सुन, जैसा है वैसा चल, इसके बावजूद भी समाधि रहे, ऐसी है दादा की समाधि। और बंद आँखों की समाधि के लिए तो जगह ढूँढनी पड़ती है। यहाँ एकांत नहीं है, तो दुनिया में कहाँ जाएगा? यहाँ तो बेहिसाब बस्ती है। भीड़ में एकांत ढूँढना आ जाए, उसे ज्ञान कहते हैं। गाड़ी में चारों तरफ से भीड़ में दब रहा हो, तब मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार चुप रहेंगे, तब जितना चाहिए उतना एकांत लो। यथार्थ एकांत तो सचमुच की भीड़ में ही मिले, वैसा है! भीड़ में एकांत, वही यथार्थ एकांत है!

साधु समाधि लगाते हैं, हिमालय में जाकर पूर्वाश्रम छोड़कर कहेंगे कि, 'मैं फलाना नहीं, मैं साधु नहीं, मैं यह नहीं', उससे थोड़ा सुख बरतता है, लेकिन वह निर्विकल्प समाधि नहीं कहलाती। क्योंकि वह समझदारीपूर्वक भीतर नहीं उतरा।

प्रश्नकर्ता : एक व्यक्ति को खड़े-खड़े समाधि लग जाती है वह मैंने देखा है, हम आवाज़ लगाएँ तो भी वह नहीं सुन पाता।

दादाश्री : उसे समाधि नहीं कहते, वह तो अभानावस्था कहलाती है। समाधि किसे कहते हैं? सहज समाधि को, उसमें पाँचों इन्द्रियाँ जागृत रहती हैं। देह को स्पर्श हो तो भी पता चलता है। इस देह का भान नहीं रहता वह समाधि नहीं कहलाती, वह तो कष्ट कहलाता है। कष्ट उठाकर समाधि लगाए उसे समाधि नहीं कहते। समाधि वाला तो संपूर्ण जागृत होता है!

निर्विकल्प समाधि

दुनिया के महात्माओं ने निर्विकल्प समाधि किसे माना है? चित्त के चमत्कार को। देह बेसुध हो जाती है और मानते हैं कि मेरा इन्द्रियज्ञान खत्म हो गया, लेकिन अतीन्द्रिय ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ इसलिए बीच में निरीन्द्रिय चमत्कार में भटकता है! किसी को चित्त चमत्कार दिखता है, किसी को उजाला दिखता है, लेकिन वह सच्ची समाधि नहीं है, वह तो निरीन्द्रिय समाधि है। देह का भान चला जाए, तो वह समाधि नहीं है। निर्विकल्प समाधि में तो देह का और अधिक सतर्क भान होता है। देह का ही भान चला जाए तो उसे निर्विकल्प समाधि कैसे कहेंगे?

प्रश्नकर्ता : निर्विकल्प समाधि यानी क्या?

दादाश्री : 'मैं चंदूलाल' वह विकल्प समाधि। यह सब देखता है वह भी विकल्प समाधि। यह बालक अगर कुछ फोड़ दे, तब अंदर में विकल्प समाधि टूट जाती है।

प्रश्नकर्ता : संकल्प-विकल्प यानी क्या?

दादाश्री : विकल्प यानी 'मैं' और संकल्प यानी 'मेरा'। खुद कल्पतरु है, जैसी कल्पना करे वैसा बन जाता है। विकल्प करे, तब विकल्पी बन जाता है। मैं और मेरा करता रहता है वह विकल्प और संकल्प है। जब तक स्वरूप का भान नहीं हो जाता, तब तक विकल्प नहीं टूटता और निर्विकल्प हुआ नहीं जाता। 'मैंने यह त्याग किया, मैंने इतने शास्त्र पढ़े, यह पढ़ा, भक्ति की, वह किया', वे सभी विकल्प हैं, अंत तक वे विकल्प खड़े ही रहते हैं और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा नहीं बोला जा सकता, 'मैं चंदूलाल हूँ, मैं महाराज हूँ, मैं साधु हूँ' वह भान बरतता है लेकिन 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह भान नहीं हुआ तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ', कैसे बोला जा सकता है? और तब तक निर्विकल्प समाधि कैसे उत्पन्न होगी? यह तो ऊपर से शब्द उतर आया है, बस इतना ही! सिर्फ वीतराग और उनके अनुयायी ही निर्विकल्प समाधि में थे

और वे तो सभी जानते थे, सीधा जानते थे और आड़ा भी जानते थे! फूल चढ़ते उसे भी जानते थे और पत्थर चढ़ते उसे भी जानते थे, यदि जानते नहीं तो वीतराग कैसे कहलाते? पर ये लोग तो देह का भान गया और 'हम निर्विकल्प समाधि में हैं' ऐसा समझ बैठे हैं! सोते समय भी देह का भान चला जाता है, तो फिर उसे भी निर्विकल्प समाधि ही कहा जाएगा न? समाधि वाले को जगते हुए देह का भान चला जाता है और चित्त के चमत्कार दिखते हैं, उजाले दिखते हैं, बस इतना ही। लेकिन यह नहीं है अंतिम दशा, इसे अंतिम दशा मान लेना भयंकर गुनाह है! आत्मा का भान तो रहना ही चाहिए और इसका (पुद्गल का) भी संपूर्ण भान रहना चाहिए। उसे निर्विकल्प समाधि कहा गया है, नहीं तो वीतरागों को केवलज्ञान में कुछ भी दिखता ही नहीं न?

निर्विकल्प समाधि कोई समझता ही नहीं और सभी अपनी-अपनी भाषा में ले गए हैं। आत्मा को भी खुद की भाषा में ले गए और फिर भी कहते हैं कि 'मुझे आत्मज्ञान जानना है।'

जो संत पुरुष हो चुके हों, उनकी चित्त की मलिनता कम हो चुकी होती है। उन्हें जब संसार की इच्छा होती है, तब शरीर को कष्ट देते हैं कि ऐसी इच्छा करता हैं! आँख में मिर्ची भी डालते हैं। अब ऐसे ज्ञान को फॉरेन वाले क्या कहते हैं? 'ये तो विचित्र, अव्यवहारिक लगते हैं।' औरों को भी ऐसे लोग अव्यवहारिक लगते हैं, लेकिन यहाँ के लोगों को ऐसे लोग समझदार लगते हैं! यह तो आँख की भूल के कारण आँख में मिर्ची डालते हैं, लेकिन इसमें आँख का क्या दोष? दोष तो देखने वाले का है।

हिन्दुस्तान में तो लोग मुँह को भी ताला मार दें, ऐसे हैं! ये लोग तो शरीर का भान चला जाए, उसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं, क्योंकि इन्द्रियों का भान गया और मानता है कि अतीन्द्रिय में पहुँच गया। ना, अतीन्द्रिय तो बहुत दूर है। इन्द्रिय का भान जाने दिया, अतीन्द्रिय में गए नहीं तो किसमें हो? निरीन्द्रिय में, तो निरीन्द्रिय में 'हम-हम' करते हैं और उसे निर्विकल्प समाधि मानते हैं।

फिर भी, इन लोगों की नीयत सच्ची है। आँखों में मिर्ची डालते हैं उसमें उनकी नीयत अच्छी है, इसीलिए कभी न कभी मोक्ष प्राप्ति करेंगे।

क्रमिक मार्ग में तो ठेठ मोक्ष में जाने वाला हो, तब निर्विकल्प समाधि की शुरूआत होती है, जबकि यहाँ अक्रम मार्ग में आपको निर्विकल्प समाधि प्राप्त हो चुकी है! क्रमिक में तो अंत तक *केश-लुंचन* (नोचकर केश निकालना) करना होता है, अन्य जो भी त्याग लिखे हैं, वे करने होते हैं, 'यह विधि करनी है, यह त्याग करना है, वह करना है', ऐसा सब रहता है। वहाँ कर्ता अलग, कर्म अलग, ज्ञाता अलग और फिर साथ-साथ यह भी कहेगा कि, 'मुझे अभी ध्यान करना है।' वहाँ कर्ता अलग, ध्येय अलग और ध्यान भी अलग। उसमें तो तीनों जब एक हो जाएँ तब जाकर निर्विकल्प का स्वाद चखने को मिलता है, लेकिन फिर भी क्रमिक में अंत तक कर्तापन रहता है। इसलिए 'ध्यान का मैं कर्ता हूँ' ऐसा कहेगा।

ध्येय निर्विकल्पी और ध्याता विकल्पी, वह कैसा ध्यान करेगा? फिर भी, निर्विकल्पी का ध्यान विकल्पी करता है, इसलिए निर्विकल्पी हो जाएगा, शास्त्र ऐसा कहते हैं। लेकिन यह निर्विकल्पी नहीं होने देता और कहेगा, 'मुझे यह करना है और वह करना है।' ज़रा नींद आ जाए तो 'भोजन कम करना है', भोजन त्याग करना बाकी रहा! वे विकल्प के खड्डे में से निकलने के लिए निर्विकल्पी का ध्यान करते हैं!

हमने आपको यहाँ सिर्फ निर्लेप आत्मा ही नहीं दिया, निर्विकल्प समाधि भी दी है। क्रमिक मार्ग में ठेठ सर्वांग शुद्ध आत्मा बन जाए, तब जाकर निर्विकल्प समाधि होती है। जहाँ पर कुछ भी त्याग-ग्रहण करने का है, वहाँ पर विकल्प है। बड़ी चीज़ ग्रहण करता है और छोटी चीज़ का त्याग करता है, इसलिए विकल्प हुए बगैर रह नहीं पाता। विकल्प एक नहीं होता लेकिन अनेकों होते हैं। शिष्यों के प्रति कठोर हो जाए वह भी विकल्प।

जिसे देखते ही समाधि हो जाए, उस दर्शन को 'दर्शन' कहा

जाता है, देखते ही समाधि हो जाए, वे दर्शन सच्चे हैं। कुछ को तो देखते ही उल्टी हो जाती है, माल ही ऐसा! लेकिन देखते ही समाधि हो जाए, वे दर्शन सच्चे दर्शन कहलाते हैं। ये सब हमारे दर्शन किसलिए करते रहते हैं? ये दिखते हैं, वे ही सब को समाधि करवाते हैं। वह समाधि तो कैसी है? उसे आप निकालो, तब भी जाए नहीं! उस समाधि से कहें कि, 'हे समाधि, थोड़े दिन पीहर तो जाकर आ।' तो वह कहेगी, 'ना, इस ससुराल के बिना मुझे अच्छा नहीं लगेगा।' समाधि से कहें कि 'इस देह से ज़रा गड़बड़ करवानी है, इसलिए तू जा न!' तो वह कहेगी कि, 'पहले कहना था न! अब वह नहीं हो सकेगा।' अब तो इस सहज समाधि को निकालें तो भी जाएगी नहीं, अब तो 'खाते हैं-पीते हैं, उठते हैं-बैठते हैं, उसे देखता है ज्ञानाकार।'

भगवान ने कहा है, 'यदि तू कल्पना में है तब यदि विचार नहीं करेगा तो गुनहगार है, और यदि तू निर्विकल्प है और विचार करेगा तो गुनहगार है।'

आठ मिनट के लिए मन-वचन-काया जिसके बंद हो जाएँ, उसे भगवान ने सामायिक की शुरूआत कहा है और आठ मिनट से अड़तालीस मिनट तक रहे, उसे सामायिक कहा है। अड़तालीस मिनट से अधिक तो किसी को भी नहीं रह पाता है। आत्मा में ही रहना, वही सामायिक है।

"भगवान अंगे भाषीओ, सामायिक अर्थ,
सामायिक पण आतमा, धरे सीधो अर्थ।"

सामायिक का अर्थ तो भगवान ने बताया है। 'सामायिक ही आत्मा और आत्मा ही सामायिक है।'

मन

प्रश्नकर्ता : एकेन्द्रिय जीवों में मन होता है?

दादाश्री : एकेन्द्रिय में मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार कुछ भी नहीं होता है। जिनकी पाँच इन्द्रियाँ होती हैं, पाँच इन्द्रियों का पुण्य जमा हो जाता है, उनमें मन उत्पन्न होता है। इन पाँच इन्द्रियों में भी ये जो गाय, भैंस, आकाश में उड़ने वाले जीव हैं, उनका मन सीमित होता है, लिमिट में होता है, अगर लिमिट से बाहर जाता न, तो ये बंदर घर में रह रहे होते और पुलिस-वुलिस सभी को काट खाते, लेकिन उनमें मन लिमिट में होता है।

प्रश्नकर्ता : एकेन्द्रिय से पँचेन्द्रिय तक में मन का किस तरह से डेवेलपमेन्ट होता है?

दादाश्री : जैसे-जैसे डेवेलपमेन्ट में आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे आवरण घटते हैं और प्रकाश बढ़ता जाता है और वैसे-वैसे अधिक देखता जाता है।

जिसे नाक की तीव्रता होती है, वह तीन इन्द्रियों में है; आँख का चस्का लगा हो, वह चार इन्द्रियों में और कान का चस्का लगा हो, वह पाँच इन्द्रियों में है। यह जो चींटी है उसे, छत पर घी लटकाया हो तो भी उसे घी कहाँ है, कितनी दूरी पर है, वह समझ में आ जाता है, और ऐसी समझ होती है कि उसे किस मार्ग से और वह भी छोटे मार्ग से जाकर ले आए।

मन का स्वरूप

प्रश्नकर्ता : मन क्या होता होगा?

दादाश्री : यह 'चंदूलाल' है, वह आरोपित भान है, लेकिन रियली 'हम' कौन हैं वह जानने की ज़रूरत है। यह चंदूलाल, वह रिलेटिव आत्मा है। वह जो-जो देखता है, जो-जो करता है, उससे मन की गांठें बनती जाती हैं। मन में विचार आते हैं, वे गांठों में से ही आते हैं, लेकिन वापस आरोपित भाव से उन्हें पुष्टि मिलती है और गांठें मज़बूत होती जाती हैं। मन तो तरह-तरह के पेम्फलेट्स बताता है, घड़ी भर में कहता है 'बस में जाऊँगा', घड़ी भर में कहता है, 'टैक्सी में जाऊँगा।' मन का क्या स्वभाव है? पेम्फलेट दिखाना और उसका चिंतवन करते रहना। जब टाइमिंग होता है, तब वह पेम्फलेट दिखाता है फिर उसी का चिंतवन करता रहता है कि, 'नहीं, बस में ही जाना है।' फिर बुद्धि अपने आप डिसिज़न देती है और फिर अहंकार उसमें मिल जाता है, यह तो भीतर पार्लियामेन्ट की तरह काम होता है, इन सभी को पहचानना बहुत मुश्किल चीज़ है, यह तो भीतर अपार वंशावली है। एक कहेगा, 'इससे डायवोर्स लेना है' और दूसरा दिखाएगा, 'ना, डायवोर्स नहीं लेना है।' ये तो दोनों ही बिना दाढ़ी के, उन्हें किस तरह पहचानें?! एकाध के दाढ़ी होती तो भी हम पहचान जाते!

मनोलय का मार्ग

प्रश्नकर्ता : मन रोज़ नया-नया माँगता है, तब क्या करें?

दादाश्री : तुझे मन को मार डालना है या जीवित रखना है?

प्रश्नकर्ता : दादा मेरा मन निकाल लो।

दादाश्री : नहीं रे, मन को निकाल नहीं लेना है। इस शरीर में से यदि मन निकाल लिया जाए तो एब्सेन्ट माइन्डेड हो जाएगा और एबसेन्ट माइन्डेड को तो पागलों के हॉस्पिटल में भी नहीं लेते क्योंकि पागलों में भी माइन्ड तो होता ही है न? नया-नया माँगना, वह तो

मन की खुराक है। घड़ी में कहता है, 'मियाँ से शादी कर' और घड़ी में कहता है, 'हिन्दू से शादी कर।' ऐसे मन से हमें पूछना चाहिए कि, 'कहाँ रहते हो?' उसकी खोज करनी पड़ेगी कि कौन से मुहल्ले में रहता है?

प्रश्नकर्ता : इस मन की खोज कौन कर सकता है?

दादाश्री : इस संसार में मनोयोगी पुरुष होते हैं, वे मन की खोज कर सकते हैं, लेकिन उससे मन का विलय नहीं होता, वे मन को बढ़ने से रोक सकते हैं। फिर भी, उन लोगों को जिसमें अच्छा लगता है, वे गांठें तो बड़ी होती जाती हैं। मन का विलय करने की यथार्थ दवाई चाहिए, तब विलय होगा।

एक तरफ मन डिस्चार्ज होता है और दूसरी तरफ भ्रांति के कारण चार्ज होता है। डिस्चार्ज मन को रोका नहीं जा सकता। 'ज्ञानी पुरुष' चार्ज होने वाले मन को सील कर देते हैं, फिर डिस्चार्ज मन क्रमशः विलय किया जा सकता है, और वह भी मात्र 'ज्ञानी पुरुष' के ज्ञानशस्त्र से! मन तो ज्ञानियों में भी होता है और महावीर भगवान में भी था, लेकिन उनके और मन के बीच कैसा रहता है? विवाह में कोई द्वार पर खड़ा हो तो उसके पास से एक-एक व्यक्ति जय-जय करता हुआ जाता है, उसी तरह ज्ञानियों की मन की गाँठें फूटती हैं और विचार के रूप में एक-एक विचार आता है और सलाम करके जाता है, फिर दूसरा आता है। ज्ञानियों का विचारों के साथ ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध होता है, वे विचार में खुद तन्मय नहीं हो जाते, शादी-संबंध नहीं होता। 'ज्ञानी पुरुष' के मिलने से पहले कैसे भी विचार आते थे और उन्हीं विचारों में तन्मय होने से गांठें बन गईं, उनमें से फिर विचार आते ही रहते हैं, और वही खुद को परेशान करते हैं। लेकिन 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो वे बताते हैं कि गांठों को किस तरह से विलय करें, तब वे विलय हो जाती हैं।

मन पर काबू

प्रश्नकर्ता : मन पर कंट्रोल कैसे किया जा सकता हैं?

दादाश्री : मन पर तो कंट्रोल हो ही नहीं सकता। वह तो कम्प्लीट फिज़िकल है, मशीनरी की तरह। वह तो ऐसा लगता है कि कंट्रोल हो गया, लेकिन वह तो पूर्व के हिसाब से। यदि पूर्व में ऐसा सेट किया हो, पूर्व में भाव में होगा तो इस जन्म में द्रव्य में आएगा, वर्ना इस जन्म में तो मन कंट्रोल में लाया ही नहीं जा सकता। मन इस तरह किसी भी प्रकार से बाँधा जा सके, ऐसा नहीं है। जैसे पानी को बाँधने के लिए बर्तन चाहिए, वैसे ही मन को बाँधने के लिए ज्ञान चाहिए। मन तो ज्ञानी के वश में ही रहता है! मन को फ्रेक्चर नहीं करना है, लेकिन मन का विलय करना है। मन तो संसार समुद्र की नाव है, संसार समुद्र के किनारे जाने के लिए नाव से जाया जा सकता है। यह पूरा जगत् संसारसागर में डुबकियाँ लगा रहा है। तैरता है और वापस डुबकियाँ लगाता है और उससे ऊब जाता है। इसलिए हर एक को नाव से किनारे जाने की इच्छा तो रहती ही है, लेकिन भान नहीं है, इसलिए मनरूपी नाव का नाश करने जाता है। मन की तो ज़रूरत है। मन-वह तो ज्ञेय है और 'हम' खुद ज्ञाता-द्रष्टा हैं। इस मनरूपी फिल्म के बिना हम करेंगे क्या? मन, वह तो फिल्म है लेकिन स्वरूप का भान नहीं है इसलिए उसमें एकाकार हो जाता है कि, 'मुझे अच्छे विचार आते हैं' और जब खराब विचार आते हैं तब अच्छा नहीं लगता! अच्छे विचार आते हैं तो राग का बीज डलता है और खराब विचार आते हैं तब द्वेष का बीज पड़ता है। इस प्रकार संसार खड़ा रहता है! 'ज्ञानी पुरुष', 'खुद कौन है?', जब इस रियल स्वरूप का भान करवाते हैं, तब दिव्यचक्षु प्राप्त होते हैं, फिर मन की गांठें पहचानी जाती हैं और इसके बाद मन की गांठें देखते रहने से वे विलय होती जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : संसार में बहुत नीरसता लगती है। कहीं भी अच्छा नहीं लगता, तो क्या करें?

दादाश्री : किसी इंसान को पाँच-सात दिन बुख़ार आए न, तो कहेगा, 'मुझे कुछ भाता नहीं है'। कोई उससे ऐसा करार करवा ले और वह लिखकर दे दे कि, 'मुझे कुछ भी नहीं भाता' तो क्या वह

करार हमेशा के लिए रखेगा? ना। वह तो कहेगा, 'यह करार फाड़ दो। उस समय तो मुझे बुख़ार आया था इसलिए ऐसा साइन कर दिया था, लेकिन अब तो बुख़ार नहीं है!' इस मन की गति समय-समय पर पलटती रहती है। यह रुचि तो वापस आ भी सकती है। यह तो, जब ऐसी कन्डिशन आती है तब कहता है, 'मुझे संसार अब अच्छा नहीं लगता।' तब ऐसा साइन कर देता है, लेकिन यह कन्डिशन तो वापस बदल जाएगी।

संसार पर कंटाला, वही राग

दादाश्री : इस संसार पर *कंटाला* आता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो वह राग है। जहाँ राग होता है वहीं पर *कंटाला* आता है, ऐसा संयोगानुसार होता है। यह *कंटाला* वगैरह सब मन के विचार हैं। हमें तो विचारों से कहना चाहिए कि, 'आओ, आपको जितना आना हो उतना आओ।' मन में से जो ये विचार आते हैं, वे तो भीतर स्टॉक भरा हुआ था, वह निकल रहा है और वह निकलता है तब *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) होती है। लेकिन *निर्जरा* कब होती है? कि हम शुद्धात्मा में रहें तब। जिनमें तन्मयाकार हो जाता है, वे कर्म गाढ़ हो जाते हैं। मन तो तरह-तरह का बताएगा, लेकिन हमें तन्मयाकार नहीं होना है। देखते रहना है कि ऐसा हुआ, वैसा हुआ।

एक तरफ वैराग्य आता है और दूसरी तरफ राग होता ही है, तो कौन सी तरफ राग है, उसकी जाँच कर। इंसान जब बूढ़ा हो जाता है, तब विचार आता है कि अभी और जी पाऊँ तो अच्छा। यह सत्ता क्या उसके हाथ में है? ऐसे तो तरह-तरह के विचार आते हैं, उन्हें देखते रहना है और जानते रहना है। यह तो खुद अपनी ही मृत्यु स्वप्न में देखता है! दुनिया बहुत अलग प्रकार की है!

सभी तरफ वैराग्य आ जाए और 'ज्ञानी पुरुष' पर राग आए, तो

उसके जैसा उत्तम तो कुछ भी नहीं है! वह राग तो सभी रोगों को टालने वाला होता है। यह मनुष्य जन्म तो कैसा है? देवी-देवताओं द्वारा भी दर्शन करने योग्य है! देवी-देवताओं के लिए भी दुर्लभ है! लेकिन फुल प्रकाश हो जाए तब! मन के रोग निकल जाएँ, तब प्रकाश होता है। मन के रोग लोगों को समझ में नहीं आते कि इस तरफ का मन रोगी है और इसके पास वाला मन तंदुरुस्त है। अगर मन तंदुरुस्त बने तो वाणी तंदुरुस्त बनती है और देह तंदुरुस्त बनती है।

माइन्ड व्यग्र हो जाता है इसलिए एकाग्रता की दवाई लगाते हैं, लेकिन उससे तो वह रोग मिटता है लेकिन मोक्ष के लिए कुछ भी नहीं हो पाता। यह तो जब माइन्ड निरंतर वश में रहे, तब कह सकते हैं कि रोग मिट गया। निरंतर वश, अर्थात् विचलित नहीं होता। मन तो ज्ञान से ही बंध सकता है, वह 'ज्ञानी पुरुष' ही कर सकते हैं! ज्ञान नहीं हो तब तो जहाँ पर भी मन जाए वहाँ संसार खड़ा हो जाता है। हिमालय में जाए तो भी छोटा गुलाब का पौधा लगाता है, बकरी पालता है और इस तरह संसार खड़ा करता है। वह तो एकांत में भी फिर से भीड़ लगा देता है।

मन का स्वभाव

मन का स्वभाव कैसा है कि, 'मुझे डिप्रेशन आ गया' ऐसा कहे तो एक रतल के बदले बोझा दस रतल का हो जाता है, और 'मुझे डिप्रेशन है ही नहीं' ऐसा कहे तो बोझा दस रतल के बदले एक रतल का हो जाता है। यहाँ रेडियो बज रहा हो और लगता है, अंदर ऐसा लगे कि, 'आवाज़ से नींद नहीं आएगी' तो नींद आती ही नहीं, यदि ऐसा रहे कि, 'आवाज़ में भी नींद आ जाएगी' तो आराम से नींद आ जाती है। ऐसा है यह जगत्! हम लोग मन से अलग हैं, देह से अलग हैं, और वाणी से भी अलग हैं। पड़ोसी बर्तन खड़काए तो उसे कौन कहने जाएगा? खुद एक ही होता तो कहना पड़ता, हम तो उसकी क्रिया के जानकार हैं।

यह मन, मन के धर्म में है। यदि अपने कान में शब्द नहीं घुसे

तो मन पर असर होगा क्या? कुछ भी असर नहीं होगा, और कान में शब्द घुसे तो? नखरे करना तो मन का धर्म है। सार निकालना-वह बुद्धि का धर्म है। मन, बुद्धि, सभी उनके खुद के गुणधर्मों में हैं। तो उसमें हम कहाँ जाएँ? हमें अपने स्वधर्म में रहना है।

प्रश्नकर्ता : मैं प्रयत्न तो बहुत करता हूँ मन की शांति के लिए, लेकिन स्थिरता ही नहीं आती।

दादाश्री : कौन से धर्म का पालन करते हो?

प्रश्नकर्ता : वैष्णव धर्म।

दादाश्री : तो क्या वैष्णव धर्म गलत होगा? नहीं? क्या कृष्ण भगवान गलत होंगे?

प्रश्नकर्ता : नहीं, भूल अपनी...

दादाश्री : क्या भूल होगी?

प्रश्नकर्ता : वह तो आपको मालूम है दादा।

दादाश्री : आपका नाम क्या है?

प्रश्नकर्ता : चंदूलाल।

दादाश्री : रोज़ तो जेब में पाँच-पच्चीस हों तो मुंबई के बाज़ार में मन स्थिर रहता है और दस-बीस हज़ार हों तो? मन स्थिर नहीं रहता? वह तो स्थिर रहे ऐसा है, लेकिन उसे हम बिगाड़ते हैं। रोज़-रोज़ बेटे को बिगाड़ें और उसे कहें कि स्थिर हो जा तो वह नहीं हो पाएगा, उसी तरह अगर मन को बिगाड़ने के बाद स्थिरता माँगें तो स्थिर रह पाएगा? मन को तो पान या बीड़ी बस इतना ही है, लेकिन ये तो बिगाड़ते हैं। रेडियो लो, फ्रिज़ लो और वह टेलिविज़न भी लो। मन को बिगाड़ने के बाद, वह सीधा नहीं हो सकेगा। बाकी सब को बिगाड़ना, लेकिन मन को मत बिगाड़ना। पत्नी को बिगाड़ दिया होगा तो ज्ञानी उसे एक घंटे में सीधा कर देंगे। अगर पत्नी बिफर जाए और

दूसरे रूम में भेज दें, तो बारह घंटे अलग रह सकते हैं, लेकिन मन तो रात–दिन साथ में ही रहता है। बिगाड़ा हुआ मन रास्ते पर नहीं आता, लेकिन ज्ञानी मिल जाएँ और ज्ञान दे दें तो बिगाड़ा हुआ मन रास्ते पर आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : इसके लिए दस साल तक मेहनत की है।

दादाश्री : तो क्या पिछले जन्म में नहीं की थी? अनंत जन्मों से यही किया है। मन क्या है? इसे जानना तो पड़ेगा न! इसके माँ–बाप कौन हैं? उसका घर कहाँ है? उसके जन्मदाता कौन हैं? उसका विलय किस तरह होता है? यह सब भी जानना तो पड़ेगा न! यह मन किसने रखा?

प्रश्नकर्ता : प्रभु ने।

दादाश्री : किसलिए? दुःख के लिए या सुख के लिए? भगवान ने किसलिए ऐसा किया? सभी को अरंडी का तेल चुपड़ने के लिए किया होगा? भगवान इसमें हाथ ही नहीं डालते, इस प्रोडक्शन में भगवान हाथ नहीं डालते। वह तो 'बट नैचुरल' (कुदरती) है। और भगवान यह बात अंदर बैठे सुनते हैं और हँसते भी हैं कि, 'चंदूलाल, यह क्या पागलपन कर रहा है!' हम लोग समसरण मार्ग में हैं न! समसरण मार्ग मतलब निरंतर परिवर्तन होता रहता है, वह। उसमें अंतिम स्टेशन मन है। अभी आपका यह स्टेशन है न वह अगले जन्म का मन बनेगा। वह तो 'ज्ञानी पुरुष' जानते हैं कि मन क्या है? मन किस तरह ठिकाने पर आएगा? मन ठिकाने पर रखने के लिए आप खुद प्रयत्न नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : वे प्रयत्न तो रोज़ करता हूँ।

दादाश्री : आप करते हो या चंदूलाल करते हैं? कंट्रोल के लिए प्रयत्न आप खुद नहीं करते, वह तो चंदूलाल करता है। आप खुद कंट्रोल करो तो कंट्रोल हो सकेगा, लेकिन आप 'खुद कौन हो'

यह निश्चित करना ही पड़ेगा न? यह निश्चित हो जाए तो काम हो गया। अभी माइन्ड कैसा है? ठीक है न?

मन तो है मोक्ष की नाव

प्रश्नकर्ता : अभी तो अपार शांति है।

दादाश्री : मन तो नाव है। मन तो मोक्ष में ले जाता है और संसार में भटकाता भी है, क्योंकि अभी तक कुतुबनुमा (दिशासूचक यंत्र) नहीं मिला है। मोक्ष में कब ले जाता है? 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो यह नाव मोक्षमार्ग की तरफ चलती है। 'ज्ञानी पुरुष' की उपस्थिति में आपका मन ऐसा रहता है तो उनका मन कितना सुंदर होगा! उनका मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, सभी सुंदर होते हैं। उनका अहंकार होता है, लेकिन वह भी सुंदर होता है, लेकिन पागल नहीं होता, अहंकार भी मनोहर होता है। एक व्यक्ति में इतनी शक्तियाँ हैं, तो औरों में कितनी होगी! उतनी ही हैं, लेकिन प्रकट नहीं हुई हैं। प्रकट कब होंगी? कोई तरणतारण 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तब।

बड़ौदा में एक बहन ने पूछा, 'दादा, सबकुछ अच्छा-अच्छा ही किया है। पूरी ज़िंदगी दूसरों का भला ही किया है, फिर भी मन की शांति क्यों नहीं मिलती? भगवान के साथ चाहे जितना तार जोड़ें, फिर भी जी क्यों जलता है?' यह तो 'हमारे' हाथ की बात है, अधिकार 'हमारा' है, यह तो टॉप बात पूछी बहन ने। सब लोग सभी ओर घूम आते हैं, फिर भी इन दो ही गलियों में उलझते रहते हैं। बहन ने तो सुंदर सार निकाला!

संसार के हर एक धर्म में मनोरंजन होता है, जबकि यहाँ 'ज्ञानी पुरुष' के पास आत्मरंजन होता है। मनोरंजन से उत्तेजना (जोशभरी खुशी) का अनुभव होता है, स्थिरता का अनुभव नहीं होता। जहाँ मन स्थिर हो, उस धर्म को सुनना चाहिए, लेकिन जहाँ पर मन चंचल हो जाता है, मनोरंजन होता है, ऐसे धर्म को सुनना किस काम का? किंचित्मात्र भी अंदर परिवर्तन हो, तब काम का। यह तो अस्सी साल

तक उपाश्रय में व्याख्यान सुनते हैं, प्रवचन सुनते हैं, फिर भी कुछ भी बदलाव नहीं होता, तो वह काम का ही नहीं है न! उसे तो मनोरंजन किया कहा जाएगा। उससे स्थिरता नहीं होती। आत्मरंजन में आइस्क्रीम की तरह आत्मा स्थिर हो जाता है और मनोरंजन में उबलता है। मनोरंजन में मन जोश से भर जाता है, बाहर तो आत्मरंजन होगा ही किस तरह? यहाँ पर आओ, तब आत्मरंजन होगा। यहाँ पर तो, आए तभी से आत्मा स्वीकार करता है कि, 'अब मुक्ति होगी।' इसलिए उल्लास आता है। कैदी से कहें कि, 'थोड़े दिन बाद छूटने वाले हो।' तब हालांकि कैदी को छोड़ा नहीं है, फिर भी उसे आनंद आता है, उसी तरह यहाँ पर आत्मरंजन होता है। यहाँ का एक-एक शब्द बहुत ही सूक्ष्मता से सुनने जैसा है। ज्ञानी का एक ही शब्द मोक्ष में ले जाएगा!

मन है, जगत्स्वरूप

इस देह का आत्मा के साथ कोई रियल संबंध नहीं है। यह मन, वह तो पूरी दुनिया है। इसलिए यदि किसी को परेशान करें तो मन में दु:ख उत्पन्न होता है और दूसरों को सुख दें तो सुख मिलता है। मन दुनिया है। दुनिया को सुख देंगे तो मन को सुख होगा। तू दूसरों को सुख देकर दु:ख माँगेगा तो वह नहीं मिलेगा। मन तो दुनिया है। जैसा चलाएगा वैसा मिलेगा। कवि कहते हैं न, '*मनमंदिर ना आंगणियामां कल्पतरुवर उगिया रे* (मनमंदिर के आंगन में कल्पतरु उगे हैं)।' इसलिए यदि तुझे सांसारिक सुख चाहिए तो तुझे जो-जो पसंद नहीं है वह दूसरों को मत देना। मात्र, खुद के पास जो समझ है कि मुझे यह पसंद नहीं है, तुझे खुद को जिससे दु:ख होता है वह तू दूसरों को मत देना। जिन्हें तू दु:ख मानता है, उनसे आगे तो और कई दु:ख हैं, लेकिन तू जिसे दु:ख मानता है वह दूसरों को देगा तो तेरे जैसा मूर्ख और कौन? तो फिर तुझे सुख मिलेगा किस तरह? जानबूझकर देना और अनजाने में देना, उसमें फर्क नहीं है?

बच्चा यदि काँच का प्याला फोड़ दे तो उसे दु:ख होता है? और बाप फोड़े तो? बाप को तो बहुत दु:ख होता है। तू जिसे दु:ख

मानता है वह दूसरों को मत देना, तभी तू सुखी हो पाएगा। सुखी होने के लिए दूसरे कोई शास्त्र पढ़ने की भी ज़रूरत नहीं है।

यह बात तो जिसे ज्ञान नहीं मिले वह भी समझता है। उससे क्या होता है कि दुःख आना बंद हो जाता है और सुख आना शुरू हो जाता है। यह तो, धर्म खुद के पास ही है। इसके लिए शास्त्रों की ज़रूरत नहीं है, इतना करेगा तो सुखी होगा ही। खुद पर जो इफेक्ट होता है वह सामने वाले पर भी अवश्य होगा ही न? तेरे प्रति मेरी आँखों में तुझे कोई भाव महसूस नहीं हो तो तेरी आँखों में वैसे भाव मत लाना कि जिससे सामने वाले को दुःख हो। जिससे अपने को दुःख होता हो, उससे औरों को कैसे दुःख दे सकते हैं?

विचार

विचार किसे कहते हैं? मन की गांठें फूटती हैं और जो फूटती हैं, वे विचार के रूप में हैं। विचार को खुद पढ़ सकता है। विचार तो उठाता है, बैठाता है, ऐसे ले जाता है, वैसे ले जाता है, दौड़ाता है, उसे विचार कहते हैं और जो उठाए नहीं, बैठाए नहीं, भागदौड़ नहीं करवाएँ वे पालतू विचार कहलाते हैं, और हम से उठक-बैठक करवाएँ वे पालतू विचार नहीं कहलाते।

यह जो भीतर शोर मचाता है, वह मन बोलता है, विचार बोलते हैं और वह भी, खुद ने ही उन्हें इकट्ठे किए हैं। कितने ही प्रकार के विचार नहीं आते हैं क्योंकि वह माल इकट्ठा ही नहीं किया, इसलिए। जैसा माल भरा है वैसे ही विचार आएँगे। इसलिए जितने आपने इकट्ठे किए हैं, उतने ही शोर मचाएँगे। जितने इकट्ठे किए थे, वे ही *वसवायां* (पार्टनरशिप में गाँव में काम करने वाले कारीगर) हैं, और *वसवायां* हैं तो शोर मचाएँगे ही न?

यदि विचार बिगड़ा तो दाग़ पड़ेगा, इसलिए विचार मत बिगाड़ना, यह समझना है। अपने सत्संग में तो खास ध्यान रखना है कि विचार नहीं बिगड़ें। विचार बिगड़ने से सबकुछ बिगड़ जाता है। विचार आया

कि मैं गिर जाऊँगा तो गिरा। इसलिए, जैसे ही विचार आएँ कि तुरंत ही प्रतिक्रमण करो, आत्मस्वरूप बन जाओ। अपना धर्म क्या कहता है कि असुविधा में सुविधा देखो। रात को मुझे विचार आया कि, 'यह चादर मैली है', लेकिन फिर एडजस्टमेन्ट कर लिया तो इतनी अच्छी लगती है कि पूछो मत। पँचेन्द्रिय ज्ञान असुविधा दिखाता है और आत्मा सुविधा दिखाता है। इसलिए आत्मा में रहो।

कोई मित्र बीमार हो तो उसके घर पर कहना पड़ता है कि, 'इसका इलाज करवाइए।' अंदर ऐसे विचार भी आते हैं कि यह बच जाएगा, ऐसा लगता नहीं है, ऐसे उल्टे विचार ज़्यादा कमज़ोर बना देते हैं। ऐसे विचार काम के ही नहीं होते। ऐसे विचार ही संसार हैं, वे खुद ही विचार हैं, उनका स्वभाव ही चंचल है, लेकिन आप को उसमें चंचल नहीं हो जाना चाहिए। वे तो आते रहेंगे, आप को तो, जब वे आएँ तब देखते रहना है और जानते रहना है। उन्हें जाना, इसका मतलब शुद्धात्मा हाज़िर ही है। उन्हें तो यह जानना है कि पहले चंदूलाल गए, फिर चतुरलाल गए।

प्रश्नकर्ता : विचार बहुत आ गए, लेकिन बाद में पता चलता है कि ये तो विचार आ गए। तब क्या उसे तन्मयाकार होना कहा जाएगा?

दादाश्री : विचारों में बह नहीं गए तो उनसे जुदा ही हैं। अगर इन विचारों को नहीं पकड़ा तो आत्मा, आत्मा ही रहा। कई बार ऐसा होता है कि एकसाथ विचार फूटते हैं तो जागृति नहीं रहती, लेकिन बाद में ऐसा जाना कि ये विचार तो बला हैं, वही बताता है कि आत्मा हाज़िर है।

स्वरूप प्राप्ति के बाद विचारों का फोर्स आए तो उससे और कोई परेशानी नहीं है, लेकिन अपना सुख रुक गया, वही नुकसान है।

जब बच्चों के स्कूल की छुट्टी होती है, तब कितने बच्चे एक साथ निकलते हैं? घंटी बजती है कि शुरूआत में ढेर सारे बच्चे निकलते हैं और फिर तो एक-दो, एक-दो बच्चे ही निकलते हैं। वैसा ही इन

विचारों का भी है! लेकिन आत्मा इसमें भी खुद का ज्ञाता-द्रष्टापन छोड़ता नहीं है, मात्र सुख रुक जाता है। आत्मा कभी भी खुद का स्वभाव नहीं छोड़ता और विभाव में आता ही नहीं है। 'ज्ञानी पुरुष' के पास यह सब विस्तारपूर्वक समझ लेना चाहिए ताकि कोई परेशानी नहीं आए।

विचारों की - आश्रव, निर्जरा

भीतर बहुत विचार आते हैं, उनमें यदि तन्मयाकार रहे तो *आश्रव* (उदयकर्म में तन्मयाकार होना अर्थात् आश्रव होना) होता है और कर्म बंधन होता है। यदि विचारों का ज्ञाता-द्रष्टा रहे तो *निर्जरा* होती जाती है और *संवर* (शुद्ध उपयोगपूर्वक कर्म की निर्जरा जिससे नए कर्म चार्ज नहीं होते) रहता है, कर्म पर ढक्कन लग जाता है। विचार तो सभी को आते हैं। गांठें फूटती हैं, अधिक इन्टरेस्ट वाली गांठें फूटती हैं, वे भी अनटाइमली बम की तरह। तो रात को, तीन बजे भी गांठ फूटती है, लेकिन फूटने से पहले जगा देती है। सपना आए या और किसी तरह, लेकिन जगाकर फूटती हैं, वे भी लिंक में फूटती हैं। यह तो खुद को पसंद आने वाली गांठें होती हैं, वे संयोग मिलते हैं, तब फूटती हैं और यदि पढ़कर तन्मयाकार हो जाएँ तो कर्म चिपकता है और पढ़कर जाने दें, तब फिर वह गांठ वापस नहीं आती। ये विचार आते हैं वे मन में से आते हैं, ये अपने से बिल्कुल अलग हैं, लेकिन वहाँ पर खुद तन्मयाकार हो जाता है। जहाँ तन्मयाकार नहीं होता, वहाँ पर आत्मधर्म हाज़िर है। संयोग मिलता है तो मन की गांठें फूटती हैं। ये गांठें लोभ की भी होती हैं और विषयों की भी होती हैं। ये गांठें आकार में छोटी-बड़ी, तरह-तरह की होती हैं। जिसमें बहुत ही इन्टरेस्ट होता है, वे गांठें बड़ी होती हैं, उनके बहुत विचार आते हैं। उन विचारों को छेदने के लिए उन्हें देखते रहना पड़ता है। ये विचार पढ़े जा सकें, ऐसे हैं। पसंदीदा विचार आएँ तो, उनमें तन्मयाकार रहता है और नापसंद विचार आएँ, तब तुरंत ही ऐसा लगता है कि खुद से वे अलग हैं।

नापसंद में चोखा मन

नापसंद चोखे मन से सहन कर पाएँगे, तब वीतराग हो पाएँगे।

प्रश्नकर्ता : चोखा (अच्छा, निर्मल) मन का मतलब क्या?

दादाश्री : चोखा मन यानी सामने वाले के लिए खराब विचार नहीं आएँ वह, यानी क्या? कि निमित्त को काटे नहीं। कदाचित् सामने वाले के लिए खराब विचार आ जाएँ तो तुरंत ही प्रतिक्रमण कर ले और उसे धो दे।

प्रश्नकर्ता : मन चोखा हो जाए, वह तो अंतिम स्टेज की बात है न? और जब तक संपूर्ण चोखा नहीं हो जाता, तब तक प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं न?

दादाश्री : हाँ, वह सही है, लेकिन कुछ बातों में चोखा हो चुका होता है, और कुछ बातों में नहीं हुआ होता। वे सब स्टेपिंग हैं। जहाँ चोखा नहीं हुआ है वहाँ प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

हमें तो शुरू से ही दुनिया के एक-एक शब्द का विचार आता था। पहले भले ही ज्ञान नहीं था लेकिन 'विपुलमति' थी, इसलिए बोलते ही स्पष्ट समझ में आ जाता था। चारों ओर का तौल निकल जाता था। बात निकले तो तुरंत ही सार निकल जाए, उसे 'विपुलमति' कहते हैं। विपुलमति होती ही नहीं है न किसी में। यह तो एक्सेप्शनल केस हो गया है! जगत् में विपुलमति कब कहलाती है? ऐसी मति हो जो एवरीव्हेर एडजस्ट कर पाए, तब। यह तो कच्चा काटने का हो, उसे उबाल देता है और उबालने का हो, उसे कच्चा काट देता है, तो कहाँ से एडजस्ट होगा? लेकिन एवरीव्हेर एडजस्ट होना चाहिए।

कार्य का प्रेरक कौन?

प्रश्नकर्ता : कार्य करने की प्रेरणा कौन देता है?

दादाश्री : यह प्रेरणा तो पिछले जन्म के जो कॉज़ेज़ हैं, मात्र

उनका इफेक्ट है। मन के विचारों से प्रेरणा होती है। जो कुछ भी कार्य होता है, वह शुद्धात्मा नहीं करता, प्रतिष्ठित आत्मा करता है।

मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार अंतःकरण के अंग हैं। जो सोच में पड़ जाए वह मन है। यहाँ पर बैठे-बैठे जो बाहर भटके, वह चित्त है। मन जो दिखाता है वह पेम्फलेट है और जो निश्चित करती है, वह बुद्धि है और जो हस्ताक्षर करता है, वह अहंकार है। अंतःकरण के अनुसार बाह्यकरण बनता है, कोई प्रेरक है ही नहीं। जो-जो परमाणु इकट्ठे किए हैं, वैसे विचार छप जाते हैं, और वे ही परमाणु उदय में आते हैं। यदि खुद ही सोच सकते तो मनचाहे विचार ही आते लेकिन जैसे परमाणु भरे हैं, वैसे निकलते हैं। विचार संयोगों के अधीन है। माल भरते समय ही विचार करना चाहिए, सुविचार जो हितकारी हों, वे भरने चाहिए। भीतर कोई उल्टा विचार आए तो उसे घुसने ही मत देना, नहीं तो घर कर जाएगा। ऑफिस में कोई चोर जैसा आए, तो क्या उसे पूछते हैं कि, 'तू कौन है? तेरा व्यवसाय क्या है?' उसे तो घुसने ही नहीं देना चाहिए। यह तो किसी को लकवा हुआ हो और उससे मिलकर आएँ, तब विचार आता है कि 'हमें भी ऐसे लकवा हो जाएगा तो?' ये उल्टे विचार कहलाते हैं। इन्हें घुसने ही नहीं देना चाहिए। 'अपने' इस स्वतंत्र रूम में किसी को घुसने ही नहीं देना चाहिए। घुसने देना, वह खतरनाक है, उसी से तो संसार है, अनंत प्रकार के विचार आएँ तो कह देना कि, 'गेट आउट।' 'दादा' का नाम लोगे तो वे रुक जाएँगे। ये लुटेरे रात को शोर मचाएँगे तो क्या रात नहीं बीतेगी? यह तो टेम्परेरी है। रात बीत जाएगी। हम तो अनंत शक्ति वाले हैं।

मन का स्वभाव कैसा है? सीधी तरह से नहीं मुड़ता और यदि बहला-फुसलाकर मोड़ें तो मुड़ने के बाद वहाँ से नहीं खिसकता, फिर से बदलता नहीं हैं। इसीलिए इन छोटे बच्चे-बच्चियों में अच्छे संस्कार डालने चाहिए, तो फिर वे अच्छे संस्कार जाएँगे नहीं।

बच्चों को जो विचार आते हैं वे कार्य-कारण विचार आते हैं,

वे विचार आकर तुरंत ही कार्यकारी हो जाते हैं। बड़ा होने के बाद क्रिकेट के विचार आते हैं, फिर भी पढ़ाई कर रहा होता है।

मनःपर्याय ज्ञान

सभी मनुष्यों का स्वभाव कैसा है कि जब विचार आए, तो उसके लिए कहते हैं, 'मुझे विचार आया।' अरे, तू खुद और विचार दोनों अलग हैं। 'मुझे विचार आया' वह वाक्य इटसेल्फ ही बताता है कि 'मैं' और 'विचार' दोनों अलग हैं। 'मैं विचार कर रहा हूँ' ऐसा नहीं कहता, 'मुझे विचार आ रहे हैं या मेरे ऐसे विचार हैं' ऐसा कहता है। इसलिए विचार, सेल्फ से पूरी तरह से अलग ही हैं। यह तो अलौकिक ज्ञान है! यह तो मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न हुआ है, विचार आएँ और खुद ज्ञाता-द्रष्टा रहे। इस ज्ञान से तो बुद्धि के पर्याय भी देखे जा सकते हैं!

मन के विचार तो अज्ञानी को भी दिखते हैं, फिर भी उस पर्याय को जानना है, आत्मा हुए बिना ऐसा नहीं माना जा सकता कि, मनःपर्याय ज्ञान में आ चुके हैं। ये मन के पर्याय निरंतर बदलते रहते हैं, उसके यदि ज्ञाता-द्रष्टा रहें तो वही मनःपर्याय ज्ञान है।

जो मन की अवस्थाओं को देख सकते हैं, उन्हें ज्ञानी कहा है। मन का कम्प्रेशन या टेन्शन कितना ऊँचा गया, कितना नीचा गया, कैसा उल्लास आया, कैसा डिप्रेशन आया, उन सभी पर्यायों को देखना, यही मनःपर्याय ज्ञान है। 'स्वरूप ज्ञान' के बगैर तो अगर मन ज़रा सा भी बताए तो एकाकार हो जाता है- 'मुझे हुआ-मुझे हुआ' करके! मनःपर्याय ज्ञान प्राप्त करने के लिए तो लोग लाख जन्मों तक शिष्य बनने के लिए तैयार हो जाएँगे! क्रमिक मार्ग में साधारण मनःपर्याय ज्ञान होता है और अपने इस अक्रम मार्ग में सुदृढ़ मनःपर्याय ज्ञान हो जाता है। यह तो बुद्धि के पर्याय भी देख सकता है, वह भी ज्ञान ही कहलाता है। चित्त को तो अज्ञानी भी देख सकता है। वह तो अशुद्ध चित्त कहलाता है, वह ज्ञान का भाग नहीं है, क्योंकि उसे तो अहंकार भी देख सकता है।

यह अक्रम मार्ग है इसलिए मन:पर्याय ज्ञान खड़ा हो गया है! इसीलिए यदि किसी के लिए द्वेष हो रहा हो तो मन:पर्याय ज्ञान से मन का पता चल जाता है और वहाँ सील किया जा सकता है। जब वह व्यक्ति फिर से मिले, तब जो विस्फोट होने वाला हो, वह अपने आप रुक जाता है। यदि यह मन:पर्याय ज्ञान न हो, तब तो विस्फोट हो जाएगा। यह तो मन:पर्याय ज्ञान, वह हम दुकान में बैठे हों तब भी हमें पता चलता है कि नगीनभाई के लिए ऐसे पर्याय और लल्लूभाई के लिए ऐसे पर्याय बता रहा है, तो वहाँ पर सावधान रहकर चलना चाहिए। अच्छे-अच्छे साधुओं को, आचार्यों को भी मन:पर्याय ज्ञान नहीं होता है, वे लोग श्रुतज्ञान में ही होते हैं।

यह तो आपको घंटे भर में ही 'हम' स्वरूप का भान करवा देते हैं, उसी से यह सब सहज प्राप्त हो जाता है, वर्ना लाख जन्मों तक भी ठिकाना पड़े, वैसा नहीं है!

बुद्धि और ज्ञान

बुद्धि और ज्ञान में कोई फर्क है क्या?

प्रश्नकर्ता : बुद्धि यानी जो प्रत्यक्ष सिद्ध की जा सके, ऐसी समझ और ज्ञान यानी बुद्धि से परे, जिसे सुपर-नॉलेज, पराविद्या कहते हैं।

दादाश्री : उसकी डेफिनेशन (परिभाषा) मैं बताता हूँ। पूरी दुनिया के सभी सब्जेक्ट्स में से दो-चार सब्जेक्ट्स जाने, उसे लोग नॉलेज कहते हैं, लेकिन पूरी दुनिया के सभी सब्जेक्ट्स को जाने, वह भी बुद्धि में समा जाता है, क्योंकि वह अहंकारी ज्ञान है। अहंकारी ज्ञान, वह बुद्धि है और निरअहंकारी ज्ञान, वह 'ज्ञान' है। बुद्धि, वह इनडाइरेक्ट प्रकाश है, उसकी आपको सिमिली दूँ, सूर्यनारायण का डाइरेक्ट प्रकाश डाइरेक्ट ज्ञान जैसा है और दूसरा इनडाइरेक्ट प्रकाश, यदि सूर्यनारायण का प्रकाश दर्पण पर पड़े और वह रूम में प्रकाश दे, तो वह इनडाइरेक्ट प्रकाश है। आत्मा का जो डाइरेक्ट प्रकाश है वह ज्ञान है। बुद्धि का प्रकाश मीडियम के थ्रू (माध्यम से) है, इनडाइरेक्ट है। आत्मा, वह स्व-पर प्रकाशक है और बुद्धि पर-प्रकाशक है। बुद्धि विकल्प करवाती है। संकल्प-विकल्प होते हैं क्या आपको?

प्रश्नकर्ता : 'संकल्प-विकल्प' का एक्ज़ेक्ट मीनिंग मुझे समझ में नहीं आता!

दादाश्री : बाहर संकल्प-विकल्प किसे कहते हैं, वह पता है? अंदर जो अच्छे या खराब विचार आते हैं, उन्हें संकल्प-विकल्प कहा

गया है। लेकिन यह बिना पहचाने की हुई बात है। 'मैं चंदूलाल हूँ' वह पहला विकल्प, 'मैं इसका पति हूँ' वह दूसरा विकल्प, 'मैं इसका बाप हूँ, वकील हूँ' वे सभी विकल्प हैं और 'यह देह, मोटर, बंगले मेरे हैं' वह संकल्प। 'मैं' और 'मेरा' वह क्रमश: विकल्प और संकल्प हैं।

ज्ञान और बुद्धि में क्या फर्क है? बुद्धि भेद डालती है, मेरा-तेरा करवाती है, जबकि ज्ञान अभेद बनाता है। बुद्धि-ज्ञान यानी कि इस दुनिया के तमाम शास्त्रों का ज्ञान जाने लेकिन खुद को नहीं जाने तो उस अहंकारी ज्ञान को बुद्धि कहा गया है। और स्वरूप के ज्ञान को जाने तो निरअहंकारी-ज्ञान हो जाता है, वह ज्ञान है। बुद्धि तो खुद के बच्चों और पत्नी के बीच में भी भेद डलवाती रहती है।

भेदबुद्धि

जब तक भेदबुद्धि हो तब तक लगता है, 'मैं चंदूलाल और यह रायचंद' और महावीर अलग, नेमीनाथ अलग, कृष्ण अलग, सभी में भेद लगता है, और 'ज्ञानी पुरुष' में भेदबुद्धि नहीं होती, वे आत्मस्वरूप में रहते हैं और सब को अभेद देखते हैं। हमें तो 'सब में मैं ही बैठा हुआ हूँ' ऐसा रहता है। रियल स्वरूप को जान लें तो अभेदता आती है।

वीतराग निष्पक्षपाती होते हैं, उन्हें सब में अभेदता लगती है। कालचक्र के आधार पर मार खाते रहते हैं, यदि 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो मार नहीं खानी पड़ती, ज्ञानी मिल जाएँ तो हल आ जाता है।

बुद्धि प्रकाशक ज़रूर है, लेकिन पर-प्रकाशक, इनडाइरेक्ट लाइट है, जैसे कि दर्पण में से सूर्य के प्रकाश की किरणें परावर्तित होती हैं, वैसी। जिसका जितना बड़ा दर्पण, उतना ही उसका प्रकाश पड़ता है। कुछ तो ऐसे बेरिस्टर होते हैं कि जो रोज़ के हज़ारों कमाते हैं, क्योंकि दर्पण बड़ा है और कुछ का तो टट्टू चलता ही नहीं है। बुद्धि का फल क्या है? बुद्धि बहुत बढ़े, तब बुद्धू बन जाता है!

'हम में' नाम मात्र भी बुद्धि नहीं है, 'हम' 'अबुध' हैं। कवि ने कहा है न कि,

'भाव, नो, द्रव्य ना जाळा खंखेरी जाणजो अबुध अध्यासे।'

जब अबुध-अध्यास होगा, तब वे जाले हट जाएँगे, बुद्धि से वे जाले नहीं हटेंगे। बुद्धि तो अपना काम करती रहेगी, लेकिन उसका उपयोग नहीं करना है। यह तो, साँप पर बुद्धि की लाइट डालकर देखता है। तब अशांति होती है और 'व्यवस्थित' कहता है, 'जा न तू, कोई भी नहीं काटेगा!' तो निराकुलता रहती है। बुद्धि तो, संसार में जहाँ-जहाँ उसकी जितनी ज़रूरत है, उतना उसका सहज प्रकाश देती ही है और संसार का काम हो जाता है, लेकिन यह तो विपरीत बुद्धि का उपयोग करता है कि कहीं साँप काट लेगा तो! यही *उपाधि* करवाती है। सम्यक् बुद्धि से सर्व दु:ख खत्म हो जाते हैं और विपरीत बुद्धि से सर्व दु:खों को इन्वाइट करता है।

तीन प्रकार की बुद्धि होती है - एक अव्यभिचारिणी बुद्धि, दूसरी व्यभिचारिणी बुद्धि और तीसरी सम्यक् बुद्धि। इन तीनों प्रकारों में, यदि किसी जन्म में 'जिन' (वीतराग) के दर्शन किए हों, तो उसमें सम्यक् बुद्धि विकसित होती है। शुद्ध 'जिन' के दर्शन किए हों और वहाँ पर श्रद्धा बैठी हो तो बीज व्यर्थ नहीं जाता, उससे अभी सम्यक् बुद्धि उत्पन्न होती है और फिर सहज भाव से मार्ग मिल जाता है।

किराने के व्यापारी के दो हज़ार रुपये वापस नहीं आएँ तो ग्राहक के साथ झगड़ा करता है, तो फिर ग्राहक उसे एकाध धौल लगा देता है और फौजदारी केस बनता है। इसमें तो, अभी तक रुपये तो दिए नहीं और फौजदारी केस हो गया। इसलिए कहता है, 'मैं तो दु:खी-दु:खी हो गया।' यह तो खुद ही दु:खों को बुलाता है! इन दु:खों को यदि बुलाया नहीं जाए तो एक भी आए, वैसा नहीं है। विपरीत बुद्धि से ही दु:ख खड़े होते हैं। विपरीत बुद्धि मतलब चाकू की उल्टी धार से सब्ज़ी काटना। सब्ज़ी कटती नहीं और उँगली में से खून निकल जाता है।

जिसमें अक़्ल है, उसका मोक्ष नहीं हो सकता। दुनिया जिसे अक़्ल

वाला कहती है, वह तो बहुत ही कमअक़्ल है। अक़्ल वाला खुद की ही कब्र खोदता है, उसे 'हम' कमअक़्ल कहते हैं। हम खुद ही बगैर अक़्ल के हैं न! अबुध हैं! हममें यदि बुद्धि का छींटा भी होगा तो सभी प्रकार के ध्यान खड़े हो जाएँगे। व्यापार में ऐसा लगेगा कि, 'ये पैसे ज़्यादा ले गया, इसने ऐसा किया।' उससे ज्ञान ही खत्म हो जाएगा।

बुद्धि के उपयोग की लिमिट

हम सुबह सात बजे दादर स्टेशन पर बैठे हुए थे, तब लोगों ने एकसाथ लाइटें बंद कर दीं। तो ऐसे में बुद्धि वाला क्या पूछेगा कि, 'ऐसा क्यों किया?' ये सूर्यनारायण उग रहे हैं उनका तेज आ रहा है, इसलिए अब इन लाइटों की क्या ज़रूरत? हम कहते हैं कि 'इस' फुल लाइट के आ जाने के बाद बुद्धि की लाइट बंद कर दो! जैसे कि ये लोग इसमें कितने जागृत हैं कि 'इसमें इलेक्ट्रिसिटी खर्च हो जाती है', उसी तरह अपनी लाइट में, मूल शक्ति में बुद्धि का उपयोग करने से पावर व्यर्थ हो जाती है और यदि लाइट का उपयोग नहीं करेगा तो मूल लाइट बढ़ेगी।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का प्रकाश तो रहेगा ही न?

दादाश्री : हाँ, ज़रूरत पड़ने पर बुद्धि काम कर जाती है लेकिन बटन चालू रखने की ज़रूरत नहीं है। वह तो ऑटोमैटिक चालू हो ही जाता है। लेकिन बटन चालू नहीं रह जाना चाहिए। बुद्धि यही दिखाती है कि सांसारिक हित किसमें है। किसी भी सांसारिक क्रिया में बुद्धि का ही उपयोग होता है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह ज्ञान का उपयोग है।

आत्मा सहजस्वरूप ही है, लेकिन प्रकृति सहज हो जाए, तभी वह सहज रह सकता है, उसका फल आता है। प्रकृति कब सहज होती है? बुद्धि बहन विश्रांति ले लें, तब प्रकृति सहज हो जाती है। कॉलेज में पढ़ते थे तब तक बुद्धि बहन आती थीं, लेकिन अब पढ़ चुके हैं, अब क्या ज़रूरत है? अब उसे कहना कि, 'आप घर पर रहो, हमें ज़रूरत नहीं है।' उसे पेन्शन दे दो। बुद्धि चंचल बनाती है, उससे आत्मा

का जो सहज स्वभाव है उसका स्वाद चखने को नहीं मिलता। बाहर का भाग ही चंचल है, लेकिन यदि बुद्धि को एक तरफ बिठा देंगे तो सहज सुख बरतेगा! यदि कुत्ता देखा, तो बुद्धि कहेगी, 'कल उस आदमी को काटा था, यह कुत्ता भी वैसा ही दिखता है, मुझे भी काट जाएगा तो?' अरे, उसके हाथ में कौन सी सत्ता है? 'व्यवस्थित' में होगा तो काटेगा। बुद्धि, तू एक तरफ बैठ। सत्ता यदि खुद की होती तो लोग खुद का ही नहीं सुधार लेते? लेकिन सुधार हुआ नहीं! बुद्धि तो शंका करवाती है। शंका होने से गड़बड़ होती है। हमें तो अपने निःशंक पद में ही रहना है। जगत् तो शंका, शंका और शंका में ही रहेगा।

बुद्धि की नॉर्मेलिटी

प्रश्नकर्ता : दादा, बुद्धि को डिम कैसे कर सकते हैं?

दादाश्री : बुद्धि को डिम करने के लिए तो सम्यक् बुद्धि का ज़ोर चाहिए।

जैसे-जैसे बुद्धि बढ़ती है वैसे-वैसे स्मृति बढ़ती है, और वैसे-वैसे दुःख बढ़ता है! बुद्धि एक तरफ ही रख देनी है, उसकी बात ही नहीं माननी चाहिए। यदि चाली में एक व्यक्ति ऐसा हो कि जिसकी बात मानने पर अपना फज़ीता होता हो, तो उसकी बात हम कितनी बार एक्सेप्ट करेंगे? एक-दो बार, लेकिन फिर तो उसकी बात एक्सेप्ट ही नहीं करेंगे। बुद्धि तो सेन्सिटिव बना देती है, इमोशनल बना देती है, तो उसकी बात हमें क्यों एक्सेप्ट करनी चाहिए?

व्यवहार में वाइज़ (समझदार) रहने की ज़रूरत है ताकि किसी को ज़रा सा भी नुकसान नहीं हो। इस अक़्ल की ज़रूरत नहीं है। अगर अक़्ल बहुत बढ़ जाए तो दिमाग़ ठिकाने नहीं रहता, बुद्धू बन जाता है, इसलिए बुद्धि को थोड़ा काट देना चाहिए। वाइज़ होने की ज़रूरत है, ओवरवाइज़ (ज़रूरत से ज़्यादा अक़्लमंद) होने की ज़रूरत नहीं है। ओवरवाइज़ बन जाए तो फिर ट्रिक करना सीख जाता है। ट्रिक मतलब खुद की अधिक बुद्धि से सामने वाले की कम बुद्धि का

फायदा उठाना वह। ट्रिक करे तब तो चोर में और तुझ में फर्क क्या? यह तो चोर से भी अधिक जोखिमदारी कहलाती है। ट्रिक, वह तो बुद्धि से सामने वाले को मारती है। भगवान ने कहा है कि, 'बुद्धि से मारते-मारते तू निर्दय बन जाएगा। इसके बजाय तो हाथ से मारना अच्छा कि जिससे कभी तो दया आएगी।' पूरा जगत् बुद्धि से मार रहा है, वह तो सब से बड़ा रौद्रध्यान कहलाता है। उसका फल सीधे नर्कगति आती है। रौद्रध्यान अर्थात् किसी के सुख को किसी भी प्रकार से छीन लेने की इच्छा। किसी को किसी भी प्रकार से दुःख देना, वही इच्छा। ये कपड़ा खींचकर बेचते हैं, वही रौद्रध्यान है, 'इतना कपड़ा तो बचेगा' ऐसा कहेगा। यह हिसाब तो कैसा है? यदि 9,999 रुपये मिलने वाले हैं, तो रौद्रध्यान से भी इतने ही मिलेंगे और उस ध्यान के बिना भी इतने ही मिलेंगे। यह तो बल्कि कपड़ा खींचकर ध्यान बिगाड़ता है और कहेगा कि, 'कमाने के लिए ऐसा तो करना पड़ता है न?' इन लोगों को ऐसी श्रद्धा नहीं रहती कि लक्ष्मी जी आएँगी। अरे, जिस श्रद्धा से तूने दुकान खोली है, उस श्रद्धा के प्रति ध्यान मत बिगाड़ना और उसी श्रद्धा से लाभ मिलेगा, ऐसा रखना।

जगत् के सभी लोग अंधश्रद्धा से चल रहे हैं, मोटर चलाने वाला भी अंधश्रद्धा से चलाता है। 'ज्ञानी पुरुष' मोटर में बैठते हैं तो कहते हैं कि, 'या तो टकराएगी या फिर बचेगी जो हो, सो भले ही हो'। यह तो ज्ञान नहीं है फिर भी अंधश्रद्धा पर चलाता है!

बुद्धि संसारानुगामी ही

भटकने वाले के दोष की वजह से भटकाने वाले मिलते हैं। भटकाने वाले तो बहुत भुगतेंगे, क्योंकि खुद की बुद्धि से सामने वाले से लाभ उठाया। बुद्धि से तो यह देखना होता है कि, सामने वाले को लाभ कैसे हो, लेकिन यह तो दुरुपयोग करता है, उसे व्यभिचारिणी बुद्धि कहा है। कृष्ण भगवान ने गीता में बुद्धि को व्यभिचारिणी कहा है। बुद्धि से ऐसा कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है, सहज रूप से प्राप्त हो, ऐसा यह जगत् है। यह तो भोगना नहीं आता, वर्ना मनुष्य

जन्म में भोग सकता है, ऐसा है, लेकिन यह मनुष्य तो भोग ही नहीं सकता और फिर उनके टच में आने वाले सभी जानवर भी दुःखी हुए हैं। अन्य करोड़ों जीव हैं फिर भी सिर्फ ये मनुष्य ही दुःखी हैं, क्योंकि सभी का दुरुपयोग किया, बुद्धि का, मन का, सभी का। यह मनुष्य अकेला ही निराश्रित है। 'सामने लुटेरा आ जाए तो मेरा क्या होगा', ऐसा विचार इन मनुष्यों को ही आता है। 'मैं किस तरह चलाऊँगा? मेरे बिना चलाएगा ही कौन?' ऐसी जो चिंता करते हैं वे सभी निराश्रित हैं। जबकि जानवर भगवान के आश्रित हैं। उन्हें तो खाने-पीने को आराम से मिलता है, उनके लिए डॉक्टर, हॉस्पिटल ऐसा कुछ भी नहीं होता और उन लोगों को अकाल जैसा भी कुछ नहीं है। हाँ, जो इन मनुष्यों के संग में आ गए हैं, वे जानवर- गाय, बैल, घोड़े वगैरह दुःखी हुए हैं।

जैसे-जैसे आहार घटे, वैसे-वैसे प्रमाद घटता है और बुद्धि का डेवेलपमेन्ट होता है। चाय से शरीर का गठन बिगड़ गया, आहार कम हो गया उससे। पहले के ज़माने में चाय नहीं थी, तो खुराक इतनी अधिक थी, वे फिर बैल जैसे हो जाते थे, बुद्धि भैंस जैसी हो जाती थी। फिर भी, वे लोग मेहनत अच्छी कर सकते थे, हाथ में लिया हुआ काम कड़ी मेहनत से पूरा करते थे। बहुत खुराक से बुद्धि मोटी हो जाती है, सूक्ष्मता खत्म हो जाती है।

बुद्धि संसार का काम कर देती है, मोक्ष का नहीं। एक व्यू पोइन्ट, वह बुद्धि है और जब दोनों व्यू पोइन्ट उत्पन्न होते हैं, रियल और रिलेटिव दोनों व्यू पोइन्ट उत्पन्न होते हैं, तभी प्रज्ञा उत्पन्न होती है और प्रज्ञा उत्पन्न होती है तब दोनों व्यू पोइन्ट से, रियल और रिलेटिव दोनों को अलग-अलग देखती है और उससे मोक्ष होता है। जहाँ प्रज्ञा उत्पन्न होती है, वहाँ पर सनातन सुख है। बुद्धि से तो कल्पित दुःख और वह भी निरंतर का! सुख के पीछे दुःख भरा हुआ होता है, और फिर दूषमकाल! अतः अपार दुःख और संपूर्ण मोहनीय व्याप्त है, निरंतर मूर्च्छा में भटक रहे हैं!

चित्त

चित्त अर्थात् ज्ञान-दर्शन, इन दो गुणों का अधिकारी, वह चित्त है। ये दोनों ही गुण अशुद्ध हों तो वह अशुद्ध चित्त कहलाता है और शुद्ध हों तो शुद्ध चित्त कहलाता है।

शुद्ध ज्ञान + शुद्ध दर्शन = शुद्ध चित्त = शुद्धात्मा।

अशुद्ध ज्ञान + अशुद्ध दर्शन = अशुद्ध चित्त = अशुद्धात्मा।

हम यहाँ बैठे हुए हों, और वह परदेश में देख आता है, घर-वर सभी देख आता है। वह देख आने का, जान लेने का स्वभाव चित्त का है। जबकि मन का स्वभाव दिखाने का, पेम्फलेट दिखाने का है। मन एक के बाद एक पेम्फलेट दिखाता है। लोग तो किसी का दोष किसी और पर मढ़ देते हैं, कहते हैं कि, 'मेरा मन भटक रहा है!' मन कभी भी इस शरीर को छोड़कर बाहर नहीं जा सकता। जो जाता है वह चित्त है। लोग तो मन को पहचानते ही नहीं, चित्त को पहचानते ही नहीं। बुद्धि को नहीं पहचानते और अहंकार को भी नहीं पहचानते। अरे! अंत:करण-अंत:करण, ऐसे गाते हैं लेकिन अंत:करण को समझते नहीं है। पहले भीतर इस अंत:करण में प्याला फूटता है बाद में ही बाहर प्याला फूटता है।

इस तरह से मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार की बात किसी भी शास्त्र में नहीं समझाई गई है।

यह चित्त तो अंदर भी भटकता है और बाहर भी भटकता है। दिमाग़ में क्या चल रहा है, वह चित्त देख आता है।

चित्त गैरहाज़िर - उसके फल?

एक मिलमालिक सांताक्रुज़ में मेरे यहाँ आए थे। उनसे मैंने पूछा, 'सेठ, कभी अच्छी तरह से भोजन करते हो? चित्त को ठिकाने रखकर भोजन करते हो? यह ब्लडप्रेशर किसलिए होता है? बगैर चित्त के खाते हो, इसलिए।' वे सेठ बेचारे नरम पड़ गए और मेरी गोदी में सिर रखकर कहने लगे, 'हाँ दादा, कभी भी चित्त को हाज़िर रखकर भोजन किया ही नहीं।'

कृष्ण भगवान ने क्या कहा है, 'प्राप्त को भोग और अप्राप्त की चिंता मत करना।' यह भोजन की थाली सामने आए तो एकचित्त से उसे शांति से खा। यदि चित्त ठिकाने पर होगा तो स्वादिष्ट लगेगा और चित्त हाज़िर नहीं रहेगा तो बत्तीस प्रकार के पकवान भी नहीं भाएँगे। इस शरीर को इतनी सी खिचड़ी दी हो तो पूरी रात शांति रखे, समाधि रखे वैसा है। यह तो, शरीर यहाँ पर भोजन करता है और 'खुद' जाता है मिल में!

इन मनुष्यों को फिर हार्टफेल हो जाता है, स्कूल में तो फेल नहीं होता था और यहाँ किस तरह फेल हो जाता है? ये जानवर जब खाते हैं, तब पता लगाना कि उनका चित्त बाहर कहीं जाता है या नहीं? कुत्ता-वुत्ता भी, खाते समय स्वाद लेकर पूँछ पटपटाता है! सभी जानवरों का चित्त, जब वे खाते हैं, तब खाने में ही होता है, और इन सेठों, वकीलों, डॉक्टरों का चित्त तो खाते समय एब्सेन्ट रहता है, इससे तो हार्टफेल और ब्लडप्रेशर हो जाता है। हार्टफेल और ब्लडप्रेशर तो एब्सेन्ट चित्त का परिणाम है। बगैर चित्त के खाता है, उससे अंदर की सभी नसें कड़क हो जाती हैं। इन डॉक्टरों का चित्त ऑपरेशन करते समय अन्य कहीं भटके तो मरीज़ की क्या दशा होगी? खाते समय भी भीतर कितने ही ऑपरेशन होते हैं, इसलिए भोजन करते समय, चित्त को प्रेज़ेन्ट रखकर खाओ। भोजन करते समय 'चित्त' की हाज़िरी लेनी चाहिए कि 'हाज़िर है क्या?'

ऐसा समय भी आएगा कि डॉक्टरों का चित्त कहीं का कहीं

भटकेगा। लेकिन ऑपरेशन के समय चित्त हाज़िर रहता है, उतना अच्छा है। यदि चित्त की हाज़िरी के बिना ऑपरेशन करेंगे तो उस मरीज़ के मरने के बाद, जल जाने के बाद अंदर से कैंची निकलेगी! इसीलिए तो डर के मारे डॉक्टर ऑपरेशन के समय चित्त को हाज़िर रखते हैं।

शायद सभी जगह चित्त हाज़िर न भी रहे, अन्य कहीं पर चित्त गैरहाज़िर रहेगा तो चलेगा, लेकिन मात्र भोजन करते समय चित्त को हाज़िर रखना।

प्रश्नकर्ता : 'वर्क व्हाइल यू वर्क एन्ड प्ले व्हाइल यू प्ले' उसके जैसा, दादा?

दादाश्री : ऐसे वाक्य फॉरेन वाले सहज लोगों के लिए हैं, विकल्पी के लिए नहीं हैं। ज्ञानी को तो 'वर्क व्हाइल यू वर्क एन्ड प्ले व्हाइल यू प्ले' रहता है, क्योंकि उनका बाहर का भाग और अंदर का भाग, दोनों ही सहज होते हैं। उनका चित्त तो कभी भी गैरहाज़िर नहीं रहता।

इन्डियन्स के लिए तो यह वाक्य बेकार है, इसे रखकर क्या करना है? फिर भी हम कहते हैं कि मात्र भोजन करते समय चित्त को हाज़िर रखना। ऑफिस जाने के लिए ग्यारह के बदले सवा ग्यारह हो जाएँ तो 'दादा' को याद करना, कहना कि, 'दादा, आप कहते थे न कि भोजन करते समय चित्त हाज़िर रखना, लेकिन आज तो सवा ग्यारह बज गए हैं। मैं कुछ जानता नहीं। आप कहते हो वैसे चित्त की हाज़िरी में ही भोजन कर रहा हूँ, फिर आगे आप जानो।' तब फिर चित्त ठिकाने पर रहेगा और बॉस को जो कहना हो वह भले ही कहे और बॉस भी प्रकृति द्वारा नचाया जा रहा एक लट्टू ही है न? स्वसत्ता में आया ही नहीं है न वह! पुरुष हुआ ही नहीं न! जगत् पूरा ही, परसत्ता में ही है न!

भोजन करते समय चित्त को हाज़िर रखना चाहिए, ताकि पता चले कि पकौड़ी में नमक ज़्यादा है या कम, मिर्च ज़्यादा है या कम!

ये तो चित्त की गैरहाज़िरी में भोजन करते हैं तो पता ही नहीं चलता कि चाय गुड़ की है या चीनी की! अरे, अभी जो संयोग मिला है उसे अच्छी तरह भोग। यह तो सेठ भोजन यहाँ पर करता है और कारखाना सात मील दूर हो, तो वहाँ पहुँच चुका होता है। जो मिलता है, उसे हम सलाम करते हैं न! सात मील दूर हो उसे तो कोई अक़्ल वाला भी सलाम नहीं करता।

यह तो पैसा-पैसा, तो कुत्ते की मौत मरोगे, कषायों में मरोगे! एक सेठ कहता है कि, 'एक बार तो हार्ट अटैक आ चुका है।' अरे, एक बार तो घंटी बज चुकी है, उसके बाद दूसरे और तीसरी घंटी पर तो गाड़ी रवाना हो जाएगी। हार्ट अटैक वह किसका फल है? भयंकर कुचारित्र का फल है, तो सीधा हो जा और ज्ञानी के पास जा। तेरे कृत्यों की अकेले में माफ़ी माँग, तब भी तू छूट जाएगा।

चित्त गैरहाज़िर हो तब भोजन मत करना और चित्त हाज़िर हो तभी भोजन करना जब बाहर ऐसा प्रोपेगैन्डा (प्रचार) होगा न, तभी से रोग कम होने लगेंगे।

जनक विदेही को जिन ज्ञानी से ज्ञान प्राप्त हुआ था, उन ज्ञानी के तपस्वी पुत्र को अहंकार हो गया कि, 'मैं कुछ हूँ।' उसे उतारने के लिए गुरुदेव ने पुत्र से कहा कि, 'तू कुछ उपदेश लेने के लिए जनक राजा के वहाँ जा।' वे मुनि तो गए राजा के वहाँ। गुरुदेव ने जनक राजा को पहले से ही सूचना दे दी थी। मुनि ने जब राजमहल में प्रवेश किया तब उन्होंने तो राज वैभव का भारी ठाठ देखा। जनक राजा सोने के हिंडोले पर बैठे हुए थे और दोनों तरफ रानियाँ बैठी थीं, रानियों के कंधों पर हाथ रखकर वे मस्ती में बैठे हुए थे। मुनि ने तो यह देखा और उन्हें मन में हुआ, 'इस विलासी पुरुष से क्या उपदेश लेना' फिर भी पिता जी की आज्ञा थी इसलिए कुछ बोले नहीं, चुपचाप जैसा राजा ने कहा वैसा करते गए। राजा ने भोजन के लिए बैठाया, सोने की थालियाँ और बत्तीस प्रकार के व्यंजन। मुनि तो आसन पर बैठ गए और ज़रा ऊपर नज़र गई, वहाँ तो दिल बैठ गया! 'अरे!

यह क्या? सिर पर घंट लटक रहा है और वह भी अब गिरा, तब गिरा हो रहा है!' राजा ने कला की थी, एक बड़ा घंट ठीक मुनि के सिर के ऊपर ही लटका दिया था और वह भी बिल्कुल बारीक, दिखे नहीं ऐसी पारदर्शक डोरी से बाँधा था। वे मुनि तो बेचारे अंदर ही अंदर घबरा गए, जैसे-तैसे भोजन किया। भोजन करते-करते राजा आग्रह कर रहे थे, लेकिन मुनि का चित्त भला भोजन में कैसे रहता? उनका चित्त तो उस घंट में ही लगा हुआ था कि 'अभी अगर गिर जाएगा तो मेरा क्या होगा?' भोजन करने के बाद राजा ने पान देते-देते पूछा, 'महाराज, भोजन कैसा लगा? कौन सा व्यंजन आपको सब से अधिक पसंद आया?' अब, मुनि तो थे साफ-साफ बोलने वाले। तपस्वियों में कपट-वपट का झंझट नहीं होता, होता है तो मात्र एक अहंकार का ही झंझट। उन्होंने तो जैसा था वैसा कह दिया कि, 'हे राजा, सच कहूँ आपसे? यह जो सिर पर घंट लटका हुआ था इसलिए मेरा चित्त तो वहीं पर भय से चिपका हुआ था और इसलिए मैंने क्या खाया वह भी मुझे मालूम नहीं।' तब जनक विदेही बोले, 'महाराज, भोजन करते समय आपका चित्त एब्सेन्ट था, उसी तरह हमारा चित्त संसार में निरंतर एब्सेन्ट ही रहता है! इस वैभव में हमारा चित्त रहता ही नहीं है। हम निरंतर अपने स्वरूप में ही रहते हैं!' ऐसे थे जनक विदेही!

जगत् विस्मृत किस प्रकार से होगा? उसी के लिए तो हम सब यहाँ सत्संग में इकट्ठे हुए हैं। यहाँ आपको जगत् आसानी से विस्मृत रहता है। एक क्षण भी जगत् विस्मृत हो सके, ऐसा है नहीं। ये बड़े-बड़े सेठ एक घंटा भी जगत् विस्मृत करने के लिए हज़ारों खर्च करने के लिए तैयार हैं। फिर भी जगत् विस्मृत हो सके ऐसा है नहीं। यह तो ऐसा है कि जिसे भूलने जाता है, वही आ धमकता है! अरे! सेठ अगर सामायिक करने बैठे हों और निश्चित करें कि 'फलाने को तो सामायिक के समय याद करना ही नहीं है', तो सब से पहले वही याद आता है! और यहाँ अपने यहाँ तो आसानी से जगत् विस्मृत रहता है। आप जब यहाँ पर बैठे होते हो, तो आपका चित्त घर पर या दुकान पर कितनी बार जाता है?

प्रश्नकर्ता : एक बार भी नहीं, दादा!

दादाश्री : यदि चित्त पास में ही रहे तो बहुत शक्ति बढ़ती है। हमें ध्यान नहीं रखना चाहिए कि चित्त कौन-कौन सी जगह पर कब-कब जाकर आ गया?

जिसका चित्त किसी भी जगह पर नहीं जाता, उसे नमस्कार। इन 'दादा' का चित्त एक क्षण भी आगे-पीछे नहीं होता, यही है मुक्ति! चित्त का बंधन छूटना और मुक्ति होनी, दोनों साथ में ही होते हैं।

अनंत में से एक चित्त

ये यहाँ सत्संग में कवि के पद गवाते हैं, वह किसलिए? कि उससे उतना समय चित्त 'एकचित्त' हो जाता है। पूरा जगत् अनंत चित्त में पड़ा हुआ है और साधु-सन्यासी अनेक चित्त में है। और आपको हमारी उपस्थिति में या फिर अपने ये भजन गा रहे हों, तब एकचित्त रहता है। एकचित्त तो किसी का हो ही नहीं पाता न! पूरी दुनिया चित्त को एकाग्र करने के लिए उठा-पटक कर रही है, लेकिन वह चित्त तो जब शुद्ध हो जाए, तभी एकाग्र हो पाएगा। 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तभी चित्त शुद्ध होता है।

व्यवहारिक चित्त तीन प्रकार के हैं :

(1) 'अनंत चित्त'- इसमें स्थिरता ही नहीं होती।

(2) 'अनेक चित्त'- इसमें स्थिरता होती है, इसलिए वह जिनालय या मंदिर में जाता है।

(3) 'एक चित्त' - ऐसा यदि हो जाए तब तो काम ही निकाल दे।

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या आत्मा ही परमात्मा है?

दादाश्री : जब 'आत्मा ही परमात्मा है' इस तरह का परमात्मा का अनुभव हो जाएगा तब वह परमात्मा है और शुद्धात्मा का अनुभव होगा, तो वह शुद्धात्मा है, और दुनिया के लोगों को मूढ़ात्मा का अनुभव

तो है ही न! ये मेरे चाचा, ये मेरी मौसी, ये मेरी सास की चाची के बेटे, उससे 'अनंत चित्त' हो गया, यह तो 'अनंत चित्त' हो चुका है, इसीलिए तो यह सब याद भी रहता है। इन रिश्तेदारों की पहचान में सतर्क रहते हैं और खुद कौन है उसकी पहचान ही नहीं रखता! यदि खुद की पहचान हो जाए तो काम ही हो गया!

'दादा' के स्वप्न आते हैं, वे तो तभी आते हैं जब 'एक चित्त' हो जाता है। संसार के लोग चित्त की तरफ नज़र तक नहीं करते। सिर्फ मन को ही खींचते रहते हैं। इस चित्त से तो संसार उत्पन्न हुआ है। लोगों के चित्त सब ओर बिखर चुके हैं।

प्रश्नकर्ता : चित्त किस तरह उत्पन्न हुआ?

दादाश्री : बुद्धि जो प्रकाश देती है, वह ज्ञेय को देखती है, वह अशुद्ध चित्त है, वह (चित्त) ज्ञेयाकार होकर ज्ञेय को देखता है। वह घर पर टेबल, कुर्सी उन सभी को एक्ज़ेक्ट देख सकता है, लेकिन वह शुद्धात्मा को नहीं देख सकता।

प्रश्नकर्ता : चित्त क्या कर्म के अधीन है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन यदि चित्त अटक (रेस्ट्रिक्ट) जाए तो काम हो जाएगा, लेकिन यदि चित्त चिपक गया तो फँस जाएगा। भले ही मन कितना भी मोड़ने का प्रयत्न करे, लेकिन चित्त वहीं चिपका रहता है। 'अनंत चित्त' तो हैं ही, उनमें से अनेक में आना, वह बहुत मुश्किल बात है और एक चित्त हो जाए तो काम हो जाए! अपना 'ज्ञान' है, इस वजह से एक चित्त की तरफ आ पाते हैं।

'अनंत चित्त' में से 'अनेक चित्त' में का मतलब क्या है कि हम गिन सकें कि चित्त यहाँ-यहाँ पर गया। ये अड़तालीस मिनट की सामायिक का मतलब क्या है कि उसके बाद चित्त की स्टेज बदल जाती है। आठ मिनट से लेकर अड़तालीस मिनट तक चित्त बंध जाता है। आठ मिनट से चित्त बंधन शुरू होता है। दूध से आइस्क्रीम बनती है तो पहले दूध जमता है, उससे आइस्क्रीम जमने की शुरूआत होती

है और फिर आइस्क्रीम बन जाती है, जम जाती है। ये 'अनंत' में से 'अनेक' में आए और यदि इन 'दादा' का स्वप्न आ जाए मतलब कि चित्त की 'रील' आ जाए तो काम ही हो जाए। और तब तो इन दादा के ग़ज़ब के दर्शन हो जाते हैं।

शुद्ध चित्त - अशुद्ध चित्त

प्रश्नकर्ता : चित्त को निज घर में किस तरह से मोड़ा जाए?

दादाश्री : चित्त शुद्ध हो जाए तभी निज घर में आता है। सब से पहली अशुद्धि क्या है? तो वह यह कि, 'मैं चंदूलाल हूँ, मैं जवान हूँ, मैं इसका पति हूँ।' यह सारा अशुद्ध-चित्त है। उस पर से तो यह समझ में आता है कि चित्त के परमाणु जगह-जगह बिखर गए हैं और आज लोगों के चित्त भी दो-चित्त हो चुके हैं! 'अनंत-चित्त' से भी आगे बढ़े तो दो-चित्त हो जाता है! इन दो-चित्त वालों को तो फिर सबकुछ दो-दो दिखता है। एक व्यक्ति मुझे कहता है कि, 'मैं चित्त-शुद्धि करवाने जाता हूँ।' कलाई वाले के पास जाओ तो वह कलाई कर देगा! लेकिन यह तो दो-चित्त वाले लोग और उनके वहाँ चित्त-शुद्धि करवाने जाता है, तेरा जो चित्त है न, वह उसे भी दो-चित्त कर देगा! उसके बदले तो जो है उसे रहने दे न! यह दो-चित्त वाला फिर कहेगा कि, 'मुझे तो ये दीये दो-दो दिख रहे हैं!' तब तो अरे, तेरा हो चुका कल्याण! यह एक है और दो कैसे दिख रहे हैं?

चित्त-शुद्धि का सब से अच्छा उपाय 'दादा' का प्रत्यक्ष सत्संग, और यहाँ तो निरंतर चित्त की शुद्धि होती ही रहती है। 'दादा' यहाँ पर हाज़िर हों और घर बैठे-बैठे चित्त-शुद्धि करे, तो वह ठीक नहीं है।

अशुद्ध चित्त किसलिए अशुद्ध है? 'स्व' को देख नहीं सकता, मात्र 'पर' को ही देख सकता है, जबकि शुद्ध चित्त 'स्व' और 'पर' दोनों को ही देख सकता है!

प्रश्नकर्ता : मन आज्ञा दे, तभी चित्त भटकता है?

दादाश्री : नहीं, सभी स्वतंत्र हैं। चित्त में विचार नहीं होते और

विचार चित्त नहीं है। यदि मन बाहर जाएगा तो व्यक्ति खत्म हो जाएगा। चित्त बाहर भटकता है।

प्रश्नकर्ता : चित्त क्यों भटकता है?

दादाश्री : चित्त खुद का सुख ढूँढता है। इन्द्रियाँ मन के अधिकार में हैं। चेतन शब्द चित्त पर से बना। चित्त यानी ज्ञान और दर्शन। आपको यहाँ सत्संग में बैठे-बैठे दुकान का टेबल धुंधला-सा दिखता है वह दर्शन कहलाता है, और स्पष्ट टेबल दिखे वह ज्ञान कहलाता है। उसे चित्त देखकर आता है। जब सामान्य भाव से दिखे तब चित्त दर्शनरूपी कहलाता है। जब विशेषभाव से दिखे, विस्तारपूर्वक दिखे, वह चित्त ज्ञानरूपी कहलाता है।

जिसका निदिध्यासन करे, उसी रूप हो जाता है। कोई ग्रेज्युएट हो और यदि वह खेत में जाकर बैल ही चलाए तो बैल जैसा हो जाता है, क्योंकि उसी का निदिध्यासन होता है। इसलिए जिसके संग में आया और उसका निदिध्यासन हो, तो उस रूप हो जाता है।

चित्त तो चैतन्य का अंश भाग है, वह तो चैतन्य का किल्लोल भाग है।

चिपकता है चित्त ही

प्रश्नकर्ता : चित्त की शक्ति क्या मन से अधिक होती है?

दादाश्री : मन इस शरीर से बाहर नहीं जा सकता। चित्त तो बाहर निकलता है और इस शरीर के अंदर भी काम करता है। पीछे कंधा दु:ख रहा हो तब वहाँ भी जाता है और जहाँ भेजना हो वहाँ पर भी जाता है। पैर पर मच्छर काटें तो भले ही काटें, चित्त को वहाँ से खींच लेंगे तो परेशानी नहीं होगी और हिसाब होगा तभी काटेंगे न? चित्त का स्वभाव कैसा है कि जिस जगह पर से उसे खींच लें तो उस जगह का ध्यान नहीं रहता। यह आत्मा तो सभी ओर रहता है, लेकिन चित्त खींच लें तो फोन हेड ऑफिस में नहीं भेजता। यह तो अगर चित्त

वहाँ पर रहे, तभी फोन हेड ऑफिस में आता है और फिर डी.एस.पी. को भेजता है। हाथ पर जहाँ मच्छर ने काटा हो, वहाँ पर जाता है! ये दो लाख रुपये आए वे भी मच्छर हैं और दो लाख गए वे भी मच्छर हैं!

किसी व्यक्ति को बहुत भूख लगी हो, तो क्या वह कपड़े की दुकान के सामने देखेगा? ना, वह तो मिठाई की दुकान के सामने ही देखेगा। भूखा व्यक्ति बाहर निकले तो पकौड़ियाँ देखता है। जिसे साड़ी की भूख हो, वह जब बाहर निकलती है तो जहाँ-तहाँ दुकानों में लटकी हुई साड़ियाँ देखती है। जब देह की भूख नहीं होती तब मन की भूख खड़ी होती है, दोनों नहीं हों तो वाणी की भूख खड़ी होती है। ये बोलते हैं न कि, 'उसे तो मैं कहे बगैर रहूँगा ही नहीं।' वही वाणी की भूख! जब घर पर खाना खा रहे हों, तब अगर भिखारी जाए तो बड़े-बूढ़े कहते हैं, 'अरे, ध्यान रखना, नज़र न लग जाए।' यह नज़र लगना यानी क्या? कि जिसकी भूख लगे उसमें चित्त चिपकता है, वह। इस स्त्री को किसी पुरुष की भूख हो तो उसका चित्त किसी पुरुष में चिपक जाता है और पुरुष को स्त्री की भूख हो तो उसका चित्त स्त्री में चिपक जाता है। इस तरह नज़र लगने से ही तो सारा बिगड़ा है!

छोटे बच्चे अगर सुंदर हों तो घर के लोग उसके चेहरे पर और कपाल पर काली बिंदी लगा देते हैं, ताकि किसी की नज़र न लगे। जो भूखे होंगे उनका चित्त तो चिपकेगा न? वे काली बिंदी इसलिए लगाते हैं ताकि उसकी नज़र काली बिंदी पर ही केन्द्रित हो जाए।

सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' को ही नज़र नहीं लगती, कोई नज़र गड़ाए, तब भी 'ज्ञानी पुरुष' उनमें तुरंत शुद्धात्मा ही देखते हैं। यह तो सारी टेलिपथी जैसी मशीनरी है, उसमें यदि आत्मा एकाकार हो जाए तो सब बिगड़ जाता है। यदि चित्त की निर्मलता अच्छी हो, तो एक बार पढ़ने से ही याद रह जाता है। पढ़ाई का हेतु तो चित्त की निर्मलता ही है।

चित्तशुद्धि ही है महत्वपूर्ण

यदि चित्त की हाज़िरी में पढ़ा हो, तभी वह याद रहता है। मैं

बचपन में चित्त की गैरहाज़िरी में पढ़ता था, इसलिए फेल हो जाता था? ना, फेल नहीं हुआ, लेकिन बेवकूफ कहलाया। ऐसे तो मैं ब्रिलियन्ट था। अध्यापक से कहा हुआ था, 'मास्टर साहब, ये पंद्रह साल इस एक भाषा को सीखने में निकाले, लेकिन यदि पंद्रह साल मैंने भगवान ढूँढने में निकाले होते, तो ज़रूर भगवान प्राप्त करके बैठा होता!' ये तो मेरे ज़िंदगी के अमूल्य साल सिर्फ एक भाषा सीखने में कि जो एक छोटा बच्चा भी जानता है, वह सीखने के पीछे निकाल दिए। लेकिन अध्यापक ऐसा समझते नहीं हैं न?

प्रश्नकर्ता : इन सब में – अंतःकरण में मुख्य चित्त ही है न? चित्त ही सभी का लीडर है न? चित्त ही सभी को खींच लाता है न? चित्त को काबू में करने की ज़रूरत है या मन को? ये लोग चित्त को भूलकर मन के पीछे क्यों पड़े हैं?

दादाश्री : आपकी बात सच है। ज्ञानियों ने भी चित्त को ही महत्व दिया है, लेकिन लोगों को तो चित्त का और मन का भान ही नहीं है न! इन्होंने तो चित्त को और मन को एक कर दिया है। चित्त ठिकाने पर नहीं रहता और मन पेम्फलेट दिखाता है, लेकिन भान नहीं है कि कौन सा चित्त है और कौन सा मन है?

सत्संग में चित्त हिलता नहीं है। चित्त तो रिलेटिव आत्मा है! चित्त ठिकाने पर रहे तो पूरा रिलेटिव आत्मा स्थिर हो जाता है और 'दादा' ने तो आपको रियल आत्मा दिया है! यह रियल आत्मा और रिलेटिव आत्मा दोनों आमने-सामने स्थिर बैठ जाएँ, तब फिर आपको मोक्ष ही बरतेगा न! इसीलिए तो सत्संग में बैठना है न! नहीं तो कितने ही बगीचे हैं, लेकिन सत्संग में बैठने से चित्त स्थिर रहता है और आत्मा स्थिर रहता है। यह तो संघबल है न? संघ के बिना तो कुछ भी नहीं हो पाता। संघबल चाहिए और जहाँ संघबल होता हैं, वहाँ पर मतभेद नहीं होता। इसलिए भगवान महावीर बहुत सारे व्यक्तियों का संघ करते थे। लोग जितने अधिक बढ़ते हैं उतना संघ बढ़ता है और उतना ही अधिक आत्मा स्थिर होता है। यदि तीन व्यक्ति हों तो

उतना संघबल और अधिक व्यक्ति हों तो संघबल अधिक। 'इस' सत्संग के एक घंटे की तो बहुत ग़ज़ब की कीमत है!

चित्त को ठिकाने रखने के लिए इन मंदिरों में घंट लगाते हैं! भगवान को आंगी किसलिए? श्रृंगार किसलिए? सुगंधित द्रव्य रखे, वे किसलिए? चित्त ठिकाने पर रहे, इसलिए। घंटा बजे तब बाहर का हो-हो, शोर-शराबा सुनाई नहीं देता, लेकिन अभी तो अगर घंट बज रहा हो तब भी ये अक़्ल वाले भगवान के दर्शन करते समय, साथ में अंदर चप्पल की भी फोटो खींच लेते हैं! अरे व्यवस्थित को तो देख न! उसका होगा तो ले जाएगा और ले जाएगा तो एक बार ले जाएगा, हमेशा तो नहीं ले जाएगा न? तो ले जाने दे न! हिसाब चुक जाएगा!

संसार रोग है, जितने समय तक रोग को भूल जाएँ, उतना रोग मिट जाता है ऐसा नियम है। यह तो जितनी बार चित्त जाता है उतनी बार रोग बढ़ता जाता है। इस जगत् को विस्मृत करने का साधन ही कहीं पर नहीं है न! सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही जगत् विस्मृत करने का साधन हैं।

रात को शुद्ध चित्त को जो पकड़ाएँ वही सारी रात चलता है और नींद भी आती है। हमें ऐसा बहुत बार होता है कि रात को विधि शुरू करते हैं तब बीच में कभी आँख लग जाती है तो फिर वापस आँख खुले तो जहाँ से बाकी थी वहीं से विधि शुरू हो जाती है। और यदि फिर से आँख लग जाए, तो फिर से वैसा ही होता है। तो सुबह विधि पूरी होती है। इस तरह सारी रात शुद्ध चित्त को जो भी पकड़ाएँ, वह सुबह तक चलता है।

चित्त के चमत्कार

प्रश्नकर्ता : पूजा करते समय मुझे एकाध क्षण तक बिजली चमकती है, वह क्या आत्मओजस है?

दादाश्री : वह लाइट तो चित्त का चमत्कार है। उसमें श्रद्धा बैठ जाए, तो वह स्थिरता लाता है। आत्मा की लाइट की कल्पना भी की

नहीं जा सकती, ऐसी है। मुझे कोई कहे कि, 'मुझे महावीर भगवान दिखते हैं।' तो मैं कहूँगा कि, 'यह तो बाहर देखी हुई मूर्ति है, वही दिखती है, लेकिन वह तो दृश्य है, उस दृश्य के द्रष्टा को खोज! दृष्टि को द्रष्टा में रख और ज्ञान को ज्ञाता में रख, तब जाकर काम होगा।'

प्रश्नकर्ता : अनाहद् नाद का क्या अर्थ है?

दादाश्री : इस शरीर में जहाँ कहीं भी स्पंदन होते हैं, वहाँ पर चित्त एकाग्र हो जाता है।

कुंडलिनी में भी वैसा ही करते हैं। उससे भी मोक्ष नहीं होता। ऐसे बहुत सारे स्टेशन होते हैं, अंतिम स्टेशन आए तब काम पूरा होता है। कुंडलिनी में सारे चित्त चमत्कार हैं, उसमें आत्मा का कुछ भी नहीं है। जैनों ने कहा है, 'आत्मज्ञान के बिना छुटकारा नहीं है।' वेदांतियों ने भी कहा है, 'आत्मज्ञान के बिना छुटकारा नहीं है।' अनाहद् नाद, वह तो नाद है और नाद तो पौद्‌गलिक है, उसमें आत्मा नहीं होता।

कुछ लोग कहते हैं कि, 'मुझे अंदर कृष्ण भगवान दिखाई देते हैं।' वहाँ आत्मा नहीं है, वह तो चित्त चमत्कार है, उस कृष्ण को देखने वाला आत्मा है। अंत में दृष्टि द्रष्टा में डालनी है, यह तो दृष्टि दृश्य में डालता है। यह अनाहद् नाद है और इन सब में दृष्टि दृश्य में डालता है। ज्ञान ज्ञाता में आए और दृष्टि द्रष्टा में आए तो काम हो जाएगा। कुछ कहते हैं कि, 'अंतर में कृष्ण भगवान के दर्शन होते हैं।' अरे, योगेश्वर कृष्ण के दर्शन अंतर में होते हैं? वह किस तरह से हो पाएगा? वह तो, जब दिखेंगे तभी न? ये तो दूसरे दिखते हैं, जैसे देखे होते हैं वैसे, फोटो वाले ही न!

'हम कौन हैं?' वह ज्ञान- जब 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह (ऐसे) ज्ञाता में आ जाए, उसके बाद फिर विकल्प नहीं रहते। जब तक ज्ञान, ज्ञाता में नहीं आ जाए तब तक विकल्प रहते हैं। दृष्टि द्रष्टा में नहीं आ जाती, तब तक 'संकल्प' रहता है!

अहंकार

यदि ट्रेन रुक जाए तब कोई पागल बोलता है, 'रेल्वे वाले नालायक हैं, डिसमिस कर देना चाहिए सभी को।' अरे, यह तू किसे बोल रहा है?! नौकरी वाले तो वीतराग होते हैं (!) और ट्रेन भी वीतराग होती है(!) लेकिन अहंकार अपनी भूमिका निभाए बगैर रहता ही नहीं न! हम सब इस नासमझी में से छूट गए! बाहर तो नासमझी का तूफान चला है। यदि गटर में पानी भर गया हो, तो सफाई वालों को न जाने कितनी गालियाँ देता है, कि 'गटर के ढक्कन नहीं खोलते और साफ नहीं करते।'

कहीं से घर पर दाल लाया हो और गले नहीं, तो व्यापारी को गालियाँ देता है और याद आ जाए तो किसान को भी गालियाँ देता है, ऐसे कितना ही बोल देता है। यदि उसे कहें कि, 'पड़ोसी से पूछकर आ, तो उसकी दाल गल चुकी होती है!' लेकिन ऐसा अटैक करने का स्वभाव हो गया है न! घर पर अच्छा भोजन बनाया हो तो सभी के घर जाकर कह आता है, वह अहंकार है। यह जो सभी पर अटैक करता है, वह भी अहंकार है। यह अहंकार तो बोलता है कि 'मैं कुछ हूँ।' उसे पूछें कि, 'तू क्या है?' तो वह कहता है, 'वह तो पता नहीं, लेकिन मैं कुछ हूँ!'

किसी के यहाँ पर भाव से चिवड़ा परोसा हो तो वह कहेगा, 'मुझे यह अच्छा नहीं लगता, मुझे नहीं चाहिए।' ऐसे चिढ़कर बोलता है। यही कुरूप अहंकार है। दिवाली के शुभ दिन पर उस चिवड़े के दो दाने मुँह में रख ले तो सामने वाले की भावना को ठेस नहीं लगेगी,

तब वह अहंकार सुंदर दिखेगा। हमें तो पोइज़न दें तो भी सामने वाले की भावना हो, सामने वाला भाव से दे रहा हो, तो वह पोइज़न भी पी लेंगे! लेकिन हमारे पास उसका मारण (तोड़) होता है!?

'अक्रम ज्ञानी' का मतलब क्या? कि अहंकार एकदम सुंदर होता है, कच्ची बस्ती में भी जाकर बैठते हैं और आपके साथ भी बैठते हैं, लेकिन कहीं भी कुरूप नहीं दिखते! सुंदर ही दिखते हैं! 'क्रमिक मार्ग' के ज्ञानी तो जो खुद से नीचे वाले होते हैं, उनके वहाँ नहीं जाते। कहते हैं, 'मैं अपना कर लूँगा, लेकिन वहाँ नहीं जाऊँगा।' वह अहंकार कुरूप होता है।

आपको तो यही देखना है कि अहंकार सुंदर लगता है न! 'दादा' को यहाँ पर आना हो तब भी उनका अहंकार कितना सुंदर दिखता है! आपका अहंकार, 'उस' अहंकार जैसा सुंदर दिखना चाहिए, तब दशा कुछ और ही होगी।

क्रम-अक्रम में अहंकार

क्रमिक मार्ग क्या है? तो यह कि, 'अहंकार को शुद्ध करो।' अहंकार विभाविक हो चुका है, उसे शुद्ध करना है।' सीढ़ी दर सीढ़ी उस अहंकार को शुद्ध करते हुए जाना है, और जब संपूर्ण शुद्ध हो जाएगा, तब कुछ काम होगा। विभाविक अहंकार में मान आता है, दंभ आता है, घमंड आता है, ये उसके प्रकार हैं। वह करता है सौ रुपये की नौकरी, लेकिन फिर लंबा कोट पहनकर सेठ बनकर घूमता है, तो लोग कहते हैं, 'दंभी की तरह घूम रहा है।' यह कैसा है? सियार, बाघ की खाल पहनकर घूमे, तो वह दंभी कहलाता है। जो घमंडी होता है, वह तो किसी को कुछ समझता ही नहीं। हर चीज़ में कहता है, 'उसमें क्या बात है? क्या है वह?' ऐसे सभी बात का घमंड रखता है और घर पर पत्नी से पूछें तो कहेगी कि, 'उनमें तो ज़रा भी बरकत नहीं है।' विभाविक अहंकार में तो तरह-तरह के अहंकार हैं। उन सभी को धोते रहना पड़ेगा। क्रमिक मार्ग में बहुत मुश्किलें आती हैं

और यदि रास्ते में केन्टीन वाला मिल जाए तो ग़ज़ब ही हो जाए। अपना अक्रम मार्ग ऐसा जोखिम वाला मार्ग नहीं है, सिक्युरिटी वाला मार्ग है, भले ही केन्टीन वाला सामने आए, लेकिन वही घबरा जाएगा, हमें उससे कोई परेशानी नहीं आएगी!

यहाँ अक्रम मार्ग में जो अहंकार रहता है वह निकाली अहंकार है, डिस्चार्ज होता हुआ अहंकार है, जबकि क्रमिक मार्ग में जो अहंकार रहता है, उसमें 'मुझे यह करना है, मुझे यह त्यागना है' ऐसा रहता है। इसलिए क्रमिक मार्ग का अहंकार वह कर्मचेतना है, उससे नया चार्ज होता जाता है और यहाँ अक्रम मार्ग में अहंकार, वह कर्मफल चेतना है, फिर भी वह नैमित्तिक है। क्रमिक मार्ग में अहंकार कर्म बंधवाता है क्योंकि वहाँ पर तो यह त्याग दिया और वह बाकी है, ऐसा रहा करता है। अब त्याग किया वह पहले के अहंकार से है, और वापस नए कर्म बाँधता जाता है। 'ज्ञानी पुरुष' तो, जिससे कर्म बंधते हैं, उसी को पूरा उड़ा देते हैं। यह तो कितना आसान है! सरल है! सहज है! और कोई वहाँ क्रमिक में गया न, तब तो बाल ही उड़ा देते हैं और यहाँ तो बाल-वाल सभी चलता है!

इस अहंकार ने तो सबकुछ बिगाड़ दिया है, और कुछ भी नहीं। ज्ञानी के अधीन रहें तो हल आ जाएगा। सयाना हुआ अहंकार खुद की होशियारी नहीं लगाता, जबकि पागल अहंकार तो कुरेदता है! इसलिए या तो बात को समझना पड़ेगा या फिर ज्ञानी के अधीन रहना पड़ेगा। पागल अहंकार में तो अधीन रहने की शक्ति नहीं होती, इसलिए तीस दिन तक अधीन रहता है और इकत्तीसवें दिन फेंक देता है यानी ये वृत्तियाँ कब आगे-पीछे हो जाएँ, वह कहा नहीं जा सकता। जितना अहंकार का रोग भारी उतनी ही मुश्किलें अधिक। अधीनता के सिवा और कोई रास्ता ही नहीं है न!

हमारा 'ज्ञान' प्राप्त करने के बाद अहंकार तो सभी में रहता है, लेकिन वह 'निकाली अहंकार' होता है। 'निकाली अहंकार' मतलब कैसा? कि जैसे मोड़ो वैसे मुड़ जाता है, पागलपन नहीं करता।

पागल अहंकार

इस पागल अहंकार से कहें कि, 'तुझे कहाँ मान मिला? कहाँ तान मिला? कौन से स्वाद मिले? किसलिए अहंकार करता है? तेरी कहाँ 1300 रानियाँ हैं? कहाँ बाग-बगीचे थे तेरे? यह क्या तूफान मचाया है? ऐसा क्या है कि ऐसे पागलपन कर रहा है? हे घनचक्कर अहंकार, तू तो पागल है!' उसे ऐसा कह दें, तो वह समझ जाएगा।

यह तो कहेगा, 'मैं कुछ हूँ', लेकिन किसमें है तू? उस अहंकार के प्रताप से तो दुःखी हुआ है। हम देखने जाएँ न - पहला *आणा* (गौन की रसम), दूसरा *आणा*, और आखिर में बारहवाँ *आणा* देखने जाएँ तो समझ में आ जाता है कि सिर्फ इस अहंकार ने ही दुःख दिया है! यह तो पागल अहंकार कहलाता है। जिसे लोग एक्सेप्ट नहीं करते और अहंकार खुद 'मैं कुछ हूँ' ऐसा मान बैठता है, वह पागल अहंकार कहलाता है, कुरूप अहंकार कहलाता है। चक्रवर्ती में अहंकार होता है, लेकिन जैसा मोड़ो वैसे मुड़ सकता है। लोग उस अहंकार को मान्य करते हैं, वह सयाना अहंकार कहलाता है, और यह तो सिर्फ पागल ही। इस पागल अहंकार से हम पूछें कि, 'आप कौन से कोने में शांति से सोए पड़े थे? ऐसा दुनिया में कौन है कि जो आपसे कहे कि, 'आओ, आओ, आपके बिना तो अच्छा नहीं लगता!' लेकिन इसे तो लोग कहेंगे कि, 'आपसे तो, पहले जो उजाला था, वह भी अंधेरा हो गया है।' ऐसे अपमान खाए हैं! अपमान का अंत ही नहीं आए इतने अपमान हुए हैं! इस अहंकार का क्या करना है? यह तो कुरूप अहंकार है, इसका क्या रक्षण करना? इसका क्या पक्ष लेना?

अहंकार तो सुंदर होना चाहिए, लोगों को पसंद आए वैसा होना चाहिए, मोड़ो वैसे मुड़ जाना चाहिए। इस अहंकार से पूछें कि, 'आपका बहीखाता दिखाओ कि आपको कहाँ पर मान मिला है? कहाँ-कहाँ अपमान मिले हैं? किस-किस तरह का सुख दिया? लोगों में आपकी कहाँ-कहाँ कीमत थी?' भाई के पास, बाप के पास यदि कीमत देखने जाएँ न तो चार आने भी कीमत नहीं होती! 'आप किसी के हृदय में

नहीं बैठे हैं', चार लोगों के हृदय में बैठे होते, तो भी अच्छा था। तो वह अहंकार पागल नहीं कहलाता, सुंदर कहलाता है। यह तो जहाँ जाए वहाँ पर हर कोई 'यह जाए तो अच्छा' ऐसा मन में रखते हैं, वही कुरूप अहंकार! कोई मुँह पर साफ-साफ नहीं बोलता। मन में कहेंगे कि 'हमें क्या? खुद अपने पाप से मरेगा।' सब अपने मतलब में ही होते हैं, सभी मतलबी ही होते हैं, सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही मुँह पर साफ कह देते हैं!

जिस अहंकार से पहली बार मिलने पर फूल मिलें, दूसरी बार फूल मिलें, तीसरी बार फूल, ऐसे हर बार फूल ही मिलें तो कहेंगे कि अहंकार सयाना है। लेकिन यह तो शायद पहले आणे में फूल मिलते हैं, लेकिन दूसरी, तीसरी और आठवीं बार में तो 'यू... गेट आउट यूज़लेस' कहते हैं। ऐसा अहंकार किस काम का?

यदि खुद की पोज़िशन टूट रही हो तो साथ में नहीं घूमता कि, 'मेरी क्या क़ीमत?' यह तो घनचक्कर अहंकार कहलाता है। हम में भी ज्ञान से पहले अहंकार था, लेकिन वह सयाना अहंकार, चार-पाँच के हृदय में स्थान था और चार गाड़ियाँ तो घर के पास खड़ी रहती थीं, फिर भी हमें वह अहंकार खटकता था कि, 'यह अहंकार जाए तो हमें पूरी दुनिया का राज्य मिले!' अहंकार तो सुंदर होना चाहिए। यदि देह सुंदर हो और अहंकार कुरूप हो तो किस काम का? देह कुरूप हो तो चलेगा, लेकिन अहंकार कुरूप नहीं चाहिए। कुछ तो चेहरे पर से ही बिल्कुल कुरूप दिखते हैं, लेकिन अहंकार इतना सुंदर लाए होते हैं तो लोग 'आओ साहब, आओ साहब' कहते हैं।

यह अहंकार किसलिए? उसे जीवित ही क्यों रखें? जिसने अनंत जन्मों तक मुश्किल में डाल दिया, वह तो पक्का शत्रु है। पूरी दुनिया का साम्राज्य छोड़कर, 'यह मेरा, यह तुम्हारा', वह किसलिए?

यह अहंकार तो पागल चीज़ कहलाती है, रास्ते में पड़ा हुआ हो, फिर भी नहीं लेना चाहिए! आत्मा में ही रहना चाहिए, आत्मा बनकर ही रहना चाहिए और पागल अहंकार खड़ा होने लगे तो चाँटा मारकर निकाल देना चाहिए।

जहाँ आत्मज्ञान, वहाँ घमंड नहीं

कवि ने लिखा है,

'आत्मज्ञान सरळ सीधुं, सहज थये छके नहीं।'

वीतराग का आत्मज्ञान यदि सहजरूप से हुआ हो, सच्चा ज्ञान हुआ हो तो घमंड नहीं चढ़ता है। वीतरागों का दिया हुआ आत्मा, यदि सिर्फ वही प्रकट हो जाए तो घमंड नहीं चढ़ता! बाकी, दूसरों के दिए हुए आत्मा से तो घमंड चढ़ जाता है और 'मैं हूँ, मैं हूँ' का कैफ़ रहा करता है, वह रात को नींद में भी नहीं उतरता! इसलिए भगवान ने कहा है कि, 'जिस ज्ञान से घमंड चढ़ जाए, जिस शास्त्र से घमंड चढ़ जाए, वह अज्ञान है।' हर एक व्यक्ति का आत्मज्ञान अलग-अलग होता है, लेकिन मात्र वीतराग भगवान का आत्मज्ञान ही ऐसा है जो कैफ़ नहीं चढ़ाता। वीतराग की वाणी कैफ़ उतार देती है। ये तो कहते हैं 'ऐसा करो, वैसा करो, वैराग्य करो, तप करो, त्याग करो।' उससे तो निरा कैफ़ चढ़ता है। वह तो देवगति के लिए काम का है, मोक्ष के लिए नहीं। हमारी वाणी से कैफ़ उतरता है और हमारे चरण का अंगूठा, वह वर्ल्ड में इगोइज़म को विलय करने का एक मात्र सॉल्वेन्ट है।

प्रश्नकर्ता : इगोइज़म विलय हो सकता है?

दादाश्री : हाँ, हमारी वाणी ही ऐसी है कि जिससे इगोइज़म का विलय हो जाता है। इस वाणी से तो क्रोध-मान-माया-लोभ सभी विलय हो जाते हैं। अहमदाबाद में एक सेठ आए थे, उन्होंने कहा कि, 'मेरा क्रोध ले लीजिए।' तो ले लिया हमने! 'ज्ञानी पुरुष' के पास सभी चीज़ें होती हैं, जिससे सभी कुछ विलय हो जाता है।

ये क्रोध-मान-माया-लोभ सब किससे खड़े हैं? किस आधार पर खड़े हैं? लोग कहते हैं न कि, 'मुझे गुस्सा आ रहा है।' अब यह 'मुझे हो रहा है', ऐसे आधार देता है, इसलिए ये चीज़ें टिकी रहती हैं। 'ज्ञानी पुरुष' आधार हटा देते हैं, तो ये सब विलय हो जाते हैं।

धीरे-धीरे क्रोध को कम करने जाएँ तो, हो सके वैसा नहीं है और कदाचित् क्रोध कम हो भी जाए तो फिर दूसरी तरफ मान बढ़ जाता है! यानी यह तो कैसा है कि खुद का भान नाम मात्र को भी नहीं है और सबकुछ सिर पर लेकर घूमते हैं! यह तो 'खुद के' भान के बगैर ही पूरा व्यवहार निभ रहा है, थोड़ा सा भी भान नहीं है।

सुखी होने की तीन चाबियाँ

शोर्टकट में कहना हो तो आरोपित भाव, 'मैं चंदूलाल हूँ', वह इगोइज़म भाव है। यदि सांसारिक सुख चाहिए तो इस इगोइज़म का पॉज़िटिव उपयोग कर। इसमें नेगेटिव मत डालना और तुझे दुःख ही चाहिए तो नेगेटिव अहंकार रखना और सुख-दुःख मिक्सचर चाहिए तो दोनों इकट्ठे कर! और यदि तुझे मोक्ष में ही जाना है तो आरोपित भाव से मुक्त हो जा, स्वभाव भाव में आ जा! इन तीन वाक्यों पर पूरा वर्ल्ड चल रहा है। ये तीन वाक्य समझ लें और उनके अनुसार करना शुरू कर दें तो सभी धर्म उसमें आ गए!

ये तीन वाक्य हैं, (1) सुखी होने के लिए पॉज़िटिव अहंकार। किसी को किंचित्मात्र भी अपने से दुःख नहीं हो, ऐसा अहंकार, वह पॉज़िटिव इगोइज़म है (2) दुःखी होने के लिए नेगेटिव अहंकार। खुद का थोड़ा सा भी अपमान हो जाए तो मन में बैर रखता है और जाकर पुलिस वाले से कह आता है, 'उसने घर में तेल के डिब्बे जमा करके रखे हैं।' अरे, तेरा बैर है, इसलिए ऐसा किया? उसे किसलिए पुलिस में पकड़वाया? बैर का बदला लेने के लिए! यह नेगेटिव अहंकार (3) मोक्ष में जाना हो तो 'आरोपित भाव' से मुक्त हो जा।

नेगेटिव अहंकार बहुत बुरा अहंकार कहलाता है। किसी को जेल में डलवाने को घूमता है, तभी से खुद के लिए जेल खड़ी हो गई! अपने को कैसा होना चाहिए कि निमित्त तो, जो भी आए उसे जमा कर लेना चाहिए, क्योंकि अपनी पिछली भूलें हैं, इसीलिए हमें कोई गालियाँ दे तो हमें जमा कर लेनी चाहिए, जमा करने के बाद फिर से

उसके साथ व्यापार मत करना। यदि तुझे सामने वाले की गाली पुसाती हो तो व्यापार जारी रखना और सामने दूसरी दो दे देना, लेकिन यदि सामने वाले की गाली नहीं पुसाती हो तो तुझे उसके साथ व्यापार बंद कर देना चाहिए।

तुझे अगर ऐसा लगता है कि 'आओ साहब, आओ साहब' कहने से उसके प्रति स्पंदन अच्छे पड़ेंगे तो वैसा करना। आप्तवाणी-1 में लिखा है, उसी तरह बावड़ी में प्रोजेक्ट बनाना चाहिए। बावड़ी में जाकर कहना कि, 'तू चोर है' तो वह वापस कहेगी कि, 'तू चोर है।' और यदि तुझे ऐसा पसंद नहीं हो तो तू बोल न कि, 'तू राजा है, तू राजा है।' तो वह भी बोलेगी कि, 'तू राजा है, तू राजा है।' ऐसी यह दुनिया है!

तेरा *ऊपरी* कोई है ही नहीं। किसी भी व्यक्ति को गारन्टी बॉन्ड चाहिए तो मैं लिख देता हूँ कि, 'जैसे तेरा कोई *ऊपरी* है ही नहीं, वैसे ही कोई अन्डरहैन्ड भी नहीं है।' किसी जीव का कोई *ऊपरी* है ही नहीं। किसी जीव में कोई दखल दे सके ऐसा कोई जन्मा ही नहीं, थोड़ी सी भी दखल कर सके ऐसा कोई जन्मा ही नहीं है। फिर भी यह दुनिया कितनी पज़लसम हो गई है! तेरा *ऊपरी* कौन है? तेरे ब्लंडर्स और मिस्टेक्स, ये दो ही तेरे *ऊपरी* हैं। ये ब्लंडर्स कौन से हैं? जहाँ 'खुद' नहीं है, वहाँ आरोप करता है कि 'मैं चंदूलाल हूँ', वह ब्लंडर है। उस ब्लंडर के जाने के बाद क्या रहता है? सामने वाला गालियाँ देने आए तो हम नहीं समझ जाएँ कि यह अपनी पहले की मिस्टेक है? इसलिए हमें उसका समभाव से *निकाल* करना है।

फर्स्ट क्लास चाय बनाकर दी हो, लेकिन पहले मिठाई खाकर फिर चाय पीए तो फिर क्या होगा? चाय फीकी लगेगी। अरे चाय में चीनी कम नहीं थी। वह तो तुझ पर असर है पहले का, किसी मिठाई का; यानी कि इन असरों से कोई व्यक्ति मुक्त नहीं हो सकता, लेकिन इसका किसी को भान ही नहीं है न!

अणुव्रत-महाव्रत

दादाश्री : आप कौन हो?

प्रश्नकर्ता : जैन हैं।

दादाश्री : जैन हो तो जैनों में तो कुछ जानना आपको बाकी ही नहीं रहा न?

प्रश्नकर्ता : जब तक देह है, तब तक तो कुछ न कुछ जानना ही पड़ेगा न?

दादाश्री : इस मोक्षमार्ग में तो आपके कितने मील पार हो चुके हैं और कितने बाकी रहे, वह तो आपके लक्ष्य में होगा न? कुछ दूर तक तो चले ही होंगे न, तो कुछ मील तो कम हुए होंगे न?

प्रश्नकर्ता : कम हुए होंगे न।

दादाश्री : कितने मील कम हो गए होंगे?

प्रश्नकर्ता : वह कैसे कह सकता हूँ? मैं अज्ञानी हूँ, मुझे कैसे पता चलेगा?

दादाश्री : जितने महाव्रत आए उतने मील पार किए! महाव्रत या फिर अणुव्रत हो, यदि महाव्रत नहीं हो और अणुव्रत हो तो उतने मील पार किए। सच्चे दिल से अणुव्रत में हो तो उतने मील कम हुए, क्योंकि चोरी नहीं करने का अणुव्रत हो तब एक तरफ लोभ भी होता

है, यानी कि ज़रूरत भी है और दूसरी तरफ अणुव्रत का पालन करता है यानी कि अणुव्रत का पालन करते-करते लोभ का भी ध्यान रखा न! इसलिए जितने अणुव्रत आए हैं उतने मील पार किए।

'हम में' सभी महाव्रत होते हैं। 'हम' ये सब खा रहे हैं, पी रहे हैं, संसार में रह रहे हैं, फिर भी हम में संपूर्ण रूप से पाँचों महाव्रत हैं। जितने अणुव्रत बरतते हैं उतना चले और जब तक संपूर्ण महाव्रत तक नहीं पहुँच जाते तब तक तो चलना पड़ेगा न? तब जाकर आत्मा की कुछ झलक मिलेगी। आत्मशक्ति की झलक पाँच महाव्रत पूरे होने के बाद में मिलेगी। जब पाँच महाव्रत पूरे हो जाते हैं, तब सिर्फ प्रत्याख्यानी कषाय ही बाकी रहते हैं। अन्य सभी कषाय हल्के हो जाएँ, खत्म हो जाएँ, तब उसे भगवान ने प्रत्याख्यान आवरण कहा है। हम लोग उसे क्या कहते हैं? 'मन-वचन-काया की आदतों का स्वभाव' कहते हैं। जितना विलय हो गया उतना स्वभाव गया, और बाकी का बच गया। इस प्रत्याख्यान आवरण के लिए क्या कहते हैं कि 'पच्चखाण (प्रत्याख्यान) बहुत सारे किए फिर भी वह चीज़ जाती नहीं है। उसका आवरण रह गया है। इसलिए उसके, पच्चखाण करने ही पड़ेंगे', वैसे एकाध दोष होंगे या दो होंगे, लेकिन पूरी ज़िंदगी के दोष तो नहीं रहे होंगे न? समकित अलग चीज़ है। तप, त्याग में समकित जैसी चीज़ है ही नहीं। समकित तो इस महाव्रत में है, महाव्रत बरते वह!

अब ये सब त्यागी क्या व्रत का पालन नहीं करते? करते हैं, लेकिन मन खुला रहता है न? और मन खुला रहता है इसलिए उनके खुले कषाय दिखते ही हैं। जब खुले कषाय नहीं दिखें, तब आप समझना कि ये प्रत्याख्यानावरण में है! प्रत्याख्यानावरण कषाय यानी खुले तौर पर कषाय नहीं दिखते। कषाय इतने अधिक पतले हो चुके होते हैं कि वे होने के बावजूद भी दिखते नहीं हैं, लेकिन उसे खुद को फल देते हैं। यानी कि उसमें खुद में कषाय हाज़िर तो रहते ही हैं। वे उसे खुद को फल देते हैं लेकिन दूसरों को नहीं दिखते!

त्यागियों के कषाय जो बाहर निकल जाते हैं न, ऐसे नहीं होने चाहिए, लेकिन वे बाहर निकलते हुए दिखते हैं उससे ऐसा समझ में आता है कि उनमें महाव्रत तो नहीं है, लेकिन अणुव्रत का भी कोई ठिकाना नहीं दिखता! क्योंकि अणुव्रत तो कब कहलाता है कि आचार्य महाराज से झूठ नहीं बोला जा सके। यह तो शिष्य महाराज से झूठ बोलता है और महाराज भी बोलते हैं। तो फिर सत्य का अणुव्रत कहाँ रहा? महाव्रत तो गए वीतरागों के पास, लेकिन अणुव्रत भी कहाँ रहे हैं आज? वीतराग कहते हैं कि, 'तेरा नुकसान तुझे होगा, हमें तो नुकसान होने वाला है नहीं।' वीतरागों को नुकसान होता है क्या? नुकसान यदि होता है तो उनका होता है जो भगवान का कहा नहीं मानते। सभी के मुँह पर अरंडी का तेल नहीं दिखता? आनंद गया कहाँ? आत्मा है तो आनंद भी होना चाहिए न?

यह हम किसी की निंदा नहीं कर रहे हैं, अपने यहाँ पर निंदा है ही नहीं। हम तो सही बात समझा रहे हैं, असल हकीकत समझा रहे हैं, जो कोई भी मेरे पास से जाने और कहे कि, 'आपकी बात सच है।' तब तो उसका काम निकल जाएगा, मोक्षमार्ग जल्दी से मिल जाएगा! लेकिन यदि वह कहे कि, 'आपकी यह बात गलत है।' तब फिर तेरा भटकना तो है ही न! हमें क्या? तुझे यदि चार गालियाँ देनी हों तो चार गालियाँ दे, हमें हर्ज नहीं है। क्योंकि तुझे नहीं पुसाए तो बोल लेकिन उसमें हर्ज नहीं है अपने को, लेकिन हमें सही बात कहनी है कि, 'यह जोखिमदारी तू ले बैठा है। हे भाई, तू आगे जाएगा तो तू गहरी खाई में लुढ़क जाएगा', ऐसे हम सावधान कर रहे हैं। अब तुझे यदि अनुकूल आए तो सुन और नहीं तो चार गालियाँ देकर आगे चलता बन!

अब वीतराग ऐसा नहीं कहते थे! हम तो खटपटिया हैं इसलिए ऐसा कहते हैं कि, 'भाई, आगे खाई में लुढ़क जाएगा।' अब वीतराग हमें कहते हैं कि, 'आपको यह क्या पीड़ा है?' तो हमें ऐसा होता है कि, 'अरे, ये लुढ़क गए तो फिर इनका कब ठिकाना पड़ेगा?' हमारा

भाव ही ऐसा है, इच्छा ही ऐसी हो गई है कि कोई लुढ़कना मत और इसमें से कुछ हल निकालो। हमें मोक्षमार्ग मिल गया है तो हम तुम्हें साथ में ले जाएँगे, तुम्हारे साथ आधा घंटा बैठेंगे लेकिन फिर तुम्हें हम वापस साथ लेकर जाएँगे।

भगवान ने क्या कहा है कि, 'पूरा जगत् मोक्षमार्ग की तरफ ही बढ़ रहा है!' यानी कि किसी उल्टे मार्ग पर नहीं जा रहा है लेकिन मोक्षमार्ग पर जाने के लिए यानी कि अहमदाबाद जाने के लिए यहाँ मुंबई से बैंगलोर जाए तो क्या दशा होगी? स्टेशन आया, लेकिन कौन सा आया? तब कहे, 'बैंगलोर।' 'तो अहमदाबाद कब आएगा?' तब कहे कि, 'अहमदाबाद इस तरफ नहीं है, उस तरफ है।' अत: इस प्रकार से मोक्षमार्ग में उल्टे जा रहे हैं। मोक्षमार्ग ऐसा नहीं है, मोक्षमार्ग में तो कष्ट ही नहीं होते। जहाँ कष्ट है, वहाँ मोक्ष नहीं है, जहाँ मोक्ष है वहाँ कष्ट नहीं है! कष्ट को तो भगवान ने हठाग्रह कहा है। अब फिर आजकल के ये मोक्षमार्ग में जाने वाले कहते क्या हैं कि, 'कष्ट तो भगवान ने भी उठाए!' अरे, भगवान को क्यों बदनाम करते हो? आप अपना जो कर रहे हो, वह करते रहो, कष्ट! उसमें भगवान को क्यों बदमान कर रहे हो? भगवान क्या ऐसे होंगे? ये 'दादा' बिल्कुल कष्ट नहीं उठाते तो महावीर भगवान किसलिए कष्ट उठाते? ज्ञानियों को कष्ट होता ही नहीं, कहते हैं कि, 'भगवान ने त्याग किया था।' अरे, भगवान ने तो तीस साल की उम्र में बेटी का जन्म होने के बाद त्याग किया था, और वह भी कहीं पत्नी और बच्चों का तिरस्कार करके नहीं किया था। बड़े भाई के पास जब भगवान आज्ञा लेने गए, तब भाई ने ऐसा कहा, 'दो साल बाद में लेना।' भगवान ने दो साल बाद त्याग लिया और उसमें भी पत्नी की राज़ीखुशी-सम्मति से लिया था। भगवान ने त्याग किया नहीं था, उन्हें त्याग बरता था क्योंकि भगवान महाव्रत में थे। महाव्रत अर्थात् जो बरते वह। त्याग किया हो तो वह तो व्रत भी नहीं माना जाता! त्याग करना और बरतना, दोनों अलग हैं। जिसे त्याग बरता हुआ होता है, उसे खुद को यह याद भी नहीं होता कि किस चीज़ का त्याग किया है!

त्याग करने वाले त्यागी तो सभी गिनकर बता देते हैं, 'तीन बच्चे, पत्नी, बड़े-बड़े आलीशान घर, बंगले, बेहिसाब ज़ायदाद छोड़कर आए हैं', ऐसा सब उन्हें याद रहता है, भूलते नहीं हैं। और त्याग बरता किसे कहा जाता है? सहजरूप से भूल जाते हैं! उसे भगवान ने व्रत कहा है, त्याग नहीं कहा। इसलिए अणुव्रत और महाव्रत, उसमें अणुव्रत जैनों के लिए कहा है, 'जितना आपको सहज स्वभाव से बरतता है उतना अणुव्रत में आ चुका है।' त्याग का तो कैफ़ चढ़ता है और याद रहा करता है, 'मैंने इतना त्याग किया, ऐसे त्याग किया, वैसे त्याग किया।' बात को इस तरह समझेंगे तो हल आएगा। मुझे कुछ याद ही नहीं रहता, रुपये तो मुझे याद ही नहीं आते। लक्ष्मी और विषय का हमें विचार ही नहीं आता, लेकिन लोगों के मानने में यह कैसे आएगा?

यह हिसाब ही अलग है! तेरा जो गुणा है, उसमें तेरी रकम परमानेन्ट रकम है, और दूसरी टेम्परेरी रकम से उसे गुणा करने जाता है न! अब मेरी तो दोनों ही परमानेन्ट रकम हैं, इसलिए मेरा गुणा चलता रहता है और तू गुणा करने जाता है तो टेम्परेरी रकम उड़ जाती है, दूसरी टेम्परेरी रकम रखकर गुणा करने जाए तब तक वह पहले वाली टेम्परेरी रकम उड़ जाती है, अतः तेरा गुणा कभी भी पूरा होने वाला नहीं है, फिर सीधा चल न!

महाव्रत आपको समझ में आया? बरते, वह! बरते मतलब याद भी नहीं रहे, सहज त्याग। अभी आपको बीड़ी का त्याग बरतता हो तो बीड़ी आपको याद भी नहीं आएगी और जिसने त्याग किया है उसे याद आता रहता है कि, 'मैंने बीड़ी का त्याग किया है।' यानी बरते हुए त्याग की तो बात ही अलग है! उस त्याग का अहंकार नहीं होता! लेकिन कुछ लोग त्याग का पागल अहंकार करते हैं। अरे, त्याग बरत रहा है, तो सीधा रह न! त्याग के बारे में क्यों गाता रहता है? उसका अहंकार किसलिए करता है? बरता हुआ त्याग तो बहुत अच्छा कहलाता है। जितने लफड़े कम हुए उतनी *उपाधि* कम हो गई न! और अपना

मोक्षमार्ग कैसा है? अक्रम मार्ग है न इसलिए पहले के जो लफड़े हैं, उन्हें रहने देना है, नए खड़े नहीं करने हैं, और पुराने निकाल देने हैं, वे भी जब अपने आप निकलेंगे, तब चले जाएँगे!

एक महाराज ने शोध करके खोज निकाला कि, 'अक्रम का मतलब तो अक्कर्मी (अभागा) ही है न?' हाँ, खोज तो अच्छी की, यह भी साइन्टिस्ट का काम है न! इतनी शोध करना आ गया, वह भी साइन्टिस्ट का ही काम है न! नहीं तो ऐसी शोध करनी आती ही नहीं न। अक्कर्मी मतलब जिनके कर्म नहीं बंधते, हमें ऐसा कह रहे हैं। इसका मतलब हमारे लिए वे सीधा बोल रहे हैं न! गालियाँ थोड़े ही दे रहे हैं?

ये सभी पंचमहाव्रतधारी आरोपित भाव वाले हैं। पंचमहाव्रत सचमुच में हैं या आरोपित हैं, ऐसा कुछ सोचा ही नहीं न! आप खुद ही आरोपित हो, फिर महाव्रत भी आरोपित ही होंगे न?! तब वह कहता है कि, 'ऐसा तो हमने सोचा ही नहीं था।' आपने यदि कुछ सोचा नहीं है तो उससे भगवान महावीर को छला नहीं जा सकता, न ही इस मोक्षमार्ग को छला जा सकता है! भगवान क्या ऐसे हैं कि धोखा खा जाएँ? कुछ लोग कहते हैं कि, 'हम पंचमहाव्रतधारी हैं', लेकिन ऐसा तो लोग मान लेंगे, क्योंकि लोगों को लक्ष्मी की पड़ी है, विषयों की पड़ी है, अन्य किसी चीज़ की पड़ी ही नहीं है। इस तरफ महाव्रत है या अणुव्रत है या आरोपित भाव है, ऐसी किसी चीज़ का कुछ भान ही नहीं है! अपने जैसों को पता होता है, तब भी वे बोलते नहीं हैं, क्योंकि लोकविरुद्ध बोलना भी गुनाह है।

लोकविरुद्ध मतलब क्या? कि यहाँ पर जैसा व्यवहार चलता है, उससे विरुद्ध हो, वैसा। चोरों का गाँव हो, वहाँ पर हम कहें कि, 'पंच रखो', तो फिर गुनाह ही है न? चोरों के गाँव में आपकी जेब कट गई, अब आप कहो कि, 'मेरी जेब काट गया।' तब लोग कहेंगे कि, 'हमें क्या पता? आप पंच बिठाओ।' लेकिन पंच भी चोर के चोर ही हैं न? यानी कि लोकविरुद्ध नहीं बोलना चाहिए, लेकिन अगर

कोई हम से पूछे तो जवाब देना चाहिए कि, 'ये आरोपित पंचमहाव्रतधारी हैं। जैसे ये 'भगवान महावीर' अभी मोक्ष दे सकते हैं, वैसे ही ये पंचमहाव्रतधारी फल दे सकते हैं (!)' कुछ नहीं मिल रहा हो, तो सड़े हुए गेहूँ मिलें तो सड़े हुए ला न! रोटी तो खानी पड़ेगी न! नहीं तो मर जाएँगे। इसलिए ये सब सड़े हुए गेहूँ खाते हैं, खाना ही पड़ता है न, कोई रास्ता ही नहीं है न!

ये पंचमहाव्रतधारी आरोपित भाव वाले हैं, ऐसा जानते ही नहीं थे न? 'ज्ञानी पुरुष' जब ऐसा विवेचन करें, तब पता चलता है। भगवान ने मना किया था कि, 'आरोपित, पंचमहाव्रतधारी मत रहना। आरोपित भाव से सिर्फ तीर्थंकरों की मूर्ति ही रखना और शास्त्रों को आरोपित भाव से रखना। आरोपित भाव से पंचमहाव्रतधारी शब्द को बिगाड़ना मत। इसके बजाय तो आप ऐसा कहना, 'परिग्रह के त्यागी हैं और अन्य सभी प्रकार के त्याग के अभ्यासी हैं।' उसे व्रत नहीं कह सकते! परिग्रह का महाव्रत तो अति-अति उच्च कहलाता है! 'दादा' अपरिग्रही हैं। वे संपूर्ण अपरिग्रही हैं। एक भी परिग्रह उनके लक्ष्य में नहीं रहता है। वह खो गया है या साबुत है, ऐसा भी उनके लक्ष्य में नहीं रहता, और इन्हें तो चार ही परिग्रह होते हैं, दो कपड़े होते हैं, और भिक्षा के लिए एक लोटा होता है, एक माला होती है और एक चिमटा होता है। उसमें से लोटा यदि टूट जाए तो ग़ज़ब हो जाए! या फिर वह उसकी जगह पर नहीं हो तो कहेंगे 'लोटा कहाँ गया?'। यानी कि इतना परिग्रह है, वह उसके लक्ष्य में रहता है। अब परिग्रह इतना ही है, फिर भी लक्ष्य में है, और 'हमें' परिग्रह है फिर भी लक्ष्य में नहीं है। इसलिए 'हमें' अपरिग्रही कहा है। अपने महात्माओं को शुद्धात्मा लक्ष्य में रहता है, इसलिए परिग्रह लेते हैं, देते हैं, फिर भी वे अपरिग्रही कहलाते हैं, क्योंकि परिग्रह का लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य शुद्धात्मा का है! या तो स्वरूप का लक्ष्य रहता है या फिर संसार का लक्ष्य रहता है, दोनों में से एक ही लक्ष्य रहता है, वहाँ रहा तो यहाँ नहीं है, और यहाँ है तो वहाँ नहीं है। यह तो विज्ञान है!

संसार में कुछ लोग स्थूल चोरी नहीं करते, इसे भगवान क्या कहते हैं? इसे त्याग नहीं कहते। अत: ऐसा कहना कि उसने स्थूल चोरी का त्याग किया है, वह गलत बात है। भगवान कहते हैं, 'वह तो व्रत है तेरा।' बरते वह व्रत। जिसमें मेरापन नहीं है और 'मैं त्याग कर रहा हूँ।' ऐसा भान नहीं है और सहज ही बरतता है, वह व्रत कहलाता है। इन जैनों को भगवान ने अणुव्रत क्यों कहा है? तब कहते हैं कि, 'दूसरे लोगों को, फॉरेन वालों को भी अणुव्रत होता है और यहाँ अन्य धर्मों में भी अणुव्रत होता है, लेकिन उन पर वीतरागों की मुहर नहीं लगी है!' 'यह व्रत वीतरागों का बताया हुआ है।' इस तरह भान में आने के बाद, वह व्रत उन्हें बरतता है इसलिए यह अणुव्रत कहलाता है। और यह वीतरागों को मान्य है। वास्तव में वह भी चोरी नहीं करता, लेकिन वह सहजभाव से चोरी नहीं करता है। यहाँ तो ऐसा सहजभाव से बरतता है कि 'मुझसे चोरी नहीं हो।' फिर भी अणुव्रत क्यों कहते हैं? यह चोरी नहीं करता, लेकिन मन से बहुत चोरियाँ कर लेता है, इसलिए अणुव्रत कहा है और महाव्रत किसे कहते हैं? मन-वचन-काया तीनों से ही चोरी नहीं हो, उसे महाव्रत कहते है!

प्रश्नकर्ता : इच्छा नहीं हो और संयोगवश चोरी हो जाए तो?

दादाश्री : संयोगवश चोरी हो जाए, तो उसके लिए खास गुनहगार नहीं माना जाता और संयोगवश हुआ उसका जो बाह्यफल उसे मिला, वह इनाम कहलाता है, बाह्यफल तो मिलता है। कोई बहुत पुण्यशाली हो, तो उसे बाह्यफल नहीं भी मिलता वर्ना पूरी ज़िंदगी चोरी नहीं की हो, लेकिन संयोगवश एकाध बार चोरी करे तो भी बेचारा पकड़ा जाता है! जब बाह्यफल मिलता है, तब ऐसा साबित हो जाता है कि नीयत बहुत खराब थी! फिर भी अगर संयोगाधीन कोई किसी भी प्रकार का गुनाह करता है, तो उसे हम गुनहगार मानते ही नहीं हैं। यह संयोगाधीन है और जान-बूझकर करना तो स्वभाव में है। स्वभाव में और संयोगाधीन में बहुत फर्क है। जिसके स्वभाव में चोरी करना है, उसकी तो दृष्टि ही उस तरफ जाती रहती है, घूमती रहती

है और कहीं से भी उठाए बगैर रहता ही नहीं। अपने साथ बातें कर रहा हो और उसकी दृष्टि 'कहाँ से उठाऊँ' उसी में होती है, जबकि संयोगाधीन गुनहगार नहीं कहलाता। संयोगाधीन तो राजा को भी चोरी करनी पड़ सकती है। व्रत और महाव्रत समझा तू? सफेद कपड़े पहन लिए, तो व्रत नहीं कहलाता। मन-वचन-काया से चोरी नहीं की उसे अस्तेय महाव्रत कहा जाता है। फिर वह साधु हो या गृहस्थ, त्यागी हो या गृहस्थ लिंग हो, वे सभी संसारी ही हैं।

अच्छी ऊँची जाति में चोरी नहीं होती, दगा नहीं देते लेकिन ये लोग तो, यों ही छोटी सी बात में भी बहुत झूठ बोलते हैं लेकिन बड़ी बातों में नहीं बोलते होंगे, लेकिन अभी तो सारा बिगड़ गया है न? महाव्रत भी गल गए हैं, सड़ गए हैं! अणुव्रत भी सड़ गए हैं! थे तो अच्छे, लेकिन सड़ गए तो क्या हो सकता है?! फिर भी यह संयोगाधीन है। अभी पूरा हिन्दुस्तान ही बिगड़ गया है न! वर्ना हिन्दुस्तान ऐसा नहीं होना चाहिए और यह बिगड़ गया है, वह भी संयोगाधीन बिगड़ा है, इसलिए गुनहगार नहीं माना जाएगा।

आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान

आलोचना यानी जो कुछ भी दोष हो चुके हों, उनका आप्तजन के सामने, 'ज्ञानी पुरुष' के सामने 'जैसा है वैसा' वर्णन करना! आलोचना करने से सभी दोष चले जाते हैं, सिर्फ आलोचना से मोक्ष है। एक व्यक्ति ने जेब काटी हो और वह मेरे पास आकर आलोचना करे और मैं उसकी विधि कर दूँ तो सब चला जाएगा, वह हल्का हो जाएगा! जहाँ संपूर्ण विश्वास हो वहाँ पर आलोचना की जाती है, वर्ना यह जगत् तो ऐसा है कि दुरुपयोग करे। अपने पर किसी को विश्वास हो तो उसे सौ प्रतिशत विश्वास हो जाए, ऐसा करना चाहिए, उससे विश्वासघात नहीं करना चाहिए। असल में आप्तजन, 'ज्ञानी पुरुष' के सामने ही आलोचना की जा सकती है। भगवान ने आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान पर बहुत भार दिया है।

प्रत्याख्यान मतलब हो चुके दोष फिर से नहीं हों, उसके लिए दृढ़ निर्णय-निश्चय करना।

आज से पंद्रह साल पहले की बात है। मामा की पोल में, बरामदे में हम पाँच-छः लोग बैठकर बातें कर रहे थे, इतने में अठहत्तर साल के एक वृद्ध, घबराते हुए हाथ में डिब्बी लेकर जिनालय जा रहे थे, उनसे मैंने पूछा, 'क्यों चाचा, कहाँ जा रहे हो ऐसे?' वे बोले, 'भाई, *पड़कमणुं* करने।' मैंने उनसे पूछा, '*पडकमणुं* मतलब क्या?' तब उन्होंने कहा, 'रुको, कल महाराज से पूछकर आपको बताऊँगा।'

भगवान को मालूम था कि काल विचित्र आने वाला है, इसलिए

उसमें टिके रहने के लिए आलोचना-प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान, ये बड़े हथियार दिए हैं।

प्रतिक्रमण मतलब क्या?

संसार में जो कुछ भी होता है, वह क्रमण है। जब तक वह साहजिक प्रकार से होता है तब तक क्रमण है, लेकिन यदि एक्सेस हो जाए तो वह अतिक्रमण कहलाता है और यदि छूटना हो तो जिसके प्रति अतिक्रमण हुआ हो, उसका प्रतिक्रमण करना ही पड़ेगा, यानी कि धोना पड़ेगा, तो साफ हो जाएगा।

पूर्व में चित्रण किया था कि, 'फलाने को चार धौल दे देनी है।' इसलिए इस जन्म में जब वह रूपक में आता है, तब चार धौल लगा देता है। उसे अतिक्रमण कहते हैं। इसलिए उसका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। सामने वाले के शुद्धात्मा को याद करके, उसके निमित्त से प्रतिक्रमण करने चाहिए। भगवान ने कहा है कि, 'अतिक्रमण का प्रतिक्रमण करोगे तभी मोक्ष में जा पाओगे।'

कोई खराब आचार हुआ, वह अतिक्रमण कहलाता है। जो खराब आचार हुआ, वह तो दाग़ कहलाता है, वह मन में काटता रहेगा, उसे धोने के लिए प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे। किसी के भी लिए अतिक्रमण हुए हों तो पूरा दिन उसके लिए प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे, तभी खुद छूट सकेगा। यदि दोनों ही आमने-सामने प्रतिक्रमण करेंगे तो जल्दी छूटा जा सकेगा। पाँच हज़ार बार आप प्रतिक्रमण करो और पाँच हज़ार बार सामने वाला प्रतिक्रमण करे तो जल्दी अंत आ जाएगा, लेकिन यदि सामने वाला नहीं करे और तुझे छूटना ही हो तो दस हज़ार बार प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे, तो तू खुद तो छूटेगा, लेकिन वन साइडेड प्रतिक्रमण होने से खुद के लिए सामने वाले को दुःख रहेगा ही। फिर भी इस प्रतिक्रमण से तो आपके प्रति सामने वाले के भाव भी बदल जाएँगे, खुद को भी अच्छे भाव होंगे और सामने वाले को भी अच्छे भाव होंगे। क्योंकि प्रतिक्रमण में तो इतनी अधिक शक्ति है कि बाघ, कुत्ते जैसा बन जाता है! प्रतिक्रमण कब काम आता है? जब कुछ उल्टे परिणाम खड़े हो

जाएँ, तभी काम आता है। बाघ अपनी गुफा में हो और तू अपने घर पर हो, तब तू प्रतिक्रमण करे तो बहुत काम नहीं आएँगे, लेकिन अगर बाघ सामने 'खाऊँ, खाऊँ' कर रहा हो और उस समय प्रतिक्रमण करेगा, तो यथार्थ फल देंगे! तब बाघ भी बकरी जैसा हो जाएगा!

आजकल जो प्रतिक्रमण किए जाते हैं, वे तो अधिकतर द्रव्य प्रतिक्रमण होते हैं। द्रव्य प्रतिक्रमण मतलब कपड़े वॉशआउट हो गए, लेकिन खुद का कुछ भी नहीं हुआ! यह चंदूलाल दस बार बोले कि, 'चंदूलाल, दाल-चावल खा ले, चंदूलाल, दाल-चावल खा ले।' तो क्या भोजन हो गया? ना, उससे कुछ भी नहीं हुआ। द्रव्य प्रतिक्रमण किसे कहते हैं, वह मैं समझाता हूँ। 'भगवान महावीर पाँच सौ एक का साबुन लाए थे, वह बारह इंच लंबा था, दो इंच चौड़ा था और एक इंच मोटा था। फिर भगवान मैले कपड़े लाए, कपड़ों को उन्होंने पानी में डालने के बाद उनमें साबुन लगाया, फिर पानी में धोए।' भगवान ने उनके कपड़ों का मैल जिस तरीके से धोया था उस तरीके को, साल में एक घंटे बैठकर तू गाता रहे तो उससे तेरे कपड़ों का मैल कैसे धुलेगा? अरे, भगवान का मैल अलग, उनका धोने का तरीक़ा अलग, तेरा मैल अलग और तेरा वह मैल धोने का तरीक़ा भी अलग होगा। भगवान के तरीके को तू गाता रहेगा, उससे से तू कितना साफ हो पाएगा? तू तो घानी के बैल की तरह घानी में ही रहा! तेरा प्रतिक्रमण तो, जहाँ-जहाँ तुझसे अतिक्रमण हुआ हो, वहाँ-वहाँ ऑन द मोमेन्ट करेगा, तभी वह अतिक्रमण धुलेगा। यह तो, साल-छः महीने में या महीने में करता है तो क्या याद रहेगा? इस काल के लोग तो ऐसी विचित्र दशा के हो चुके हैं कि एक घड़ी पहले क्या खाया वह भी वे भूल जाते हैं तो इस अतिक्रमण को तो तू क्या याद रखेगा? प्रतिक्रमण तो उसी क्षण होना चाहिए, उधार नहीं चलेगा, कैश चाहिए!

कपड़ों पर चाय गिर जाए, तो कैसे तुरंत ही धोने जाता है! और जब तुझ पर, 'खुद' पर मैल चढ़ता है तब हाथ जोड़कर बैठा रहता है? हाँ, चाय गिरना वह अपने हाथ की बात नहीं है, लेकिन उसे धो

तो देना ही चाहिए न, वैसे ही जब अतिक्रमण का मैल चढ़े, तब उसे भी तुरंत धो ही देना चाहिए न!

हम तो कितने ही जन्मों से प्रतिक्रमण करते-करते आए हैं, तब जाकर अभी कपड़े साफ हुए हैं और आपके भी कपड़े साफ कर देते हैं!

दो प्रकार के आलोचना-प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान इस अनुसार हैं- एक तो व्यवहार के, जो कि ये सभी साधु वगैरह करते हैं, उससे गांठों की प्रगाढ़ता कम होती है, लेकिन भूल होने पर तुरंत ही करे तो और भी अधिक ऊँचा फल मिलता है। दूसरे, निश्चय के जो कि अपने स्वरूप ज्ञान प्राप्त महात्मा करते हैं, वे।

अहो! गौतम स्वामी का प्रतिक्रमण

भगवान के समय में क्या ऐसे प्रतिक्रमण होते थे? भगवान के समय की तो बात ही क्या! भगवान के श्रावक, आनंद श्रावक को अवधिज्ञान प्रकट हुआ था। गौतम स्वामी वहाँ पहुँचे, तब आनंद श्रावक ने उनसे कहा कि, 'मुझे अवधिज्ञान प्रकट हुआ है!'

तब गौतम स्वामी को वह सच नहीं लगा। उन्होंने आनंद श्रावक से कहा कि, 'यह झूठा विधान है, इसीलिए आप उसका प्रतिक्रमण करो।' आनंद श्रावक ने कहा, 'सच्चे का करूँ या झूठे का?' गौतम स्वामी ने कहा, 'प्रतिक्रमण झूठे का ही करना होता है, सच्चे का नहीं।' तब आनंद श्रावक ने कहा, 'यदि सच्चे का प्रतिक्रमण नहीं होता तो मैं प्रतिक्रमण करने का अधिकारी नहीं हूँ।' तब गौतम स्वामी चले गए, जाकर भगवान महावीर स्वामी से पूछने लगे, 'हे भगवन! आनंद श्रावक प्रतिक्रमण के अधिकारी हैं या नहीं?' भगवान ने कहा, 'गौतम! आनंद सच्चा है, उसे अवधिज्ञान प्रकट हुआ है, इसलिए आप जाओ और आनंद श्रावक के प्रतिक्रमण कर आओ।' तब गौतम स्वामी दौड़ते हुए आनंद श्रावक के पास पहुँच गए और प्रतिक्रमण किया!

व्यवहार शोभा नहीं दे ऐसा हो, तो वहाँ पर प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, हम जैन हैं इसलिए सामायिक, प्रतिक्रमण जानते ज़रूर हैं, लेकिन वे कर नहीं सकते, ऐसा क्यों होता होगा?

दादाश्री : इस दुनिया में जिसका पालन किया जा सके, जो किया जा सके, वह सब ज्ञान कहलाता है और जिसका पालन नहीं कर पाते, जो कर नहीं पाते, वह अज्ञान है। 'सामायिक हम समझते हैं फिर भी कर नहीं पाते।' ऐसे जो आप कहते हो, उसे भगवान क्या कहते हैं कि, 'यह तो हमारी मज़ाक हो गई।' यह पोइज़न की बोतल और दूसरी बोतल पास-पास रखी हो, लेकिन यदि इसमें पोइज़न है ऐसा जाना नहीं हो, समझा नहीं हो तो पोइज़न की बोतल ले लेता है। जानने के बावजूद भी हो नहीं पाता, ये तो गलत बहाने हैं, अज्ञान को ही ज्ञान कहते हैं। यदि जान जाए तब तो फिर कोई कुँए में गिरे ही नहीं। यह तो जानते हैं फिर भी नहीं करते, वह ज्ञान ही अज्ञान है! जाना उसका फल विरति है। कोई बच्चा पूछे कि, 'ज़हर क्या है?' तो उसे कहें कि, 'उससे व्यक्ति मर जाता है।' तो फिर बच्चा वापस पूछता है कि, 'मर जाना मतलब क्या?' तब हम उसे समझाएँ कि, 'ये पड़ोस में चाचा मर गए थे न, तो ज़हर से ऐसा होता है।' तब बच्चे को समझ में आता है। वह समझता है कि यह ज़हर है, इसे नहीं पीना चाहिए, इसके बाद ज़हर के प्रति उसे विरति रहेगी। जाना उसका फल ही विरति होता है। विरति मतलब रुक जाना।

नकद प्रतिक्रमण से ही हल

एक बहन कहती हैं कि, 'हमारे वहाँ तो प्रतिक्रमण में पीछे से कोई कोहनियाँ मारता है। आपके यहाँ ऐसा नहीं होता होगा, क्यों?' तब हमने उसे कहा कि, 'नहीं, यहाँ ऐसा नहीं होता। यहाँ तो सच्चे प्रतिक्रमण, भगवान महावीर जो कहना चाहते थे, वैसे प्रतिक्रमण होते हैं।' अन्य लोग तो मागधी भाषा में गाते हैं। वह कैसा है, आपको समझाता हूँ। यहाँ फ्रेंच व्यक्ति बैठा हो और मैं गुजराती में गाता रहूँ तो वह हँसेगा ज़रूर पर उसमें से एक भी अक्षर वह समझेगा नहीं। महावीर ऐसा नहीं कहना चाहते थे। उन्होंने कहा तो ठीक था, लेकिन

सभी लोग अपनी-अपनी भाषा में ले गए! फिर क्या हो? उन्होंने तो कहा कि, 'सही तरीके से आप अपनी भाषा में समझो।' यह तो क्या कहता है कि, '501' का साबुन लाकर डाल, लेकिन वह तो खाली गाएगा ही। कोई साबुन लगाकर कपड़े धोएगा नहीं, और ऊपर से कहेगा कि, 'प्रतिक्रमण' किया। फिर उठकर बाहर निकलकर बेकार की गप्पबाज़ी करेगा! प्रतिक्रमण तो नकद होना चाहिए। अतिक्रमण हुआ कि तुरंत ही प्रतिक्रमण! कैश! देह की क्रिया नकद होती है। जैसे ब्रश किया, चाय के साथ नाश्ता किया, वह सब नकद किया, वैसे ही वाणी की क्रिया भी नकद होती है और मन की क्रिया भी नकद होती है। वैसे ही इस अतिक्रमण के सामने प्रतिक्रमण भी नकद, ऑन द मोमेन्ट होना चाहिए। जैसे-जैसे नकद प्रतिक्रमण होता जाएगा, वैसे-वैसे साफ होता जाएगा। अतिक्रमण के सामने हम नकद प्रतिक्रमण कर लें तो मन व वाणी शुद्ध होते जाएँगे!

लोग अतिक्रमण को नहीं समझते और प्रतिक्रमण को भी नहीं समझते। उनका एक साथ बारह महीने में 'मिच्छामि दुक्कडम्' करते हैं, न तो 'मिच्छामि' समझते हैं, न ही 'दुक्कडम्' समझते हैं!

अभी ये जो प्रतिक्रमण होते हैं, वे मागधि भाषा में होते हैं और उसे महाराज पढ़ते हैं और सभी सुनते हैं, तब चित्त किसका एकाग्र होगा? यह कैसा है कि समझ में आए, तब इन्टरेस्ट आता है। यह तो समझ में आता नहीं और फिर बेकार की गप्पबाज़ी करते हैं! भगवान ने इस तरह देखा-देखी नकल करने को नहीं कहा था। भगवान ने क्या कहा था कि, ''ठोकर लगे तो समझना कि कोई भूल हुई होगी, तो तुरंत ही गुरु के पास आलोचना कर और फिर गुरु की साक्षी में या 'हमारी' साक्षी में प्रतिक्रमण कर।'' यह तो प्रत्यक्ष करना होता है, कपड़ों पर दाग़ पड़े कि तुरंत ही साफ करना होता है, तुरंत ही प्रतिक्रमण करे तभी साफ होता है। ये लोग कैसे हैं? कपड़ों पर चाय का दाग़ पड़े तो तुरंत ही भागदौड़ करके दाग़ धो देते हैं, जबकि इस मन पर अनंत जन्मों से दाग़ पड़े हुए हैं, उन्हें धोने की किसी को नहीं पड़ी है। प्रतिक्रमण मतलब नकद व्यापार होना चाहिए, उधार नहीं। ये रोज़

प्रतिक्रमण करते हैं फिर भी कपड़े उजले नहीं होते, ऐसा क्यों है? तेरा साबुन गलत है, कपड़ा गलत है या फिर पानी मैला है? नहीं तो कपड़े रोज़ धोने के बावजूद भी साफ क्यों नहीं होते? यह तो किसी को खुद के दोष ही नहीं दिखते, फिर प्रतिक्रमण होंगे ही कैसे? अपने महात्मा रोज़ के दो सौ, पाँच सौ प्रतिक्रमण करते हैं और दोष धो देते हैं। पाँच लाख दोष बचे हों तो मोक्ष में जाने में दो ही घंटे बाकी रहते हैं और इन लोगों से पूछें तब कहते हैं कि, 'एक-दो दोष ही होंगे!'

प्रश्नकर्ता : 'प्रतिक्रमण करने के लिए धार्मिक स्थान में जाना चाहिए', यह बात सही है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो चाय पीते हुए भी किए जा सकते हैं, नहाते-नहाते भी किए जा सकते हैं। जहाँ देहधर्म है, मनोधर्म है, बुद्धिधर्म है वहाँ स्थान को देखना पड़ता है। लेकिन अपना 'आत्मधर्म' है इसलिए देहधर्म देखने की ज़रूरत नहीं है, कहीं भी प्रतिक्रमण किए जा सकते हैं।

कुछ लोग तो नहाने के धर्म को ही धर्म मानते हैं! उनका धर्म इससे आगे बढ़ा ही नहीं। जिसे देहधर्म होता है, उसमें तो मोह के बहुत से परमाणु थोकबंद होते हैं और उन्हें यदि कोई गालियाँ दे तो उन्हें गाली देने वाला पूरी तरह से दोषित दिखता है। उसमें यदि कोई थोड़ा डेवेलप्ड हो तो कहेगा कि, 'मेरे कर्म का दोष है।' ये जो निंदा कर रहे हैं, वे मेरे कपड़े धो रहे हैं, ऐसा मानकर संतोष मानता है और आगे डेवेलप होता है। पूरे जगत् में निमित्त को दोष देने का नियम है। निमित्त को काटने दौड़ते हैं। जबकि अपने यहीं पर, 'भुगते उसी की भूल', ऐसा नियम है!

प्रतिक्रमण के परिणाम कैसे-कैसे!

प्रश्नकर्ता : हमें किसी के लिए आसक्ति रहती हो तो उसके लिए प्रतिक्रमण कैसे करने चाहिए?

दादाश्री : सामने वाले व्यक्ति का नाम लेकर उसके आत्मा को

याद करके, 'दादा' को याद करके, उस आसक्ति के लिए प्रतिक्रमण करने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सामने वाले व्यक्ति को हमारे प्रति चुभन रहती हो तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : तो भी अपने को प्रतिक्रमण करने चाहिए। वह तो हमने पहले भूल की थी इसलिए उन्हें चुभता है, भूल से ही बंधे हुए हैं। बंधन राग का हो, द्वेष का हो, कैसा भी हो, उसका प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए। सामने वाला नम्र और सरल हो तो आमने-सामने माफ़ी माँग लेनी चाहिए, वर्ना यदि भीतर ही माफ़ी माँग लें, तब भी हिसाब साफ हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण से क्या सामने वाले का मन पूरा बदल जाता है?

दादाश्री : यदि बाहर के किसी अनजान व्यक्ति के प्रतिक्रमण करोगे तो वह आश्चर्यचकित हो जाएगा! उसे तुरंत ही आपके प्रति खिंचाव हो जाएगा! इस प्रतिक्रमण से तो सामने वाले की वृत्ति ठंडी पड़ जाती है, जबकि घर के लोगों के तो निरंतर प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : मृत व्यक्ति की स्मृति आए तो क्या उस मृत व्यक्ति का भी प्रतिक्रमण करना पड़ेगा?

दादाश्री : स्मृति तो मृत व्यक्ति की भी आती है और जीवित की भी आती है। जिसकी स्मृति आए उसका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा, क्योंकि हम जानते हैं कि असल में 'वह' जीवित ही है, मरता नहीं है, यह उसकी आत्मा के लिए भी हितकर है और हम प्रतिक्रमण करते हैं तो हम भी उसके बंधन में से छूट सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : मृत व्यक्तियों का प्रतिक्रमण कैसे करना चाहिए?

दादाश्री : मन-वचन-काया, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म मरे हुए

व्यक्ति का नाम तथा उसके नाम की सर्व माया से भिन्न, ऐसे उसके शुद्धात्मा को याद करना, और फिर 'ऐसी-ऐसी भूलें की हैं', उन्हें याद करना (आलोचना), उन भूलों के लिए मुझे पश्चाताप हो रहा है और उसके लिए मुझे क्षमा करो (प्रतिक्रमण), वैसी भूलें नहीं होंगी ऐसा दृढ़ निश्चय करता हूँ' ऐसा नक्की करना है (प्रत्याख्यान)। 'हम' खुद 'चंदूलाल' के ज्ञाता-द्रष्टा रहकर उसे जानें कि, चंदूलाल ने कितने प्रतिक्रमण किए, कितने सुंदर और कितनी बार किए!

जहाँ निरंतर प्रतिक्रमण होते हैं, वहाँ आत्मा शुद्ध ही होता है। हम लोग तो दूसरों में शुद्धात्मा देखें, प्रतिक्रमण करें और खुद के शुद्धात्मा तो लक्ष्य में रहते ही हैं। यह व्यवहारिक क्रिया नहीं कहलाती, उससे फिर बाकी का सभी शुद्ध होता रहता है। यह *पुद्गल* क्या कहता है? हमें 'शुद्ध' करो, 'आप' तो 'शुद्ध' हो गए! जब यह अशुद्ध हो चुका *पुद्गल* निकले, तब यदि प्रतिक्रमण करे तो उससे वह शुद्ध हो जाएगा।

स्थूल और सूक्ष्म भूलें प्रतिक्रमण से जाती हैं और सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम भूलें देखने से जाती हैं। यह मार्ग ही आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान का है, और वह भी नकद चाहिए। यह पान भी, जब दो आने कैश दें, तब मिलता है। प्रतिक्रमण कैश चाहिए, उधार से मोक्ष नहीं मिलेगा।

मन से, वाणी से और देह से हुए सभी अतिक्रमणों के प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करने पड़ते हैं। यह हमारा मुखारविंद धारण करके, आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान करो तब तो ऐसा मिट जाएगा कि फिर से वह अतिक्रमण होगा ही नहीं, हमारी हाज़िरी से धुल जाता है।

अतिक्रमण, वह सब से बड़ी हिंसा है, उसके लिए प्रतिक्रमण होना चाहिए। बाहर की स्थूल हिंसा, वह तो स्पर्श करे या न भी करे, वह तो भीतर की मशीनरी कैसे घूमती है उसके अनुसार कर्म बंधन होता है, लेकिन भीतर की हिंसा, सूक्ष्म हिंसा तो धोनी ही पड़ती है। अतिक्रमण, वह तो हिंसाखोरी कहलाती है, अभी तो लोग हिंसा को

भी नहीं समझते, तो प्रतिक्रमण क्या करेंगे? कैसा करेंगे? यदि स्थूल हिंसा, हिंसा कहलाती तो भरत राजा मोक्ष में ही नहीं जा सके होते! उनके हाथों तो कितनी ही सैनाएँ मारी गईं! स्थूल हिंसा बाधक नहीं है, सूक्ष्म हिंसा बाधक है!

इन महात्माओं को हमने कुछ और ही प्रकार की चीज़ हाथ में दी है! आश्चर्यजनक है! दुनिया के लोगों को एक्सेप्ट करना पड़ेगा कि ये लड़ रहे होते हैं फिर भी उनके अंदर का समकित चला नहीं जाता, दोनों क्षेत्रों की धाराएँ अलग ही बहती रहती हैं।

आपकी तो दोनों ही धाराएँ एक साथ बहती रहती है। आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान के बिना दोनों धाराएँ अलग रहती ही नहीं। 'इन सब को' तो निरंतर आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान रहा करता है। यह कैसा है? कि बाहर की क्रिया होती रहती है और भीतर आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान भी होते रहते हैं, वे निरंतर होने चाहिए। आप आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करते हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, संवत्सरी का प्रतिक्रमण होता है।

दादाश्री : प्रतिक्रमण किस तरह से करने चाहिए, आपको वह समझाता हूँ। अभी आपके कोई गुरु हैं?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : जब आपसे झगड़ा हो गया हो जो कि उदयकर्म है, प्राकृत भाव है, तो तुरंत ही आपने जिन्हें गुरु माना हो उन्हें याद करके जिनके साथ झगड़ा हो गया हो, उनके आत्मा को याद करके तुरंत ही प्रतिक्रमण करना है। यह अतिक्रमण, यह तो हमला कहलाता है। आपका सेठ के साथ अतिक्रमण हो जाए तो वहाँ भी गुरु को धारण करके आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करें तो सब मिट जाता है। उससे क्या होता है? कि सेठ के लिए जो अतिक्रमण किया था उसकी पक्की गांठ नहीं बंधेगी, वह गांठ ढीली हो जाएगी! तो अगले जन्म में उस गांठ को हाथ लगाते ही बिखर जाएगी! गुरु तो सिर पर

चाहिए ही न! आलोचना करने के लिए तो कोई चाहिए न? छूटने का रास्ता ही प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान है, और कोई रास्ता ही नहीं है। बंधने का रास्ता ही अतिक्रमण और आक्रमण का है। जब प्लस-माइनस एक सा ही होगा न, तो उससे ज़ीरो हो जाएगा। प्रतिक्रमण तो, दाग़ पड़ते ही तुरंत धो डालें तब किया कहलाता है। जैनों में आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान निरंतर होता है। जैन तो कौन है कि जो रोज़ के पाँच सौ-पाँच सौ प्रतिक्रमण करता हो!

निरंतर प्रतिक्रमण करके *गाढ़* राग-द्वेष को धोकर पतले कर सकते हैं। अगर सामने वाला टेढ़ा है वह अपनी भूल है, हमने वह धोया नहीं और धोया है तो ठीक से पुरुषार्थ नहीं हुआ है। जब भी समय मिले, तब जो गाढ़ ऋणानुबंधी हों, उन्हें धोते रहना चाहिए। ऐसे बहुत नहीं होते हैं, पाँच या दस के साथ ही गाढ़ ऋणानुबंध होते हैं। उन्हीं का प्रतिक्रमण करना होता है, उस गाढ़ेपन को ही धोते रहना है। कौन-कौन लेन-देन वाले हैं, उन्हें ढूँढ लेना है। नया खड़ा होगा तो तुरंत ही पता चल जाएगा, लेकिन जो पुराने हैं उन्हें ढूँढ निकालना है। जो-जो नज़दीक के ऋणानुबंधी हैं, वहीं पर अधिक गाढ़ापन होता है। कौन सा फूट निकलता है? जो अधिक गाढ़ा होता है, वही फूट निकलता है।

डायरेक्ट मिश्रचेतन के साथ अतिक्रमण हो गया हो तो तुरंत ही प्रतिक्रमण करो। यदि खाने का कम परोसा तो उससे सामने वाले को दु:ख होगा, वह इनडायरेक्ट अतिक्रमण हुआ, उसे भी प्रतिक्रमण करके धो डालना पड़ेगा। यह आलू की सब्ज़ी चेतन नहीं है, लेकिन उसे लाने वाला चेतन है। वह चेतन वाले को स्पर्श करता है। कोई आलू नहीं खाता हो और आलू की सब्ज़ी भूल से परोस दी हो, तो उससे सामने वाले को दु:ख होगा, लेकिन ऐसा याद नहीं रहा, तो उसे 'उपयोग चूका' कहा जाएगा। और उपयोग चूके, उसका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : *कंटाला* आता है, वह क्या कहलाता है? वह प्रमाद कहलाता है?

दादाश्री : नहीं, *कंटाला* आना तो प्रमाद नहीं कहलाता, अरुचि

कहलाती है। जिसकी ज़रूरत है, वहाँ पर अरुचि होती हो तो उसका भी प्रतिक्रमण करना पड़ेगा!

प्रश्नकर्ता : दादा, कईं दोष समझ में भी क्यों नहीं आते?

दादाश्री : लोभ और माया इन दोषों को समझने नहीं देते, लेकिन मान और क्रोध हों तो तुरंत ही दोष दिख जाते हैं। अरे, दूसरे लोग भी वे दोष दिखा देते हैं।

'ज्ञानी पुरुष' के दर्शन से कपट का परदा खिसक जाता है और सभी दिखता जाता है।

आलोचना-प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान होते हैं तो उससे भरी हुई कोठी खाली होती जाती है। विषय याद आते हों, तब आलोचना-प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करें, तो विषय याद ही नहीं आएँगे। ये तो पहले का माल ही कोठी में भरा हुआ है न! वह माल निकले तब याद आता है और उसका आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करें तो खाली होता जाता है और तब फिर अंत में कोठी को खाली हुए बिना चारा ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दादा, घर में तरह-तरह का सामान लाने का मोह है, साड़ियाँ खरीदने का मोह है, उन सब के प्रतिक्रमण कैसे करने चाहिए?

दादाश्री : वे तो सब नोकर्म कहलाते हैं। यदि 'तू चंदू है' तो वे तेरे हैं, नहीं तो वे तेरे नहीं हैं। यह मोह यदि मूर्च्छा करवाए और मूर्च्छा उत्पन्न हो, तब उस घड़ी प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। वह भी, कोठी में माल भरा था उसके लिए प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। कोठी में से जो-जो माल निकले उन सभी के आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करने पड़ेंगे, वह भी हमें नहीं करने हैं, 'चंदू' से करवाने हैं। जो खाए उसकी गुनहगारी, हम खाते नहीं है यानी हम 'शुद्धात्मा' हैं, तो फिर प्रतिक्रमण किसके करने हैं?

जैसे-जैसे आत्मा का ज्ञाता-द्रष्टापन कम होता जाता है, वैसे-वैसे

शौर्य कम होता जाता है, लेकिन जैसे-जैसे ज्ञाता-द्रष्टापन बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे शौर्य बढ़ता जाता है।

प्रतिक्रमण शुरू हुए मतलब चौथा गुणस्थानक शुरू हुआ!

जितने अतिक्रमण और आक्रमण किए हैं, उनका प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करना। ये सदाचार, दुराचार, यह कोई अपने हाथ की बात नहीं है, वह तो कुछ और ही चीज़ों के अधीन है, लेकिन दुराचार होते समय अतिक्रमण और आक्रमण होता है, उसका प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करना चाहिए।

आक्रमण और अतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : आक्रमण और अतिक्रमण में क्या फर्क है?

दादाश्री : दोनों में बहुत फर्क है। अतिक्रमण का दोष उतना नहीं है, आक्रमण का दोष भयंकर है। यह भीतर उल्टा-सुल्टा विचार आता है वह अतिक्रमण, लेकिन 'इसे सीधा कर दूँ, मेरा जो होना हो वह होगा, लेकिन तुझे तो निपटा ही दूँगा', ऐसे सभी भाव, वे आक्रामक भाव हैं। स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति के बाद आक्रामक भाव नहीं रहते, फिर भी अतिक्रमण होते हैं। जो सामान्य होना चाहिए यदि उससे विशेष हो, अति हो, तो वह अतिक्रमण है। आक्रामक भाव गया मतलब कि वीतरागता में आया। आक्रामक भाव और अतिक्रमण भाव में बहुत डिफरेन्स है। स्वरूप ज्ञान मिलने के बाद किसी पर अभाव भाव होता रहे और भीतर झंझावात जैसा चले, उसमें आक्रामक भाव नहीं होता। वैसे अभावभाव आक्रमण करवाकर नहीं जाते, लेकिन अतिक्रमण करवाकर जाते हैं, इसलिए उनके प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान बाकी रहते हैं। एक ही व्यक्ति के लिए ऐसे अतिक्रमण, ऐसे अभाव भाव हज़ार-हज़ार बार भी आ सकते हैं और उसके लिए हज़ार-हज़ार बार आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करेंगे तभी ऐसे भारी अतिक्रमण से छूट पाते हैं। इस ज्ञान के बाद अपने में कण मात्र भी अभाव भाव होना ही नहीं चाहिए। अब तो हमें नई लड़ाई नहीं करनी है और जो पुरानी लड़ाई है उसका निकाल ही करना है!

सामूहिक प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : सामूहिक (*जाथु*) प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

दादाश्री : सामूहिक प्रतिक्रमण किसे कहते हैं? जो एक साथ याद आएँ उसके लिए। कोई एक व्यक्ति लगातार भीतर याद आता रहे तो उसका सामूहिक प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। सामूहिक मतलब निरंतर। स्मृति वह राग-द्वेष का दर्पण है। उसके लिए कभी ही प्रतिक्रमण करना पड़ता है, लेकिन सामूहिक में तो जितनी बार याद आए, उतनी बार प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

जिस व्यक्ति के साथ हम से गांठें पड़ गई हों और वह मर चुका हो तो उसे याद करके गुत्थियाँ धो देनी चाहिए, ताकि शुद्ध होकर निकाल हो जाए और गुत्थियाँ सुलझ जाएँ। आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करके गुत्थियाँ सुलझा देनी हैं। यदि एक बिल्ली को मार डालें तो दोनों के आत्मा में *नोंध* (अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लंबे समय तक याद रखना, नोट करना) हो जाती है। बिल्ली बैर लिए बिना रहेगी नहीं, इसलिए हमें उसके आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान कर लेने चाहिए। ज्ञानी के जो-जो वाक्य फिट होते जाते हैं, वे 'अनुभव ज्ञान' कहलाते हैं, और वे मोक्ष में ले जाते हैं।

तंत दो प्रकार के हैं, एक छूट जाता है ऐसा तंत और दूसरा जल्दी से नहीं छूट पाता, वैसा तंत। दूसरा तंत बहुत लंबे समय तक चलता रहता है, उसके भी अनके बार आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान कर लेने चाहिए। जिसके लिए खराब विचार आएँ तो हमें ऐसा कहना चाहिए कि, 'ये तो बहुत अच्छे व्यक्ति हैं, बहुत अच्छे व्यक्ति हैं।' ऐसा बोलने से उस व्यक्ति पर असर होता है। बाकी, उसके सामने देखना मत कि वे कैसे हैं, हमें तो उन्हें अच्छा ही कहना है। एक बार, दो बार, तीन बार करने से वह अवश्य ही बदल जाएगा। यह सब अनुभवज्ञान है, हम जिस रास्ते पर चले हैं, उसी रास्ते से हम आपको ले जा रहे हैं।

सॉरी मतलब प्रतिक्रमण?

प्रश्नकर्ता : थेन्क यू और सॉरी शब्द, वे प्रतिक्रमण जैसे हैं न?

दादाश्री : नहीं, यदि भैंस खुश होकर सिर हिलाए तो उसे थैंक्स जैसा मान सकते हैं। यह बात उनके लिए, फॉरेनर्स के लिए ठीक है। लेकिन इन प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान की बराबरी वाले कोई भी शब्द नहीं मिल सकते। फिर भी यह जो सॉरी बोलते हैं, वह व्यवहार में बोलते हैं।

जिनका रात-दिन आत्मा में ही उपयोग रहता है, वे सत्पुरुष हैं, लेकिन यह तो, किसी का तप में उपयोग, किसी का प्रतिक्रमण में उपयोग रहता है। भगवान ने क्या कहा है कि, 'प्रतिक्रमण तो खुद की भाषा में करना, ये तुझे आगे का मार्ग बताएँगे।' यह तो प्रतिक्रमण का अर्थ कैसा करता है? जैसे सांताक्रुज़ का बोर्ड लगाया हुआ हो, और उस रास्ते पर जाना हो, लेकिन यह तो वहाँ दादर में ही बैठकर 'वे टु सांताक्रुज़, वे टु सांताक्रुज़' ऐसे गाता रहता है, तो सांताक्रुज़ जाना तो एक तरफ रहा, लेकिन खुद 'सांताक्रुज़ जाने का प्रयत्न कर रहा है', उसका फिर उसे कैफ़ चढ़ता है!

अनंत जन्मों से जीव प्रतिक्रमण को समझा ही नहीं है, पीछे मुड़कर देखा ही नहीं और समझे बिना महावीर भगवान के प्रतिक्रमण गाता रहा है, रिवाज़ बन गया है!

अतिक्रमण के दाग़, निकाले प्रतिक्रमण

दादाश्री : यह चाय का दाग़ आपके कपड़े पर गिरे तो आप क्या करते हो?

प्रश्नकर्ता : तुरंत ही धो देता हूँ।

दादाश्री : वहाँ आप कितने सावधान रहते हो? क्योंकि आपको ऐसा लगता है कि दाग़ रह जाएगा, इसलिए तुरंत ही वहाँ पर धो देते हो, लेकिन 'भीतर' दाग़ पड़ जाता है, उसकी खबर ही नहीं! अतिक्रमण

मतबल दाग़ पड़ना, और प्रतिक्रमण मतलब दाग़ निकालना। जिसे दाग़ नहीं पड़ता उसे प्रतिक्रमण की ज़रूरत नहीं है। 'ज्ञानी पुरुष' को प्रतिक्रमण की ज़रूरत नहीं है।

ये सभी लोग चाय का दाग़ पड़ते ही तुरंत धो आते हैं। वहाँ तो ज़रा सी भी ढील नहीं रखते, वहाँ पर ज्ञानी ज़रा ढीले पड़ जाते हैं, लेकिन ज्ञानी भीतर के दाग़ के सामने ढीले नहीं पड़ते! 'ज्ञानी पुरुष' को दाग़ ही नहीं पड़ते, क्योंकि खुद गाकर गवाते हैं। जबकि दूसरे तो गवाते हैं लेकिन खुद नहीं गाते। उससे दाग़ पड़ जाता है! यह चाय का दाग़ पड़ जाए और यदि जानता नहीं है कि किससे धुलेगा, तो क्या होगा? दूध में डुबोए तो दूध का दाग़ पड़ेगा और फिर तेल में डुबाकर निकालने जाए तो दाग़ पक्का हो जाएगा! बाहर के सभी लोग अभी कैसा प्रतिक्रमण करते हैं? द्रव्य आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करते हैं। भाव आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान तो कोई करता ही नहीं! हाँ, चाय का दाग़ पड़ता है, वहाँ ज़रूर भाव प्रतिक्रमण करते हैं! प्रतिक्रमण तो, दाग़ पड़ते ही तुरंत खुद धो डाले, तब कुछ किया कहा जाएगा! ये तो अंदर का दाग़ तभी नहीं निकाल देते, उस दाग़ को पक्का होने देते हैं। बाद में धोने जाओगे तब दाग़ क्या आपकी राह देखकर बैठा रहेगा? नहीं, वह दाग़ तो पड़ ही जाएगा!

किसी से ऊँची आवाज़ से बोले और सामने वाले को दु:ख हो जाए तो भीतर प्रतिक्रमण कर लेना पड़ेगा। क्योंकि वह अतिक्रमण हुआ, उस अतिक्रमण का प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

प्रतिक्रमण की यथार्थ विधि

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण में क्या करना होता है?

दादाश्री : मन-वचन-काया का योग, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म, चंदूलाल और चंदूलाल के नाम की सर्व माया से भिन्न ऐसे 'शुद्धात्मा' को याद करके कहना कि, 'हे शुद्धात्मा भगवान! मुझसे ऊँची आवाज़ में बोला गया वह भूल हुई, इसलिए उसके लिए माफ़ी माँगता हूँ और अब वापस वह भूल नहीं करूँगा ऐसा निश्चय करता हूँ, वह भूल वापस

नहीं करने की शक्ति दीजिए।' शुद्धात्मा को याद किया या दादा को याद किया और कहा कि 'यह भूल हो गई', तो वह आलोचना है, और उस भूल को धो डालना, वह प्रतिक्रमण है। और वह भूल फिर से नहीं करूँगा ऐसा निश्चय करना, वह प्रत्याख्यान है! सामने वाले को नुकसान हो ऐसा करे या फिर उसे अपने द्वारा दु:ख हो जाए, वे सब अतिक्रमण हैं और उसके तुरंत ही आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करने पड़ते हैं।

यह तो आसान मार्ग है, चाबियों से तुरंत ही ताले खुल जाते हैं! ऐसा संयोग अन्य किसी काल में नहीं मिलेगा, यह तो अक्रम मार्ग है! एक्सेप्शनल केस है! ग्यारहवाँ आश्चर्य है! यहाँ काम निकाल लेना। ऐसे प्रतिक्रमण से लाइफ भी सुंदर गुज़रती है और मोक्ष में जाते हैं!

भगवान महावीर ने ऐसा कहा है कि, 'आप अगर बहुत बड़े व्यापारी हो तो दिन में हुए अतिक्रमण के रात को प्रतिक्रमण करना।' इसे 'रायशी' कहा है और 'रात के अतिक्रमणों का प्रतिक्रमण दिन में करना।' उसे 'देवशी' कहा है। यह अक्रम मार्ग है इसलिए ज्ञान होने के बाद प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं, नहीं तो ज्ञान होने के बाद में फिर प्रतिक्रमण नहीं करने होते, यह स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया, लेकिन भीतर माल स्टॉक में है इसलिए अतिक्रमण होते हैं और उनका प्रतिक्रमण कर लेना पड़ता है। ये प्रतिक्रमण हमें, 'शुद्धात्मा' को, नहीं करने हैं। ये तो इन मन-वचन-काया से करवाने हैं। 'मैं करता हूँ' ऐसा भाव निकल गया इसलिए स्वरूप से शुद्ध हैं, इसीलिए खुद को प्रतिक्रमण नहीं करने होते। 'शुद्धात्मा' खुद यदि प्रतिक्रमण करेगा, तब तो पोइज़न हो जाएगा। 'खुद' 'शुद्धात्मा' प्रतिक्रमण नहीं करता, लेकिन मन-वचन-काया से करवाता है। यह तो अक्रम मार्ग है इसलिए पहले स्वरूप ज्ञान में बैठकर फिर कर्ज़ा पूरा करना है। अक्रम मार्ग में तो पहले दु:ख और जलन बंद करके फिर कर्ज़ा चुकाना है, जबकि क्रमिक मार्ग में तो कर्ज़ा चुकाते-चुकाते ज्ञान में आते हैं।

योगेश्वर श्री कृष्ण

प्रश्नकर्ता : स्वधर्म यानी क्या है? अपने वैष्णवों में कहते हैं न कि स्वधर्म में रहो और परधर्म में मत जाना!

दादाश्री : अपने लोग स्वधर्म शब्द को समझे ही नहीं हैं! वैष्णव धर्म वह स्वधर्म है और शैव या जैन या अन्य कोई धर्म, वे परधर्म हैं, ऐसा समझ बैठे हैं। कृष्ण भगवान ने कहा है कि, 'परधर्म भयावह', इससे लोग ऐसा समझे कि वैष्णव धर्म के अलावा अन्य किसी भी धर्म का पालन करेंगे तो भय है। इस तरह हर एक धर्म वाले ऐसा ही कहते हैं कि परधर्म यानी कि दूसरे धर्म में भय है, लेकिन कोई स्वधर्म या परधर्म को समझा ही नहीं। परधर्म मतलब देह का धर्म और स्वधर्म मतलब आत्मा का स्वयं का धर्म। इस देह को नहलाते हो, धुलाते हो, एकादशी करवाते हो, वे सभी देहधर्म हैं, परधर्म हैं, इसमें आत्मा का एक भी धर्म नहीं है, स्वधर्म नहीं है। यह आत्मा ही अपना स्वरूप है। कृष्ण भगवान ने कहा है कि, 'स्वरूप के धर्म का पालन करना, वह स्वधर्म है। और ये एकादशी करते हैं या अन्य कुछ करते हैं, वह तो पराया धर्म है, उसमें स्वरूप नहीं है।'

'खुद का आत्मा ही कृष्ण है' ऐसा समझ में आए, उसकी पहचान हो जाए, तभी स्वधर्म का पालन किया जा सकता है। जिसे अंदर वाले कृष्ण की पहचान हो गई, वही सच्चा वैष्णव कहलाता है। आज तो कोई भी सच्चा वैष्णव नहीं बन पाया है! *'वैष्णव जन तो तेने रे कहीए... '* उस परिभाषा के अनुसार भी, एक भी वैष्णव नहीं हुआ है!

लोग ऐसा कहते हैं कि, 'हम कृष्ण भगवान के धर्म का पालन करते हैं', लेकिन कृष्ण भगवान मुझे रोज़ कहते हैं कि, 'इनमें से एक भी व्यक्ति मेरा सच्चा भक्त नहीं है। मैं जो कहता हूँ, मेरी उस आज्ञा का एक दिन, अरे एक घंटा भी पालन नहीं करते।'

श्री कृष्ण की आज्ञा

कृष्ण भगवान कहते हैं :

'जीव तुं शीद ने शोचना करे, कृष्ण ने करवुं होय ते करे।' जबकि ये वैष्णव क्या कहते हैं? वैष्णव कहते हैं कि, 'कृष्ण भगवान तो ऐसा कहते हैं, लेकिन चिंता किए बगैर थोड़े ही अपना काम चलेगा? चिंता तो करनी ही पड़ेगी न?' लो, ये बड़े चलाने वाले निकल पड़े हैं!

कृष्ण तो कितना कुछ कह गए हैं कि, 'प्राप्त को भोग, अप्राप्त की चिंता मत करना।' अभी यह भोजन की थाली सामने आई है, वह प्राप्त संयोग है, तब उसे भोगने के बजाय सेठ गए होते हैं कारखाने में और यहाँ पर मात्र शरीर ही भोजन कर रहा होता है! अब कृष्ण भी इसका क्या करें? कृष्ण कहते हैं कि, 'एक तरफ मुझे झूले में बैठाते हैं और दूसरी तरफ मेरी जीभ पर पैर रखते हैं ये सभी लोग! मेरे एक भी शब्द का पालन नहीं करते।' आपको क्या लगता है? मेरी बात ठीक है न? आप ही कहो कि चिंता करते हो या नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : चिंता तो रात-दिन करते हैं, लेकिन हमें चिंता नहीं करनी है फिर भी हो जाती है, तो फिर क्या उपाय करना चाहिए?

दादाश्री : इसमें कृष्ण की आज्ञा का उल्लंघन होता है, लेकिन साथ-साथ इसका इलाज भी है। आपको रोज़ सुबह पाँच बार कृष्ण भगवान की फोटो के सामने दोनों हाथ जोड़कर कहना चाहिए कि, 'हे भगवान, आपने कहा है कि तू एक भी चिंता मत करना। क्योंकि करना-करवाना सब आपके हाथ में है, फिर भी मुझसे चिंता हो जाती

है तो क्या करूँ? मेरी तो दृढ़ इच्छा है कि एक भी चिंता नहीं करूँ। इसलिए हे भगवान ऐसी कुछ कृपा कीजिए, ऐसी शक्ति दीजिए कि फिर से चिंता नहीं हो।' इसके बावजूद यदि फिर से चिंता हो तो फिर से भगवान से ऐसे विनती करना। ऐसे करते ही जाओ, फिर कोई भी चिंता नहीं होगी, ऐसे हम लोगों ने कृष्ण भगवान से तार जोड़ा! और जाओ, 'हमें' याद करके, हमारा नाम लेकर कृष्ण भगवान से रोज़ सुबह पाँच बार ऐसे कहना, फिर यदि चिंता हो तो हमारे पास आना। यदि अपनी नीयत साफ होगी, कृष्ण के सच्चे भक्त हैं तो फिर किसलिए चिंता होगी? कृष्ण से हमें साफ-साफ कहने में क्या परेशानी है? सच्ची भावना वाला तो भगवान को भी गालियाँ दे सकता है। भगवान को कौन गाली दे सकता है? जो सच्चा पुरुष हो वही भगवान को गाली दे सकता है। इसमें कहाँ डरने की बात है? भगवान से कह सकते हैं कि, 'हमें चिंता नहीं करनी है, हमारी मर्ज़ी बिल्कुल आपकी आज्ञा में ही रहने की है। फिर भी चिंता हो जाती है तो हम क्या करें? हम तो आपकी शरण में रहते हैं और आपको डाँटेंगे भी सही।'

ऐसा हमने एक व्यक्ति को सिखाया था, वह भाई तो पक्के निकले। आठ दिनों तक रोज़ ऐसा किया और नौंवे दिन आकर कहने लगे कि, 'दादा, मुझ पर भगवान प्रसन्न हो गए, मुझे एक भी चिंता नहीं हुई।' 'ज्ञानी पुरुष' के वचन में वचनबल होता है। उसका यदि पालन करेगा, तब तो उसका काम ही हो जाएगा। एक बहन औरंगाबाद में आई थी, उन्होंने हमारे दर्शन किए, दो मिनट 'श्री कृष्ण शरणं मम' बोलीं और तुरंत ही उन्हें साक्षात् कृष्ण भगवान के दर्शन हुए!

कृष्ण को गोपीभाव से भजना, लेकिन गोपीभाव रहेगा कैसे? कृष्ण को पहचाने बिना गोपी भी कैसे बना जाए और भाव भी कैसे आए? कृष्ण भगवान के दो स्वरूप हैं – एक बाल स्वरूप और दूसरा योगेश्वर स्वरूप। योगेश्वर कृष्ण को कोई पहचानता ही नहीं, इसलिए लोग बालकृष्ण की भक्ति में पड़ गए। उसमें प्रसाद, खिलौने, झूला वगैरह होता है, लेकिन क्या उससे कुछ हो पाएगा? पुष्टिधर्म, वह

बालमंदिर कहलाता है, यह तो बालकृष्ण का धर्म है, खरा धर्म तो योगेश्वर कृष्ण का है। बालकृष्ण धर्म वह तो बालमंदिर है, उसमें जहाँ तक स्लेट की लंबाई पहुँचे, वहाँ तक एक से दस तक लिखना है। धर्म तो योगेश्वर कृष्ण वाला होना चाहिए। योगेश्वर कृष्ण वाला धर्म, वह ज्ञानमंदिर कहलाता है। मोक्ष के लिए योगेश्वर को भजो और संसार में रहना हो तो बालकृष्ण को भजो। कृष्ण तो नर में से नारायण बने थे, ज्ञानी थे। अब मंदिर में भगवान रहे ही कहाँ हैं? दस हज़ार साल पहले एक पुस्तक में लिखा गया था कि कलियुग में भगवान पैदा होंगे, वे अनंत प्रकार की अनंत कलाओं वाले होंगे! वर्ना कलियुग के मनुष्य सीधे नहीं होंगे। इसलिए भगवान खुद आए हैं। यहाँ तो जैन, वैष्णव, मुस्लिम, क्राइस्ट, सभी धर्मों का संगम है। 'हम' संगमेश्वर भगवान हैं। कृष्ण वाले को कृष्ण मिलते हैं और खुदा वाले को खुदा मिलते हैं, कितने ही हमारे पास कृष्ण भगवान के दर्शन करके गए हैं। यहाँ पर निष्पक्षपाती धर्म है।

यह तो कैसा है कि एक गड्ढा खोदता है और दूसरे को भरता है। एक जन्म में हिन्दू के वहाँ जन्म लेता है, तब मस्जिद तोड़ता है और जब वापस मुसलमान में जाता है तब मंदिर तोड़ता है। इस प्रकार हर एक जन्म में तोड़फोड़ ही करता है। वैष्णव के वहाँ जन्म लेता है तब जैनों की निंदा करता है और जैन में जन्म लेता है तब वैष्णवों की निंदा करता है। तीर्थंकर, राम, कृष्ण, सहजानंद, क्राइस्ट, पैगंबर और जरथ्रुष्ट जो-जो हो चुके हैं उन सभी को, लोग जिन्हें पूजते हैं उन्हें, सभी को व्यवहार से मान्य करना पड़ेगा और यदि पहचान हो जाए तो 'एक हैं' और पहचान नहीं हो पाए तो 'अनेक' हैं। हमारे पास तो सभी धर्मों का संगम है। हमारे और अन्य किसी भी भगवान के बीच भेद नहीं है। लाख ज्ञानियों का एक मत और एक अज्ञानी के लाख मत होते हैं।

पाँच हज़ार साल पहले कालिया नाग की बात रूपक में रखी थी, उस कालिया नाग को वश में करने वाले, वे कृष्ण नहीं थे। यह तू चिढ़ता

है, गुस्सा होता है, वही नाग है। कालिया नाग में तो मदारी का काम था, उसमें कृष्ण भगवान का क्या काम था? और कृष्ण भगवान को नाग को वश में करने की क्या ज़रूरत आ पड़ी थी? क्या उन्हें मदारी नहीं मिल रहे थे? लेकिन बात को कोई समझता ही नहीं और वह रूपक अभी तक चल रहा है। जहाँ कालियादमन हुआ, वहाँ पर कृष्ण हैं। इस कालियादमन में नाग मतलब क्रोध, तो जब क्रोध को वश कर ले, तब कृष्ण बना जा सकता है। जो कर्मों को कृष करे, वही कृष्ण!

एक व्यक्ति मुझे कहता है कि, 'कृष्ण भगवान तो माँ के पेट से नहीं जन्मे थे न?' मैंने उससे कहा, 'तो क्या कृष्ण ऊपर आकाश में से टपके थे? इन सभी देहधारियों को माँ के पेट से जन्म लेना ही पड़ता है। कृष्ण तो देवकी जी के पेट से जन्मे थे।'

कृष्ण भगवान ने *नियाणां* (अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक चीज़ की कामना करना) किया था। *नियाणां* मतलब क्या? अपनी चीज़ के बदले में किसी और चीज़ की इच्छा करना, चीज़ के सामने चीज़ की इच्छा करना। खुद के पुण्यों की सारी ही जमापूँजी किसी एक चीज़ प्राप्त करने में खर्च कर देना, उसे *नियाणां* कहते हैं। कृष्ण भगवान पिछले जन्म में वणिक थे, तब उन्हें जहाँ-तहाँ से तिरस्कार ही मिला था, फिर साधु बने थे। उन्होंने तप-त्याग का ज़बरदस्त आचार लिया, उसके बदले में क्या निश्चित किया? मोक्ष की इच्छा या दूसरी इच्छा? उनकी ऐसी इच्छा थी कि पूरा जगत् मुझे पूजे। तो उनका पुण्य इस पूजे जाने के *नियाणे* में खर्च हो गया, तो आज उनके *नियाणे* के पाँच हज़ार साल पूरे हो रहे हैं।

पुष्टिमार्ग क्या है?

वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग निकाला। पाँच सौ सालों पहले जब मुसलमानों का बहुत कहर था, अपने यहाँ की स्त्रियाँ मंदिर में या बाहर कहीं भी नहीं निकल सकती थीं, हिन्दू धर्म खत्म होने की कगार पर आ गया था, तब वल्लभाचार्य ने काल के अनुरूप धर्म को पुष्टि

दी, तो घर बैठे भक्ति की जा सके ऐसा मार्ग दिया, लेकिन वह धर्म तो उस काल के लिए ही था इसलए पाँच सौ साल तक ही रहेगा वे खुद ही ऐसा कहकर गए, और आज वे पूरे हो रहे हैं। अब आत्मधर्म प्रकाश में आएगा।

कविराज ने गाया है कि,

'मुरलीना पडघे झूमी जमुना बोली,
श्री कृष्णना प्रकाशक आवी गया छे।'

कृष्ण तो ग़ज़ब के पुरुष हो चुके हैं, वासुदेव थे और अगली चौबीसी में तीर्थंकर बनेंगे। कृष्ण तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे।

प्रश्नकर्ता : नैष्ठिक ब्रह्मचारी मतलब क्या?

दादाश्री : जिनके भाव में निरंतर ब्रह्मचर्य की ही निष्ठा है, वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाते हैं! डिस्चार्ज हो रहा अब्रह्मचर्य है और चार्ज हो रहा है अखंड ब्रह्मचर्य! कृष्ण भगवान की सोलह सौ रानियाँ थीं, फिर भी वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। ऐसा कैसे है, वह आपको समझाता हूँ। एक व्यक्ति चोरी करता है, लेकिन अंदर उसके भाव में निरंतर ऐसा रहा करता है कि, 'चोरी नहीं करनी है', तो वह नैष्ठिक अचौर्य कहलाता है। 'क्या चार्ज हो रहा है?' वही उसका हिसाब है! एक व्यक्ति दान देता है और मन में रहता है कि, 'कैसे इन लोगों से छीन लूँ', तो वह दान नहीं माना जाएगा। इन इन्द्रियों से जो प्रत्यक्ष दिखता है, नया बाँधने के लिए उसे नहीं माना जाता, लेकिन अंदर नया हिसाब क्या बाँध रहा है, जो चार्ज हो रहा है, वह माना जाता है!

प्रश्नकर्ता : तो फिर कृष्ण भगवान को चारित्रवान क्यों कहा है?

दादाश्री : वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। बल्कि, उनके चारित्र को दुष्चारित्र कहकर निंदा हुई है। कृष्ण तो वासुदेव थे। वासुदेव मतलब क्या? कि जो सभी चीज़ों के भोक्ता, लेकिन मोक्ष के अधिकारी होते हैं, ग़ज़ब के पुरुष होते हैं!

सच्चा ब्रह्मसंबंध

प्रश्नकर्ता : यह जो ब्रह्मसंबंध करवाते हैं वह क्या है?

दादाश्री : जब ब्रह्मरस टपकता है, तब लगनी लगती है और तब ब्रह्मसंबंध जुड़ता है। 'खुद का स्वरूप' समझ में आए उसी को खरा ब्रह्मसंबंध हुआ कहते हैं। एक क्षण भी स्वरूप भूलें नहीं, वही ब्रह्मसंबंध है, उसके बाद एक भी चिंता नहीं होती। हम यह 'स्वरूप का ज्ञान' देते हैं, तब फिर आपको निरंतर शुद्धात्मा का लक्ष्य रहता है। उसे, आपने खरा ब्रह्मसंबंध प्राप्त किया, कहा जाएगा! बाकी, कंठी तो सामान्य मर्यादा कहलाती है। आज खरा ब्रह्मसंबंध तो एक भी मार्ग में रहा ही नहीं है। अरे, जिनके खुद के ही ब्रह्मसंबंध का ठिकाना नहीं हो वे दूसरों का ब्रह्मसंबंध किस तरह करवा सकते हैं? वल्लभाचार्य ने तो वेदांत मार्ग को सुंदर पुष्टि दी थी। वल्लभाचार्य के समय में कैसे आचार थे? कि लोग महाराज के दर्शन करते और महाराज लोगों के शुद्धात्मा के दर्शन करते। यह तो काल की विचित्रता के कारण सबकुछ बदल गया है। ये जो महाराज साहब के लोग दर्शन करते हैं और उसके सामने महाराज यदि लोगों के आत्मा के दर्शन नहीं करेंगे तो महाराज खुद लुट जाएँगे! अब यह बात किसे समझ में आए? अब काल पूरा होने आया है, अब सभी रिलेटिव धर्म टॉप पर आएँगे। हम सभी अपसेट हो चुके रिलेटिव धर्मों को फिर से अपसेट कर देंगे, उससे क्या होगा? सेटअप हो जाएगा!

कृष्ण का साक्षात्कार

प्रश्नकर्ता : मीरा को, नरसिंह को, कृष्ण का साक्षात्कार किस तरह हुआ था?

दादाश्री : जो मीरा को और नरसिंह को दिखाई दिए वे कृष्ण नहीं थे, उसे देखने वाला कृष्ण है! जो कहता है कि, 'कृष्ण भीतर दिखाई देते हैं, वह तो दृश्य है, उसे देखने वाला द्रष्टा, वही सच्चा कृष्ण है और उस सच्चे कृष्ण के साक्षात्कार तो सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही

करवा सकते हैं। उस समय 'ज्ञानी पुरुष' नहीं थे इसलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उन्हें सच्चा साक्षात्कार हुआ था, लेकिन नरसिंह, मीरा, कबीर, अखा, ज्ञानदेव, तुकाराम वगैरह सभी भक्त अभी यहीं पर हैं, कोई भी मोक्ष में नहीं गया है, इस काल में हम से स्वरूप का ज्ञान ले गए हैं!

जब तक तू भक्त है तब तक भगवान तुझसे अलग हैं। जब भक्त और भगवान एक हो जाते हैं, तब काम पूर्ण होता है। कृष्ण को तो कोई पहचान ही नहीं सका। कृष्ण को किसी ने बंसरी वाला तो किसी ने गोपियों वाला वगैरह-वगैरह बनाया। कोई भी तसवीरें बेचे, और हम खरीद लेते हैं फिर उनकी आराधना करते हैं, यह सब व्यापार है! कृष्ण वैसे नहीं हैं। आप जैसी कल्पना करते हो, वे वैसे नहीं हैं। यह तो, लोग बालकृष्ण की भजना करते हैं। कोई ज्ञान में बूढ़े हो चुके, ज्ञानवृद्ध हो चुके योगेश्वर कृष्ण को नहीं भजते। बालकृष्ण को लोग झूले में बैठाते हैं। कृष्ण कहते हैं, 'लोग उल्टे हैं, हर साल लोग मेरे जन्मदिन पर भूखे रहते हैं और दूसरे दिन मालमलीदा खाते हैं। ऐसे मेरे खुद के ही भक्त मेरे विरोधी बन गए हैं। मुझे मुरली वाला बनाते हैं, कपटी कहते हैं, लीला करते हैं, ऐसा कहते हैं। मेरा जितना उल्टा हो सके, उतना उल्टा करते रहते हैं।' मूर्त के दर्शन करने से मूर्त बना जाता है और अमूर्त को भजने से अमूर्त बना जाता है, उससे मोक्ष मिलता है। स्वरूप में रमणता वह चारित्र है। शुद्ध दशा से अभेदता लगती है। आत्मवत् सर्वभूतेषु लगता है, वह निरा शुद्ध है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और सुख उत्पन्न हुआ, वही ज्योत है। यह दीया वह नहीं है। ज्ञाता-द्रष्टा वही कृष्ण। दृश्य, वह कृष्ण नहीं है।

मर्यादा और पूर्ण पुरुषोत्तम

प्रश्नकर्ता : राम मर्यादा पुरुषोत्तम और कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम कहा है। वह ठीक है?

दादाश्री : असल में कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम नहीं कह सकते,

राम को ही पूर्ण पुरुषोत्तम कह सकते हैं, क्योंकि राम मोक्ष में जा चुके हैं, राम परमात्मा हो चुके हैं। कृष्ण को परमात्मा नहीं कह सकते, भगवान कह सकते हैं। अभी तक वे मोक्ष में नहीं गए हैं, आने वाली चौबीसी में तीर्थंकर बनकर मोक्ष में जाने वाले हैं। यह तो, कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम किसलिए कहा है? प्रकट का महात्म्य गाने के लिए। जो मोक्ष में जा चुके हैं, वे कुछ नहीं कर सकते हमारे लिए। अभी तक जो हाज़िर हैं ब्रह्मांड में, उनसे कभी मेल हो जाएगा तो वे काम निकाल देंगे। देवकी, बलराम और कृष्ण तीनों एक ही कुटुंब के, तीर्थंकर बनने वाले हैं। उनके चाचा के बेटे नेमिनाथ भगवान बाइसवें तीर्थंकर हो चुके हैं। पूरा कुटुंब ही साँवला था उनका! लेकिन ग़ज़ब के पुरुष पैदा हुए उसमें!

गीता का रहस्य, यहाँ दो ही शब्दों में

प्रश्नकर्ता : कृष्ण भगवान ने अर्जुन को किसलिए महाभारत का युद्ध लड़ने को कहा था?

दादाश्री : भगवान को उस समय ऐसा बोलने का निमित्त था। अर्जुन को मोह उत्पन्न हुआ था, क्षत्रिय धर्म होने के बावजूद वह मूर्छित हो चुका था। इसलिए मूर्च्छा निकालने के लिए कृष्ण भगवान ने अर्जुन को सावधान किया और कहा, 'तेरी मूर्च्छा उतार, तू तेरे धर्म में आ जा। कर्म का कर्ता या अकर्ता तू मत बनना।' कृष्ण 'व्यवस्थित' जानते थे और 'व्यवस्थित' के नियम में जितना था उतना ही कृष्ण बोले हैं, लेकिन लोगों को समझ में नहीं आता और कहते हैं कि भगवान ज्ञानी होकर ऐसा क्यों बोले कि, 'इन सब को मार डाल?' यह तो कृष्ण का ऑन द मोमेन्ट का उपदेश था, कोई हमेशा के लिए यह उपदेश नहीं दिया कि, 'मारना ही।' अर्जुन को सभी रिश्तेदारों को देखकर मोह उत्पन्न हो गया था। भगवान जानते थे कि थोड़ी देर के बाद मोह उतर जाएगा, इसलिए कृष्ण भगवान ने नैमित्तिक रूप से बात की थी। उन्होंने अर्जुन से कहा, 'तू क्षत्रिय है और तेरे परमाणु लड़े बिना रहेंगे ही नहीं, हमें ज्ञान में यह दिख रहा है कि तेरा व्यवस्थित ऐसा है।

इसलिए तू झूठा मोह मत करना। मारने के लिए मोह के बिना कार्य कर, झूठा अहंकार मत करना।'

श्री कृष्ण ने नेमिनाथ भगवान से दिव्यचक्षु प्राप्त किए थे, उसके बाद उन्होंने यह गीता का उपदेश दिया था।

गीता में तो कृष्ण भगवान दो ही शब्द कहना चाहते हैं। वे दो शब्द लोगों की समझ में आ सकें, ऐसा नहीं है। इसलिए गीता का इतना बड़ा स्वरूप दिया और उस स्वरूप को समझने के लिए लोगों ने फिर से विवेचन लिखे हैं। कृष्ण भगवान ने खुद ने कहा है कि, 'मैं जो गीता में कहना चाहता हूँ उसका स्थूल अर्थ एक हज़ार में से एक व्यक्ति समझ सकेगा। ऐसे एक हज़ार स्थूल अर्थ समझने वाले व्यक्तियों में से एक व्यक्ति गीता का सूक्ष्म अर्थ समझ सकेगा। ऐसे एक हज़ार सूक्ष्म अर्थ समझने वालों में से एक व्यक्ति सूक्ष्मतर अर्थ को समझ सकेगा। ऐसे एक हज़ार सूक्ष्मतर अर्थ को समझने वालों में से एक व्यक्ति गीता का सूक्ष्मतम अर्थ अर्थात् मेरा आशय समझ सकेगा!' कृष्ण भगवान क्या कहना चाहते थे कि 'वही एक' उसे समझ सकेगा। अब इस साड़े तीन अरब की बस्ती में कृष्ण भगवान को समझने में किसका नंबर लगेगा? कृष्ण भगवान जो कहना चाहते थे वे दो ही शब्दों में कहना चाहते थे, उसे तो, जो खुद कृष्ण बन चुका हो, वही समझ सकता है और कह सकता है, अन्य किसी का काम नहीं है। आज 'हम' खुद, कृष्ण आए हैं, तुझे तेरा जो काम निकालना हो वह निकाल ले। कृष्ण क्या कहना चाहते हैं? व्यक्ति मर जाए तब कहते हैं न कि, 'अंदर से चले गए।' वह क्या है? वह 'माल' है और यहाँ पड़ा रह जाता है, वह 'पैकिंग' है। इन चर्मचक्षुओं से दिखता है वह पैकिंग है और अंदर 'माल' है, मटीरियल है। देयर आर वेराइटीज़ ऑफ पैकिंग्स। कोई आम का पैकिंग, कोई गधे का पैकिंग, तो कोई मनुष्य का पैकिंग या स्त्री का पैकिंग है लेकिन अंदर माल शुद्ध है, एक सरीखा है सभी में। पैकिंग तो भले ही कैसा भी हो, सड़ा हुआ भी हो, लेकिन व्यापारी पैकिंग की जाँच नहीं करता, अंदर 'माल'

ठीक है या नहीं, उतना देख लेता है। उसी तरह हमें भी अंदर के माल के दर्शन कर लेने हैं।

कृष्ण भगवान कहते हैं, ''अंदर जो 'माल' है वही मैं खुद हूँ, वे ही कृष्ण हैं, उन्हें पहचान तो निबेड़ा आएगा तेरा, बाकी, लाख जन्म भी तू गीता के श्लोक गाएगा तो भी तेरा निबेड़ा नहीं आएगा!'' पैकिंग और माल इन दो शब्दों में, कृष्ण भगवान जो कुछ कहना चाहते थे वह है और ये बुद्धिशाली लोग गीता का अर्थ करने जाते हैं, उसकी पुस्तकें छपवाते हैं! मूलतः तो इन लोगों को अर्क निकालना ही नहीं आता और बड़े-बड़े विवेचन, टीकाएँ लिखकर अर्क निकालने गए हैं, लेकिन ये तो खुद के स्वच्छंद से अपना नाम फैलाने के लिए ही करते हैं! बाकी तो, दो ही शब्दों में कृष्ण भगवान का 'अंतर आशय' समा जाता है।

बेटा यदि हॉस्टल में पढ़ रहा हो तब फादर उसे कड़े शब्दों में पत्र लिखते हैं, 'तू पढ़ता नहीं है और मेरे पैसे बिगाड़ रहा है, सिनेमा-नाटक देखता रहता है, कुछ भी नहीं करता है।' तब बेटा क्या करता है कि बाप का पत्र खुद के फ्रेन्ड को दिखाता है और कहता है कि, 'देख न, मेरे फादर कैसे हैं? जंगली हैं, क्रोधी हैं और लोभी हैं, कंजूस हैं।' लड़का ऐसा क्यों कहता है? क्योंकि उसे फादर की बात समझ में नहीं आती, वह फादर का अंतर आशय नहीं समझ सकता है। फादर और बेटे में मात्र पच्चीस ही सालों का डिफरन्स है, फिर भी बाप का अंतर आशय बेटा नहीं समझ पाता, तो फिर कृष्ण भगवान को गए तो पाँच हज़ार साल हो गए, तो पाँच हज़ार साल के डिफरेन्स में कृष्ण भगवान का अंतर आशय कौन समझ सकेगा? उनका अंतर आशय कौन बता सकेगा? वह तो जो 'खुद' कृष्ण भगवान हैं, वे ही बता सकते हैं! महावीर के अंतर आशय की बात कौन बता सकता है? वह तो जो खुद महावीर हैं, वे ही बता सकते हैं। महावीर का भी 2500 साल का डिफरेन्स हो चुका है।

पहले के ज़माने में तो पच्चीस साल के डिफरेन्स में बाप का

अंतर आशय बेटा समझ जाता था, जबकि आज तो पच्चीस साल के अंतर में अंतर आशय समझने की शक्ति नहीं रही है, तो फिर कृष्ण की बात किस तरह समझ में आएगी? अभी गीता के बारे में बहुत कुछ लिखा जा रहा है, लेकिन लिखने वाला उसमें से एक बाल बराबर भी नहीं समझता। यह तो ऐसा है कि 'अंधे को मिला अंधा, बोरे में मिला तिल से तिल, न रहा तिल, न ही रही घाणी!' उसके जैसा है। हाँ, वह गलत नहीं है, करेक्ट है, लेकिन वह बात फर्स्ट स्टैन्डर्ड के मास्टर जैसी है और वह ठीक है। यहाँ हमारे पास कैसी बात होती है? कॉलेज के अंतिम साल की बात होती है। जिस प्रकार वहाँ फर्स्ट स्टैन्डर्ड की बातें होती हैं, उसी प्रकार ये गीता के विवेचन की बातें होती हैं। सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' के पास ही सर्व शास्त्रों की यथार्थ बातें मिल सकती हैं।

अर्जुन को विराट दर्शन

प्रश्नकर्ता : कृष्ण भगवान ने अर्जुन को विश्वदर्शन करवाया था, वह क्या है?

दादाश्री : वह विश्वदर्शन, वह आत्मज्ञान नहीं है। ये कितने सारे जन्म लेते हैं और मर जाते हैं, फिर जन्मते हैं, ऐसे कालचक्र में सभी खपते रहते हैं, इसलिए कोई मारने वाला नहीं है, कोई जिलाने वाला नहीं है, इसलिए हे अर्जुन, तुझे जो मोह है, 'मैं मार रहा हूँ', वह गलत है, उसे छोड़ दे। इसलिए कृष्ण ने अर्जुन को भयानक रौद्र रूप दिखाया था, सभी को मृत दिखाया था। वह विराट स्वरूप अर्जुन को बताया। एक बार तो अर्जुन घबरा गया। फिर उसे समझ में आ गया, इसलिए वह लड़ने के लिए तैयार हो गया। फिर उन्होंने उसे सौम्य रूप बताया। इस तरह कृष्ण को जो दिखाई दिया था, वही उन्होंने अर्जुन को बताया। उस विराट स्वरूप को हम 'व्यवस्थित' कहते हैं।

जेब कटी तो भी 'व्यवस्थित', इसलिए फिर उससे कुछ नहीं होता, आगे की वासनाएँ खड़ी नहीं होती, मोह खड़े नहीं होते। भीतर

प्रेरणा हुई तो चलने लगना। यह तो सारी मशीनरी कहलाती हैं, 'व्यवस्थित' के चलाने से चलती हैं।

सुदर्शन चक्र

प्रश्नकर्ता : कृष्ण का सुदर्शन चक्र, वह क्या था?

दादाश्री : वह तो नेमीनाथ भगवान ने उन्हें सम्यक् दर्शन दिया था, वह! सुदर्शन मतलब सम्यक् दर्शन, उसके लोगों ने चक्र चित्रित कर दिए! वे लोग ऐसा समझे कि चक्र लोगों को काट डालता है!

एक महाराज ने मुझसे पूछा कि, 'मैंने सुना है कि आप एक घंटे में दिव्यचक्षु देते हैं, वे कैसे होते हैं?' मैंने कहा, 'गाड़ी के पहिये जितने!' अब उन्हें तो क्या कहें? कृष्ण भगवान ने अर्जुन को गीता का उपदेश देते समय जो दिव्यचक्षु पाँच मिनट के लिए दिए थे, वही दिव्यचक्षु हम आपको एक घंटे में ही परमानेन्ट दे देते हैं, उससे आपको 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' दिखता है। 'ज्ञानी पुरुष' आपके अनंतकाल के पापों का पोटला बनाकर भस्मीभूत कर देते हैं', ऐसा कृष्ण भगवान ने कहा है। सिर्फ पाप जला देते हैं इतना ही नहीं, लेकिन साथ ही साथ उन्हें दिव्यचक्षु देते हैं और स्वरूप का लक्ष्य करवा देते हैं! इस अक्रम मार्ग के 'ज्ञानी पुरुष' 'न भूतो न भविष्यति' ऐसे प्रत्यक्ष हैं, वे हैं तब तक काम निकाल लो!

वेद, तीन गुणों में ही हैं

कृष्ण भगवान ने गीता में कहा है कि, 'वेद तीन गुणों से बाहर नहीं हैं, वेद तीन गुणों को ही प्रकाशित करते हैं।' कृष्ण भगवान ने 'नेमीनाथ' से मिलने के बाद गीता कही थी, उससे पहले वे वेदांती थे। उन्होंने गीता में कहा, 'त्रैगुण्य विषयो वेदो निस्त्रैय गुण्यो भवार्जुन', यह ग़ज़ब का वाक्य कृष्ण ने कह दिया है! 'आत्मा जानने के लिए वेदांत से परे जाना', कह दिया है! उन्होंने ऐसा कहा कि, 'हे अर्जुन! आत्मा जानने के लिए तू त्रिगुणात्मक से परे हो।' त्रिगुणात्मक कौन–

कौन से? सत्व, रज और तम। वेद इन्हीं तीन गुण वाले हैं, इसलिए तू उनसे परे हो जाएगा तभी तेरा काम होगा। और फिर ये तीन गुण द्वंद्व हैं, इसलिए तू त्रिगुणात्मक से परे हो जा और आत्मा को समझ! आत्मा जानने के लिए कृष्ण ने वेदांत से बाहर जाने को कहा है, लेकिन लोग समझते नहीं है। चारों ही वेद पूरे होने के बाद वेद इटसेल्फ क्या कहते हैं? दिस इज़ नोट देट, दिस इज़ नोट देट, तू जिस आत्मा को ढूँढ रहा है वह इसमें नहीं है। 'न इति, न इति', इसलिए तुझे यदि आत्मा जानना हो तो गो टु ज्ञानी।

कृष्ण भगवान ने कहा है कि, 'यह जगत् भगवान ने नहीं बनाया है, लेकिन स्वभाविक रूप से बन गया है!'

सच्चा सन्यास और निष्काम कर्म

कृष्ण भगवान ने मोक्ष के दो रास्ते बताए, एक सन्यास और दूसरा निष्काम योग।

सन्यास शब्द बहुत ऊँचा है। लेकिन कोई उसे समझता नहीं है। लोग तो जो भी भगवा वस्त्र पहनते हैं, उन्हें सन्यासी कहने लगे! सन्यास मतलब न्यास लेना, मन-वचन-काया में से, सब तरफ से आत्मा खींचकर आत्मा में रख दे, उसे सन्यास कहते हैं। जब तक 'ज्ञानी पुरुष' आत्मा का ज्ञान नहीं देते, तब तक सन्यासी बन ही नहीं सकता। जो खेत में गया है, वह घर पर नहीं हो सकता और घर में है, वह खेत में नहीं हो सकता। उसी प्रकार धर्म सन्यासी है, वह निरंतर आत्मा में ही रहता है।

निष्काम योग तो लोग कहते हैं कि, 'काम कर, लेकिन फल की आशा मत रखना।' अरे, फल की आशा रखे बगैर तो घर से बाहर जीवजंतु भी नहीं जाते, फल की आशा रखे बगैर कोई काम ही नहीं करता। चप्पल की आशा रखे बगैर मोची के वहाँ कौन जाता है? फल की आशा के बगैर तो कोई काम करता ही नहीं। यदि पता चले कि, 'आज बाज़ार में सब्ज़ी नहीं मिलेगी', तो कोई सब्ज़ी लेने जाएगा ही

नहीं। फिर भी ऐसा कहना पड़ता है कि, 'फल की आशा रखे बगैर तू काम कर।' इससे क्या होता है कि काम करते समय यह वाक्य चुभता है कि, 'भगवान ने तो फल की आशा रखे बगैर काम करने को कहा है।' इससे उसका फल अच्छा आता है। यदि फल की आशा रखे बिना काम करे तो लोग प्रगति करेंगे, लेकिन कृष्ण भगवान जो कहते हैं, उसे लोग समझे नहीं हैं। भगवान ने तो क्या कहा है कि, 'यदि तू सब्ज़ी लेने जाए तो सब्ज़ी की आशा रखना, लेकिन यदि सब्ज़ी लेने के बाद कड़वी निकले तो जो भी ले लिया गया, वही फल है। उसमें फल की आशा मत रखना, अर्थात् राग-द्वेष मत करना। जो हुआ उसे स्वीकार कर लेना।' यदि जेब कट जाए तो शांति रखना, उस पर विलाप मत करना। वहाँ पर समता रखना, राग-द्वेष मत करना। यहाँ से साड़ी लेने गए, इसलिए साड़ी की आशा तो होती ही है, लेकिन फिर यदि साड़ी खराब निकले तो डिप्रेस मत होना। साड़ी भले ही कैसी भी निकले, जैसी निकली वह भले ही हो, वहाँ पर फल की आशा मत रखना, राग-द्वेष मत करना, ऐसा कहना चाहते हैं, बाकी, चप्पल की आशा रखे बगैर मोची के वहाँ कौन जाएगा? मोची के वहाँ जाना, लेकिन अच्छा या बुरा, प्रिय या अप्रिय की आशा मत रखना। अर्थात् प्रिय या अप्रिय की आशा नहीं रखना, वही निष्काम कर्म है।

भगवान ने गीता में कहा है कि, 'अभ्यास करना।' तो अभी गीता का इतना अधिक अभ्यास किया कि अभ्यास ही अध्यास हो गया। अध्यास छोड़ने के लिए भगवान ने अभ्यास करने को कहा, तो अभ्यास का ही अध्यास हो गया!

कृष्ण के एक भी शब्द का अर्थ आज कोई जानता ही नहीं है। सभी क्रियाओं में 'मैं करता हूँ' ऐसा भान नहीं रहे, वह सन्यस्त योग है और वही सन्यासी कहलाता है! ये आज के सन्यासियों में एक बूंद भी सन्यस्त नहीं है। आत्मा आत्मा में ही रखा वही सन्यस्त योग! संपूर्ण सन्यासी मतलब धर्म सन्यास। तो यह अपना अंतिम सन्यास है,

तो यहाँ आत्मा आत्मा में रहता है, आत्मा शुद्धात्मा में ही बरतता है। अपना यह अलौकिक धर्म है! इन लौकिक धर्मों में तो आत्मा में से सन्यस्त लेकर देह में डालते हैं!

कृष्ण भगवान ने कहा है कि ये तीन गुण हों, तभी वह सच्चा सन्यासी है, फिर वह गृहस्थ हो, त्यागी हो या कोई भी हो :

1. कर्तृत्व का अभिमान नहीं हो।
2. आसक्ति नहीं हो।
3. कामना नहीं हो।

यह आसक्ति तो देह का गुण है, वह कैसा है? जैसे लोहचुंबक और आलपिन का संबंध होता है, उसी तरह देह को फिट (के साथ मैच) हों वैसे परमाणुओं के प्रति देह खिंचता है। उसमें आत्मा को कुछ भी लेना-देना नहीं है, किन्तु लोग तो भ्रांति से मानते हैं कि, 'मैं खिंचा।' हमें तो देह से आसक्ति है और आत्मा से अनासक्त हैं। आत्मा नहीं खिंचता। आत्मा जिसमें तन्मयाकार नहीं होता, उस चीज़ का उसे त्याग बरता कहलाता है। कर्तृत्व का अभिमान, वही आसक्ति है।

स्वरूप की प्राप्ति के बाद आपके मन के परिणाम भले ही कितने भी उछलें, फिर भी वे आप पर असर नहीं डालते। 'ज्ञानी' में और आप में फर्क कितना? *उपाधि* जितना, ज्ञानी को *उपाधि* नहीं रहती, जबकि आपको *उपाधि* रहती है!

स्थितप्रज्ञ या स्थितअज्ञ?

एक महापंडित हमारी परीक्षा लेने के लिए पूछने आए थे, 'स्थितप्रज्ञ दशा क्या होती है?' उन्होंने पूछा। मैंने उन्हें समझाया, 'तू खुद स्थितअज्ञ दशा में है! अब तू खुद ही नाप लेना कि तू इस किनारे पर है तो स्थितप्रज्ञ दशा का सामने वाला किनारा कैसा होना चाहिए!' उन्हें मैंने आगे कहा कि, 'आपको मीठा लगे वैसा कहूँ या कड़वा लगे वैसा कहूँ? आप स्थितअज्ञ दशा में ही हो, पंडिताई के कैफ़ में घूम रहे हो। इससे अच्छा तो यह दारू का कैफ़ है कि पानी डालते ही उतर जाता है। आपने तो हमेशा का कैफ़ चढ़ा लिया है, वह नींद में भी नहीं उतरता है। हमारे पाँच ही मिनट के दर्शन करने से आपका जन्मोंजन्म का कल्याण हो जाए, वैसा है। यहाँ पर सभी भगवान के दर्शन हो जाएँ वैसा है, आपको जिनके दर्शन करने हों, करना।'

स्थितप्रज्ञ, वह अनुभवदशा नहीं है। 'यह आत्मा है और अन्य से वह पर है', शब्द से ऐसा भेद डालना शुरू हो जाए तो स्थितप्रज्ञ दशा शुरू हो जाती है और ठेठ आत्मा का अनुभव होने तक जो दशा रहती है, वह स्थितप्रज्ञ दशा कहलाती है! कृष्ण भगवान ने जो मार्ग बताया, वह स्थितप्रज्ञ दशा तक आता है, लेकिन उससे आगे तो बहुत कुछ है! हम आपको स्वरूप का ज्ञान देते हैं, फिर तो आपको स्थितप्रज्ञ दशा से भी बहुत अधिक ऊँची दशा रहती है। स्थितप्रज्ञ दशा और आत्मा जानना इनमें बहुत फर्क है। स्थितप्रज्ञ, यानी प्रज्ञा में स्थिर होना, लेकिन वह रिलेटिव प्रज्ञा है, उसके बाद उसे आत्मा प्राप्त करना है

और हम लोगों के पास जो प्रज्ञा है, वह आत्मा प्राप्त करने के बाद वाली है, इसलिए राग-द्वेष किए बिना समभाव से हल आ जाता है! स्थितप्रज्ञ दशा मतलब शुद्ध हो चुकी बुद्धि से आत्मा के गुणधर्म जानता है और उसे पहचान जाता है, लेकिन अनुभूति नहीं होती। स्थितप्रज्ञ दशा से तो दुनिया को और सभी तत्वों को जानता है, पहचानता है, उसी को शुद्ध समकित कहते हैं। हम जो स्वरूप ज्ञान देते हैं, उससे तो आत्मा की डायरेक्ट अनुभूति होती है, वह 'परमार्थ समकित' है, उससे जगत् को और जगत् के तत्वों को देखा जा सकता है, पहचाना जा सकता है और अनुभव किया जा सकता है!

स्थितप्रज्ञ दशा में इमोशनल नहीं होता। मोशन में रहे वह स्थितप्रज्ञ, लेकिन समाधि उत्पन्न नहीं होती। ज्ञान के बिना समाधि उत्पन्न नहीं होती। भ्रांति चली जाए, तब समाधि उत्पन्न होती है!

गीता में कृष्ण भगवान अंतिम स्टेशन किसे कहना चाहते हैं? उसमें स्थितप्रज्ञ दशा, वही अंतिम स्टेशन है। 'यह स्थितप्रज्ञ दशा प्राप्त कर' ऐसा कहते हैं। लेकिन लोगों को उनसे पूछना पड़ा कि, 'स्थितप्रज्ञ क्या खाता है? वह क्या पीता है?' तब भगवान को समझाना पड़ा कि, 'जो प्रज्ञा में स्थिर हो चुके हैं, वे असार को एक ओर रख देते हैं और सार को ग्रहण करते हैं, वह स्थितप्रज्ञ दशा!' और यह आपकी शुद्धात्मा दशा, यह तो उससे भी बहुत ऊँची दशा है। कृष्ण भगवान ने लिखा है न कि 'तू वीतराग बनेगा तो निर्भय हो जाएगा!'

प्रज्ञाशक्ति

दो प्रकार की शक्तियाँ हैं। आत्मा का तो वैसे का वैसा ही स्वरूप है, जैनों में, वैष्णवों में, मज़दूरों में, सभी के आत्मा एक ही स्वरूप वाले हैं, लेकिन सिर्फ दो ही प्रकार की शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। अज्ञान के ही संयोग मिलें, तब अज्ञाशक्ति उत्पन्न होती हैं, उसे अज्ञानब्रह्म कहा जाता है, उससे जगत् का सर्जन होता है। यह अज्ञाशक्ति ठेठ तक संसार से बाहर ही नहीं निकलने देती। पूरा संसारकाल पूर्ण

होने तक, अनंतकाल तक अज्ञाशक्ति ही सभी चला लेती है। जब 'ज्ञानी पुरुष' का संयोग मिलता है, तब वे ज्ञान देते हैं, फिर प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न होती है, उसे प्रज्ञानब्रह्म कहा जाता है। प्रज्ञा, वह अज्ञान के संयोगों का वियोग करवाकर विसर्जन करवाती है और निरंतर मोक्ष की तरफ, मुक्ति की तरफ प्रयाण करवाती है। 'ज्ञानी पुरुष' से मिले बिना प्रज्ञा उत्पन्न हो ही नहीं सकती। प्रज्ञाधारी में ब्रह्मशक्ति उत्पन्न होने के बाद अज्ञाशक्ति का नाश होता है, उसके बाद प्रकृतिशक्ति सभी चला लेती है।

प्रज्ञाशक्ति का स्वभाव कैसा है? कहीं से भी, जैसे-तैसे करके सभी संसारी व्यवहारों का हल लाते-लाते मोक्ष में ले जाना, ऐसा है। और अज्ञाशक्ति निरंतर क्या प्रयत्न करती है? वह संसार से बाहर नहीं जाने देती। इसमें आत्मा को कुछ भी नहीं करना पड़ता, अज्ञा या प्रज्ञा, वह खुद की शक्ति नहीं है, लेकिन साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स से खड़ी हो जाती है। 'ज्ञानी पुरुष' का चरम संयोग मिले और ज्ञान प्राप्त हो जाए तब प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है और अंदर वह निरंतर बार-बार सावधान करती रहती है, तो हमें ऐसा लगता है कि, 'यह नया कौन घुस गया है?' हम शुद्धात्मा देते हैं तब आपके भीतर प्रज्ञा को बैठा देते हैं। जैसे भरत राजा को हर पंद्रह मिनट में नौकर 'भरत चेत, भरत चेत' ऐसे सावधान करते थे, उसी तरह फिर यह प्रज्ञा आपको सावधान करती रहती है। लेकिन इस काल में जहाँ आप ही डेढ़ सौ रुपये की नौकरी करते हैं, वहाँ चौबीस घंटे के तीन नौकर कैसे रख पाओगे? इसलिए हम आपके भीतर ही चौबीस घंटे का नौकर बैठा देते हैं, वह प्रज्ञा ही आपको हर क्षण सावधान करती है। बाहर की कोई भी फाइल आ जाए तो प्रज्ञा हाज़िर हो ही जाती है। और ज्ञानवाक्य हाज़िर करके जागृत करवाती है और फाइल का समभाव से *निकाल* भी वही करवाती है।

प्रज्ञा तो आत्मा का एक अंग है, वह आत्मा का और बाहर का संधान करवाती है। शुद्धात्मा तो शुद्ध ही है, लेकिन प्रज्ञा क्या करती

है? कि व्यवहार, व्यवहार में रहे और त्यौहार, त्यौहार में रहे और खुद को शुद्धात्मा में रखती है। प्रज्ञा तो निरंतर संसार में से निकालकर मोक्ष की तरफ ले जाती है। आत्मा के अनंत प्रदेश हैं, उन सभी पर आवरण हैं। आपको ज्ञान दिया है इसलिए प्रतिदिन जैसे-जैसे आवरण टूटते जाते हैं, वैसे-वैसे प्रकाश बढ़ता जाता है, दोष दिखते जाते हैं और जितने दोष दिखते हैं, उतने भाग जाते हैं। यह तो पूरा दोषों से भरा हुआ पुतला है, और सभी दोषों के खत्म होने के बाद, मोक्ष होगा! ज्ञान मिलने के बाद चंदूभाई और आप 'खुद' जुदा हो जाते हो, फिर प्रज्ञा से चंदूभाई के दोष दिखते जाते हैं। जितने दोष दिखें, उतने चले जाते हैं। ज्ञान नहीं था, तब निरे दोष ही ग्रहण हो रहे थे, नहीं डालने होते, फिर भी घुस जाते थे। अब ज्ञान के बाद दोष छूटते जाते हैं और जितने दोषों ने विदाई ली, आप उतने वीतराग होते जाते हो! अंत में परमात्मा स्वरूप हो जाना चाहिए, लेकिन आत्मस्वरूप हुए बिना सच्ची समझशक्ति नहीं आती। वीतराग आत्मस्वरूप हो चुके थे और इसलिए समझ-बूझकर दोषों का निकाल किया और मोक्ष में गए!

केवलज्ञान के अंश के भाग को प्रज्ञा कहते हैं। एक-एक आत्मा में पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की शक्ति है! इस खोखे में से निरावरण होकर निकले तो एक-एक आत्मा में पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की शक्ति है। इसलिए ही इन वेदांतियों ने कहा है न कि 'आत्मा सर्वव्यापी है।' लेकिन सर्वव्यापी, वह किस प्रकार से? आत्मा का प्रकाश पूर्ण रूप से सर्वव्यापी है और उस संपूर्ण प्रकाश के होने के बाद आत्मा यहाँ पर किसलिए खिचड़ी खाने को बैठा रहेगा? फिर तो वह सिद्धक्षेत्र में चला जाता है।

खुद अपने आपकी पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की जो स्वसंवेदन शक्ति है, उसे केवलज्ञान कहते हैं। हमारे ज्ञान देने के बाद रात को जो अनुभव में आता है, वह स्वसंवेदन शक्ति है। देह है इसलिए उसके आधार पर स्वसंवेदन कहते हैं, नहीं तो वेदना ही नहीं होती न!

जो पराया है, उसे कभी भी खुद का नहीं मानने दे और खुद का है उसे कभी भी पराया नहीं मानने दे, वह प्रज्ञा! सत्संग से प्रज्ञाशक्ति खिलती जाती है। किंचित्मात्र भी पराई चीज़ को खुद की नहीं माने तो वह परमात्मा ही है। 'खुद' के और 'पराये' को भिन्न रखने की श्रद्धा है, लेकिन वर्तन में नहीं है-वह प्रज्ञा है, ऐसी श्रद्धा ही प्रज्ञा है और ऐसा वर्तन ही आत्मा है, वही चारित्र है। वर्तन यानी आत्मा और अनात्मा को एकाकार नहीं होने दे, वह।

बंध (कर्म बंधन) किससे पड़ता है? अज्ञान से, और मोक्ष किससे होता है? प्रज्ञा से। आत्मा प्राप्त होने के बाद प्रज्ञा उत्पन्न होती है, वह रियल और रिलेटिव दोनों को संभालती है, अज्ञा क्या कहती है? कि 'मैंने किया, मैंने भोगा', तब प्रज्ञा क्या कहती है? कि 'मैं कर्ता नहीं हूँ! उसने गाली दी फिर भी वह कर्ता नहीं है।' प्रज्ञा उत्पन्न होने के बाद राग-द्वेष का निंदन हो जाता है, आत्मा को कुछ भी नहीं करना पड़ता। यह 'अज्ञा' शब्द हमारे भीतर से स्फुरित हुआ है, हमने नया शब्द डाला है। यह तो प्रज्ञा को समझाने के लिए अज्ञा शब्द रखना पड़ा, क्योंकि प्रज्ञा को समझने वाला ही अज्ञा को जान सकता है। क्रमिक मार्ग में जहाँ पर अहंकार को शुद्ध करते-करते आगे बढ़ना है, वहाँ सब मन से करना पड़ता है, और इस अक्रम मार्ग में प्रज्ञादशा से सब होता है, सबकुछ आत्मा के प्रज्ञा भाग से होता है। अज्ञाभाग से प्रविष्ट हुआ और छुटकारा प्रज्ञाभाग से होता है। यह तो कौन से भाग से प्रवेश पाया, वह समझ में आए तो छूटने का मार्ग मिलता जाता है। जो शक्ति तुझे संसार में ठोकरें खिलाती है उसे पहचान, तो प्रज्ञाशक्ति पहचानी जा सकेगी। अज्ञसंज्ञा-वह चोर्यासी लाख योनियों में भटकाने वाली चीज़ है। कार्यरूप में स्थित अज्ञ दशा से संसार खड़ा होता है और कार्यरूप में स्थित प्रज्ञा से संसार का विलय होता है। आत्मा प्राप्त करने के बाद बुद्धि का आधार टूट जाता है और प्रज्ञाधारी बनते हैं। जब ज्ञान टॉप पर आए, तब प्रज्ञाधारी कहलाते हैं, आत्मज्ञान डायरेक्ट 'हमारे' द्वारा मिलता है!

इन दो शक्तियों में से दूसरी शक्ति, अज्ञाशक्ति खुद ने अंहकार करके खींच ली है, 'मैं करने वाला हूँ', कहकर। अब यह अज्ञाशक्ति हर एक की स्वतंत्र होती है, हर एक जीव पर यह लागू होता है और सारी अज्ञाशक्तियाँ इकट्ठी होती हैं तब व्यवस्थित शक्ति उत्पन्न होती है। हर एक में अज्ञाशक्ति होती है, हर एक के कपाल पर रेग्युलेटर ऑफ द वर्ल्ड है ही, इसलिए साथ-साथ सब काम होता रहेगा, यानी कि इसमें आपको 'खुद' कुछ भी करना पड़े, ऐसा नहीं है। व्यवहार अपने आप चलता रहेगा। मनुष्य की आँख में लाइट किस कारण से रहती है और किस कारण से वह चली जाती है, यह कौन जानता है? ये डॉक्टर तो निमित्त हैं, वे क्या बचाएँगे? यदि डॉक्टर बचाने वाला होता तो उसकी माँ मर गई, बाप मर गया, उन सब को बचा न! यह जगत् व्यवस्थित शक्ति के आधार पर चल रहा है, तो आपका व्यवहार भी उसी से चलता रहेगा।

अज्ञाशक्ति से जगत् की अधिकरण क्रिया चलती रहती है और क्रमिक मार्ग में वह ठेठ तक रहती है और अंत में जब प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न होती है तब अज्ञाशक्ति विदा ले लेती है और वह प्रज्ञा ही ठेठ मोक्ष तक ले जाती है। यहाँ अक्रम मार्ग में ज्ञान मिलते ही प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है, फिर आपको कुछ भी नहीं करना पड़ता, प्रज्ञा ही काम करती रहती है। यह प्रज्ञा किससे उत्पन्न होती है? साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स के आधार पर! और अगर वैसे एविडेन्स उत्पन्न हो जाएँ तो सिद्ध भगवान में भी प्रज्ञा उत्पन्न हो जाए, लेकिन वहाँ ऐसे एविडेन्स उत्पन्न होते ही नहीं। और यहाँ तो समसरण मार्ग है इसलिए निरंतर संयोगों के धक्के से अज्ञाशक्ति उत्पन्न होती है और यदि 'ज्ञानी पुरुष' का योग मिल जाए तो प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न हो जाती है और अज्ञाशक्ति विदा ले लेती है।

वेदांत

समकित प्राप्त करने के लिए दो मार्ग हैं : वेदांत और जैन। भगवान ने कहा है कि, 'वेदांत के मार्ग पर जाएगा, तब भी समकित प्राप्त होगा और जैन के मार्ग पर जाएगा, तब भी समकित प्राप्त होगा।' लेकिन वेदांत वालों से कहा कि, 'आप जैनों के शास्त्र पढ़ना!' और जैनों से कहा कि, 'आप वेदांत के शास्त्र पढ़ना!'

प्रश्नकर्ता : सभी धर्म वाले कभी भी एक हो सकते हैं क्या?

दादाश्री : नहीं। ये 360 डिग्रियाँ होती हैं, वे सभी डिग्रियाँ क्या कभी एक डिग्री बन सकती हैं? नहीं। ये सभी अलग-अलग डेवेलपमेन्ट तो रहेंगे ही।

प्रश्नकर्ता : जैन और वैष्णव, वे क्या है?

दादाश्री : वैष्णव बिलो नॉर्मल की बोर्डर पर होते हैं जबकि जैन और वेदांत अबव नॉर्मल की बोर्डर पर होते हैं। यह जो ईंट होती है, वह एकदम कच्ची भी नहीं चलती और बहुत ज़्यादा पकी हुई भी नहीं चलती, वह तो ठीक से पकाई हुई ही चलती है। उसी तरह धर्म और जीवन में भी सभी को नॉर्मेलिटी में ही आना पड़ेगा।

कोई व्यक्ति यदि भगवान से पूछे कि, 'भगवान, हम जैन धर्म का पालन करते हैं तो हमारा मोक्ष होगा?' भगवान कहेंगे, 'तेरे जैन के परमाणु हों या वेदांत के परमाणु हों, जो हों वे, लेकिन वे सभी

परमाणु खत्म हो जाएँगे तब मोक्ष होगा!' जैन को जैन के और वेदांती को वेदांत के सभी परमाणु खाली करने पड़ेंगे, तभी मोक्ष होगा!

जहाँ पुण्य और पाप दोनों ही हेय हैं, उसे भगवान ने मोक्षमार्ग कहा है और बाकी के सभी अन्य मार्ग हैं, ऐसा कहा है। अन्य मार्ग, वे व्यवहार मार्ग हैं, पाप-पुण्य जिसमें उपादेय हैं, वह व्यवहार मार्ग में समाता है।

अज्ञान से ही मोक्ष रुका है

जैनों में कहा गया है कि, 'राग, द्वेष और अज्ञान निकाल' और वेदों में भी कहा गया है कि 'मल, विक्षेप और अज्ञान निकाल।' यानी इन दोनों में अज्ञान कॉमन है, मुख्य है। यदि 'ज्ञानी' से 'ज्ञान' मिल जाए तो सारा अज्ञान निकल जाए, ऐसा है।

जैनों ने कहा है कि 'उपयोग रखो।' और वेदांतों ने कहा है कि 'साक्षी भाव रखो।' ये साक्षी भाव से रहने जाते हैं, लेकिन विवाह में तो नहीं रह पाते! ये सभी तो उपचार कहलाते हैं। जब तक ज्ञानी नहीं मिलते, तब तक दवाई तो चुपड़नी चाहिए न? उपचार तो करने चाहिए न? और ज्ञानी मिल गए तो काम ही हो गया!

भीतर जो बैठे हैं, वे 'शुद्धात्मा' भगवान हैं। उन्होंने मुझे 'योग' करवा दिया है, इनका व्यापार 'योगक्षेम' कर देने का है। अब इन्होंने आपको योग कर दिया है इसलिए आपकी 'हमसे' भेंट हो गई और अत्यंत दुर्लभ हैं, ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' से भेंट हुई है तो 'ज्ञानी पुरुष' अब आपको 'क्षेम' करवा देंगे। ज्ञानी चाहे सो कर सकते हैं! 'योग' हो गया, मतलब काम हो गया। 'शुद्धात्मा' योग मिलवा देते हैं और वहाँ फिर अक़्ल लड़ाने जाए तो हो चुका न? यह स्वच्छंद रोग तो ऐसा है कि क्रॉनिक हो गया है! स्वच्छंद मतलब ओवरवाइज़। यदि मुझे दादर आना हो तो पहले उसका ज्ञान होना चाहिए और यदि घर नहीं मिले तो मुझे किसी जानकार से पूछना पड़ेगा, उसी तरह मोक्ष में जाने के लिए किसी जानकार से पूछना पड़ता है। भीम ने तो लोटे को गुरु

बनाया था, और 'ॐ नमः शिवाय' ऊपर लिखा तो शिव प्रकट हो गए। यह तो भीम था! उसे तो सभी पर तुरंत अभाव आ जाता था! इसलिए तुझे जिस पर अभाव नहीं होता हो, उसी को गुरु बना और आगे चल। खुद के सिर पर *ऊपरी* रखकर चलना चाहिए, उससे स्वच्छंद नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : 'तू ही, तू ही' शास्त्रों में लिखा हुआ है, वह क्या है?

दादाश्री : क्रमिक मार्ग में 'तू ही, तू ही', वह पहुँचने का साधन है, आत्मा तू ही है सब ओर, मैं तो कहीं हूँ ही नहीं, फिर भी 'तू ही, तू ही' में आत्मा के प्रति भेद रहता है। श्रद्धा और ज्ञान से एक रहता है, लेकिन चारित्र से भेद पड़ता है। हम तो 'मैं ही, मैं ही' बोलते हैं। 'तू' और 'मैं' का भेद डालेंगे तो कब ठिकाना पड़ेगा? ये तो जैसे भगवान और भक्त, ऐसे ही 'मैं' और 'तू' दोनों अलग हैं, ऐसा भेद पड़े, तब फिर अपना ठिकाना कब पड़ेगा? फिर भी, उन्हें कोई 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो हल आ जाएगा।

शक्तिपात

प्रश्नकर्ता : शक्तिपात का मतलब क्या है?

दादाश्री : एक छः फुट का पानी का झरना है, प्रवाह है। अब आपको बूट निकालने में मुश्किल होती है, और आप खड़े रह जाते हो। दो-पाँच लोग तो आपको देखते-देखते ही उस झरने पर से कूद जाते हैं और आपका मन पीछे हटता है, तब मैं कहूँ कि, 'अरे, चंदूभाई, क्या खड़े हो? कूद जाओ।' और आप तुरंत ही कूद जाते हो। यह शक्तिपात का उदाहरण है। शक्तिपात और मोक्ष में कुछ भी संबंध नहीं है। यह तो पौद्‌गलिक शक्तिपात कहलाता है। यह तो बढ़ता है और घटता है, देने वाले की शक्ति घटती है और लेने वाले की बढ़ती है।

प्रश्नकर्ता : तालू पर जीभ लगाकर अमृत निगलने के लिए कहते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : यह सारा हठाग्रहियों का मार्ग है, जिन्हें मार खाने की आदत हो गई हो, उन्हें ऐसा मार्ग पकड़ना चाहिए। अरे, तुझे क्या ज़रूरत पड़ गई इसकी? जीभ और तालू *पुद्गल* हैं। रस टपकेगा, वह भी *पुद्गल* है, वह आत्मा नहीं है। वह तो मेहनत का फल है। आइस्क्रीम वाले कोठी का हेन्डल मारते हैं तो उन्हें मेहनत का फल, आइस्क्रीम खाने को मिलती है न? दुनिया के साधु-सन्यासी सब के अंदर निरंतर विष की बूँदें गिरती ही रहती हैं और वाणी भी विषमय होती है, और जब 'हम स्वरूप का ज्ञान देते हैं, तब से निरंतर अमृत की बूँदें टपकने लगती हैं!' यह तो किसके जैसा है? कि अन्य कोई सच्चा रास्ता नहीं मिला इसलिए कीचड़ में गिरे! आत्मा ज्ञानस्वरूप होता है। 'ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप', वह मोक्ष का मार्ग है, इसके अलावा बाकी के सभी अन्य मार्ग हैं, वर्ना जीभ को तो कहीं तालू से लगाना पड़ता होगा? यह सब किसलिए करना पड़ता है? बाहर इतनी अधिक गर्मी है, तो फिर तालाब में सिर बाहर निकालकर पड़ा रहता है, उसके जैसा है! लेकिन आत्मा जाने बिना हल आ सके, ऐसा नहीं है! जब तक ज्ञान नहीं मिल जाता, तब तक किसी कोने में पड़े तो रहना चाहिए न? लेकिन यह सारा हठाग्रहियों का मार्ग है, यह मोक्ष का, वीतरागों का मार्ग नहीं है।

कितने ही लोग 'अहम् ब्रह्मास्मि' ऐसे बोलते रहते हैं, उनका तो बल्कि भ्रम बढ़ा है, क्योंकि ब्रह्म को जाने बिना 'अहम् ब्रह्मास्मि' बोलने से क्या होगा? इस हिन्दुस्तान में कौन सी दुकान नहीं चलती? इस जगत् में तो सभी दुकानें चलती हैं। आज से दो हज़ार साल पहले ऐसा धर्म निकला था कि उधार लेकर घी पीओ, लूटपाट करो तो भी हर्ज नहीं है! उन लोगों का भी चला! इस जगत् में सभी दुकानें चलती हैं!

हिन्दुस्तान में अलग-अलग देवी-देवताओं को मानते हैं, वह किसलिए? क्योंकि हर एक के व्यू पोइन्ट अलग होते हैं, बुद्धि में फर्क, मति में फर्क होता है। मनुष्यों में चौदह लाख लेयर्स होते हैं,

उनमें से हर एक लेयर के मनुष्य का डेवेलपमेन्ट अलग-अलग होता है और हर एक को उसके डेवेलपमेन्ट के हिसाब से धर्म और देवी-देवता मिल जाते हैं। धर्मों में भेद किसलिए है? कई लोग पुनर्जन्म में मानते हैं और कई नहीं मानते। हर एक व्यक्ति अलग-अलग डिग्री पर होता है और उसके अनुसार मत रखता है।

आत्मभान, वह बिंदु संयुक्तम्

प्रश्नकर्ता : हिन्दुओं को जब तकलीफ पड़ती है तब तरह-तरह की मन्नतें मानते हैं, वह अच्छा है?

दादाश्री : जिसे इस बात में श्रद्धा है उसके लिए यह बात अच्छी है। जो नहीं मानते, उनमें मार-ठोककर श्रद्धा बैठाई नहीं जा सकती। पूर्व का निमित्त, पूर्व के कनेक्शन हों तो निमित्त से काम हो जाता है, इसलिए मन्नतें रखने वाले की निंदा नहीं करनी चाहिए।

कविराज ने गाया है,

'बिंदु संयुक्तम् ॐकार नुं लक्ष्य,
प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष मोक्षार्थी आतम।'

कल्पवृक्ष कब कहलाता है? कल्पवृक्ष यानी कि जब मोक्ष जाने का समय हो जाता है, तब बिंदु संयुक्तम् ॐकार का लक्ष्य बैठता है। 'शुद्धात्मा' का लक्ष्य बैठे तब मोक्ष में जाने की तैयारी हुई! ये लोग कहते हैं कि 'हम कपाल पर बिंदु का ध्यान करते हैं', उससे तो एकाग्रता बढ़ती है, लेकिन 'ॐ क्या है?' जब तक वह नहीं जानेगा तब तक कुछ नहीं होगा। इसके लिए तो प्रत्यक्ष ॐ चाहिए, 'ज्ञानी पुरुष' चाहिए। फिर सिर्फ ॐ से ही काम नहीं चलता, 'बिंदु संयुक्तम्' चाहिए। यानी कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का ज्ञान मिल जाए, लक्ष्य बैठ जाए तब 'ॐकार बिंदु संयुक्तम्' कहलाता है, तब मोक्ष होता है!

'ॐकार बिंदु संयुक्तम् नित्यम् ध्यायन्ति योगिनः' जो मोक्ष में जाने वाले योगी थे वे नित्य ध्यान करते थे और पूर्व काल में 'क्रमिक

मार्ग' में ऐसा था, अब इस काल में 'अक्रम मार्ग' में 'ॐकार बिंदु संयुक्तम्' का ध्यान यहाँ पर शुरू हुआ है!

वेदांत ने जीव, ईश्वर और परमेश्वर इस तरह तीन भाग किए हैं। ईश्वर की शक्ति कैसी है? अर्ध परमात्मा जैसी शक्ति है! मनुष्य में आया यानी कि ईश्वर जैसा हो गया, ऐसा कहा जाता है। यह मनुष्यपन तो ऐश्वर्य कहलाता है! यहाँ तो सभी, गाय, भैंस अपने लिए दूध देते हैं, आम फल देता है, और वहीं पर यदि ऐश्वर्य खो बैठे तो वह मनुष्य कैसा? मनुष्यपन में तो खुद परमेश्वर बनना है, परमात्मा बनना है! इसके बजाय लोग पाशवता के और आर्तध्यान और रौद्रध्यान करते हैं! यहाँ तो मोक्ष का मार्ग ढूँढना है लेकिन उसकी बजाय संसार रोग को बढ़ाया करते हैं और जानने का कैफ़ लेकर घूमते हैं! यदि जान जाए तो संसार रोग कम हो जाएगा, प्रकाश हो जाएगा और ठोकर नहीं लगेगी। यदि जाना नहीं है तो फिर किसका कैफ़ लेकर घूमते हैं?

वेदशास्त्र तो साधन स्वरूप

एक व्यक्ति कहने लगा कि, 'मैंने चार वेद पढ़ लिए हैं और मुझे तो चारों वेद धारण हो गए हैं!' तब मैंने उसे कहा, 'चार वेद इटसेल्फ क्या कहते हैं? दिस इज़ नॉट देट। तू जिस आत्मा को ढूँढ रहा है, वह इस वेद में नहीं समा सकता, इसमें नहीं है, इसलिए गो टु ज्ञानी।' हम कहते हैं कि, 'हमारे पास आ जा तो घंटे भर में ही तुझे दिस इज़ देट बता दूँगा!' वेद तो मार्गदर्शन देते हैं, वे तो कहते हैं कि, 'इस जगह पर गिरगाँव है।' लेकिन उस मार्गदर्शन से आत्मा नहीं मिलता, उसके लिए तो 'ज्ञानी पुरुष' की ज़रूरत पड़ेगी। डॉक्टर को पूछे बिना प्रिस्क्रिप्शन नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि उसे मरने का भय है। और जहाँ पर अनंत जन्मों के मरण का भय है, वहाँ पर खुद दवाई बनाता है और फिर किसी 'ज्ञानी पुरुष' से पूछे बिना पी लेता है। शास्त्र तो शस्त्र हैं, उनका उपयोग करना नहीं आएगा तो मर जाएगा!

जैन मत और वेदांत मत दोनों एक कहाँ होते हैं? 'आत्मज्ञान'

के समक्ष। 'आत्मज्ञान' होने तक दोनों के विचार अलग पड़ते हैं, लेकिन 'आत्मज्ञान' के समक्ष दोनों ही सहमत हो जाते हैं, सभी एक हो जाते हैं!

ब्रह्मनिष्ठ तो ज्ञानी ही बनाते हैं

'खुद' परमात्मा है, लेकिन जब तक वह पद प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक 'हम वैष्णव हैं और हम जैन हैं', ऐसा करते हैं। और फिर वैष्णव हृदय में कृष्ण को धारण करते हैं, लेकिन जब तक मूल वस्तु प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक वह धारणा कहलाती है। 'मूल वस्तु', खुद का स्वरूप, वह प्राप्त हो जाए, तो वह ब्रह्मसंबंध है। ब्रह्मसंबंध किसे कहते हैं? लगनी लग जाए, फिर कभी भी भूले नहीं, वह ब्रह्मसंबंध है, यानी आत्मा के साथ संबंध बाँध दे, वह ब्रह्मसंबंध है। 'ज्ञानी पुरुष' जगत् में से आपकी निष्ठा उठाकर ब्रह्म में बैठा देते हैं और आपको ब्रह्मनिष्ठ बना देते हैं! इसमें तो आत्मा और अनात्मा को गुणधर्म द्वारा जुदा करने हैं। अनंत जन्मों से आत्मा और अनात्मा भ्रांतिरस से जुड़े हुए हैं। 'ज्ञानी पुरुष' आपके पाप जला देते हैं तब जाकर आपको स्वरूप का लक्ष्य रहता है, उसके बिना लक्ष्य कैसे रहेगा?

यदि कोई आपसे पूछे कि, 'आपका कौन सा धर्म है?' तो कहना कि, 'हमारा तो स्व-धर्म है।' आत्मा, वह 'स्व' है और आत्मा को जानने के बाद ही स्वधर्म शुरू होता है!

'जिन' को जाने तब जैन बनता है, वर्ना जैन, वह तो विरासत है। वैष्णव भी विरासत है, लेकिन हमारी वाणी को जो एक घंटे तक सुने, वही सच्चा जैन और सच्चा वैष्णव है।

कई जन्म लेने के बावजूद भी वैधव्य आएगा, इसलिए हमारे साथ ब्रह्म का संबंध बाँध लेना, वर्ना मरते समय कोई साथ नहीं देगा। बाकी, यह संसार तो पूरा दगा है! इसलिए हमारा संबंध बाँधो, इसका नाम ब्रह्मसंबंध और यह संबंध कैसा कि कोई निकाल दे तो भी जाए नहीं। संसार तो वैधव्य का स्थान है और दुःख का संग्रहस्थान है,

उसमें सुख कहाँ से दिखेगा? वह तो मोह रहता है, इसलिए ज़रा अच्छा दिखता है, मोह उतरेगा तो संसार कड़वा ज़हर जैसा लगेगा, मोह के कारण कड़वा नहीं लगता।

हमारे साथ ब्रह्मसंबंध बाँध लेना, तो आपका कल्याण हो जाएगा। यह जो देह दिखती है वह तो बुलबुला है, लेकिन देह के भीतर 'दादा भगवान' बैठे हैं तो काम निकाल लेना। दस लाख सालों में 'यह' अवतार प्रकट हुआ है, संसार में रहकर मोक्ष मिलेगा। यह बुलबुला फूट जाएगा, उसके बाद भीतर बैठे हुए 'दादा भगवान' के दर्शन नहीं होंगे, इसलिए बुलबुला फूटने के पहले दर्शन कर लेना।

ब्रह्मसंबंध अर्थात् जहाँ ब्रह्म प्रकट हो गया है उनके चरण के अंगूठे को छूकर संबंध लें, तो वह ब्रह्मसंबंध है। सच्चा ब्रह्मसंबंध देने वाले शायद ही कभी मिलते हैं।

दस लाख साल पहले धर्म अस्तव्यस्त हो गए थे। तब के केसरिया जी में 'दादा भगवान ऋषभदेव' सर्व धर्मों के मूल, वे आदिम भगवान, प्रथम भगवान हैं। और दस लाख सालों बाद आज ये 'दादा भगवान' आए हैं! उनके दर्शन कर लेना और काम निकाल लेना। प्रत्यक्ष भगवान आए हैं और उनकी यह देह तो मंदिर है, तो उस मंदिर का नाश हो जाए उससे पहले मंदिर में बैठे हुए प्रकट 'दादा भगवान' के दर्शन कर लेना। ब्रह्मसंबंध ऐसा बाँध लेना कि पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, सभी में भगवान दिखें! कच्चा संबंध बाँधोगे तो दिन नहीं बदलेंगे। इसलिए पक्का संबंध बाँध लेना। कविराज ने गाया है न,

"मन-वचन-कायाथी तद्दन जुदो एवो 'हुं' ब्रसह्मसंबंधवाळो छुं।"

मन-वचन-काया से बिल्कुल जुदा ऐसा 'मैं' ब्रह्मसंबंध वाला हूँ

संसार व्यवहार में आबरू मुट्ठी में रहे वैसा कर दे, ऐसा है यह मंत्र! इस मंत्र से ब्रह्म की पुष्टि होती रहेगी और ब्रह्मनिष्ठ बन जाओगे। 'ज्ञानी पुरुष' के साथ लगनी लगे, वही ब्रह्मसंबंध। माया के साथ बहुत जन्मों से मित्रता की है, उसे निकाल बाहर करें, फिर भी वापस आ

जाती है, लेकिन ब्रह्मसंबंध हो जाए, तब माया भाग जाती है। मोहबाज़ार में कहीं भी घुसना मत। विवाह में मोह और माया का बाज़ार होता ही है। माया और उसके बच्चे अपनी आबरू ले लेते हैं और भगवान अपनी आबरू संभालते हैं। हमारे आसरे आया उसका कोई नाम नहीं ले सकता। यहाँ किसी कलेक्टर की पहचान वाला हो तो उसका कोई नाम नहीं लेता, कहते हैं कि, 'भाई, इनकी तो कलेक्टर से पहचान है।' उसी तरह आपकी इन 'दादा भगवान' से पहचान हुई है कि जिन्हें तीन लोकों के नाथ वश में बरतते हैं! फिर आपका नाम कौन लेनेवाला है?

हमारा नाम देना और हमारी चाबी लेकर जाओगे तो 'रणछोड़ जी' आपके साथ बातें करेंगे। हमारा नाम रणछोड़ जी को बताना तो वे बोलने लगेंगे! कविराज ने दादा के लिए गाया है न कि,

(1) कल्पे कल्पे जन्मे छे ते कल्पातीत सत्पुरुष,
श्री रणछोडरायनुं हृदयकमळ 'हुं' ज छुं।
परात्पर पुरुष गीतागायक 'हुं' ज छुं।

(2) मुरलीना पडघे झूमी जमना बोली,
श्री कृष्णना प्रकाशक आवी गया छे।

'वैष्णवजन तो तेने रे कहीए...' इस परिभाषा वाला एक भी वैष्णव मिलता ही नहीं। मर्यादा मतलब अंशधर्म, लिमिटेड धर्म, उसका पालन करे तो अच्छा, लेकिन यह तो पूरे दिन क्लेश करता है।

एकादशी तो किसे कहते हैं? पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन - इन सब को एक दिन काबू में रखना होता है! यह तो पति को एकादशी के दिन डाँटती है कि, 'आप यह नहीं लाए और वह नहीं लाए!' उसे ऐसा कैसे कहेंगे कि एकादशी की? ऐसी एकादशी करने से धर्म नहीं मिल सकता। हमारी आज्ञानुसार कोई एक एकादशी करे तो दूसरी करनी ही नहीं पड़ेगी!

द्वैताद्वैत

प्रश्नकर्ता : कुछ लोग कहते हैं कि 'जगत् में आत्मा अद्वैत है' क्या यह सच है?

दादाश्री : वे कहते हैं, लेकिन अभी तो अद्वैत दृष्टि ही उत्पन्न नहीं हुई है और आत्मा को अद्वैत कहना गुनाह है। आत्मा वस्तु ही कुछ और है और यह तो सिर्फ अद्वैतभाव उत्पन्न करते हैं। लेकिन जब कोई मारे या जेब काट ले, तब वह अद्वैतभाव कहाँ चला जाता है? तभी पता चलता है कि आत्मा प्राप्त हुआ है या नहीं! जिसने आत्मा प्राप्त कर लिया हो उसे तो निर्भयता और स्वतंत्रता उत्पन्न हो जाती है, लेकिन फिर भी अद्वैतभाव को, 'रिलेटिव आत्मा प्राप्त कर लिया', ऐसा कहा जाता है और ऐसे तो हिन्दुस्तान में बहुत हैं। ये सभी तरह-तरह के पक्षों में पड़ गए हैं! जैन पड़े हैं द्वैत में और ये वेदांती लोग पड़े हैं अद्वैत में कि 'मैं आत्मा ही हूँ, शुद्ध ही हूँ!' तो मंदिर में किसलिए जाते हो? पुस्तक किसलिए पढ़ते हो? ये एकांतिक अद्वैत में पड़ गए और जैन लोग एकांतिक द्वैत में पड़ गए! 'मैं करूँ तभी होगा न? मैंने क्रोध किया इसलिए मुझे भोगना है न?' यह तो तरह-तरह के भूत चिपक गए हैं! उसमें भी फिर तरह-तरह की दुकानें खोली हैं लोगों ने विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत वगैरह। ये अद्वैत वाले यहाँ पर हमें मिलते हैं, उन्हें मुझे कहना पड़ता है कि, 'तू अद्वैत वाला है तो यहाँ क्या जानने के लिए आया है?' तो वह कहता है, 'आत्मा को जानना है।' मैंने कहा, 'ना, अद्वैत वाले को आत्मा जानना बाकी नहीं रहता। तुझे यह

अद्वैत का स्टेशन कहाँ से मिला? तुझे ऐसे गुरु कहाँ से मिल गए, जिन्होंने ऐसा सिखाया?'

वह मुझे कहने लगा, 'दादा, आप क्यों द्वैत में रहते हो?' मैंने कहा, 'द्वैत को तू समझता है? अद्वैत को तू समझता है? बात को समझ। आत्मा द्वैत स्वरूप भी नहीं है और अद्वैत स्वरूप भी नहीं है, वह तो द्वैताद्वैत स्वरूप है।' अगर द्वैत हो जाए तब तो उसे अद्वैत का विकल्प आता रहेगा और अद्वैत स्वरूप हो जाए तो उसे द्वैत का विकल्प होता रहेगा कि, 'यह द्वैत आया और यह अद्वैत आया।' आत्मा तो द्वैताद्वैत से पर है, फिर भी व्यवहार में कहना हो तो कहूँगा कि, 'आत्मा द्वैताद्वैत है, एकपक्षी नहीं है। रिलेटिव व्यू पोइन्ट से द्वैत है और रियल व्यू पोइन्ट से अद्वैत है।' 'दादा' बात करते हैं तो द्वैत भाव में होते हैं और स्वरूप में हों तो अद्वैतभाव में होते हैं। अत: जब द्वैत होता है, तभी अद्वैत हो सकता है और अद्वैत होता है तभी द्वैत है, क्योंकि दोनों ही रिलेटिव हैं। जब तक आत्मा नहीं जाना तब तक यदि सिर्फ अद्वैत की दुकान ही खोली, तो मारे गए! इसलिए जान, कुछ विचार कर। द्वैत में पड़ेगा तब भी द्वंद्व खड़े होंगे और अद्वैत में पड़ेगा तब भी द्वंद्व खड़े होंगे और द्वैताद्वैत में आएगा तो फिर द्वंद्व खड़े नहीं होंगे। जब सिद्धगति में जाता है, तब विशेषण ही नहीं रहता। निर्विशेष! द्वैताद्वैत तो कब तक है? देह है तब तक।

यदि सिर्फ अद्वैत माने तब तो वह एकांतिक बन गया और एकांतिक मतलब मिथ्यात्वी कहलाता है, और द्वैत माने तब भी मिथ्यात्वी है। यह तो एकांतिक नहीं होना चाहिए, द्वैताद्वैत होना चाहिए, अनेकांत होना चाहिए। वीतराग अनेकांतिक थे। एकांतिक मतलब आग्रह किया, मोक्षमार्ग तो निराग्रही का है।

उस अद्वैत वाले से फिर मैंने पूछा, 'तूने शादी नहीं की?' तब उसने कहा, 'विवाहित हूँ, लेकिन उसे बुलवाता नहीं हूँ।' 'पत्नी को छोड़ दिया? तुझे कैसा गुरु मिला? विवाह करने के बाद अद्वैत बना? कहाँ से तू ऐसा बन गया?' सच्चा अद्वैत कौन है? स्त्री हो, बच्चे हों,

लेकिन किसी को किंचित्मात्र भी दु:ख नहीं हो, ऐसा जिसका व्यवहार हो, वे सच्चे द्वैताद्वैत के लक्षण हैं। यह तो सिर्फ अद्वैत की ही गुफा में कहाँ घुस गया? ऐसी स्टेज में गए तो मारे जाओगे! ऐसी सच्ची बात कहने वाला आपको कोई नहीं मिलेगा, क्योंकि हमें बिल्कुल भी स्वार्थ नहीं है। जो स्वार्थ रहित है वही नग्न सत्य कह सकता है। दूसरे तो स्वार्थ ही स्वार्थ में 'बापजी, बापजी' करेंगे।

अद्वैत तत्व, वह त्याग करते-करते अहंकार को अद्वैत करता है, यानी कि अद्वैत तत्व ऐसा है कि द्वैत में से अद्वैत में आता है, इसलिए तब तक 'मैं' रहता है। जब तक खुद के स्वरूप का भान नहीं होगा, तब तक यह सारी मायावी वाणी है, लोगों को बहुत अच्छी लगेगी, ये सब स्टेपिंग हैं। जब तक स्वरूप का भान नहीं हो जाता तब तक इसकी ज़रूरत है, लेकिन ऐसा है कि स्वरूप का भान तो अंत में जब 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ और उनकी कृपा हो जाए, तभी हो सकता है!

अनेकांत से मोक्ष

वेदांती क्या कहते हैं? 'आत्मा निर्मल है, हम अद्वैत हैं।' उन्होंने आग्रह से आत्मा को अद्वैत कहा है, वह यथार्थ नहीं है। जैन आग्रह से आत्मा को कर्ता और भोक्ता मानते हैं, वह भी फेक्ट बात नहीं है। निराग्रही होना चाहिए। आत्मा द्वैताद्वैत है। अद्वैत से मोक्ष है, ऐसा कहते हो, लेकिन उससे एक भी विकल्प नहीं जाएगा, क्योंकि द्वैत से आगे बढ़े ही नहीं हो। अद्वैत वाले को द्वैत से आगे जाना पड़ेगा और द्वैत वाले को अद्वैत से आगे जाना पड़ेगा, तब द्वैताद्वैत हुआ जा सकेगा। द्वैत और अद्वैत के दोनों पंख साथ में होंगे तब उड़ा जा सकेगा, एक पंख से नहीं उड़ सकेगा। भगवान की वाणी ऐसी स्याद्वाद होती है कि दुनिया के एक भी जीव का प्रमाण नहीं दुभे। द्वैताद्वैत एक साथ किस तरह से हो सकता है? होम डिपार्टमेन्ट में हम अद्वैत हैं और फॉरेन डिपार्टमेन्ट में हम द्वैत हैं, इसलिए द्वैताद्वैत कहा है। जब तक देह है, संसार अपेक्षा बाकी है, तब तक द्वैताद्वैत है। यदि संसार अपेक्षा नहीं होती, तब तो इस द्वैताद्वैत की ज़रूरत ही नहीं रहती।

'सिर्फ द्वैत से या सिर्फ अद्वैत से ही मोक्ष है' ऐसा मानकर चलोगे तो एक भी विकल्प नहीं जाएगा। इस अद्वैत से तो लोग भटक गए हैं। कोई भी विकल्प से पार नहीं जा सका है। अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, ऐसी तरह-तरह की दुकानें खोलकर लोग बैठे हैं! इनके गुरु और उनके भी गुरु सभी भटक गए हैं। सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' दुकान नहीं खोलते, क्योंकि वे द्वैताद्वैत हैं। जब तक मोक्ष में नहीं गए, तब तक आत्मा कैसा है? द्वैताद्वैत है। हम इस अद्वैत वाले से पूछें कि 'तू कौन है?' तो कहेगा कि, 'मैं फलाना-फलाना आचार्य हूँ।' यह तो आप सभी आचार्य बन बैठे और दुकान खोलकर बैठे हैं! किसी जगह पर सिर्फ द्वैत शब्द रखा ही नहीं जा सकता और सिर्फ अद्वैत शब्द भी नहीं रखा जा सकता। ये लोग तो द्वैत या अद्वैत शब्द का अर्थ भी नहीं समझते और द्वैत की या अद्वैत की दुकानों में घुस जाते हैं! जब तक देह है, तब तक शुद्धात्मा द्वैताद्वैत है। सिर्फ अद्वैत कोई बन ही नहीं सकता है। अद्वैत तो विकल्प है और द्वैत के आधार पर है। वीतराग तो ग़ज़ब के हो चुके हैं! द्वंद्वों के सागर में अद्वैत का रक्षण करने के लिए सामने वाले के साथ झगड़ना, उसी का नाम द्वैतभाव! अद्वैत के रक्षण के लिए सामने वाले के साथ वाद-विवाद में उतरना, वही द्वैत है!

अद्वैत को भगवान ने विधुर कहा है और द्वैत को विवाहित कहा है! भगवान तो द्वैताद्वैत हैं, तू द्वंद्वातीत हो जाएगा तो हल आएगा। यह संसार किसी को भी नहीं छोड़ता। पांडवों का तेल निकाल दिया और राम तो जंगल में गए, वहाँ भी उनकी स्त्री को उठाकर ले गए! ऐसा है यह जगत्!

वीतराग कहते हैं, 'ये चंदूभाई नहीं हैं और हैं भी सही। अस्ति नास्ति – हैं और नहीं भी हैं। स्वरूप का भान नहीं हो तो वे चंदूभाई हैं और स्वरूप का भान हो जाए तो वे चंदूभाई नहीं हैं।'

जगत् पूरा एकांतिक है, एक वस्तु निश्चित ही कर देता है कि ऐसा ही होता है। 'ज्ञानी पुरुष' अन्-एकांतिक होते हैं, बिल्कुल निराले होते हैं!

इस जगत् में पोइज़न भी एक गुण वाला नहीं है और अमृत भी एक गुण वाला नहीं है, द्विगुण वाले हैं सभी। इसलिए किसी के लिए भी एकांतिक मत बोलना। 'ये डॉक्टर खराब हैं' ऐसा मत बोलना, अथवा 'सभी डॉक्टर अच्छे हैं' ऐसा भी मत बोलना, लेकिन हमें व्यू पोइन्ट लक्ष्य में रखना है कि किसी अपेक्षा से इस प्रकार के हैं और किसी अन्य अपेक्षा से दूसरे प्रकार के हैं। इस पोइज़न में भी कुछ अच्छे गुण हैं। यदि एक खास लिमिट में पोइज़न खाया जाए तो सभी रोग मिटा देता है और यदि उससे अधिक खा लिया जाए, तभी मारता है!

मनुष्य जीवन में एन्ड तक सभी कुछ फरजियात (अनिवार्य) है। पूरा संसार ही फरजियात है, द्वितियम नहीं लेकिन तृतियम है, लेकिन पूरा जगत् इसे मरजियात (ऐच्छिक) मानकर चलता है। अद्वैत मतलब एक तरफ, द्वैत मतलब दूसरी तरफ जबकि यह तो तृतियम! द्वैत में रहता है, तब तक सीधा रहता है। द्वैताद्वैत में होता है, तब वहाँ पर आत्मा होता है और जहाँ तृतियम हो वहाँ पर सिर्फ संसार है! ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध द्वैत है, खुद अपने आप के लिए ही अद्वैत है। इसलिए आत्मा द्वैताद्वैत है, बाकी का सभी कुछ तृतियम है। 'मरजियात' तृतियम नहीं कहलाता। 'फरजियात', तो पूरा ही तृतियम है।

वीतराग मार्ग

कवि ने गाया है कि,

'जेनां वाणी, वर्तन ने विनय छे मनोहर प्रेमात्मा।'

वाणी मनोहर होनी चाहिए, वर्तन मनोहर होना चाहिए और विनय मनोहर होना चाहिए। वीतरागों का मार्ग विनय का है, परम विनय से मोक्ष होता है। अन्य कुछ भी पढ़ने-करने की ज़रूरत नहीं है, पढ़ने वाले तो कितना ही पढ़-पढ़कर थक गए हैं। वीतरागों का मार्ग परम विनय माँगता है, उन्हें और कुछ भी नहीं चाहिए।

वीतरागों ने पूरे जगत् का एक ही धर्म देखा, वीतराग धर्म, और वीतराग धर्म से ही मोक्ष है। इसलिए वीतरागता प्राप्त करो। आज तो एक जैन धर्म में ही कितने सारे भाग पड़ गए हैं? अपना मार्ग तो जैन नहीं है, वैष्णव नहीं है, स्वामिनारायण नहीं है, मात्र वीतराग मार्ग है!

क्रोध-मान-माया-लोभ चले गए तो जानना कि वीतराग धर्म प्राप्त हुआ, यह निशानी है उसकी। कोई पूछे कि, 'इसका बुखार उतर गया है या नहीं?' तब हम कहते हैं कि, 'थर्मामीटर लगाओ और देखो। यदि वह 98 डिग्री दिखाए तो बुखार नहीं है और 97 डिग्री दिखाए तो बिलो नॉर्मल बुखार है और 99 डिग्री दिखाए तो अबव नॉर्मल बुखार है।' इस प्रकार थर्मामीटर लगाकर देखना चाहिए। वीतराग क्या कहते हैं? 'जिसके क्रोध-मान-माया-लोभ चले गए उसे वीतराग मार्ग प्राप्त हुआ और जिसके पास वे साबुत हैं, वे ज़रा भी नहीं टूटे

हैं, जिसमें कंकड़ भी नहीं टूटा, उसे वीतराग धर्म प्राप्त हुआ कैसे कहा जाएगा? जैन धर्म तो प्राप्त हुआ है, अरे, अनंत जन्मों से जैन धर्म तो प्राप्त हुआ है। कहीं एक जन्म से थोड़े ही जैन धर्म प्राप्त हुआ है? लेकिन वीतराग धर्म किसी भी जन्म में प्राप्त नहीं हुआ है!

वीतराग तो बिल्कुल अलग ही थे। वीतरागों को वीतराग मार्ग में जो करना पड़ा था वह अभी के लोगों के ख्याल में भी नहीं है, लक्ष्य में नहीं है और उन्हें जो पसंद नहीं था, लोग वही करते हैं। उन्हें क्या पसंद नहीं था कि, 'भाई, एक पक्ष में मत पड़ना। तू तप में पड़ा तो तपोगच्छी मत बन जाना।' वीतराग क्या कहते हैं कि, 'एक गच्छ में मत पड़ना।' वह तो एक कोना है मकान का। मकान का एक ही कोना यदि साफ करते रहोगे तो पूरा मकान साफ हो सकेगा? शुद्धि होगी? नहीं होगी। भगवान ने कहा है कि, 'सभी कोने साफ करना।' भगवान कहीं तेरे कोने साफ करने के लिए आने वाले नहीं हैं। ये लोग तो सिर्फ तप के पीछे पड़ गए, या सिर्फ त्याग के पीछे पड़ गए। तो कितने ही लोग पुस्तकें पढ़ते रहते हैं।

कबीर जी कहते हैं, 'पुस्तक पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोई' कबीर जी को एक भी पंडित बनता हुआ नहीं दिखा। पुस्तकें पढ़कर पुस्तक जैसे बन जाते हैं! जिसकी आराधना करता है, उसके जैसा बन जाता है, आत्मा का स्वभाव ऐसा है। वीतराग की आराधना करता है तो वीतराग बन जाता है, यानी वीतराग की आराधना करोगे तो मोक्ष में जा पाओगे। मोक्ष का यही एक मार्ग है, बाकी के सभी अनंत मार्गों में से एक मार्ग, वीतरागों की यह छोटी सी पगडंडी ही सिर्फ ऐसी है जो कि मोक्ष में ले जाती है। इस पगडंडी पर से एक व्यक्ति भी बहुत मुश्किल से जा सकता है, कभी-कभी ही! वर्ना बाकी के अन्य मार्ग तो हैं ही, अन्य मार्ग अनंत हैं और वे सभी चतुर्गति में भटकाने वाले मार्ग हैं। देवगति और दूसरी जगह भटकाने वाले मार्ग हैं और मात्र इतने से ही मन में संतुष्टि मान लेते हैं और कहते हैं कि, 'हमें तो बहुत कुछ आता है, हमने बहुत कुछ प्राप्त कर लिया है।'

ज्ञानी के पीछे-पीछे

वीतरागों ने कहा है कि, 'मोक्ष के लिए कुछ भी नहीं करना है, मात्र ज्ञानी के पीछे-पीछे चले जाना।' उनकी पीठ पीछे सिगरेट पीएँ तो? 'हाँ, पीना। उनकी हाज़िरी में सिगरेट भी पीना, लेकिन 'ज्ञानी' के पीछे -पीछे चले जाना। उनका हाथ मत छोड़ना' कहते हैं। 'ज्ञानी' किसे कहते हैं? जिन्हें इस जगत् में कुछ भी जानना बाकी नहीं बचा है, वे 'ज्ञानी'। जानना जिसे बाकी बचा हो, उसे हम 'ज्ञानी' कहते हैं और फिर हम जब उन्हें कुछ पूछें, तब वे उलझते रहते हैं। साहब क्या करते हैं? भीतर उलझते रहते हैं, फिर हमें शास्त्र के शब्द दिखाते हैं। अरे भाई, शास्त्र का तो तुझे क्या करना है! यहाँ पर किसलिए शब्द दिखा रहा है? तू अंदर से बोल न! अंदर से मरा हुआ है या जीवित है, वह बता न! यदि भीतर जीवित है तो बोल भीतर से! लेकिन इन शास्त्रों को क्यों बीच में लाता है? शास्त्र तो बोर्ड हैं, स्टेशन पर उतरने के बोर्ड हैं, बोर्ड की क्या हर घड़ी ज़रूरत पड़ती है? उसकी तो कभी ही ज़रूरत पड़ती है। उतना ही जानने के लिए कि, 'भाई, कौन सा स्टेशन आया?' तो वह कहेगा कि, 'भाई, वह बोर्ड दिखा रहा है, दादर।' ये शास्त्र तो दादर हैं। शास्त्र तो इटसेल्फ कहते हैं, 'गो टु ज्ञानी।' वे निशानी दिखाते हैं।

यदि संसार में किसी उल्टे मार्ग की ज़रूरत हो, जगत् के विषयी सुखों की ज़रूरत हो, तुझे अहंकार भोगना हो, तो भगवान कहते हैं कि 'शास्त्र पढ़ और त्याग कर, तप कर, जप कर, तुझे जो अनुकूल आए, वैसा कोई भी तप-जप चुन ले। एक सब्जेक्ट चुन ले, उस सब्जेक्ट का फल तुझे मिलेगा। देवगति या फिर मनुष्यगति में ही अच्छा जन्म मिलेगा, यह मिलेगा, वह मिलेगा'। भगवान के सब्जेक्ट का आराधन किया, इसलिए कुछ फल तो मिलेगा न? भगवान ने मोक्ष के लिए निर्विषयी मार्ग बताया है! उसमें तप, त्याग, जप या जो बाहर के विषय हैं, ऐसा कुछ भी नहीं है।

वीतराग मतलब अत्यंत समझदार व्यक्ति। मोक्ष का सरल से

सरल, आसान से आसान मार्ग, वीतराग देकर गए हैं, अन्य सभी लोगों ने मोक्ष का मार्ग उलझा-उलझाकर भूल-भुलैया के रूप में बताया है। वह भूल-भुलैया कैसी? कि एक बार अंदर घुसा तो फिर निकल नहीं पाता, उसमें से निकला जा सके, ऐसा है नहीं। वीतराग के मार्ग में इतनी सी भी पोल नहीं रखी, क्योंकि वीतराग तो बहुत ही शुद्ध, जिन्हें कुछ भी नहीं चाहिए था, प्रपंच नहीं था, जिन में राग नहीं था, जिन्हें किसी भी प्रकार की इच्छा ही नहीं थी, ऐसे थे वीतराग!

इच्छा किसे होती है?

वास्तव में किसी को भी इच्छा नहीं है, जो-जो आत्मा रूप हैं, उन्हें किसी को भी इच्छा नहीं है। यह तो भ्रांति उत्पन्न हुई है। यह तो जैन धर्म ने आत्मा को इच्छावान ठहरा दिया है अभी! आत्मा इच्छावान होता न, तब तो फिर वह भिखारी ही है। आत्मा इच्छा करता ही नहीं है। आत्मा तो परमात्मा है, क्या उसे इच्छा हो सकती है? आत्मा खुद वीतराग ही है पहले से। यह तो भ्रांति से इच्छा खड़ी हो गई है। अहंकार में इच्छा खड़ी हो गई है। जब अहंकार नहीं रहेगा, तब इच्छा भी नहीं रहेगी। यह तो अहंकार की इच्छा है, आत्मा की कहीं इच्छा होती होगी? तब तो फिर एक साधारण व्यक्ति और उसमें फर्क ही नहीं रहा न। आत्मा खुद परमात्मा है और उसे किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। शुरू से ही नहीं थी, अभी भी नहीं है और भविष्य में भी नहीं होगी। यह तो खुद फँसा हुआ है। यदि अहंकार चला जाए, उसका विलय हो जाए तो कुछ भी नहीं है, मोक्ष ही है, इच्छा ही नहीं रहेगी फिर तो। अभी तो जैनमार्ग में और अन्य सभी मार्गों में कहते हैं न कि, 'आत्मा को तो इच्छा है न?' अरे भाई, आत्मा को यदि इच्छा होती तो वह आत्मा ही कैसे कहलाता? आत्मा को यदि इच्छावान कहते हो तो उस द्रव्य को जाना ही नहीं है आपने! पीतल को और सोने को पहचानते नहीं हो आप, पीतल को सोना कहते हो! सोना तो उसके खुद के गुणधर्म में है, परमात्मा स्वरूप में है, अभी भी परमात्मा स्वरूप में बैठा हुआ है, उनका परमात्मा स्वरूप

वे कभी भी चूके ही नहीं। भले ही वे जंजाल में आ गए हैं, लेकिन जंजाल में भी वे खुद चूके नहीं हैं। जंजाल में उनके ज्ञान पर अंतराय आया है, अन्य कुछ भी अंतराय नहीं है। ज्ञान, दर्शन पर अंतराय है। उससे उन्हें कोई नुकसान नहीं है। जिसे यह अहंकार है, उसे नुकसान है। इन्हें क्या नुकसान है? इन्हें तो भीतर परमानंद है। वे खुद अनंत सुख का धाम हैं। रात को सो जाए न, तब पागल को भी सुख आता है। यदि अच्छी गहरी नींद सो जाए न, तो भी उसमें उसे थोड़ा, उसका (आत्मा का) आभास होता है कि, 'अरे, यह सुख तो अंदर ही है। क्योंकि रात को कोई भी विषय नहीं आया, रात को नींद में कोई विषय नहीं भोगे, यों ही गहरी नींद सो गया तो सुख किसमें से आया?' तब यह मशीनरी सारी बंद हो गई, अहंकार बंद हो गया, अहंकार रूपी मशीनरी बंद होते ही सुख उत्पन्न होता है। तब फिर उसे लगता है कि, 'बहुत अच्छी नींद आई थी! बहुत अच्छी नींद आई थी!'

सचोट इच्छा, कैसी होती है?

दादाश्री : मोक्ष की इच्छा है या दूसरे गाँव जाना है? इच्छा किस तरफ की रहती है?

प्रश्नकर्ता : मुक्ति के अलावा और कुछ भी नहीं चाहिए।

दादाश्री : मोक्ष की इच्छा हो और साथ ही साथ दूसरी इच्छा दिखती रहती हो न तो हमें पता चलता है कि अभी यह कोई एक इच्छा अंदर पड़ी हुई है, किसी दिन हमें दिखाई देती है। जैसे अपने घर में दो लोग हों तो रोज़ एक का एक ही दिखता है, लेकिन कभी दूसरा दिखे तो हमें जानना चाहिए कि कोई है भीतर, ऐसा पता नहीं चलेगा? यानी दूसरा कोई ऐसा अंदर दिखता है?

प्रश्नकर्ता : दिखता है कभी।

दादाश्री : एकाध है या दो लोग हैं?

प्रश्नकर्ता : पता नहीं।

दादाश्री : वह तो पता लगाना पड़ेगा। ऐसा है न कि सिर्फ मोक्ष की ही इच्छा हो न, तो उसे कोई भी रोकने वाला नहीं है। जिसे सिर्फ मोक्ष की ही सचोट इच्छा है उसे कोई रोकने वाला नहीं है! ज्ञानी उनके घर जाएँगे! वे कहेंगे कि, 'मुझे ज्ञानी का क्या करना है? मुझे उनसे मिलने तो जाना ही पड़ेगा न?' नहीं, तेरी इच्छा ही तेरे लिए ज्ञानी को ले आएगी! ज्ञानी साधन हैं। 'मोक्ष के अलावा अन्य कुछ भी नहीं चाहिए', जिसकी सिर्फ यही एक इच्छा है उसके पास हर एक चीज़ आती है, लेकिन जिसे दूसरी इच्छाएँ हैं, भीतर पोल है, उसका कुछ नहीं हो सकता। उस पोल की तो पत्रिका जब प्रकाश में आती है तब पता चलता है! उसे पोलपत्रिका कहा जाता है। वीतराग कहते हैं कि जो हमारे जैसे पक्के हैं, जिसे कुछ भी कामना नहीं है उसका इस दुनिया में कोई नाम देने वाला नहीं है! और नाम देगा तो *पुद्गल* का देगा, लेकिन आत्मा को कौन छू सकता है? ये लोग तो *पुद्गल* के व्यापारी हैं, वे *पुद्गल* का व्यापार भले ही करें, पौद्गलिक व्यापार है न? बहुत हुआ तो किसी का *पुद्गल* ले जाएँगे, लेकिन यहाँ मालिकी नहीं थी उनका ले लेते हैं न! जिसे मोक्ष की इच्छा होती है, उसे *पुद्गल* की मालिकी नहीं रहती! *पुद्गल* की मालिकी है, उसे मोक्ष की इच्छा नहीं होती।

अमूर्त के दर्शन, कल्याणकारी

कविराज ने लिखा है कि,

'मूर्ति अमूर्तना दर्शन पामे ज्यां
मंदिरना घंटनाद वागी गया छे।'

मूर्ति 'अमूर्त' के दर्शन प्राप्त करे, उसके बाद मोक्ष में जाने के घंटनाद बजते हैं। अमूर्त के दर्शन किसी भी काल में हुए नहीं, यदि हुए होते तो मोक्ष के घंटनाद बज गए होते सभी 'मंदिरों' में! यह बात आपको समझ में आई कि 'मूर्ति यदि अमूर्त के दर्शन करे तो कल्याण हो जाता है?' मनुष्य (रूपी) मूरत होगी, तभी तो हमें अमूर्त के दर्शन

होंगे न! जब मूर्ति अमूर्त के दर्शन प्राप्त करे, तब समझो कि मंदिर के घंटनाद पूरे हो गए, वहाँ पर काम पूरा हो गया। 'ज्ञानी पुरुष' तो जड़ और चेतन का ऐसे विभाजन करके सारा तांबा अलग कर देते हैं, उनके हाथ में आए तो तुरंत ही कह देते हैं कि, 'यह शुद्ध है और यह मैला है।' यहाँ तो थोड़ा भी मैल हो तो नहीं चलेगा, मोक्ष के लिए तो यदि थोड़ा भी मैल हो तो काम का नहीं है, वह सोना नहीं कहलाएगा। भगवान ने कहा है कि, 'दो प्रतिशत मैल हो तब भी वह सोना नहीं है, हमें तो शुद्ध सोना चाहिए। शुद्ध उपयोग वाला सोना! यहाँ और कुछ भी नहीं चलेगा, गड़बड़-वड़बड़ चलेगी ही नहीं!' सोने में दो बाल जितना फर्क हो तो? 'तो भी नहीं, वह फर्क-वर्क, मिलावटी सब, जाओ यहाँ से चौकसी (सोने का पारखी) के पास।' यहाँ तो वीतरागों का काम, शुद्ध उपयोग वाला सोना चाहिए, वहाँ तो निन्यानवे प्रतिशत नहीं होता, पूरा सौ प्रतिशत चाहिए।

वीतराग अर्थात् असल में पक्के

वीतराग कोई कच्ची माया नहीं है। सभी कच्चे होंगे, लेकिन वीतराग जैसे पक्के कोई नहीं हैं, वे तो असल में पक्के हैं! सारी दुनिया के सभी अक़्ल वाले उन्हें क्या कहते थे? भोला कहते थे। इन वीतरागों का जन्म हुआ न, तब उनके दोस्त उन्हें कहते थे कि, 'ये तो भोले हैं, मूर्ख हैं।' अरे, तू मूर्ख है, तेरा बाप मूर्ख है और तेरा दादा मूर्ख है। वीतरागों को तो कोई मूर्ख बना ही नहीं सकता, वे इतने समझदार होते हैं। खुद का रास्ता नहीं छोड़ते हैं, वे खुद धोखा खा जाते हैं, लेकिन रास्ता नहीं चूकते। वे कहेंगे कि, 'मैं धोखा नहीं खाऊँगा, तो यह मुझे मेरे रास्ते पर नहीं जाने देगा।' तो सामने वाला क्या समझता है कि ये कच्चे हैं। अरे, नहीं है यह कच्चा, यह तो असल पक्का है! इस दुनिया में जो धोखा खाए, जान-बूझकर धोखा खाए, उसके जैसा पक्का इस दुनिया में कोई है ही नहीं और जिन्होंने जान-बूझकर धोखा खाया वे वीतराग बन गए।

इसलिए जिसे अभी भी वीतराग बनना हो, तो जान-बूझकर धोखा

खाना। अनजाने में तो पूरी दुनिया धोखा खा रही है। साधु, सन्यासी, बाबा हर कोई धोखा खा रहा है, लेकिन जान-बूझकर धोखा खाए, वे सिर्फ ये वीतराग ही हैं! बचपन से जान-बूझकर हर तरफ से धोखा खाते हैं, वे खुद जान-बूझकर धोखा खाते हैं फिर भी धोखा देने वाले को ऐसा नहीं लगने देते कि तूने मुझे धोखा दिया है, नहीं तो मेरी आँख तू पढ़ जाएगा। वे तो आँख में भी नहीं पढ़ने देते, वीतराग ऐसे पक्के होते थे! वे जानते थे कि इसका *पुद्गल* का व्यापार है, उस बेचारे को तो *पुद्गल* लेने दो न, मुझे तो *पुद्गल* दे देना है! लोभी हो तो उसे लोभ लेने देते, मानी हो तो उसे मान देकर भी खुद का हल निकाल लेते थे, खुद का रास्ता नहीं चूकते थे। खुद का मूल मार्ग जो प्राप्त हुआ है उसे चूकते नहीं थे, वीतराग ऐसे समझदार थे। और अभी भी जो भी ऐसा मार्ग पकड़ेगा उसके मोक्ष में परेशानी ही क्या आएगी? 'ज्ञानी पुरुष' का तो आज यह शरीर है और कल यह बुलबुला फूट जाएगा तो क्या मोक्षमार्ग खत्म हो जाएगा? तब कहे, 'नहीं, इतनी शर्तें होंगी कि जिसे मोक्ष के अलावा अन्य किसी भी प्रकार की कामना नहीं है और जिसे खुद जान-बूझकर धोखा खाना है, यदि ऐसे कुछ लक्षण उसमें खुद में होंगे न, तो उसका मोक्ष कोई रोकने वाला नहीं है। यों ही, अकेला ही, ज्ञानी के बिना भी दो अवतारी होकर वह मोक्ष में चला जाएगा!'

अन्य मार्गों में, कैसी दशा

ऐसा है वीतराग मार्ग! उसे आज पूरा रौंद दिया है! यानी कि लोगों को क्रियाकांड में ही डाल दिया है। उसमें डालने वाला कोई भी नहीं है, डालने वाले उनके कर्म हैं और जो उसमें पड़ जाते हैं और भीतर घुस जाते हैं वे भी उनके खुद के कर्मों से ही दुःख पाते हैं। हर कोई अपने कर्मों से ही दुःख पा रहा है, उसमें किसी का दोष नहीं है, खुद के कर्मों के कारण ही उलझता रहता है। यह जो घानी का बैल होता है, उसे शाम को ऐसा लगता है कि वह चालीस मील तक चला, लेकिन जब आँखों पर से पट्टी हटती है, तब वही की

वही घानी! उसी तरह ये लोग चलते रहते हैं! अनंत, लाखों मील चले हैं, लेकिन घानी के बैल की तरह वहीं के वहीं पर हैं! और वहीं पर होते तो भी अच्छा था। घानी का बैल तो वहीं का वहीं रहता है, लेकिन ये तो दो पैरों में से चार पैर वाले बनेंगे! इसलिए मुझे हुँकार करके बोलना पड़ता है कि, 'अरे भाई! सावधान हो जा कुछ, कुछ तो सावधान हो जा! मोक्ष की बात तो जाने दे, लेकिन कुछ अच्छी गति तो चख और आज भरत क्षेत्र में अच्छी गति रखकर क्या फायदा मिलेगा? अब तो छठा *आरा* (कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा) आने की तैयारी हो रही है! अब किसी अन्य क्षेत्र में जाया जा सके, क्षेत्र परिवर्तन हो जाए, ऐसा कुछ कर ले!' क्षेत्र परिवर्तन हो सकता है। वीतरागों के मार्ग में सभी साधन हैं। आज तो महावीर भगवान के, कृष्ण भगवान के, वेदांत के, सभी धर्मों के शास्त्रों का पूरा आधार है। छठे *आरे* की शुरूआत से ही किसी धर्म का कोई आधार नहीं होगा - खत्म, खलास! अठारह हज़ार साल के बाद बिल्कुल ही खत्म हो जाएगा! ऐसा वीतरागों का वर्णन है, मुझे कुछ भी बताने की ज़रूरत नहीं है। मैं तो उनका बताया हुआ वर्णन कर रहा हूँ, यह मेरी बात नहीं है। मेरी बात तो 'यह' जो अपने आप ही निकल रही है, वह है। जबकि यह तो वीतरागों की बात है। भाई, थोड़ा समझना पड़ेगा न? समझे बिना कैसे चलेगा?

किसी दिन आपने जान-बूझकर धोखा खाया था? जान-बूझकर धोखा खाए, वह सब से बड़ा महाव्रत कहलाता है, इस दूषमकाल का! जान-बूझकर धोखा खाने जैसा कोई महाव्रत नहीं है इस काल में! सच्चा मार्ग तो मिलना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : लोग क्रिया की तरफ विशेष रूप से झुके हुए हैं।

दादाश्री : सच्चा मार्ग नहीं मिला, इसलिए। लेकिन क्रिया की तरफ झुकाव होता न तो भी हर्ज नहीं था कि 'क्रिया का फल आएगा।' किसी व्यक्ति ने यहाँ जायफल का बीज बोया हो तो ऊपर जायफल आएँगे तो वे खीर या श्रीखंड में डालने के काम आएँगे, लेकिन अगर

कुछ बोया होगा तभी फल आएगा। इसमें कुछ गलत नहीं है, लेकिन उनमें सभी ट्रिक ध्यान उत्पन्न हुए। ब्रेन टॉनिक वाले जो ध्यान उत्पन्न हुए, वे संपूर्ण अहितकारी हैं। उन्होंने जो डबल ट्रिक काम में ली, व्यापार हीरों का जिसमें कि मिलावट नहीं की जा सकती है तो उसमें क्या किया? एक के बदले दूसरा देने लगे! तो उसके बजाय तो मिलावट वाले अच्छे कि वही था और उसमें दूसरा डाला। और यह तो एक के बदले अन्य! इन्हें कैसे पहुँच पाएँगे? किसी की बात नहीं करते हम। कोई समझदार हो तो बात करना कि 'ज्ञानी पुरुष' सावधान होने को कह रहे हैं। ब्रेन टॉनिक से इतना सावधान हुआ जा सके तो हो जाओ, यह बहुत अच्छी बात है, क्योंकि और तो कुछ नहीं, लेकिन यह हार्ड रौद्रध्यान कहलाता है। लकड़ी में भी सॉफ्ट वुड और हार्ड वुड आती है। और उस हार्ड वुड को तो रंधा मारे तो रंधा टूट जाता है! सॉफ्ट वुड होगी तो दियासलाई भी बनेगी, यह तो हार्ड वुड जैसा हार्ड रौद्रध्यान है।

संकल्प-विकल्प किसे कहते हैं?

'मेरा', जहाँ पर ऐसा आरोप किया-वह संकल्प और 'मैं', का जहाँ पर आरोप किया-वह विकल्प, वह आरोपित भाव कहलाता है। संकल्प-विकल्प को और आरोपित भाव को भगवान ने इस तरह वीतराग भाषा में कहा है लेकिन लोकभाषा को नकारा नहीं है भगवान ने, क्योंकि लोकभाषा भी चलनी चाहिए न? लोकभाषा को नकार दें तो लोग उलझते रहेंगे। आपको वीतराग भाषा जाननी है या लोकभाषा जाननी है?

प्रश्नकर्ता : वीतराग भाषा।

दादाश्री : 'यह' वीतराग भाषा है, यानी कि अपने में से 'मैं चंदूभाई हूँ' गया तो सबकुछ गया। 'मैं-पन' चला जाएगा और यह पोषाक 'मेरी' है उसमें भी जहाँ 'मैं-पन' चला गया तो खत्म हो जाएगा। चंदूभाई का 'मैं-पन' गया तो 'मेरा' भी चला जाएगा-संकल्प

भी खत्म हो जाएगा! मन में जो ऐसा होता है, उसे जगत् संकल्प-विकल्प कहता है, जबकि वीतरागों ने उसे अध्यवसान कहा है। वीतरागों ने उनकी भाषा में अलग लिखा है सब और वह भाषा समझ में आए तब काम की है। जौहरी क्या एक ही प्रकार के हैं? यहाँ मुंबई में जौहरी होते हैं न, वे लाख का हीरा लेते हैं, वह मुंबई वाला मद्रास वाले को सवा लाख में बेचता है, क्योंकि मद्रास वाले बहुत बड़े जौहरी। मद्रास वाला वापस मुंबई वाले से भी अधिक पेरिस में ढाई लाख में बेचता है। यदि महंगा ले तो वह जौहरी सच्चा है। जो महंगा ले और अधिक कीमत दे, वह सच्चा जौहरी कहलाता है। मूर्ख नहीं देता, मूर्ख तो कम देने का प्रयत्न करता है कि पाँच सौ में देना हो तो दे, नहीं तो चला जा! सच्चा जौहरी उसकी कीमत देता है।

भूलें मिटानी वही वीतराग मार्ग

वीतरागों का मार्ग यानी कि भूलें मिटाना-वह, जहाँ-तहाँ से भूलें मिटाना और लोकभाषा में से वीतरागभाषा में आना-वह। वीतरागों का मार्ग बहुत सरल है। यदि 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ न तो मेहनत ही नहीं करनी पड़ती, वर्ना मेहनत से तो कभी भी किसी का मोक्ष नहीं हुआ है और न ही कभी होगा। यदि मेहनत से मोक्ष हो सकता तो ये लोग क्रियाएँ करके मेहनत करते हैं और मज़दूरें ईंटें उठाने की मेहनत करते हैं-इन दोनों में मेहनत ही हैं न! मेहनत से कभी भी किसी का मोक्ष नहीं हुआ है, वीतरागता से मोक्ष हुआ है। आप जिस अवस्था में फँसे हुए हो; मेहनती अवस्था में फँसे हुए हो, तब भी वीतरागता या फिर ऐसे शांत एक जगह पर शांत अवस्था में हो, तब भी यदि वीतरागता होगी तो मोक्ष होगा। एकांत में बैठे रहने से कुछ नहीं होगा या फिर मेहनत करते रहने से भी कुछ नहीं होगा। वीतरागता से मोक्ष होता है और वीतरागता कब आती है? तब कहे, संकल्प-विकल्प जाएँ तब वीतरागता आती है। संकल्प-विकल्प कहाँ पर जाते हैं? 'ज्ञानी पुरुष' के पास। उनकी कृपा बरसे तो, उनकी कृपा उतरे और कृपा पात्र बन जाएँ तब संकल्प-विकल्प जाते हैं, नहीं तो करोड़ों

जन्मों तक भी जा नहीं पाएँगे। एक विकल्प निकालने जाएगा तो दूसरे चार बीज डल जाएँगे, यानी फिर नए चार पौधे उगे! एक पौधा निकालने गया, तो चार उगे!

इन क्रियाओं से क्या हुआ है कि आज लक्ष्मी मिली, और दूसरा यह कि दिमाग़ तेज़ हो गया! क्योंकि वीतरागों के शब्द पढ़े हैं! वीतरागों के शब्दों के अनुसार क्रिया करने लगे हैं, इसलिए वीतराग ब्रेन टॉनिक से ब्रेन तेज़ हो गया। ब्रेन तेज़ हो गया इसलिए ट्रिक करना सीख गए, हार्ड ट्रिक, ट्रिक्स। बुद्धि है, वह किसलिए है? ट्रिक करने के लिए या मोक्ष में जाने के लिए?

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाने के लिए।

दादाश्री : हं। बुद्धि धोखा देने के लिए होती है? यदि सामने वाले की कम बुद्धि का लाभ ले तो? तो वह तो दुष्ट जानवर कहलाता है। भगवान ने क्या कहा है, ऐसा दुष्ट जानवर देखा नहीं था! वर्ल्ड में और किसी भी जगह पर नहीं है। सिर्फ इस हिन्दुस्तान में और थोड़ी-बहुत हिन्दुस्तान की छूत चीन-वीन में घुस गई है, लेकिन मूलतः यह छूत हिन्दुस्तान की है। जैसे टी.बी का रोग कुछ देशों में होता है न, वैसा ही यह एक प्रकार का रोग है और ये जंतु हैं, तो इसके जंतु फैलते हैं। मैंने आपके साथ दो-चार बार 'ट्रिक' की, इसलिए आप कहते हो कि, 'ट्रिक किए बिना नहीं चलेगा।' इससे जंतुओं का फैलाव शुरू हो जाता है। भयंकर रोग है यह तो! इसके जैसा और कोई रोग नहीं है। हार्ड रौद्रध्यान है। चार गतियों में भटका मारेगा!

यही का यही पिछले जन्म में किया था और उसका फल है यह। लक्ष्मी जी के साथ भी यही करने लगे और तेज़ दिमाग़ से काम लेने लगे हैं! 'इन दो पैरों से गिर जाते हो, तो चार पैर रखो अब।' भगवान ऐसा कहते हैं! हमें मुँह पर कहना पड़ता है, यह क्या अच्छा दिखता है? 'ज्ञानी पुरुष' को मुँह पर कहना पड़ता है कि, 'दो पैरों वालों के चार पैर हो जाएँगे!' लेकिन सावधान करने के लिए लाल

झंडी दिखा रहे हैं कि गाड़ी आगे मत जाने देना, बड़ा पुल टूट गया है! करुणा आती है 'ज्ञानी पुरुष' को! उन्हें द्वेष नहीं होता, लेकिन करुणा आती है। इतना ऊपर चढ़ा, वीतरागों से अमरपद माँग सके, इतनी तुझ में शक्ति है, लेकिन मार्ग अवरूद्ध हुआ इसलिए यह सब उत्पन्न हो गया है। मार्ग तो अवरूद्ध होता है, बैठे भी रहना पड़ता है। आपको पसंद आई या हमारी बातें कठोर लगती है?

प्रश्नकर्ता : दादा, बहुत पसंद हैं आपकी बातें।

दादाश्री : भीतर जो बैठे हैं वे भगवान हैं, 'यह तो पैकिंग है।' *पुद्गल* भगवान नहीं होता और पौद्गलिक भाव, वह भी भगवान नहीं है। भगवान तो भगवान ही हैं, ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंदी। उनके पास हमारी सर्व कामनाएँ पूरी हो जाती हैं और मोक्ष की कामना भी पूरी होती है। इच्छाएँ जो थोड़ी-बहुत रह गई हों, वे भी पूरी हो जाती हैं। इच्छाएँ पूरी किए बिना वहाँ मोक्ष में घुसने नहीं देंगे, वहाँ तो मुँह पर अरंडी का तेल हो उसे तो घुसने ही नहीं देते! लोगों के मुँह पर अरंडी का तेल देखने को मिलता है या नहीं मिलता? किसी के चेहरे पर क्या अरंडी का तेल चुपड़ते हैं लोग? नहीं, वह तो यों ही भीतर *कढ़ापा-अजंपा* होता है और उससे अरंडी के चेहरे वाले बन जाते हैं! और वह चालाकी? ब्रेन की चालाकी? कैसी चालाकी कि ऐसों-वैसों को तो वह कुछ गिनता ही नहीं! सरल व्यक्ति तो उसकी गिनती में ही नहीं होते! कितनी अधिक चालाकी!

तरणतारण ही तारें

मूल मोक्षमार्ग को जानना चाहिए, मोक्षमार्ग के दाता की आवश्यकता है और वे तरणतारण होने चाहिए। खुद तर चुके होंगे तभी हमें तार सकेंगे, वर्ना खुद यदि डूब रहा होगा तो हमारा क्या भला करेगा? जो खुद दाता पुरुष होते हैं, वे तो मोक्ष का दान देने के लिए ही आए होते हैं, लेने के लिए नहीं आए होते! जो मोक्ष का दान लेने आए हों, वे हमें क्या देंगे? दान लेने आने वाला दान देता है क्या? जो

मोक्ष का दान देने आए हैं, ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' के पास अपना काम होगा, मोक्षदाता पुरुष और जिनके पास स्टॉक में मोक्ष है और खुद मोक्ष स्वरूप हो चुके हैं, वे ही हमें मोक्षदान दे सकते हैं।

पूरा जगत् कैसे वीतरागता को समझे, कैसे वीतराग मार्ग को प्राप्त करे, भले ही मोक्ष प्राप्ति न हो पाए, लेकिन वीतराग मार्ग को प्राप्त करो। एक मील चलो, लेकिन वीतराग मार्ग पर चलो। जिस धर्म को पकड़ा हो, उस धर्म के जितने वीतराग मील हों, उसमें एक मील तो एक मील, लेकिन वीतराग मार्ग में आगे बढ़ो! 'ज्ञानी पुरुष' इतना ही कहते हैं।

ये पुस्तकें तो हीरे जैसी हैं। काँच के इमिटेशन हीरे और सच्चे हीरे सब एक साथ पड़े हुए हों, उनके जैसे ये शास्त्र हैं। उनमें से अगर कोई जौहरी होगा, तो एकाध पुस्तक को पहचान पाएगा, लेकिन अभी कोई जौहरी बचा नहीं है। जो रहे-सहे होंगे न जौहरी, वे शायद ही कोई बचे हैं, बाकी, जौहरीपन रहा नहीं है। जौहरीपन ही चला गया है पूरा, यानी जौहरीपन चला गया है! शास्त्र तो क्या करते हैं? शास्त्र तो मार्गदर्शन देते हैं कि गो टु ज्ञानी। क्योंकि आत्मा तो अवर्णनीय है और अवक्तव्य है, वाणी से बोला जा सके, वह ऐसा नहीं है। उसका वर्णन हो सके ऐसा नहीं है।

वीतराग धर्म

वीतराग धर्म यानी क्या? वीतराग धर्म किसे कहते हैं? जहाँ निर्विवादिता है, वहाँ पर वीतराग धर्म है। वीतराग धर्म होता है, वहाँ वाद पर विवाद भी नहीं होता, प्रतिवाद भी नहीं होता। अपने यहाँ बारह साल से ये प्रवचन चल रहे हैं, लेकिन किसी ने भी विवाद नहीं किया है अभी तक! क्योंकि स्याद्वाद वाणी में विवाद कैसा? मुस्लिम भी क़बूल करते हैं, यूरोपियन भी क़बूल करते हैं, सभी को क़बूल किए बिना चारा ही नहीं है। यदि वे क़बूल नहीं करते तो हम समझ जाते हैं कि यह उनकी *आड़ाई* है। वे यह जान-बूझकर कर रहे हैं

और ऐसा तो करते ही हैं, व्यक्ति में अहंकार होता है और *आड़ाई* करना-वह तो उसका मूल स्वभाव है न?

अब वीतराग मार्ग का उद्धार होने लगा है। वीतराग तो खुद वीतराग थे, लेकिन उनके मार्ग का उद्धार होगा न! बहुत दिनों तक, कब तक उस मार्ग पर धूल पड़ी रहेगी? सच्चा हीरा कभी बाहर निकले बिना रहता है क्या? कृष्ण भगवान ने भी कहा है, 'वीतराग मार्ग निर्भय मार्ग है, मोक्षमार्ग है।' कृष्ण भगवान ने कितना सुंदर कहा है!

जगत् में क्रांति काल बरते

प्रश्नकर्ता : आज भारत की पूरी संस्कृति किस तरह से खत्म करनी, वह वेस्टर्न डिक्टेशन से चल रहा है।

दादाश्री : संस्कृति का नाश करने चले हैं न वे, हमें जो मकान तोड़ना था न, ये लोग उसी को तोड़ रहे हैं, इसलिए हमें लेबरर्स नहीं मँगवाने पड़ेंगे। मैं कब से ही जान गया हूँ कि ये लेबरर्स बाहर से आ रहे हैं। जबकि हमें उन्हें एन्करेज नहीं करना है, लेकिन भीतर हमें समझ जाना है, कि ये तो मुफ्त में लेबरर्स मिल रहे हैं! इस तरह पुराना सब गिर जाएगा, तभी नया रचा जा सकेगा!

ये फॉरेन वाले कितने अधिक सुधर गए हैं(!) कि नींद की गोलियाँ खाएँ, तब उन्हें नींद आती है! अरे, आपकी नींद कहाँ गई? उनसे तो हमारे यहाँ वाले अच्छे कि आराम से सो जाते हैं। आप अपने देश में पूरे वर्ल्ड का सोना और लक्ष्मी लेकर बैठे हो, फिर भी बीस-बीस गोलियाँ खाकर सोते हो! यह क्या है आपका? एक फॉरेन का साइन्टिस्ट हमें मिला था उससे हमने यह बात की। उसने पूछा कि, 'इसमें हमारी भूल कहाँ रह गई है?' तब मैंने कहा, 'यह जो आपका भौतिक विज्ञान है, वह अबव नॉर्मल का पोइज़न हो चुका है, सब ज़हरीला हो चुका है। बिलो नॉर्मल इज़ द पोइज़न, अबव नॉर्मल इज़ द पोइज़न, नॉर्मेलिटी इज़ द रियल लाइफ।'

वीतराग मार्ग ऐसा कहता है कि, 'जो कुछ हो रहा है वह

वीतराग मार्ग को पुष्टि देने वाले कारण हैं।' अभी जो सब हो रहा है वह वीतराग मार्ग को पुष्टि देता रहता है।

प्रश्नकर्ता : जब ये होता है, तो हमें विचार आते हैं और उत्कृष्ट भावना होती है।

दादाश्री : हमें ज़रा भी राग-द्वेष नहीं होते। हमें तुरंत ही समझ में आ जाता है कि ये क्या कर रहे हैं! ये उपाश्रय में क्या कर रहे हैं? वीतरागों की पुष्टि! वीतराग मार्ग किसे कहते हैं? कि जहाँ चंचलता का नाश हो जाए। सात्विकता की हद होती है, सात्विकता जो कि चंचलता को बढ़ाए, वैसी सात्विकता खत्म हो जानी चाहिए। एक व्यक्ति जो कम चंचल होता है, वह इमोशनल नहीं होता, मोशन में रहता है। वह पूरी ज़िंदगी में जितने कर्म बाँधता है, उतने ही अधिक चंचलता वाला व्यक्ति पंद्रह मिनट में बाँध लेता है! यानी कि यह सारा वीतराग धर्म का पोषण हो रहा है। जितना-जितना आपको दिखता है न, जो उल्टा भासित होता है न, उससे वीतराग धर्म का ही पोषण हो रहा है, सारा ही!

मुझे यह प्रश्न 1928 में खड़ा हुआ था। 1928 में मैं सिनेमा देखने गया था, वहाँ मुझे यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था कि, 'अरे-रे, इस सिनेमा से अपने संस्कारों का क्या होगा? क्या दशा होगी इन लोगों की?' फिर दूसरा विचार आया कि, 'क्या इस विचार का उपाय है अपने पास? कोई सत्ता है अपने पास? कोई सत्ता तो है नहीं, तो यह विचार अपने काम का नहीं है। सत्ता हो, तब यह विचार काम का है, जो विचार सत्ता से बाहर हो और उसके पीछे मथते रहें, तो वह तो इगोइज़म है।' इसलिए फिर दूसरा विचार आया कि, 'क्या ऐसा ही होने वाला है इस हिन्दुस्तान का?' उस समय हमें ज्ञान नहीं था, ज्ञान तो 1958 में हुआ, 1958 में ज्ञान हुआ था, उससे पहले अज्ञान तो था ही न? क्या अज्ञान किसी ने ले लिया था? ज्ञान नहीं था, लेकिन अज्ञान तो था ही न? लेकिन तब अज्ञान में वह भाग दिखा कि, 'जो उल्टे का प्रचार जल्दी से कर सकता है, वह अच्छे का भी उतनी ही

तेज़ी से प्रचार करेगा। इसलिए अच्छे के प्रचार के लिए ये साधन सब से अच्छे हैं।' यह सब तब सोचा था, लेकिन 1958 में ज्ञान प्रकट हुआ तब से इसके प्रति बिल्कुल भी विचार नहीं आए।

आज वीतराग धर्म के लिए पूरे वर्ल्ड में काम हो रहा है। एक जगह पर नहीं, पूरे वर्ल्ड में काम हो रहा है, ये सभी वीतराग धर्म को पुष्टि दे रहे हैं, और खुद का सत्यानाश कर रहे हैं!

ये मंत्री हमसे पूछने आते हैं और कहते हैं कि, 'इस हिन्दुस्तान का सभी कुछ बिगड़ता जा रहा है।' मैंने कहा, 'साहब, आपका घर बिगड़ जाएगा, देखना कहीं आपकी ये लड़कियाँ न भटक जाएँ।' क्योंकि साहब के वहाँ तीन गाड़ियाँ होती हैं, उसमें से एक को साहब लेकर चले और एक को सेठानी इधर लेकर चली और लड़कियाँ उधर जाएँगी, तहस-नहस हो जाएगा, तेरा तहस-नहस हो जाएगा। इस हिन्दुस्तान का बिगाड़ने वाला तो कोई पैदा ही नहीं हुआ, यह हिन्दुस्तान तो वीतरागों का देश है, ऋषिमुनियों का देश है, इसका कोई नाम देने वाला नहीं है। जिस देश में कृष्ण भगवान जैसे वासुदेव पैदा हुए, जिस देश में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव और 9 बलराम पैदा हुए हैं, वहाँ क्या कमी हो सकती है?

क्रमिक मार्ग में नकल चल सकती है, लेकिन 'यह' अक्रम मार्ग है! अचानक ही दीया प्रकट हो गया है इसलिए तू तेरा दीया प्रज्वलित कर जा। फिर जितनी गांठें हैं उन गांठों को किस तरह से निकालना, वह मैं तुझे दिखाऊँगा, लेकिन पहले तू पुरुष बन जा, प्रकृति के रूप में तेरा कुछ भला नहीं होगा। मनुष्य किस रूप में है? जब तक 'स्वरूप का भान' नहीं हो जाता, तब तक वह प्रकृति के रूप में हैं और जो-जो क्रियाएँ की जाती हैं, वे सभी प्रकृति के नाच हैं। और प्रकृति नाचती है और खुद कहता है कि, 'मैंने किया।' इसे गर्व कहते हैं।

भक्त-भक्ति-भगवान

कृष्ण भगवान ने चार प्रकार के भक्त बताए हैं : अभक्तों के प्रकार तो अनेक हैं! इसलिए हम यहाँ भक्तों के ही प्रकार देखें :

1) आर्तभक्त - दुःख आएँ, तभी भगवान को याद करता है, सुख में याद नहीं करता। खुद के पैर में दुखे, तब 'हे भगवान! हे भगवान!' करता है, 'दया करो, दया करो' कहता है। तब भगवान समझ जाते हैं कि, 'यह तो दुःख के मारे मुझे याद कर रहा है।' ऐसे भक्त जगह-जगह पर देखने को मिलते हैं।

2) अर्थार्थी भक्त - ये स्वार्थी भक्त हैं, अर्थात् मतलबी भक्त, 'मेरे यहाँ बेटे का जन्म होगा तो ऐसा करूँगा' कहता है, भगवान से माँगता है। अर्थार्थी का अर्थ नहीं जानते, इसीलिए वे कहते हैं कि, 'मैं अर्थार्थी हूँ।'

3) जिज्ञासु भक्त - जो भगवान के दर्शन करे, भगवान के दर्शन की लगनी लगे, वह जिज्ञासु भक्त।

4) ज्ञानी भक्त - वह तो एक 'मैं' खुद ही हूँ।

भगवान ने कहा है कि, 'ज्ञानी ही मेरा प्रत्यक्ष आत्मा है।' वे तो खुद अपने पाप कर्मों का पुलिंदा बनाकर जला देते हैं और सामने वाले के पापों का भी पुलिंदा बनाकर जला देते हैं! वैसे 'ज्ञानी पुरुष' 'हम' खुद हैं!

इन चार भक्तों में से जिज्ञासु भक्त काम निकाल लेता है। इनके अलावा भक्त का कोई पाँचवा प्रकार नहीं है। अभक्त तो, अगर भगवान

हाज़िर हो जाएँ तो उनका भी सालन बनाकर खा जाएँ, वैसे हैं! क्योंकि बहुत मिन्नतें वगैरह मानी हुई होती हैं, तो उनमें से अगर कोई एक भी पूरी नहीं होती तो फिर भगवान का साग बनाकर खा जाएँ, वैसे हैं!

प्रश्नकर्ता : दादा, ये भाई तो भगत आदमी है।

दादाश्री : कब तक भगत रहना है? जन्मोंजन्म तक भगत ही रहता है और यदि किसी जन्म में भूल खाई और भक्तों में भी अगर कोई कुसंग मिल गया तो? केन्टीन में ले जाएगा, और, वही फँसाव है!

जब तक ज्ञानी नहीं मिलें, तब तक भक्ति माँगनी चाहिए और ज्ञानी मिल जाएँ तब उनसे मोक्ष माँग लेना चाहिए। ज्ञानी स्थायी हल ला देते हैं। भगत भगवान को किसलिए याद करते हैं? तब कहे, आत्मज्ञान के लिए। लेकिन आत्मज्ञान तो तेरा खुद का ही स्वरूप है, लेकिन उसका तुझे भान नहीं है न? जगत् में तो सब ओर 'तू ही, तू ही' गाते हैं, वे भगत और भगवान को जुदा मानते हैं। अरे, एक बार 'मैं.. ही, मैं.. ही' गा न! तो भी तेरा कल्याण हो जाएगा। 'तू ही, तू ही' गाएगा तो कब अंत आएगा? लेकिन लोग 'तू ही, तू ही' किसलिए गाते हैं? जो 'तू' व्यग्रता में था, वह अब सिर्फ 'तुझ में' एकाग्र हो गया है, 'तू' ऐसा गाता है, लेकिन ऐसे 'तू ही' गाने से कुछ नहीं होगा। 'मैं ही' का काम होता है, 'तू ही' में 'तू' और 'मैं' का भेद रहता है, इसलिए अंत तक भगत और भगवान दोनों जुदा ही रहते हैं, जबकि 'मैं ही' में अभेदता रहती है, 'खुद' ही परमात्मा स्वरूप हो जाता है!

कुछ 'तत्वमसि' ऐसा गाते हैं, यानी कि 'वह मैं हूँ'। लेकिन 'वह' कौन, वह भगवान जाने! 'वह' का स्वरूप ही समझ में नहीं आया और 'तत्वमसि-तत्वमसि' गाता रहता है तो उससे कुछ भी नहीं होता। जब सभी ओर 'मैं ही, मैं ही' दिखाई देता है, तब काम होता है!

भक्तों ने कहा है कि, 'सभी में भगवान को देख', लेकिन वह साइकोलोजिकल इफेक्ट है। ऐसी आदत डाली हो कि 'सभी में भगवान देखने हैं', तो दिखते हैं, लेकिन ज़रा छेड़ें तो क्रोध-मान-माया-लोभ

खड़े हो जाते हैं। इन भक्तों में से किसी ने एक बूंद भी प्राप्त नहीं की है, वैसा आप सभी महात्माओं ने प्राप्त किया है! यह ग़ज़ब का ज्ञान है! यह तो साइन्स है! साइन्टिफिक तरीके से आत्मा प्राप्त किया, इसलिए सभी में आत्मा देख सकते हो। भक्तों ने 'तू ही, तू ही' गाया हुआ है और आपको तो ज्ञान दिया हुआ है, वह ज्ञान 'मैं ही' का है। 'तू ही' में भक्त और भगवान में भेद रहता है। भेदबुद्धि रहती है उसमें नया क्या? अखा भगत कह गए हैं कि, 'जो तू जीव तो कर्ता हरि, जो तू शिव तो वस्तु खरी।'

यदि जीव और शिव का वह भेद खत्म हो जाए तो परमात्मा बन जाए, अभेद बुद्धि हो जाए तो काम हो जाएगा।

व्यवहार में - भक्त और ज्ञानी

'तू ही, तू ही' से संसार है। सभी बड़े-बड़े भक्त आरोपित जगहों पर हैं, इसलिए आकुलता-व्याकुलता रहती है, और यदि 'स्व' में रहें, तो स्वस्थता रहती है। आकुलता-व्याकुलता नहीं रहती है, निराकुलता रहती है। भक्त जब खुश होते हैं, तब बावरे हो जाते हैं और दुःख में डिप्रेस हो जाते हैं। ये भक्त जगत् की दृष्टि से पागल कहलाते हैं, कब पागलपन करेंगे वह कहा नहीं जा सकता। नरसिंह महेता की पत्नी जब जाने वाली थीं, तब हरिजनवास में से भजन गाने के लिए बुलाने आए तो वे गए, और सारी रात कीर्तन, भक्ति, भजन गाए। एक व्यक्ति सुबह आया और कहा, 'महेतानी जी गुज़र गई।' तो महेता गाने लगे,

'भलु थयुं भांगी जंजाल, सुखे भजीशुं श्रीगोपाल।'
('अच्छा हुआ जंजाल मिटी, अब सुख से भजेंगे श्रीगोपाल।')

लेकिन क्या लौकिक रिवाज नहीं करने पड़ते? करने चाहिए, लेकिन ये तो पागलपन करते हैं। जबकि 'ज्ञानी पुरुष' व्यवहार में कहीं भी कच्चे नहीं पड़ते। लौकिक रिवाज में भी एक्ज़ेक्ट ड्रामा करते हैं। जो ड्रामा में कहीं भी नहीं चूकते, वे ज्ञानी! जहाँ, जिस समय, जो ड्रामा करना हो, वह 'हम' संपूर्ण अभिनय सहित करते हैं। हम काम

पर जाएँ, तो वहाँ सब कहते हैं, 'सेठ जी आए, सेठ जी आए।' तो वहाँ हम सेठ का ड्रामा करते हैं। ननिहाल में जाएँ तो वहाँ सब कहते हैं कि, 'भान्जे आए।' तो वहाँ हम भान्जे का ड्रामा करते हैं। गाड़ी में हम से पूछें कि, 'आप कौन हैं?' तो हम कहते हैं कि, 'पैसेन्जर हैं।' यहाँ सत्संग में आएँ, तब 'ज्ञानी पुरुष' का अभिनय करते हैं और बारात में जाएँ तो बाराती बन जाते हैं और स्मशान में जाएँ तो अर्थी को कंधा देने वाले बन जाते हैं। फिर उस ड्रामे में ज़रा सी भी कमी नहीं रहती, एक्ज़ेक्ट अभिनय होता है। जो ड्रामे में कच्चे पड़ जाएँ वे ज्ञानी नहीं होते। गाड़ी में टिकिट चैकर टिकिट माँगे तो वहाँ हम थोड़े ही कह सकेंगे कि, "हम 'ज्ञानी पुरुष' हैं, 'दादा भगवान' हैं?" वहाँ तो पैसेन्जर ही हैं और यदि टिकिट गिर गई हो तो चैकर से कहना पड़ेगा कि, 'भाई, टिकिट ली थी लेकिन गिर गई, तुझे जो जुर्माना लेना हो वह ले ले।' भक्त धुनी होते हैं। धुन शब्द ध्यानी में से बना है। ध्यानी का अपभ्रंश हो गया तो धुनी बन गया! एक ही तरफ का ध्यान, वह ध्यानी। एक ध्यान में पड़ जाए तो उसे धुन लग गई, कहा जाता है, वह धुनी बन जाता है। एक अवस्था उत्पन्न होने के बाद उसी में रहता है, उसे धुनी कहते हैं। धुनी तो, खुद के स्वरूप में होने योग्य है, उससे ध्याता, ध्येय और ध्यान एक हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ये जिन्हें विम्ज़िकल कहते हैं, वे धुनी ही हैं क्या?

दादाश्री : वे धुनी के सौतेले भाई हैं। धुनी को पैसे से मतलब नहीं होता। हमारे पास धुनी आए तो उसका काम ही हो जाए। धुनी को संसार में लोग सुखी नहीं होने देते, इधर-उधर से मारते रहते हैं। भक्तों को बेचारों को सुख नहीं मिलता, लोग उन्हें परेशान करते रहते हैं, भक्तों को लोगों से बहुत मार पड़ती है। कबीर जी ने, बेचारों ने बहुत बार लोगों की मार खाई है। एक बार दिल्ली में युवा दंपत्ति साथ में घूम रहे थे और बच्चे को गोदी में लेकर घूम रहे थे, तो कबीर जी को बहुत दया आई कि ये किस तरह जी रहे हैं? इसलिए वे एक ऊँची टेकरी पर चढ़ गए और ऊँची आवाज़ में गाने लगे,

'ऊँचा चढ़ पुकारियाँ, बूमत मारी बहुत,
चेतनहारा चेतजो, सिर पे आई मोत।'

सिर पर मौत आई है और इस बच्चे और बच्ची को बगल में डालकर कहाँ घूम रहे हो? तो बीवी और बीवी के पतिदेव और बाकी लोगों ने खड़े रहकर देखा कि, 'यह पागल क्या बोल रहा है?' तब फिर सभी ने उन्हें बहुत मारा! कबीर जी तो सच्चे भक्त और चोखे इंसान थे, इसलिए मार भी बहुत खाई थी। सच्चा भक्त तो कोई-कोई ही होता है।

साफ-साफ (नग्न सत्य) नहीं बोलना चाहिए। वाणी कैसी होनी चाहिए? हित, मित, प्रिय और सत्य-इन चार गुणों सहित होनी चाहिए। भले ही कितनी भी सत्य वाणी हो, लेकिन यदि वह सामने वाले को प्रिय नहीं लगे तो वह वाणी किस काम की? इसमें तो ज्ञानी का ही काम है। चारों गुणाकार वाली वाणी सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' के पास ही होती है, सामने वाले के हित के लिए ही होती है, वाणी बिल्कुल भी खुद के हित के लिए नहीं होती। ज्ञानी को '*पोतापणुं*' (मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन) होता ही नहीं है, यदि *पोतापणुं* रहे तो वह ज्ञानी ही नहीं है।

कबीर जी एक दिन शाम को दिल्ली में घूमने निकले, रास्ते में बहुत भीड़ थी, वे देखकर गाने लगे,

'माणस खोजत मैं फिरा, माणस का बड़ा सुकाल,
जाको देखी दिल ठरे, ताको परियो दुकाल।'

लोग तो बहुत हैं, लेकिन दिल को ठंडक पहुँचे ऐसा कोई नहीं होता न? जिससे दिल को ठंडक पहुँचे ऐसा व्यक्ति क्या समुद्र की सतह पर होता होगा? वह तो समुद्र में पाँच फुट की गहराई पर होता है! ऊपर ढूँढोगे तो कहाँ से मिलेगा?

एक बार की बात है। एक राजा बहुत उदार थे। एक दिन महल में से बाहर आए और उन्होंने बहुत सारे लोगों को देखा। मंत्री से पूछा कि, 'ये लोग क्यों आए हैं?' मंत्री ने कहा कि, 'ये लोग भूखे हैं

इसलिए भोजन माँगने आए हैं।' राजा ने कहा कि, 'तो फिर रोज़ इन लोगों को भोजन दो।' धीरे-धीरे एक-एक व्यक्ति तक बात पहुँच गई और रोज़ लोगों की टोलियाँ राजा के यहाँ खाना खाने के लिए आने लगी। मंत्री तो विचार में पड़ गए कि, 'ये तो फँस गए। रोज़ हज़ारों लोग आते हैं, यह कैसे पुसाएगा?' उन्होंने एक युक्ति ढूँढ निकाली और राजा की अनुमति ले ली। फिर ढिंढोरा पीटा दिया कि, 'रोज़ जो भक्त खाना खाने आते हैं, कल राजा उनका 'भक्त-तेल' निकालने वाले हैं तो सभी ज़रूर आना।' तो दूसरे दिन दो ही लोग आए। खुद का तेल निकलवाने के लिए कौन आए? दो सच्चे भक्त थे वे आए।

बहन, आपको मोक्ष चाहिए या और कुछ चाहिए?

प्रश्नकर्ता : मोक्ष के बजाय तो भक्ति करने को मिले तो अच्छा।

दादाश्री : आप अभी भगवान की भक्ति करती हो, तो क्या उन भगवान को पहचानती हो? वे भगवान कौन से मुहल्ले में रहते हैं? कितने लंबे होंगे? उनके कितने बच्चे हैं? उन्होंने माँ का बारहवाँ किया है या नहीं, वह आप जानती हो?

प्रश्नकर्ता : भक्ति करने से ही साक्षात्कार होता है न?

दादाश्री : अनंत जन्मों से आप हो, कौन से जन्म में आपने भक्ति नहीं की होगी? अनंत जन्मों से भगवान को पहचाने बिना परोक्ष भक्ति की है, उससे कुछ भी नहीं मिलता और यात्राओं में भटकना पड़ता है, तो क्या भगवान वहाँ पर बैठे हुए होंगे?

पूरी दुनिया उलझी हुई है। साधु, सन्यासी सभी उलझे हुए हैं। ऐसे कितने ही लोग गलियों में भटकते रहते हैं, कोई हिमालय में, तो कोई जंगल में भटकता है, लेकिन भगवान तो ज्ञानी के पास ही हैं। अन्य कहीं भी जाओगे तो वहाँ गड़बड़-गड़बड़-गड़बड़ ही है। मनुष्य के जन्म में ज्ञानी के पास आत्मा नहीं जाना तो बाकी सभी जगह पर गड़बड़ ही है। आपको जो कुछ पूछना हो वह पूछना, यहाँ पर यह अंतिम स्टेशन की बात है।

भक्ति और मुक्ति

प्रश्नकर्ता : मुक्ति के लिए भक्ति करनी चाहिए?

दादाश्री : भक्ति तो मुक्तिमार्ग के साधन दिलवा देती है। भक्ति करने से मुक्ति के साधन मिलते हैं। वीतराग की भक्ति सिर्फ मुक्ति के लिए ही है। जो व्यक्ति किसी भी चीज़ का भिखारी है तो उसका सत्संग मोक्ष के लिए काम का नहीं है। देवगति के लिए ऐसा सत्संग काम आएगा लेकिन मोक्ष के लिए तो, जो किसी भी चीज़ का भिखारी नहीं है, उसका सत्संग करना चाहिए। भगत के हिस्से में क्या आता है? घंटी बजानी और प्रसाद खाना। ये तो खुद भगवान के फोटो की भक्ति करता है, यह कैसा है? कि जिसकी भक्ति करता है, वैसा बन जाता है! संगमरमर के पत्थर की भक्ति करे, तो संगमरमर जैसा बन जाता है और काले पत्थर की भक्ति करे तो काला पत्थर बन जाता है, फोटो की भक्ति करे तो फोटो जैसा बन जाता है और इन 'दादा' की भक्ति करे तो 'दादा' जैसा बन जाता है! भक्ति का स्वभाव कैसा है? जिस रूप की भक्ति करेगा, वैसा बन जाएगा। भक्ति, वह तो भगवान और भक्त का संबंध बताती है। जब तक भगवान हैं, तब तक चेले हैं, भगवान और भक्त भिन्न हैं। अपने यहाँ जो किया जाता हैं उसे भक्ति नहीं कहते, वह निदिध्यासन कहलाता है। निदिध्यासन भक्ति से उच्च माना जाता है। निदिध्यासन में एक रूप ही रहता है, एक रूप ही हो जाता है उस समय, जबकि भक्ति में तो कितने ही जन्मों तक भक्ति करता रहे, फिर भी ठिकाना नहीं पड़ता!

इस कम्प्यूटर को भगवान मानकर उसे ढूँढने जाओगे तो सच्चे भगवान छूट जाएँगे। भक्ति तो, जो अपने से ऊँचे हैं उन्हीं की कर न! उनके गुण सुने बिना भक्ति होगी ही नहीं। लेकिन ये जो करते हैं वह प्राकृत गुणों की ही भक्ति है, तो वहाँ तो चस्का नहीं लगा हो तो भक्ति कर ही नहीं सकता। चस्का लगे बिना भक्ति हो ही नहीं सकती।

नाम, स्थापना और द्रव्य, इन तीन गुणाकारों से भक्ति होती है।

कुछ लोग स्थापना भक्ति करते हैं, भगवान का फोटो रखते हैं और भक्ति करते हैं वे, और 'ज्ञानी पुरुष' की भक्ति यानी कि जब नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव वे चारों ही गुणाकार हों, तब होती है।

प्रश्नकर्ता : भक्ति और श्रद्धा में फर्क है क्या?

दादाश्री : भक्ति का मतलब तू क्या समझा? 'मैं खाता हूँ', वह क्या भक्ति कहलाएगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं। आराधना करते हैं, वह भक्ति है न?

दादाश्री : पुस्तक पढ़ते-पढ़ते जिनके वाक्यों पर श्रद्धा बैठे, कृष्ण के वाक्यों पर श्रद्धा बैठे तो कृष्ण की भक्ति होती है। जिनके वाक्यों के साथ एडजस्टमेन्ट होता है उन पर श्रद्धा बैठती है, फिर उनकी भक्ति होती है। दूसरों के वाक्यों पर श्रद्धा बैठ जाए तो पहले वाले के साथ एडजस्टमेन्ट नहीं हो पाता, वह श्रद्धा डगमगा जाती है। यहाँ तो निश्चयपूर्वक श्रद्धा है, इसे प्रतीति कहते हैं।

आराधना - विराधना

प्रश्नकर्ता : आराधना किसे कहते हैं?

दादाश्री : विराधना कब तक कहलाती है कि, किसी का मन दुःखाना। उससे उल्टा किया जाए तो उसे आराधना कहते हैं। जगत् में जो होता है, वह तो अपराध है। आराधना यदि उत्तर है तो विराधना दक्षिण है। आराधना हुई मतलब वहाँ राधा आती है, इसलिए वहाँ पर कृष्ण आते ही हैं!

प्रश्नकर्ता : दादा निरंतर याद रहते हैं-वह क्या है?

दादाश्री : वह निदिध्यासन कहलाता है। निदिध्यासन से तद्रूप हो जाते हैं और उनकी सारी शक्तियाँ खुद को प्राप्त होती हैं। श्रवण और मनन से निदिध्यासन बढ़ता जाता है।

प्रश्नकर्ता : अपराध की डेफिनेशन क्या है?

दादाश्री : विराधना इच्छा के बिना होती है और अपराध इच्छापूर्वक होता है।

प्रश्नकर्ता : वह किस तरह होता है दादा?

दादाश्री : ज़िद पर आ जाए तो वह अपराध कर बैठता है, जानता है कि यहाँ विराधना करने जैसा नहीं है फिर भी विराधना करता है। जानता है फिर भी विराधना करे, वह अपराध में जाता है। विराधना वाला छूट जाता है, लेकिन अपराध वाला नहीं छूटता। जिसका बहुत तीव्र भारी अहंकार होता है, वह अपराध कर बैठता है। इसलिए हमें खुद को कहना पड़ेगा कि, 'भाई, तू तो पागल है, यों ही पावर लेकर चल रहा है। ये लोग तो नहीं जानते लेकिन मैं जानता हूँ कि तू कहाँ, कैसा है? तू तो घनचक्कर है।' यह तो अपने को उपाय करना पड़ेगा, प्लस और माइनस करना पड़ेगा। सिर्फ गुणा ही हो तो कहाँ तक पहुँचेंगे? इसलिए हमें भाग लगाना पड़ेगा। जोड़-बाकी नेचर के अधीन है जबकि गुणा-भाग मनुष्य के हाथ में है। इस अहंकार से सात से गुणा हो रहा हो तो सात से भाग लगा देना, ताकि निःशेष हो जाए।

प्रश्नकर्ता : जो अपराध हो चुका हो, वह कैसे धुल सकता है?

दादाश्री : 'ज्ञानी पुरुष' के पास आँख में पानी आ जाए तो अपराध मिट जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : वह किसके अधीन है?

दादाश्री : अधीन नहीं देखना है, वह सब निमित्ताधीन है। रोने से हल्कापन आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : अपराध करते समय बिल्कुल भी ख्याल नहीं आता, वह किसलिए?

दादाश्री : वह बहुत भारी प्रपात जैसा है, इसलिए।

नियम में पोल नहीं मारनी चाहिए

ये महाराज लोग तीन डंडियाँ रखकर माला करते रहते हैं। कितने

जन्म गुज़र गए फिर भी आप यह लकड़ी की माला घुमा रहे हो? क्या अंदर चेतन माला नहीं है? यह तो 'भाग मनका-मनका आया, भाग मनका-मनका आया'-ऐसे करता रहता है! अरे, ऐसा क्यों करते हो? तब वह कहेगा कि, 'ऐसा तो हमारे गुरु भी करते थे, इसलिए हम भी ऐसा ही करते हैं।'

किसीने ऐसा नियम लिया हो कि रोज़ चालीस माला करनी है और यदि जल्दी में हो तो जिनसे नियम लिया हो उनसे माफ़ी माँगकर कहना चाहिए कि, 'आज तो पैंतीस ही कर सकूँगा, तो पाँच माला के लिए माफ़ी दीजिए।' तो वह चलेगा, लेकिन यह तो ज़ल्दबाज़ी में चालीस गिन लेता है। अरे, माला गिननी हो तो एक के बाद तीन और तीन के बाद सात ऐसा भला चलता होगा? नहीं चलता। चित्त को बाँधने के लिए माला करना सभी धर्मों में भी है, मुस्लिम में भी है। यह माला तो कब तक करनी होती है? कि जब तक चित्त की माला न घूमने लगे, तब तक और चित्त की माला घूमने लगे तो लकड़ी की माला करने की ज़रूरत नहीं रहती। आपको यह ज्ञान देने के बाद शुद्धात्मा की माला होती है, इसलिए अब अन्य किसी माला की ज़रूरत नहीं है। यह तो अजपाजाप शुरू हो गया। शुद्धात्मा का अजपाजाप शुरू हो जाए तो काम हो गया! फिर प्रकृति में जो माल हो, उसे खाली करना है, नाटक में पार्ट पूरा करना है!

ये रुपये के नोट ज़ल्दबाज़ी में गिनने हो तो नहीं गिनता, सतर्कता से गिनता है, बार-बार गिनता है, और माला में तो लापरवाह रहता है! तब भगवान कहते हैं कि, 'मेरी तरफ तो देख, तेरा बाहर का कच्चा है तो तेरे अंदर का भी कच्चा रहेगा, रात-दिन तुझे अंदर संताप रहा करेगा।'

अक्रम-मुक्ति के बाद भक्ति

प्रश्नकर्ता : संतों ने हमेशा भक्ति ही क्यों माँगी? मुक्ति क्यों नहीं माँगी?

दादाश्री : भक्ति और मुक्ति इन दोनों में देखने जाएँ तो यों

कोई फर्क नहीं है। भक्ति मतलब अभी यहाँ ये महात्मा 'ज्ञानी पुरुष' की भक्ति करते हैं-वह, यानी क्या कि 'ज्ञानी पुरुष' के प्रति परम विनय में रहते हैं, उनका *राजीपा* (गुरुजनों की प्रसन्नता) प्राप्त करना, उसी को कहते हैं भक्ति। भक्ति का अर्थ ज्ञानी के पैर दबाना या उनकी पूजा करना, ऐसा सब नहीं है लेकिन उनका परम विनय रखना, वह है। यहाँ पर ये सब अभी मुक्ति नहीं ढूँढ रहे हैं, इन्हें ऐसा लगता है कि बस अब 'ज्ञानी पुरुष' की ही भक्ति करनी है। मुक्ति तो 'हमने' इन्हें एक घंटे में ही दे दी है, अब क्या आपको मुझसे मुक्ति माँगने की इच्छा होती है?

प्रश्नकर्ता : नहीं दादा।

दादाश्री : मुक्ति दे देने के बाद वापस अब क्या लिखवाना बाकी है? एक ही बार चेक लिखवा लेना होता है कि 99,999 रुपये और 99 पैसे! मुक्ति तो दी जा चुकी है, तो अब क्या बचा? भक्ति रही। यह 'अक्रम मार्ग' है, जगत् का 'क्रमिक मार्ग' है। क्रमिक मार्ग मतलब पहले भक्ति और फिर मुक्ति और इस अक्रम मार्ग में पहले मुक्ति है, फिर भक्ति है! अभी तो ये लोग मुक्ति लिए बिना भक्ति करने जाएँ तो भक्ति रहेगी ही नहीं न! अंदर हज़ारों प्रकार की चिंताएँ, *उपाधियाँ* रहती हों तो फिर भक्ति कैसे रह पाएगी? और अगर मुक्ति पहले प्राप्त कर ली हो तो, ये सब चैन से बैठे हैं न, यहाँ पर ये सब बैठे हैं वैसे बैठना होता है! ये सब इस तरह चैन से कैसे बैठे हैं? जैसे यहाँ से उठना ही नहीं हो वैसे? मुक्ति है इनके पास-इसलिए! आपका खुलासा हुआ न? यहाँ सभी खुलासे होने चाहिए। आप और मैं एक ही हैं, लेकिन आपको भेद महसूस होता है। मुझे भेद नहीं लगता, क्योंकि भेदबुद्धि से भेद दिखता है। 'मैं चंदूलाल हूँ' वह भेदबुद्धि अभी तक है न आप में? आपकी भेदबुद्धि जा चुकी है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, दादा।

दादाश्री : इसीलिए तो, जब तक वह भेदबुद्धि है तब तक भेद लगता है। यह अलग और वह अलग। मेरी बुद्धि अभेद हो चुकी है,

आपका आत्मा 'मैं' ही हूँ, इनका आत्मा भी 'मैं' ही हूँ, सभी में 'मैं' ही बैठा हुआ हूँ, तब फिर किसी के साथ झंझट कहाँ रही?

भगवान का पता

दादाश्री : आपका घर कौन चलाता है?

प्रश्नकर्ता : ईश्वर।

दादाश्री : वह ऊपर कौन से मुहल्ले में रहते हैं? उनका एड्रेस तो बताओ!

प्रश्नकर्ता : ... (निरुत्तर)

दादाश्री : ऐसी बिना एड्रेस की भक्ति किस काम की? उन्हें देखा नहीं हो तो चलेगा, लेकिन एड्रेस तो चाहिए न? यह तो बिना एड्रेस की बात है! स्ट्रीट नंबर भी नहीं जानते?! यह ईश्वर विवाहित होगा या कुँवारा? और विवाहित हैं तो उनकी वहाँ माँ होंगी, बूढ़ी माँ होंगी! उनके वहाँ तो कोई मरेगा ही नहीं न? तो कितने परिवारजन होंगे? लेकिन वैसा नहीं है। इस जगत् की बात सत्य नहीं है। 'ज्ञानी पुरुष' की बात, यही सच है, 'ज्ञानी पुरुष' सच जानते हैं। द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ, इसे कोई बनाने नहीं गया, इटसेल्फ उत्पन्न हो गया है! सोडियम धातु को पानी में डालने से विस्फोट हो जाता है, इसे साइन्स से समझा जा सकता है, उसी तरह यह दुनिया साइन्स से उत्पन्न हुई है! उसी तरह ये रिश्ते भी साइन्स से उत्पन्न हुए हैं, लेकिन यह बात ज्ञान से समझ में आती है। ऑल दीज़ आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट्स! विनाशी चीज़ भोगने की इच्छा-वह है मिथ्या दृष्टि और अविनाशी चीज़ भोगने की इच्छा-ये है सम्यक् दृष्टि। जहाँ दुःख की एक भी बूँद नहीं हो-वह है सम्यक् दृष्टि!

प्रश्नकर्ता : भगवान तो कण-कण में रहते हैं न?

दादाश्री : भगवान सभी जगह होते तो ढूँढने की क्या ज़रूरत है? फिर जड़ और चेतन का भेद ही कहाँ रहा? यदि सभी जगह

भगवान हों तो फिर संडास कहाँ जाए? सभी में भगवान होते तब तो फिर इस आलू में भी होते और तोरई में भी होते। यदि शरीर में भगवान होते तब तो, शरीर विनाशी है लेकिन भगवान तो अविनाशी हैं।

इन लोगों को इतना भी भान नहीं है कि इन मनुष्यों को या भैंस को कौन गढ़ता है! बड़े संत, त्यागी भी कहते हैं कि भगवान के अलावा और कौन गढ़ेगा? वह भगवान क्या फ़ालतू होगा कि भैंस के पेट में बैठकर बछड़े बनाएगा? तब फिर वे वहाँ पर कुम्हार को क्यों नहीं भेज देते गढ़ने के लिए? यदि लोगों से पूछें कि, 'सिर पर जो बाल हैं, वे किसने बनाए?' तो कहेंगे कि, 'मुझे मालूम नहीं।' डॉक्टर से कहें कि, 'गंजे हो गए हैं, क्या अब बाल वापस उगेंगे?' तब वह कहता है, 'नहीं, दिमाग़ में बहुत गर्मी चढ़ गई है, इसलिए अब नहीं उगेंगे।' बाल किस तरह उगते हैं, किस तरह झड़ जाते हैं, इतना भी भान नहीं है। हमने कहा है कि, साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स से उगते हैं। उसी तरह यह देह है, आँखें-वाँखें सभी साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स से हैं, ऊपर कोई बाप भी बनाने के लिए फ़ालतू नहीं है। 'बाप' तो, इन एवरी क्रीचर (जीव) वेदर विज़िबल और इन्विज़िबल, आपके और मेरे बीच में माइक्रोस्कोप से भी नहीं दिखें वैसे असंख्य जीव हैं, उनमें भगवान विराजमान हैं! उनकी हाज़िरी से ही सब चल रहा है, लेकिन वह ज्ञान से ही समझ में आ सकता है, बुद्धि से समझ में आ सके, वैसा नहीं है। वह तो जब 'ज्ञानी पुरुष' ज्ञान देते हैं, तो ही आत्मा के बारे में निःशंक हो जाता है! नहीं तो, ऐसी शंका रहा करती है कि आत्मा ऐसा होगा या वैसा होगा।

भक्ति तो प्रेमदा भक्ति होनी चाहिए! हम आपसे कहें कि, 'आप में थोड़ी भी अक़्ल नहीं है।' तब आपको क्या कहना चाहिए कि, 'दादा, जैसा हूँ वैसा आपका ही हूँ न!'

कीर्तन भक्ति

वीतरागों के तो जितने बखान करें, उतने कम हैं। उनके कीर्तन लोगों ने गाए ही नहीं, और जो गाए हैं उनके राग ठीक नहीं हैं।

वीतरागों के कीर्तन यदि अच्छी तरह से गाए होते तो ये दुःख नहीं होते। वीतराग तो बहुत समझदार थे! उनका माल तो बहुत ज़बरदस्त! वे तो कहते हैं, 'समकित से लेकर तीर्थंकरों के कीर्तन गाते रहो!' 'तो फिर साहब अपकीर्तन किसके करूँ? अभव्य हैं उनके?' नहीं, अपकीर्तन तो किसी के भी मत करना, क्योंकि मनुष्य का सामर्थ्य नहीं है, इसलिए ऐसा मत करना। अपकीर्तन क्यों कर रहा है? अपकीर्तन वीतरागों से दूर रखता है। यह तेरे बूते की बात नहीं है, बल्कि दोष में पड़ जाएगा। ये जो टेढ़े लोग हैं, उनका नाम भी मत लेना, उनके तो दूसरी तरफ से निकल जाना। तब वह कहेगा कि, 'मैं क्या करूँ? यह टेढ़ा आदमी ऐसा करता है कि मुझे उसका दोष दिख ही जाता है!' लेकिन ऐसा नहीं करते, उसके सामने तेरी क्या बिसात। स्ट्रोंग व्यक्ति सामने वाले का उल्टा बोले तो चलेगा, जैसे कि कोई जैन व्यक्ति हो और माँसाहार का अपकीर्तन करे तो उसे क्या परेशानी है?

भक्ति और ज्ञान

प्रश्नकर्ता : दादा, भक्ति और ज्ञान के बारे में समझाइए।

दादाश्री : भक्ति के कई अर्थ हैं, एक से लेकर सौ तक हैं। 95 से 100 तक का हमें अर्थ करना है। यह 'हमारा' निदिध्यासन करना, वही भक्ति है। 'लोग कच्चे हैं इसलिए भक्ति पर ज़ोर दो', ऐसा शास्त्रकारों ने बताया है। सिर्फ ज्ञान हो तो लोग दुरुपयोग करेंगे, कमज़ोर पड़ जाएगा तो फिर बहुत मार पड़ेगी, इस हेतु से भक्ति पर अधिक ज़ोर दिया है। ज्ञान क्या है? ज्ञान ही आत्मा है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह अंतिम भक्ति है। 'ज्ञानी' का निदिध्यासन ही 'मैं शुद्धात्मा हूँ' रूपी अंतिम भक्ति है।

किसी के भी प्रभाव में न आएँ, ऐसी दुनिया को तुझे एक तरफ रखना आए, उसे समर्पण भाव कहते हैं। यानी कि जो 'ज्ञानी पुरुष' का हो, वही मेरा हो। खुद की नाव उनसे अलग होने ही नहीं दे, जुड़ी हुई ही रखे, अलग हो जाए तो उलट जाएगा न! इसलिए ज्ञानी के साथ ही खुद की नाव जोड़कर रखना।

ज्ञान 'ज्ञान-स्वभावी' कब कहलाता है? देह में जो आत्मा है वह 'आत्मा-स्वभावी' रहे तब। इसे यदि हम लोग भक्ति कहेंगे तो लोग उनकी भाषा में ले जाएँगे। उनकी स्थूल भाषा में नहीं ले जाएँ, इसलिए हम ज्ञान पर विशेष ज़ोर देते हैं।

जागृति, वही ज्ञान है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' यदि ऐसा रहा करे तो वह भाव नहीं है, लेकिन वह लक्ष्य-स्वरूप है; और लक्ष्य मिले बिना 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा रहेगा ही नहीं। 'शुद्धात्मा' का लक्ष्य बैठना वह तो बहुत बड़ी बात है! अति कठिन है! लक्ष्य मतलब जागृति और जागृति वही ज्ञान है, लेकिन वह अंतिम ज्ञान नहीं है। अंतिम ज्ञान तो आत्मा का स्वभाव ही है। केवलज्ञान स्वभावी आत्मा का लक्ष्य हो जाने के बाद उसकी जागृतिरूपी ज्ञान में रहना, वह सब से ऊँची और अंतिम भक्ति है, लेकिन हम उसे भक्ति नहीं कहते, क्योंकि फिर सब उसे अपने-अपने स्थूल अर्थ में ले जाएँगे। 'ज्ञानी पुरुष' की कृपा प्राप्त कर लेने जैसी है, कृपाभक्ति की आवश्यकता है।

ज्ञानियों का 'प्रतिष्ठित आत्मा' भक्ति में है और ज्ञान, 'ज्ञान' में है। 'खुद' 'शुद्धात्मा' में रहते हैं और 'प्रतिष्ठित आत्मा' से उनके 'खुद' के 'शुद्धात्मा' की और इन 'दादा' की भक्ति करवाते हैं, वह उच्चतम अंतिम प्रकार की भक्ति है!

भगवान ने खुद कहा है कि, 'हम ज्ञानी के वश में हैं!' भक्त कहते हैं कि, 'भगवान हमारे वश में है।' तो वे कहते हैं, 'नहीं, हम तो ज्ञानियों के वश हो चुके हैं।' भक्त तो बावले होते हैं, सब्ज़ी खरीदने निकलते हैं और कहीं तालियाँ बजाने बैठ जाते हैं। फिर भी भक्त में एक गुण है कि बस, 'भगवान, भगवान' एक ही भाव, उस भाव से एक दिन सत्यभाव प्राप्त करता है, तब 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाते हैं, तब तक 'तू ही तू ही' गाता रहता है और जब 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाते हैं तब 'मैं ही मैं ही' गाता है! जब तक 'तू' और 'मैं' अलग हैं, तब तक माया है और 'तू' और 'मैं' खत्म हो गया, 'तेरा-मेरा' खत्म हो गया तो अभेद हो गया! भगवान तो कहते हैं कि, 'तू भी

भगवान है। तेरा भगवान पद संभाल, लेकिन यदि तू नहीं संभाले तो क्या हो सकता है?' पाँच करोड़ की एस्टेट वाला लड़का हो, लेकिन होटेल में कप-प्लेट धोने जाए और एस्टेट नहीं संभाले, तो इसमें कोई क्या कर सकता है?! मनुष्य 'पूर्ण' हो सकता है! सिर्फ मनुष्य ही, अन्य कोई नहीं! देवगण भी नहीं!

भगवान मतलब क्या? भगवान नाम है या विशेषण है? यदि नाम होता तो हम सब को उन्हें भगवानदास कहना पड़ता, भगवान विशेषण है। जैसे भाग्य पर से भाग्यवान बना, उसी तरह भगवत पर से भगवान बना है। जो भी व्यक्ति इन भगवत् गुणों को प्राप्त करता है, उसे भगवान नामक विशेषण लगता है।

'अपद'-वह मरणपद है।'मैं चंदूभाई हूँ', वह 'अपद' है।'अपद' में बैठकर जो भक्ति करता है-वह भक्त है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ'-वह 'स्वपद' है। 'स्वपद' में बैठकर जो 'स्व' की भक्ति करता है-वह 'भगवान' है।

ये ए.एम.पटेल भीतर प्रकट हो चुके 'दादा भगवान' की रात-दिन भक्ति करते हैं! और हज़ार-हज़ार बार उन्हें नमस्कार करते हैं!

जब तक आत्मा संपूर्ण प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक ऐसा रहना चाहिए कि 'ज्ञानी पुरुष' ही मेरा आत्मा है और उनकी भक्ति खुद के ही आत्मा की भक्ति है! भक्ति का स्वभाव कैसा है? जिस रूप की भक्ति करता है, वैसा ही बन जाता है। 'ज्ञानी पुरुष' की भक्ति में सब से उच्च कीर्तनभक्ति है। कीर्तनभक्ति कब उत्पन्न होती है? कभी भी अपकीर्ति का विचार नहीं आए, भले ही कितना भी उल्टा हो तो भी सीधा (सच्चा) ही दिखे। जबकि 'ज्ञानी पुरुष' में उल्टा होता ही नहीं। कीर्तनभक्ति में तो नाम मात्र की भी मेहनत नहीं है! कीर्तनभक्ति से तो ग़ज़ब की शक्ति उत्पन्न होती है!

निष्पक्षपाती मोक्षमार्ग

दादाश्री : मोक्ष होता होगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, यह विश्वास तो है, इसलिए मार्ग भी होता होगा और उसके जानकार भी होते ही होंगे न!

दादाश्री : हाँ। 'हम' उसके जानकार हैं। यह सांताक्रुज का मार्ग बताने वाले तो मिल जाएँगे, लेकिन मोक्ष का मार्ग तो बहुत सँकरा और भूल-भुलैया वाला है, उसे बताने वाला मिलना अति दुर्लभ है। वह यदि मिल जाए तो उस 'मोक्षदाता' से माँग ही लेना होता है न? दिज़ इज़ द ओन्ली कैश बैंक इन द वर्ल्ड!

हम एक घंटे में ही आपके हाथ में नकद मोक्ष दे देते हैं। यहाँ कहाँ महीने भर तक श्रद्धा रखने को कहते हैं? 'श्रद्धा रख, श्रद्धा रख' ऐसा जो कहते हैं उन्हें तो हमें डाँट देना चाहिए कि 'हमें श्रद्धा आती नहीं है न! आप कुछ ऐसा बोलो कि जिससे हमें श्रद्धा आए!' लेकिन क्या करे? दुकान में माल हो तब देंगे न? क्रोध की दुकान में शांति की पुड़िया माँगने जाएँगे तो मिलेगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं मिलेगी।

दादाश्री : भगवान ने क्या कहा है कि, 'मोक्ष तो एक चौथाई मील की ही दूरी पर है और देवगति करोड़ों मील दूर है, लेकिन निमित्त मिलना चाहिए, उसके बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। जिनका मोक्ष हो चुका है वे ही मोक्ष दे सकते हैं। ये तो बीवी-बच्चों को

छोड़कर गए और मानते हैं कि माया-ममता छूट गई। ना, तू जहाँ जाएगा वहाँ नई ममता लगा लेगा, ममता तो अंदर बैठी-बैठी बढ़ती रहती है। यह तो 'ज्ञानी पुरुष' का ही काम है, जैसे दवाई देना वह डॉक्टर का काम है वैसे! इस किराना वाले से पूछें कि, 'हार्टअेटेक आया है, तो दवाई दे।' तो वह क्या कहेगा कि, 'जा डॉक्टर के पास।' यह तो भगवान की बात को समझे नहीं और चुपड़ने की दवाई पी गए! फिर हो पाएगा क्या? मोक्ष खुद के पास ही है, आत्मा खुद ही मोक्ष स्वरूप है।

यह मन तो तरह-तरह का दिखाता हैं, उसे मात्र 'देखना और जानना' होता है। यह दिखाना तो मन का धर्म - मनोधर्म है और अपना धर्म 'देखने-जानने' का है, लेकिन यदि उसमें तन्मयाकार हो जाए, शादी संबंध हो जाए तो परेशान करता है। मोक्ष मतलब मन-वचन-काया से मुक्तपना। 'खुद का' स्वतंत्र सुख, जिस पर किसी के और खुद के मन-वचन-काया का असर नहीं पड़े! मन-वचन-काया का कैसा है? कि जब तक 'यह' दुकान है तब तक अपनी दुकान का माल दूसरी जगह जाएगा और दूसरों की दुकान का माल अपनी दुकान में आएगा-ऐसा है!

भगवान ने कहा है कि, ''मोक्ष के लायक 'चारित्र' तो आज कहीं भी ज़रा सा भी नहीं रहा है, देवगति के लायक चारित्र तो हैं। मोक्ष के लिए तो यदि 'भगवान की आज्ञा' में रहे, आत्मज्ञान होने के बाद वाला चारित्र, वह चारित्र मोक्ष देगा!''

इस काल में मोक्ष है?

प्रश्नकर्ता : इस काल में मोक्ष नहीं है, ऐसा जो कहते हैं, वह सच है?

दादाश्री : भगवान का कहा हुआ वाक्य कभी भी गलत नहीं हो सकता, लेकिन महावीर भगवान ने क्या कहा है कि, 'इस काल में इस क्षेत्र से जीव मोक्ष में नहीं जा सकेगा', उसे लोग उल्टा समझे।

इसमें कुछ लोगों ने कहा है कि, 'मोक्ष नहीं है।' इसलिए उस तरफ जाना छोड़ दिया और लोग भी उस प्रवाह में खिंच गए! लेकिन प्रवाह में हमें भी खिंच जाना चाहिए, ऐसा किसने कहा? भगवान ने क्या कहा है कि, 'इस काल में इस क्षेत्र से एक लाख रुपये का चेक नहीं मिलता है, लेकिन निन्यानवे हज़ार, नौ सौ निन्यानवे रुपये और निन्यानवे (99,999.99) पैसों तक का चेक मिल सके वैसा है।' अरे, इस काल में 99,999 रुपये और 99 पैसे तक तो मिल रहा है न? ये तो बल्कि छुट्टे पैसे मिले! केन्टीन में पकौड़ी वगैरह खानी हो, तो भी छुट्टे पैसे काम आएँगे न? अभी तो रुपये का चिल्लर लेने जाएँ तब भी पाँच पैसे कमीशन ले लेते हैं न? हम इस काल में निन्यानवे हज़ार, नौ सौ निन्यानवे रुपये और निन्यानवे पैसे तक का चेक दे सकें, वैसे हैं। इन लोगों को इतना पता चला कि 'मोक्ष नहीं है', तो कहाँ तक का मार्ग खुला है, यह तो ढूँढ निकाल! यह गाड़ी बड़ौदा तक नहीं जाती, लेकिन सरहद तक जाती है, तब तो गाड़ी में बैठ ही जाना चाहिए न? लेकिन यह तो घर से ही नहीं निकलता और घर के दरवाज़े ही बंद कर दिए हैं! ऐसी नासमझी खड़ी हो जाए तो, इसमें किसका दोष? यह तो 'ज्ञानी पुरुष' सिर्फ इतना ही कहना चाहते हैं कि 'सिर्फ एक ही पैसा नहीं है।'

छः *आरों* में से यह असल में अच्छे से अच्छा काल है, यह पाँचवा *आरा* है। इसे तो भठ्ठी काल कहा है। यह तो एक तरफ साइन्टिस्ट है और दूसरी तरफ भठ्ठी है, तो फिर भले ही कैसा भी मिलावट वाला सोना हो तो भी सुनार शुद्ध सोना निकाल देगा! छठे *आरे* में सुनार नहीं होंगे और सिर्फ भठ्ठी ही होगी। पाँचवे *आरे* में तो महावीर भगवान का सब से लंबा शासन है। पहले के तीर्थंकर भगवानों के शासन तो भगवान के निर्वाण प्राप्त करने तक ही रहते थे, जबकि महावीर भगवान का शासन उनके निर्वाण के 21 हज़ार साल बाद तक रहेगा!

ये लोग कहते हैं कि, 'मोक्ष बंद हो चुका है।' ऐसा कहते हैं, तो उनकी क्या दशा होगी? यह तो 'मोक्ष बंद है' कहकर दूसरे कार्यों में पड़ गए और मोक्षमार्ग एक तरफ रह गया। यह किसके जैसा है? इस साल अकाल पड़ा हो तो कहते हैं कि, 'अरे, खेत में बुवाई मत

करना, बीज बेकार जाएँगे।' इस साल बरसात नहीं आई, इसलिए बीज बेकार जाएँगे, ऐसा करके बैठे रहते हैं। उसके जैसा है!

नॉर्मेलिटी से मोक्ष

'हमारी' एक ही इच्छा है कि जगत् मोक्षमार्ग की तरफ मुड़े, जगत् मोक्षमार्ग को प्राप्त करे! मोक्षमार्ग में मुड़ना किसे कहते हैं? मोक्षमार्ग में एकाध मील तक चले तब। अभी तो ये जो धर्म हैं वे वीतराग मार्ग पर नहीं हैं। 'वीतराग मार्ग पर है' ऐसा किसे कहा जाएगा? जो नॉर्मल पर आ जाए उसे। अबव नॉर्मल इज़ द फीवर, बिलो नॉर्मल इज़ द फीवर। 97 इज़ द बिलो नॉर्मल फीवर एन्ड 99 इज़ द अबव नॉर्मल फीवर। 98 इज़ नॉर्मेलिटी! अबव नॉर्मल और बीलो नॉर्मल दोनों ही फीवर हैं। यह बात तो सिर्फ डॉक्टर ही लेकर बैठे हैं, लेकिन यह तो सभी के लिए है! सोने में, खाने में, पीने में, सभी में नॉर्मेलिटी चाहिए, यही वीतराग मार्ग है। अभी तो सब तरफ अबव नॉर्मल हवा खड़ी हो गई है, इसलिए हर तरफ पोइज़न फैल गया है। इसमें किसी का दोष नहीं है, सभी कालचक्र में फँस गए हैं!

वीतराग मार्ग अर्थात् सभी चीज़ों में नॉर्मेलिटी में आओ। ये तो तप में पड़ जाएँ तो तपोगच्छ हो जाते हैं। अरे, ये गच्छ में कहाँ पड़ा? ये तो सब कुएँ हैं, इसमें से निकला तो उस कुएँ में गिरा और यह तो एक ही कोना साफ करता रहता है। तप का कोना साफ करे तो तप का ही साफ करता रहता है, कुछ लोग त्याग का कोना साफ करते हैं तो त्याग को ही साफ करते रहते हैं, शास्त्रों के पीछे पड़े तो उनके ही पीछे! अरे, एक कोने के पीछे ही पड़ा है? मोक्ष जाना है तो सभी कोने साफ करने पड़ेंगे! फिर भी, कोने साफ करे हैं, इसलिए उसका फल तो मिलेगा ही, लेकिन यदि मोक्ष चाहिए तो यह काम का नहीं है। तुझे यदि चतुर्गति चाहिए तो भले ही एक के पीछे पड़। मनुष्य योनि में फिर से जन्म मिले, सब तरफ वाह-वाह मिले, ऐसा मैं तुझे यहाँ पर दे सकता हूँ। लेकिन यह सब कब तक? फिर जहाँ जाता है, वहाँ माथाफोड़ी है और क्लेश खड़ा होता है, ऐसा माँगने के बजाय

तो ठेठ तक का तेरा मोक्ष ले जा न मेरे पास से! हमेशा के लिए हल आ जाए, ऐसा कुछ ले जा यहाँ से!

एक-एक इन्डियन में वर्ल्ड को हिला देने की शक्ति भरी पड़ी है। हम इन इन्डियन्स को किसलिए अलग मानते हैं? क्योंकि इन्डियन्स में आत्मिक शक्ति है इसलिए। लेकिन वह शक्ति आज ढक गई है, रुँध गई है, उसे ज़ाहिर करने के लिए निमित्त चाहिए, 'मोक्षदाता पुरुष' का निमित्त चाहिए, तो शक्ति ज़ाहिर होगी। जिनका कोई भी दुश्मन नहीं, देव भी दुश्मन नहीं है, वैसे 'मोक्षदाता पुरुष' का निमित्त चाहिए।

यह तो हम कहते हैं कि, 'मोक्षमार्ग खुला है।' ताकि उस तरफ चलना शुरू दे और उसके द्वारा ऊँचे जा पाए। मोक्ष में जाना-वह आत्मा का स्वभाव है, *पुद्गल* उसे नीचे खींचता है, लेकिन आत्मा चेतन है इसलिए अंत में वही जीतेगा। *पुद्गल* में चेतन नहीं है, इसलिए उसमें कला नहीं होती और चेतन मतलब कला करके भी छूट जाता है। जिसे छूटना ही है उसे कोई बाँध नहीं सकता और जिसे बंधना ही है उसे कोई छुड़वा नहीं सकता!

'मोक्ष नहीं है।' ऐसा कह दिया तो फिर छूटेगा किस तरह?! अरे, मोक्ष नहीं है, लेकिन मोक्ष के दरवाज़े को हाथ लगा सकते हैं और अंदर के सभी महल दिखते हैं, दरवाज़े ट्रान्सपेरेन्ट हैं। इसलिए, अंदर का सभी कुछ दिख सकता है! लेकिन इसने तो शोर मचाकर रख दिया कि, 'मोक्ष नहीं है, मोक्ष नहीं है।' लेकिन यह तुझे किसने बताया? तो कहते हैं, 'ये हमारे दादा गुरुओं ने बताया है।' लेकिन दादा गुरु को देखने जाएँ तो वे होते ही नहीं हैं! यह तो 'हवा से खपड़ा खिसका, उसे देखकर कुत्ता भौंका।' उसके जैसा है। तो कोई बाहर निकला होगा उसने शोर मचाकर रख दिया कि 'क्या है? क्या है?' तब दूसरा गप्प लगाता है कि 'चोर देखा' और उससे शोर-शराबा मच गया! ऐसा है! है कुछ भी नहीं और झूठा भय और घबराहट! लेकिन क्या हो? इन लोगों को भस्मकग्रह का असर भोगना बाकी होगा, इसलिए ऐसा हुआ होगा न? लेकिन अब तो वह सब पूरा होने वाला है, ऐसा तय ही है!

जहाँ मेहनत, क्या वहाँ मोक्ष होता होगा?

ये सभी चतुर्गति के मार्ग मेहनत वाले मार्ग हैं। जिसे अत्यंत मेहनत करनी पड़ती है वह नर्कगति में जाता है, उससे कम मेहनत करता है वह देवगति में जाता है, उससे कम मेहनत करता है वह तिर्यंच में जाता है और बिल्कुल बिना मेहनत वाला मोक्ष का मार्ग है! 'ज्ञानी पुरुष' से मिलने के बाद तो कहीं मेहनत करनी पड़ती होगी? वह तो 'ज्ञानी पुरुष' खुद कर देते हैं। ये दाल-चावल, रोटी मेहनत करके बना सकता है, लेकिन वह खुद अपने आप आत्मदर्शन नहीं कर सकता। वह तो 'ज्ञानी पुरुष' करवाते हैं और हो जाता है। 'ज्ञानी पुरुष' मेहनत करवाएँ तब तो हम नहीं कह दें कि, 'मेरा खुद का ही फ्रेक्चर हो चुका है तो मैं मेहनत किस तरह कर सकूँगा?'

यदि डॉक्टर के पास जाए और वह डॉक्टर कहे कि, 'दवाई तुझे लानी है, तुझे खुद ही पीसनी है, लगानी है', तब तो हम उस डॉक्टर के पास जाते ही क्यों? हम खुद ही नहीं कर लेते? उसी तरह अगर 'ज्ञानी पुरुष' के पास जाने के बाद मेहनत करनी पड़े तो यहाँ (सत्संग में) आएँ ही किसलिए? लेकिन 'ज्ञानी पुरुष' के पास तप, त्याग, मेहनत कुछ भी नहीं होता और 'ज्ञानी पुरुष' को किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं होती, वे खुद ही पूरे ब्रह्मांड के स्वामी होते हैं, उन्हें किस चीज़ की ज़रूरत होगी? 'ज्ञानी पुरुष' एक क्षण भी इस देह के स्वामित्व भाव में नहीं रहते। जो एक क्षण के लिए भी देह का मालिक नहीं रहता, वह पूरे ब्रह्मांड का मालिक होता है। बाहर जो गुरु हैं, कुछ नहीं तो उन्हें आखिर में मान की स्पृहा होती है, कीर्ति की स्पृहा होती है। ज्ञानी को तो किसी भी प्रकार की स्पृहा नहीं है। उन्हें तो आप यह हार पहनाते हो, उसकी भी ज़रूरत नहीं है, बल्कि उन्हें उसका भार लगता है और फूलों के कितने ही जीव-जंतु भी ऊपर चढ़ जाते हैं तो उनके लिए ये सब क्यों? यह तो आपके लिए है, आपको ज़रूरत हो तो हार पहनाओ। सांसारिक अड़चनें हों, तो हार पहनाने से दूर हो जाती हैं। 'शूल का घाव सुई जितना लगता है।' हम उसके कर्ता नहीं हैं, निमित्त हैं। 'ज्ञानी पुरुष' के नैमित्तिक

चरण पड़ें तो आपके लिए सभी कुछ अच्छा ही होता है, बाकी, 'ज्ञानी पुरुष' मतलब जिन्हें किसी भी प्रकार की भीख नहीं हैं, लक्ष्मी की, विषयों की, मान की, कीर्ति की, उन्हें किसी भी प्रकार की भीख नहीं होती!

मोक्ष यानी क्या?

प्रश्नकर्ता : जन्म-मरण का फेरा टले, क्या उसी को मोक्ष कहते हैं?

दादाश्री : नहीं। मोक्ष में जाना मतलब फुल स्टेज। मोक्ष यानी परमानंद। मोक्ष से ऊपर अन्य कुछ है ही नहीं, वही सब से अंतिम है। यदि उससे ऊपर कुछ और है, ऐसा मानें तब तो वे मोक्ष को समझते ही नहीं हैं। 'मोक्ष यानी मुक्त भाव।' संसार के भावों से मुक्ति, वही परमानंद। ये सांसारिक भाव परमानंद को रोकते हैं। सिद्ध भगवान का क्षण भर का आनंद, वह सभी देवलोकों के आनंद से भी अधिक है। यह परमानंद क्यों रुका हुआ है? मात्र पहले की गुनहगारी की वजह से। यह गुनहगारी ही खुद के सुख, परमानंद को भी नहीं आने देती। उसी गुनहगारी से परमानंद रुक जाता है! मुक्ति तो किसी ने चखी ही नहीं है, वह तो 'ज्ञानी पुरुष' के पास है। उनकी वीतरागता ही मुक्ति है! मुझे तो आप सभी के अंदर 'मैं ही हूँ' ऐसा लगता है! 'ज्ञानी पुरुष' के दर्शन करना आ जाए, तो भी मुक्ति सुख बरतने लगे।

प्रश्नकर्ता : दर्शन करने यानी भाव से करना, वह?

दादाश्री : नहीं। भाव नहीं। भाव तो होता ही है आपको, लेकिन दर्शन करना आना चाहिए। 'ज्ञानी पुरुष' के एक्ज़ेक्ट दर्शन करना आना चाहिए। जब अंतराय नहीं हों तो ऐसे दर्शन होते हैं और ऐसे दर्शन किए तभी से मुक्तिसुख बरतता रहता है!

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाने की मुहर (स्टैम्प) कौन सी?

दादाश्री : वह तो पक्ष में पड़े हुए हैं या नहीं, वही उसकी मुहर है।

ये सभी डिग्रियाँ हैं और उन डिग्रियों के अंदर डिग्रियाँ हैं। ये सभी अन्य मार्ग पर हैं, लेकिन मोक्षमार्ग की तो एक ही पगडंडी है, और वही एक पगडंडी मिलनी मुश्किल है। अन्य सभी मार्ग ओर्नामेन्टल मार्ग हैं, वहाँ पर फिर बड़ी-बड़ी केन्टीनें हैं, इसलिए ज़रा सा देखा कि उधर दौड़ते हैं। लेकिन इस मोक्षमार्ग की पगडंडी में तो ओर्नामेन्टल नहीं है, इसलिए इस मार्ग का पता नहीं चलता!

गरमी में बैठे हों और हवा आए, और वह भी जब ठंडी लगे तो समझ में आता है कि कहीं बर्फ़ होनी चाहिए, उसी तरह यहाँ पर आत्मा का अस्पष्ट अनुभव हो जाता हैं, और जब से यह वेदन शुरू होता है, तभी से संसार का वेदन बंद हो जाता है। एक ही जगह पर वेदन हो सकता है, दो जगहों पर वेदन नहीं हो सकता। जब से आत्मा का वेदन होना शुरू होता है, वही आत्मा का 'स्वसंवेदन' है और वह धीरे-धीरे बढ़कर 'स्पष्ट' वेदन तक पहुँचता है!

जगत् के सभी सब्जेक्ट जान ले, लेकिन वह अहंकारी ज्ञान है और वे बुद्धि में समाते हैं और निर्‌अहंकारी ज्ञान वह ज्ञान कहलाता है। निर्‌अहंकारी ज्ञान वह स्व-पर प्रकाशक है और वह पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशमान करे, ऐसा है! बुद्धि का, अहंकारी ज्ञान परप्रकाशक है, वह लिमिट में है और अवलंबित है। यह तो भान नहीं है, इसलिए 'मैं वैद्य हूँ, मैं इंजीनियर हूँ' ऐसे अवलंबन पकड़ लिए हैं। सभी मोक्ष के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, लेकिन वह मार्ग मिलता नहीं है और चतुर्गति में भटकते रहते हैं। ज्ञानी ही समर्थ पुरुष हैं, वे तर चुके हैं और दूसरों को तारते हैं!

नियाणां और शल्य

अनंत जन्मों से मोक्ष की इच्छा है और जब क्रमिकमार्ग में मोक्ष देने वाले मिले, तब *नियाणे* किए, और इसलिए भटक गए! और अभी जिसे 'यह' ज्ञान मिला है, उसे तो *नियाणां* करना हो फिर भी नहीं हो सकेगा, क्योंकि यह अक्रम मार्ग है! *नियाणे* किसे होते हैं? शल्य वाले में उत्पन्न होते हैं। नि:शल्य होने के बाद *नियाणां* कैसे हो सकता है? शल्य मतलब भीतर चुभता रहता है। यह गद्दी चुभे तो कहता है कि,

'दूसरी अच्छी गद्दी लानी है' वह उसका *नियाणां* करता है। यह *नियाणां* करता है मतलब खुद के पास जितनी पुण्य की संपत्ति हो, उसे *नियाणे* के लिए दाँव पर लगा देता है! उसके बाद ही जिसका *नियाणां* किया हो, वह प्राप्त होता है।

भगवान ने तीन प्रकार के शल्य बताए हैं – मिथ्यात्व शल्य, निदान शल्य और माया शल्य। उनके आधार पर यह *नियाणां* करता है। शल्य सभी में होता है, निःशल्य हो नहीं पाता। यह 'अक्रम मार्ग' है इसलिए शल्य रहित हो सकता है!

इस बंधन में से मुक्ति हो सकती है। 'वीतराग मोक्ष दे सकते हैं, वीतरागों का ज्ञान-वह मोक्षमार्ग है', जिसे ऐसी सूझ पड़ गई है उसे तो मिथ्यात्व दर्शन, बहुत ऊँचा दर्शन कहा गया है! यह तो औरों की बुराई करता है कि, 'तू मिथ्यात्वी है।' अरे, तू क्या समकिती है, जो औरों को मिथ्यात्वी कह रहा है? और खुद यदि समकिती हो, तो अन्य किसी का तिरस्कार नहीं करता और यदि मिथ्यात्वी हो तब भी उसके खुद के जैसे मिथ्यात्वी का तिरस्कार नहीं करता। 'यह तो मिथ्यात्वी है' ऐसा कहकर जो तिरस्कार करता है, वह तो 'डबल मिथ्यात्वी' है! मिथ्यात्व दर्शन तो बखान करने योग्य दर्शन है। इस दर्शन में आने के बाद उसे ऐसा भान होता है कि 'मोक्ष में सुख है और संसार में सुख नहीं है', मोक्ष की इच्छा होती है। उसकी इच्छा तो सम्यक् दर्शन की ही है, लेकिन मिथ्या दर्शन में से छूटा नहीं है, इसलिए भटकता है। इसके बावजूद उसका विल पावर मोक्ष के लिए है और *पुद्गल* का ज़ोर संसार की तरफ खींचने का हो, फिर भी वह दोनों को अलग रखता है।

संपूर्ण मोक्षमार्ग कहाँ पर होता है? व्यवहार की थोड़ी सी भी उपेक्षा न करे, वह संपूर्ण मोक्षमार्ग है। यदि व्यवहार की उपेक्षा करोगे तब तो सामने वाले को अड़चन आएगी, सामने वाले को दुःख होगा, वहाँ पर मोक्षमार्ग नहीं है। जहाँ फुल व्यवहार और फुल निश्चय हैं, वहाँ मोक्षमार्ग है! अपने यहाँ तो व्यवहार-निश्चय दोनों ही फुल हैं।

मोक्षमार्ग कहाँ है? जहाँ पर सभी जाति के लोग बैठे हों, फिर भी किसी को वाणी से आपत्ति नहीं हो, वहाँ पर। गँवार बैठा हो, चोर बैठा हो या फिर कोई यूरोपियन हो या मुस्लिम हो, फिर भी किसी को यहाँ वाणी से आपत्ति नहीं होती! हर कोई सुनता है। ऐसा तो कहीं भी हुआ ही नहीं है! सिर्फ महावीर भगवान के सामने ही हुआ था और यहाँ हो रहा है! भगवान निराग्रही थे!

मोक्ष के बाद आत्मा की स्थिति

प्रश्नकर्ता : मोक्ष होने के बाद आत्मा की क्या गति होती है?

दादाश्री : मुक्तभाव! सिद्धगति! आत्मा सिद्धक्षेत्र में जाता है, वहाँ पर प्रत्येक आत्मा मुक्त रहता है और ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंद में रहता है। यहाँ आप हाथ ऊँचा करो तो वह सिद्ध भगवंतों के ज्ञान में आ जाता है, लेकिन उसमें वे ज्ञेयाकार नहीं होते, ज्ञानाकार ही रहते हैं! उन्हें बंधन नहीं होता। माँ के पेट में फिर से वेदना लेने कौन आए? उस वेदना को तो सिर्फ भगवान जानते हैं! वे सारी वेदनाएँ तो बेसुधी में भोगी जाती हैं। मनुष्य जाति कुछ लिमिट तक ही दु:ख भोग सकती है, उससे अधिक दु:ख यदि पड़े, दु:ख उसकी सहनशक्ति से बाहर जाए तो वह बेसुध हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : जो इंसान भगवान का नाम लेकर मरता है, उसका क्या होता है?

दादाश्री : जो इंसान होश में मरता है तो फिर से मनुष्य में आता है और मरते समय बेहोश हो वह तो जानवर में जाता है, उसका मनुष्यपन चला जाता है और यह इंसान कहाँ जाएगा वह तो मरते समय पता चलता है और दूसरा, जब अर्थी जा रही हो, तब सज्जन और तटस्थ लोग बात करते हैं कि, 'ये भाई तो भले थे।' तो जानना चाहिए कि फिर से मनुष्य में आएँगे और कहे कि, 'जाने दो न उसकी बात।' तो जानना कि वह व्यक्ति वापस मनुष्य में आने से रहा! यह तो यहीं का यहीं सब समझ में आए, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : इंसान के मर जाने के बाद वापस जीव आ जाता है, वह क्या है?

दादाश्री : नहीं। आत्मा देह में से जाने के बाद फिर वापस देह में नहीं आता। ऐसा शायद हो सकता है कि आत्मा यदि ब्रह्मरंध्र में चढ़ जाए तो नाड़ी-वाड़ी बंद हो जाती है और यदि आत्मा तालू से नीचे उतरे, तब ऐसा लगता है कि वापस जीव आ गया है।

प्रश्नकर्ता : इस काल में मोक्ष नहीं हो सकता?

दादाश्री : नहीं। 2500 साल पहले मोक्ष हो सकता था। इस काल में मोक्ष किसलिए बंद है? इतने अधिक कर्म लेकर आए हुए हैं कि साइकिल, मोटर, बस, प्लेन, ट्रेन में घूमते हैं, फिर भी काम पूरे नहीं हो पाते। वे कोम्प्लेक्स कर्म लेकर आए हैं, इसलिए इस काल में यहाँ से मोक्ष नहीं हो सकता। किसी काल में मनुष्यों का ऐसा *पूरण* (चार्ज) नहीं हुआ था, जैसा कि इस काल में मनुष्यों का *पूरण* हुआ है, वह अब *गलन* हो रहा है। ये सब, इतने सारे मनुष्य कहाँ से आए? तब कहे, अधिकतर तिर्यंच की रिर्टन टिकिट लेकर घुस गए हैं! 32 मार्क्स पर गधा बनता है और 33 मार्क्स पर मनुष्य बनता है, तो उसमें से एक मार्क तो देह में खर्च हो गया। मनुष्य का तो सिर्फ फोटो दिखता है, लेकिन अंदर गुण तो पशु के ही रहते हैं! इस काल में ऐसा विचित्र हो गया है।

मोक्ष की पगडंडी इतनी अधिक सँकरी है कि एक जीव बहुत मुश्किल से मोक्ष में जा सकता है। फिर भी नियम के हिसाब से एक समय में 108 जीव जाते हैं, लेकिन पूरे ब्रह्मांड की तुलना में इसका तो कोई हिसाब ही नहीं है न! और इस भरतक्षेत्र में से तो तीन या चार ही लोग मोक्ष में जाते हैं, लेकिन वह भी अभी इस काल में बंद हो गया है और इस तरह के काल के चार *आरों* तक बंद रहेगा!

ज्ञानी, मोक्षमार्ग के नेता

दादाश्री : आपको मोक्ष में जाना है क्या?

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाने के विचार आते हैं, लेकिन मार्ग नहीं मिलता।

दादाश्री : 'ज्ञानी पुरुष' अभी आपके समक्ष प्रत्यक्ष हैं तो मार्ग भी मिलेगा, वर्ना ये लोग भी बहुत सोचते हैं लेकिन मार्ग नहीं मिलता और उल्टे रास्ते चले जाते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' तो शायद ही कभी, एकाध प्रकट होते हैं और उनसे ज्ञान मिलने पर आत्मानुभव होता है। मोक्ष तो यहाँ नकद होना चाहिए। कोई कहे कि, 'आपका देह छूटेगा, तब आपका मोक्ष होगा।' तो हम कहें कि, 'नहीं, ऐसा उधार मोक्ष मुझे नहीं चाहिए।' मोक्ष तो नकद चाहिए, यहीं पर सदेह मोक्ष बरतना चाहिए। इस अक्रम ज्ञान से नकद मोक्ष मिल जाता है और अनुभव भी होता है, ऐसा है!

भगवान ने कहा है कि, 'मोक्ष का मार्ग नहीं मिले तो अशुभ में मत पड़ना, शुभ रखना, मोक्षमार्ग मिल जाए, तो उसके बाद शुभाशुभ की ज़रूरत नहीं है।' भगवान का मार्ग तो शुद्ध मार्ग है, वहाँ शुभाशुभ नहीं है, वहाँ पाप-पुण्य नहीं है। पाप-पुण्य दोनों ही बेड़ियाँ हैं। यदि मोक्ष का मार्ग नहीं मिले तो शुभ में पड़े रहना, अशुभ में पड़ेगा तो तू अशुभ का फल सहन नहीं कर सकेगा। तू तो हिन्दुस्तान में ऊँची जाति में जन्मा है, इसलिए साधु-संतों की सेवा, देवदर्शन करके, प्रतिक्रमण-सामायिक, उपवास वगैरह, यह सब करके भी शुभ में पड़ा रहना। शुभ-वह क्रिया मार्ग है और शुभ क्रिया का फल पुण्य मिलेगा। अशुभ क्रिया का फल पाप मिलेगा, पुण्य से कभी न कभी 'ज्ञानी पुरुष' मिल सकते हैं और 'ज्ञानी पुरुष' तो चाहे सो कर सकते हैं, तुझे नकद मोक्ष दे सकते हैं, क्योंकि खुद संपूर्ण अकर्ता हैं!

ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्ष

मात्र शुभ क्रिया करने से मोक्ष नहीं मिलता। उससे पुण्य ज़रूर बंधता है, उससे फिर आने वाले जन्म में मोटर, बंगले, वैभव वगैरह मिलता है, लेकिन तुझे यदि मोक्ष चाहिए तो भगवान कहते हैं, वैसा कर। भगवान क्या कहते हैं? 'ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष!' ये प्रतिक्रमण, सामायिक करते हैं वह अज्ञान क्रिया है। मोक्ष इन बाह्य क्रियाओं से

नहीं होता। मोक्ष तो ज्ञानक्रिया से होता है। ज्ञानक्रिया मतलब ज्ञाता-द्रष्टा रूपी उपयोग रखना, और उसी का नाम मोक्ष है! ज्ञेय को जानना उसका नाम ज्ञानक्रिया और ज्ञेय को समझना उसका नाम दर्शनक्रिया है।

बंधन किससे?

बंधे हुए किससे हो? क्रिया से? स्त्री से? तप से? वह तो पता लगाना पड़ेगा न? उसका पता लगाएँगे तो कुछ मार्ग मिलेगा कि किस तरह से छूटें! यह तो मात्र खुद के स्वरूप का अज्ञान है, इससे बंधे हुए हो। जो अज्ञान से बंधा हुआ है, वह क्या इन बाह्य क्रियाओं द्वारा छूट सकेगा? पत्नी से छूट सकेगा? घर वाली को छोड़ने से क्या घर से छूट सकेगा? परिग्रहों को जलाकर क्या खुद छूट सकेगा? 'अज्ञान से बंधा हुआ मात्र ज्ञान से ही छूट सकता है।' जब तक मन 'तेरा' है, तब तक तू परिग्रही है, और यदि मन का तू ज्ञाता-द्रष्टा है, ऐसा हो जाए तो तू अपरिग्रही है। हम परिग्रहों के सागर में भी अपरिग्रही हैं!

राग-द्वेष से बंधे हुए हो? नहीं। मात्र अज्ञान से बंधे हुए हो। अज्ञान तो रूट कॉज़ है। वेदांत में कहते हैं कि मल, विक्षेप और अज्ञान निकाल। जैनों में कहते हैं कि, राग-द्वेष और अज्ञान निकाल। अज्ञान दोनों में ही कॉमन है। अज्ञान तो रूट कॉज़ है और राग-द्वेष या मल-विक्षेप वे तो कॉज़ेज़ हैं। रूट कॉज़ चला जाए तो बाकी के कॉज़ेज़ अपने आप ही टूटते जाते हैं। रूट कॉज़ टूटें, अज्ञान जाए, तो आने वाले जन्म के बीज पड़ने बंद हो जाते हैं। जब तक अज्ञान है तब तक बंध पड़ेंगे ही। एक जन्म बेकार जाए तो उसमें हर्ज नहीं है, कि चलो भाई, एक बेकार गया, लेकिन यह तो 100 जन्मों के बंध डाल देता है, उसमें हर्ज है।

बंधन भला किसे पसंद है? यह पूरा समसरण मार्ग जेल जैसा है। शुरू से अंत तक जेल है और जब 'मैं मुक्त हूँ' ऐसा भान हो जाता है, तब जेल में से छूटता है। मिथ्या दर्शन जाए और सम्यक् दर्शन में आ जाए, तो छुटकारा होता है! और 'ज्ञानी पुरुष' ही 'मैं मुक्त हूँ' ऐसा भान करवा देते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' कभी भी देह में नहीं रहते।

ये साधन ही बंधन बन गए हैं। यह इलेक्ट्रिसिटी, लिफ्ट वगैरह सभी साधन जो खड़े किए हैं, वे ही बंधनरूप हो गए हैं। साधन तो स्वतंत्र होने चाहिए। हर एक का खुद का स्वतंत्र जोग (ऐसे साधन जो खुद को स्वतंत्र बनाए) तो होना चाहिए, साधनों ने तो परतंत्र बना दिया है। अब ये साधन अपने आप ही कम हो जाएँगे और उनके कम होने की ही ज़रूरत है। छूटने की इच्छा वाले को यदि सच्चा मार्ग नहीं मिले न तो वे छूटने के साधन ही बंधन रूप हो जाते हैं। ये लोग छूटने के लिए जितने साधन बना रहे हैं, वे ही उन्हें बाँधेंगे; क्योंकि वे सत् साधन नहीं हैं। यदि सच्चे साधन होते तो बंधनरूप नहीं होते, वर्ना आर्त और रौद्रध्यान चलते ही रहते।

ये बंधन तो जानवरों को भी पसंद नहीं है। आज हम आ रहे थे, तब रास्ते में कुछ लोग एक बैल को ट्रक में चढ़ा रहे थे, वह बैल तो अपनी भाषा में समझता है कि, 'मुझे क्या कर रहे हैं? मुझे कहाँ ले जाएँगे?' वह बैल *आड़ाई* कर रहा था, वह नहीं चढ़ने के लिए प्रयत्न कर रहा था, तो पाँच सौ लोग रास्ते में इकट्ठे हो गए! जैसे मुक्ति-सुख नहीं बँट रहा हो! बंधन की तो भयंकर वेदना है। हकीकत में स्वरूप जानने को नहीं मिला, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज हम लोग खुद यहाँ पर हैं, वह है! यदि हकीकत में स्वरूप जानने को मिला होता तो ऊपर मोक्ष में नहीं पहुँच गए होते?

इस मनुष्य जन्म में ही मोक्ष का मार्ग प्राप्त हो सकता है। इस मनुष्यगति में से चारों गतियों में जा सकते हैं, और मोक्ष भी इस मनुष्य गति में ही मिल सकता है। जो मोक्ष दे, मुक्ति दे वही धर्म सच्चा है, बाकी, सब तो अधर्म ही हैं।

भगवान ने कहा है कि, 'इस काल में मोक्ष बंद है, लेकिन मोक्षमार्ग बंद नहीं हुआ है, मोक्षमार्ग खुला है।' लोग समझे कि मोक्ष बंद हो गया है इसलिए टेढ़े मार्ग पर चलने लगे हैं। 21,000 साल जिनका (भगवान महावीर का) शासन है, तो यदि मोक्षमार्ग बंद हो चुका होता तो उस शासन की ज़रूरत ही क्या थी?! इसे समझे नहीं।

यहाँ पर 'कारण-मोक्ष' हो जाता है। इस मोक्षमार्ग से 'कार्य-मोक्ष' नहीं हो सकता, लेकिन मोक्ष 99,999 तक पहुँचता है, पूरा लाख नहीं हो पाता। मोक्ष दो प्रकार के हैं - 1) कार्य मोक्ष 2) कारण मोक्ष। इस काल में कारण-मोक्ष खुला है और कार्य-मोक्ष बंद है। कारण मोक्ष होने के बाद एक जन्म लेना पड़ता है। हम घंटे भर में कारण मोक्ष दे देते हैं। अभी तो ग़ज़ब का मोक्षमार्ग खुल गया है। 'हम' शासन के श्रृंगार हैं!

समकित का दरवाज़ा आए, वहाँ सभी धर्म एक हो जाते हैं। फिर मोक्ष का बड़ा दरवाज़ा आता है। मतभेद मिट जाएँ तो समकित होता है। मतभेद के साथ समकित नहीं हो सकता, ऐसा भगवान ने कहा है। साधुओं ने विषय जीते हैं, लेकिन विषय तो स्वतंत्र हैं। अनंत जन्मों से मत का मोह कि जिसके आधार पर वह लटका है, वह तो जीवित है! मत का आग्रही बन गया है! जिसे नहीं जीतना है, उसे जीतता है और जिसे जीतना है, उसे जानता नहीं है। इन सभी ने मोह को भी जीत लिया है, लेकिन एक खुद के मत के मोह को नहीं जीत पाए! मताभिनिवेष (मत का आग्रह) हो गए है! मताभिनिवेष से संसार में पाप खड़े रहे हैं। जहाँ 'ज्ञानी पुरुष' और उनके महात्मा नहीं होते, वहाँ पर मताभिनिवेष अवश्य है ही और जहाँ मताभिनिवेष हो, वहाँ ढूँढने से भी आत्मा नहीं मिलता। आत्मा खुद ही मताभिनिवेष से ढँक गया है। मत के आग्रह से कोई भी छूट नहीं सकता। भगवान ने विषयों को मोह नहीं कहा है, मत को मोह कहा है।

वीतराग मार्ग विरोध विहीन

जहाँ वीतरागों का मार्ग हो, वहाँ विरोध नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : ये जो महावीर जयंति मनाते हैं, उसका कुछ लोग विरोध क्यों करते हैं?

दादाश्री : ज्ञानी किसी चीज़ का विरोध नहीं करते, चलती गाड़ी को रोकते नहीं हैं। ये सब लोग क्या ज्ञानी हैं? ये सभी तो मतांध हैं, मत की पूँछ पकड़कर रखते हैं, खुद के अहंकार के पोषण के लिए!

यह तो झूठा ममत है, जिसे लेकर बात का बतंगड़ बना देते हैं! वीतराग मार्ग के आचार्य कैसे होते हैं, उसकी परिभाषा बताता हूँ। चाहे कैसी भी, चाहे किसी की भी बात हो फिर भी वे सुनने को तैयार रहते हैं, कोई कुछ सुनाने आए तो शांतभाव से कहेंगे कि, 'हाँ, बात करो।' यह हमारी बात ज़रा कठिन लगेगी, लेकिन यदि आपको मोक्ष में जाना हो तो हमें इतना-इतना, बड़ा-बड़ा, तोल-तोलकर देना पड़ेगा, और यदि आपको मोक्ष में नहीं जाना हो और संसार में रहना हो तो हम आपको फूलों का हार पहनाएँगे। अब आप ही तय करके जो चाहिए, वह पसंद करना।

आपकी *आड़ाई* ही मोक्ष में जाते हुए बाधक है। खुद अपनी ही *आड़ाई* बाधक है, बाकी कुछ भी इस जगत् में बाधक नहीं है, विषय बाधक नहीं है। इसलिए सीधा हो जा। साधु होने की ज़रूरत नहीं है, सीधा होने की ज़रूरत है। मोक्ष की गली इतनी अधिक सँकरी है कि वहाँ पर यदि तू आड़ा चलेगा तो उसमें से नहीं निकल पाएगा, सीधा-सरल बनना ही पड़ेगा वहाँ तो! आपको यदि वास्तव में मोक्ष में जाना हो तो मेरे कठोर शब्द सुनने पड़ेंगे। अनंत काल का रोग नाभि पेट से लेकर गले तक भर चुका है, अब मुझे ऑपरेशन करके भीतर चिमटा डालकर वह रोग निकालना पड़ेगा। इसलिए पहले से ही बोल देना, एक बार चिमटा डालने के बाद ऑपरेशन अधूरा नहीं छोड़ा जा सकेगा, फिर 'ओ, ओ' करोगे तो नहीं चलेगा। इसलिए आपको क्या चाहिए? मोक्ष या संसार का वैभव? जो चाहिए वह हम देने के लिए तैयार हैं।

प्रश्नकर्ता : हमें तो मोक्ष ही चाहिए।

दादाश्री : तो हमारे ये शब्द पचाने पड़ेंगे, समझने पड़ेंगे। ये वीतराग के साधु तो कैसे होते हैं? यदि सभी मतभेद में पड़े हुए हों तो वे मतभेद दूर करते हैं। संघपति, साधु, सन्यासी, जैन सभी एक साथ मिलकर चर्चा-विचारणा करते हैं। कोई बूढ़े साधु हों, उन्हें कुर्सी देते हैं और जवान साधु भले ही नीचे बैठें, इतना तो करना चाहिए न! सभी को साथ में बैठकर चर्चा-विचारणा करनी चाहिए। वीतराग धर्म किसे कहते हैं? कोई महामुनि हों और वहाँ पर छोटा, नया शिष्य

पूछने जाए और महामुनि उसका जवाब नहीं दें तो वह मुनि नहीं है, महामुनि नहीं है, और किसी भी कक्षा में नहीं है! भले ही सामने वाला चाहे कितना भी गलत बोल रहा हो, लेकिन एक बार तो उसकी सुनते हैं और फिर चर्चा-विचारणा करते हैं। चर्चा-विचारणा से वह कुछ प्राप्त करेगा। इसलिए भगवान ने कहा है कि, आग्रह-कदाग्रह मत करना, चर्चा-विचारणा करना कि अपनी क्या भूल हो रही है? आप इस दूषमकाल के साधु हो इसलिए आप अकेले मत बैठना, साथ में संघपति और संघ को रखना, क्योंकि भगवान ने ऐसा कहा है कि संघ, वह पच्चीसवाँ तीर्थंकर है। सही-गलत का न्याय वह कमिटी कर देगी। जहाँ भूलरहित होगा, वहाँ संघपति कह देंगे कि यह सत्य है, क्योंकि भीतर आत्मा है इसलिए उन्हें तुरंत पता चल जाता है कि यह सही है उसका, लेकिन सत्य निकलना चाहिए और असत्य निकले तब भी समझ में आ जाएगा कि यह असत्य है। सभी को साथ में बैठने में हर्ज क्या है? सभी संप्रदाय वाले क्या कभी भी चर्चा-विचारणा के लिए, सत्य जानने के लिए इकट्ठे हुए हैं? सभी को इकट्ठा होना चाहिए, वर्ना वे महावीर के विरोधी हैं, ऐसा ही डिसिज़न आ गया!

वीतराग मार्ग में किंचित्मात्र आग्रह नहीं होता। ये तो दुराग्रह और हठाग्रह पर चढ़ गए हैं! जो साधु सत्य-असत्य की चर्चा-विचारणा साथ में बैठकर नहीं कर सकते, वे महावीर के साधु नहीं हैं। महावीर का एक शिष्य तो कैसा भी हो, 45 आगम पढ़कर बैठा हो और दूसरा दो ही आगम पढ़कर बैठा हो, फिर भी दोनों साथ में बैठकर चर्चा-विचारणा करते हैं और कोई भले ही कितनी भी भूल करे, लेकिन वह कषाय नहीं करता। झगड़े नहीं करता और साथ में बैठकर चर्चा-विचारणा करके सत्य का दोहन करता है, वही काम का!

कोई हमसे कहे कि, 'पटेल, आप यहाँ पर हमें सही बात समझाने के लिए पधारेंगे?' तो हम जाएँगे और बताएँगे कि, 'महावीर क्या कहना चाहते थे!' 'हम' आपको महावीर के वे ही शब्द कहेंगे, लेकिन यदि सीधे रहोगे तो! 'मैं आचार्य, मैं सूरी', यदि ऐसा समझकर नहीं बैठेंगे तो! जहाँ जुदाई नहीं लगे, वह महावीर का मार्ग है। यह तो

पाँच लोग इकट्ठे नहीं रह सकते, अंदर-अंदर झगड़ा करते हैं। बाहर लड़ते हैं, वह तो हम जानते थे, लेकिन ये तो अंदर-अंदर भी लड़ते हैं!

जहाँ निष्केफ, वहाँ मोक्ष

हम अहमदाबाद गए थे, तब एक आचार्य महाराज मिले थे। पर्यूषण के दिन थे। हज़ारों लोग आचार्य महाराज को वंदन करने आ रहे थे। उनसे हमारा परिचय करवाया गया कि, ये 'ज्ञानी पुरुष' हैं। तो तुरंत ही उन्होंने हमारे दर्शन किए और आसन पर से नीचे उतरकर बैठ गए! हमने कहा, 'इससे तो आपका काम ही निकल जाएगा', ऐसा सुंदर विनय तो काम निकाल लेगा, तब उन्होंने कहा, 'मुझे अंदर से हुआ, इसलिए नीचे बैठ गया।' फिर उनसे हमने पूछा कि, 'शास्त्र पढ़ते हैं?' उन्होंने कहा, 'शास्त्र तो बहुत पढ़े हैं।' हमने कहा, 'शास्त्र तो आपने बहुत पढ़े हैं, लेकिन वे शास्त्र भगवान की आज्ञापूर्वक पढ़े या फिर यों ही पढ़े?!' भगवान क्या कहते हैं कि, 'जिन शास्त्रों को पढ़ने से कैफ़ बढ़े, वे मत पढ़ना, यदि कैफ़ छूटता हो तो पढ़ना।' यदि कैफ़ बढ़ता हो तो फैंक देना वह पुस्तक। क्या पुस्तक का गुण कैफ़ बढ़ाने का है? ना! वह तो खुद के अंदर वाले बीज का गुण है! इस बबूल को शूल बनाने पड़ते हैं? ना, वह तो बीजगुण द्वारा हर एक डाली पर शूल आते हैं। फिर आचार्य महाराज से पूछा कि, 'वह कैफ़ किस तरह उतारोगे?' तब उन्होंने कहा, 'ये क्रियाएँ तो कर रहे हैं न!' तब मैंने कहा, 'जिस क्रिया से कैफ़ चढ़ता है वे सभी अज्ञान क्रियाएँ हैं, भगवान द्वारा कही गई क्रियाएँ नहीं हैं। भगवान द्वारा कही गई क्रियाएँ ऐसी हैं जो कैफ़ उतारती हैं, उनसे कैफ़ नहीं चढ़ता!' यह सब करने से कभी शुक्रवार बदलता नहीं और शनिवार होता नहीं! निंबोली बोई है, वह फल देगी।

वीतराग का मार्ग आसान है, सरल है और सहज है, लेकिन लोगों ने कष्टसाध्य बना दिया है। अभी के इन मार्गों में जो वीतराग धर्म है यदि उसमें कोई तथ्य होता तो जगत् आफरीन हो जाता, लेकिन लोग देखते हैं कि, त्याग के कोने वाला सिर्फ त्याग के कोने में ही पड़ा है और उसी को बुहारता रहता है और तप वाला सिर्फ तप के कोने को बुहारता रहता है! सभी कोने बुहारेगा तभी हल आएगा, ऐसा है!

निर्ममत्व वहाँ मोक्ष

कविराज क्या गाते हैं :

'क्यांय न होजो ममत लगारे।'

ममत तो कितनी जगह पर होता है? यह प्याला कोई ले जा रहा हो तो क्या ममत नहीं रखना है? ऐसा है, कि उस ले जाने वाले से कहना कि, 'देख भाई, तू ले जा रहा है, लेकिन यह नहीं मिलेगा। इस पर तो मेरा नाम है' और फिर वह पढ़े और कहे कि, 'हाँ, आपका ही नाम है, ले लीजिए।' तो यदि वह इस तरह से दे दे तो ठीक है, और वह नाम पढ़कर भी कहे कि, 'नहीं, मैं नहीं दूँगा।' तो वहाँ ममत नहीं करना है। ममत मतलब क्या? आग्रह करना। नाटकीय भाषा में कहना होता है कि, 'भाई, प्याले पर मेरा नाम है' और नाम पढ़कर वह दे दे तो ठीक है, लेकिन यदि सामने वाला आग्रह रखे तो हमें वह दे देना चाहिए, वहाँ ममत नहीं रखना चाहिए। लेकिन यदि वह ले जा रहा हो तो उसे चुपचाप ले जाने दें, वीतराग ऐसे नहीं होते। जो चुपचाप नहीं ले जाने देते, उन्हें ऐसा नहीं कहा है कि 'ये वीतराग नहीं हैं'। वर्ना यह तो कोई उसकी बेटी को उठाकर ले जाए, और वहाँ कहता है, 'मेरी बेटी है, मुझे उसका अच्छी जगह पर विवाह करवाना है।' सब कहता है, लेकिन यदि वह कम्प्लीट ड्रामेटिक हो, तो वह वीतराग है। लेकिन ऐसा नहीं कहते कि ममत पर उतर आया है?! ममत का मतलब आग्रह पर चढ़ना। वीतराग मार्ग में ममत नहीं होता, अन्य मार्गों में ममत होता है। एक ही बार ड्रामेटिक तरीके से कहना कि, 'बाहर अंधेरा है' और आप कहो कि, 'नहीं, उजाला है!' मैं फिर कहूँ कि, 'देखो न भाई, अभी भी अंधेरा है।' ऐसे विनती करके देखूँ, फिर भी यदि आप नहीं मानो तो फिर मैं ममत नहीं पकड़ूँगा। यदि कोई किसी का *ऊपरी* होता तो मैं मार-ठोककर मनवा लेता, लेकिन कोई किसी का *ऊपरी* नहीं है!

भगवान ने व्यवहार धर्म को क्या कहा है? बाहर तो सब तरफ निश्चय धर्म नहीं चलता है। वह तो सिर्फ यहीं पर है। व्यवहार धर्म

मतलब क्या? कि लोकमत। लोकमत के विरुद्ध जाए, उसे ममत कहते हैं। यह तो हर एक व्यक्ति कहेगा कि, 'यह तो संकुचित धर्म है।' यह तो एक महाराज कहते हैं कि, 'आज सातम है' और दूसरे कहते हैं कि, 'आठम है', तो दोनों को निकाल देना चाहिए। यह तो, ममत पर उतर आते हैं, उसी का झगड़ा है? जो सातम-आठम का प्रकाश करता है, ऐसे इस चंद्रमा का किसी से झगड़ा नहीं है और ये लोग झगड़ा करते हैं!

दृष्टिवादी, कदाग्रही, दुराग्रही, अभिनिवेषी ये सब अपना क्या भला करेंगे? उनका खुद का ही भला नहीं कर रहे हैं न! यह तो उन्हें संयोग नहीं मिला है इसलिए, इसमें उनका दोष नहीं है। यहाँ सभी खुलासे प्राप्त कर लें तो हल आ जाए, ऐसा है। ये सब तो पज़ल हैं!

वीतरागों ने क्या कहा है कि लोग भले ही कुछ भी कर रहे हों, तू वह मत करना, मात्र तेरे हित का ही करना। ये जो दूसरे लोग गुनाह कर रहे हैं, वे तो नहीं जानते होंगे, लेकिन तू तो जैन है। वकील होकर चार सौ बीसी का गुनाह करता है? वकील चार सौ बीसी करेगा तो क्या होगा? देखो रोग घुस गए हैं! जो जैनों में जन्म लेते हैं वे तो वकील कहलाते हैं। जो नियम जानता है, वही यदि कपड़ा खींचे तो क्या होगा?!

हमारे हिस्से में यह कचरा साफ करना आया है! हमें तो भला 'इतनी-इतनी' देना अच्छा लगता होगा? ऐसे शब्द क्या हमें शोभा देते हैं? जिनकी वाणी 'प्रत्यक्ष सरस्वती' है, ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' के हिस्से में इस काल में कचरा बुहारने का काम आया है और वह निकलेगा भी सही। इस काल में सारा सड़ा हुआ माल है! यह हमारी वीतराग वाणी ही सारा कचरा साफ कर देगी! हमें खुद नहीं जाना पड़ेगा। हम कहते हैं कि 2005 के साल में तो बाहर के सभी देश हिन्दुस्तान को वर्ल्ड का केन्द्र मानकर यहाँ धर्म सीखने आएँगे! और तब एक बाल बराबर भी भ्रष्टाचार नहीं रहेगा और जैसा सुख किसी भी काल में नहीं था, वैसा सत्युग जैसा सुख लोग भोगेंगे! अन्य तीर्थंकरों की तुलना में भगवान महावीर का शासन बेजोड़ होगा! अन्य किसी भी तीर्थंकर का शासन ऐसा बेजोड़ नहीं रहा होगा!

सच्ची दीक्षा

प्रश्नकर्ता : महाराज कहते हैं कि दीक्षा के बिना मोक्ष नहीं है। क्या यह बात सच है?

दादाश्री : बात सच है, दीक्षा के बिना मोक्ष नहीं है, लेकिन दीक्षा किसे कहेंगे? दीक्षा की परिभाषा तो होनी चाहिए न? कौन सी दीक्षा से मोक्ष होता है? हम यह क़बूल करते हैं कि दीक्षा के बिना मोक्ष नहीं है, लेकिन खरी दीक्षा को वे समझे ही नहीं हैं। महावीर भगवान की कही हुई दीक्षा हम ही दे सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : दीक्षा अर्थात् क्या?

दादाश्री : 'ज्ञान' को 'ज्ञान' में स्थापित करना और 'अज्ञान' को 'अज्ञान' में स्थापित करना, वह दीक्षा कहलाती है। सिर्फ 'दादा' ही सच्ची दीक्षा दे सकते हैं। जो खुद ही दीक्षित नहीं हुआ, वह कहाँ से दीक्षा दे सकेगा? और कहेगा कि, 'मैंने दीक्षा ली है।' दो तरह के मोती होते हैं, एक सच्चे और दूसरे कल्चर्ड। अभी तो बनावटी मोती चलते हैं न! इसलिए, पहले किसका जन्म हुआ?

प्रश्नकर्ता : सच्चे का।

दादाश्री : यानी कि सच्चे मोती थे, तो बनावटी का जन्म हुआ। उसी तरह पहले दीक्षा सच्ची थी, तभी इस कल्चर्ड दीक्षा का जन्म हुआ है न! यह अक्रम मार्ग है, इसीलिए किसी का तिरस्कार नहीं करना है, पत्नी-बच्चे का भी तिरस्कार नहीं करना है, बल्कि रोज़ पत्नी के साथ झगड़ा करता था, वह भी बंद हो जाता है!

भगवान ने दीक्षा शब्द गलत नहीं रखा है, लेकिन दीक्षा किसे कहना, वह जानना पड़ेगा न? भगवान के समय में दीक्षा देते थे, तब यह बुलवाते थे। शब्द वही के वही रहे हैं, लेकिन दीक्षा बनावटी हो गई है।

'एगो में शाषओ अप्पा, नाण दंस्सण संज्जूओ,
शेषामे बाहीराभावा, सव्वे संजोग लख्खणा,

संजोग मूला जीवेण, पत्ता दुःखम् परंपरा,
तम्हा संजोग संबंधम् सव्वम् तिवीहेण वोसरीयामि।'

आजकल तो दीक्षा लेते हैं और घंटे भर बाद चिढ़ने लगता है। सव्वम् तिवीहेण वोसरीयामि करने के बाद भी किसलिए चिढ़ता रहता है? सारा कल्चर्ड माल!

यह दीक्षा तो वापस बंधन में बाँधती है। यहाँ पर जब 'हम' दीक्षा देते हैं, तो पूरा ही संसार रोग मिट जाता है! हम जब आपको हाथ में आत्मा नकद दे देते हैं, उसी दिन दीक्षा देते हैं, दीक्षित करते हैं। लोग दीक्षा को उनकी खुद की लोकभाषा में समझते हैं, लेकिन वह तो दीक्षा कहलाती ही नहीं। आप ऐसा कहोगे तो कोई मानेगा नहीं, क्योंकि जहाँ भाषा का अर्थ ही यही हो गया है और जहाँ जो भाषा चल रही हो, तो वहाँ वही भाषा चलानी पड़ती है!

अभी तो आठ आने गेहूँ और आठ आने कंकड़ वाला हो गया है। ये पूरी नहीं लेकिन टुकड़े वाली सुपारी आती है न, उस पर कुछ भी चुपड़ देते हैं जिससे मीठी लगती है, लेकिन वह तो बिगड़ी हुई, सड़ी हुई सुपारी होती है, उसे एक साथ मीठे पानी में डाल देते हैं। भान ही नहीं है लोगों को कि सुपारी खानी है या स्वाद खाना है? स्वाद चाहिए तो मिठाई खा न! अरे, स्वाद के लिए सुपारी खा रहा है? इंसान के भान में भी नहीं है, सुपारी का स्वाद चखना हो तो सुपारी ही खा। सच्ची चीज़ अपने हाथ में ही नहीं आने देते न! ये तो मूर्ख हैं, इसी वजह से मूर्ख को मूर्खता वाली चीज़ खाने को मिलती है और अच्छी चीज़ अच्छों को मिलती है। इसलिए हमने कहा है कि इन मूर्खों का उपकार मानना कि उनके कारण हमें अच्छी चीज़ मिल रही है। मूर्ख क्यों कहा? क्योंकि पैसे देकर भी मूर्खता वाला माल ले आए!

वीतरागों की सूक्ष्म बात

अभी तो दीक्षा भी नहीं रही और महाव्रत भी नहीं रहे। अरे, अणुव्रत भी नहीं रहे, उसके बदले में पूरा कल्चर्ड घुस गया और सच्चा

चला गया। व्रत किसे कहते हैं? बरते उसे व्रत कहते हैं। उसमें कोई चीज़ याद ही नहीं आती, 'क्या छोड़ना है और क्या छूट गया है' वह याद ही नहीं रहता। 'यह छोड़ा और वह छोड़ा' वह याद रहा तो उससे तो जोखिम है।

कहाँ भगवान महावीर का एक वाक्य! उसे समझे नहीं, अंत में मुँहपट्टी बाँधी! एक के बाद दो होता तो वह ठीक है, ऐसा हम कहते हैं, लेकिन यह मुँहपट्टी तो अंतिम दशा में व्यक्ति विचर रहा हो तो हाथ में एक कपड़ा रखना चाहिए कि जहाँ बहुत जीव उड़ रहे हों तो मुँह के पास कपड़ा ढकना चाहिए। वह कपड़ा उस जीव को बचाने के लिए नहीं रखते हैं, क्योंकि कोई जीव दूसरे को बचा ही नहीं सकता, लेकिन यह तो जीवजंतु मुँह में या नाक में न घुस जाएँ और प्रकृति को नुकसान नहीं करें, उसके लिए मुँहपट्टी रखनी होती है। यह मुँहपट्टी तो अंतिम कारण है। उससे पहले तो 'केवलज्ञान' के और ऐसे सभी दूसरे बहुत सारे कारणों का सेवन करना चाहिए। लेकिन यदि अंतिम कारण का पहले सेवन किया जाए तो वह किस काम का? यह तो भयंकर भूलें हो रही हैं।

एक क्षण के लिए भी गाफ़िल नहीं रहना चाहिए। गाड़ी में गाफ़िल नहीं रहता और जहाँ अनंत जन्मों की भटकन में है, वहाँ गाफ़िल रहता है!

भगवान ने कहा है, 'हे जीव बूझ, बूझ। सम्यक् प्रकार से बूझ।' भगवान की कही हुई बातों की विरोधी बातों से मुक्त हो जाएँ, तभी मोक्ष है।

सच्चा मार्ग मिले तो हल आए

प्रश्नकर्ता : हमेशा व्याख्यान में जाना, मेरा ऐसा नियम है।

दादाश्री : रोज़ नहाएँ और शरीर का मैल नहीं जाए तो किस काम का? यह तो रोज़ व्याख्यान में जाता है, लेकिन मन का, वाणी का, बुद्धि का मैल नहीं जाए तो किस काम का? अपना दारिद्र्य खत्म

नहीं हो तो किस काम का? व्याख्यान देने वाला भले ही कितना भी जानता हो लेकिन अपना दु:ख नहीं घटे तो बेकार ही है न! जिससे अपने दु:ख जाएँ, वैसे किए हुए दर्शन काम के हैं, नहीं तो दर्शन करना किसी काम का नहीं है। सामने वाले के पास पचास बंगले हों, लेकिन उसके दर्शन से हमें झोंपड़ी भी नहीं मिले तो वे दर्शन बेकार के ही हुए न? जिन महाराज के दर्शन करने पर भी दु:ख नहीं जाएँ, तो वे खुद कितने दु:खी होंगे?

यह घानी का बैल देखा है न? वह आँखों पर पट्टी बाँधकर मन में ऐसा मानता है कि, 'मैं चल रहा हूँ' और पट्टी खोले तो उसी जगह पर! उसी तरह यह जगत् घानी के बैल की तरह चलता रहता है और मेहनत बेकार जाती है। जब तक यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक सारी मेहनत बेकार जाती है। यदि मैं स्टेशन का रास्ता नहीं जानता हूँ तो भटक जाऊँगा, और चार गुना रास्ता तय करूँ तब भी ठिकाना नहीं पड़ेगा। जब स्टेशन के रास्ते में भी भटक जाते हैं, तो यह सच्चा रास्ता ढूँढने के लिए ऐसी कितनी सारी भूलें होती होंगी? इसलिए पता तो लगाना चाहिए न? खुद को संतोष नहीं हो रहा हो तो उस रास्ते को बंद करके दूसरा रास्ता ढूँढ निकालना पड़ेगा! मोक्ष की एक ही पगडंडी है, और वह भी फिर भुलभुलैया वाली है! अन्य मार्ग अनेक हैं, और फिर ऑर्नामेन्टल हैं! कोई सच्चा राहबर हो, उसी से मोक्ष का मार्ग पूछा जाना चाहिए और वे भी फिर नि:स्वार्थी राहबर होने चाहिए।

धर्म में व्यापार नहीं होना चाहिए

जो लोग खुद कोई भी त्याग करते हैं और दूसरों से करवाते हैं, वे सभी अभ्यासी कहलाते हैं। गुरु भी त्याग करें और शिष्य से भी त्याग करवाएँ, तो हम नहीं समझ जाएँ कि ये लोग विद्यार्थी हैं?! ये माला फेर रहे हों तो हम नहीं समझ जाएँगे कि ये स्कूल में पढ़ रहे हैं? उन्हें हम पूछें कि, 'साहब, पढ़ाई पूरी हो चुकी है क्या?' तो वे कहते हैं, 'पढ़ तो चुका हूँ, लेकिन माला तो फेरनी ही पड़ेगी न?' नहीं, मोक्ष में जाना है लेकिन लकड़ी की माला का और मोक्ष का

बैर है। मोक्ष के लिए तो स्वरूप की रमणता चाहिए। यह तो, लकड़ी की रमणता रहती है, उससे मोक्ष नहीं होता। यह तो जो व्यापार लगाकर बैठे हैं, उन्हें चेतावनी देने के लिए कहना पड़ता है। धर्म में व्यापार नहीं होना चाहिए, व्यापार में धर्म होना ही चाहिए। जहाँ धर्म में व्यापार घुस गया, पैसों का व्यवहार घुस गया तो समझ जाना कि यह रियल धर्म नहीं है, सच्चा धर्म नहीं है।

किसी के कहे अनुसार चलेगा तो भी मोक्ष में जा सकेगा, लेकिन वह भी नहीं करता है, खुद की अक़्ल से ही चला है। इसलिए गुरु बनाने के लिए कहा है, लेकिन गुरु ऐसे मिलते हैं जिनका कोई ठिकाना नहीं है - मार्केट मटीरियल, तो फिर क्या हो? यह तो, गुरु के साथ करार नहीं किया, उतना अच्छा है, नहीं तो कहेंगे, 'क्यों, पाँच साल का करार था और दो साल में जा रहे हो?' वीतराग मार्ग ऐसा नहीं होता।

गुरुकिल्ली के बिना गुरु कैसे?

इस जगत् में सच्चा गुरु मिलना मुश्किल है। गुरु को शिष्य से स्वार्थ और शिष्य को गुरु से स्वार्थ, दोनों निरंतर इसी में रहते हैं, वे दोनों ही डूबेंगे। गुरु का अर्थ क्या है? गुरु अर्थात् भारी, वे खुद डूबते हैं और दूसरे को भी डूबोते हैं! इसलिए जो यों ही गुरु बन बैठे हैं वे खुद तो डूबेंगे और दूसरों को भी डुबोएँगे। गुरुकिल्ली के बिना गुरु नहीं बना जा सकता।

प्रश्नकर्ता : गुरुकिल्ली मतलब क्या? शुद्धात्मा का लक्ष्य?

दादाश्री : ना, तब तो मोक्ष ही हो जाए। भगवान के समय में गुरुकिल्ली दी जाती थी। गुरु तो कोई भी बन सकता है, लेकिन वह विषयों में निःस्पृह होना चाहिए। यह दुनिया तो रोगिष्ठों और रोगियों वाली है, वहाँ तो गुरु होने से पहले गुरुकिल्ली हाथ में होनी चाहिए। ये तो जो गुरु बनते हैं, उसके पास दो-चार शिष्य होते हैं और वे उसे बापजी, बाप जी करते हैं इसलिए कैफ़ बढ़ जाता है, लेकिन गुरुकिल्ली से नॉर्मल रहता है।

गुरुकिल्ली के बिना क्या देखकर गुरु बन बैठे हैं? जब तक 'ज्ञानी पुरुष' गुरुकिल्ली नहीं दें, तब तक गुरु कैसे बन सकते हैं? 'ज्ञानी पुरुष' गुरुत्तम होते हैं, उनसे बड़ा कोई नहीं होता और वे खुद लघुत्तम पुरुष भी हैं, उनसे छोटा कोई नहीं होता! आप कहो कि, 'आप आचार्य हैं।' तो हम कहेंगे कि, 'उससे भी गुरुत्तम हैं।' भगवान कहो तो हम कहेंगे, 'उनसे भी हम गुरुत्तम हैं।' और आप हमें कहो कि, 'आप गधे हो।' तो हम कहेंगे कि, 'हम उससे भी लघुत्तम हैं।' ऐसे 'लघुत्तम' 'गुरुत्तम' पुरुष की पहचान कैसे से हो पाए? और यदि पहचान पाएँ तो काम हो जाएगा!

स्वच्छंद से रुका मोक्ष

मोक्ष में जाना हो तो अनंत काल का स्वच्छंद नाम का रोग निकालना ही पड़ेगा। 'ज्ञानी पुरुष' वीतरागी शब्द बोलते हैं उससे सामने वाले का रोग चला जाता है। इसलिए हमें कहना पड़ता है कि कैसे हो? एक बार तो सीधे हो जाओ। 'मैं हूँ। मैं हूँ', तो किसमें है तू? किसी के अधीन रह न! चाहे किसी के भी अधीन रह तो खुद का स्वच्छंद तो नहीं रहेगा न! इसीलिए तो कृपालुदेव ने कहा है कि :

'रोके जीव स्वच्छंद तो पामे अवश्य मोक्ष।'

और आगे फिर स्वच्छंद निकालने का उपाय बताया है कि,

'प्रत्यक्ष सद्गुरु योगथी स्वच्छंद ते रोकाय,
अन्य उपाय कर्या थकी प्राये बमणो थाय।'

सच्चा गुरु – सच्चा शिष्य

इन साधु-सन्यासियों को क्या है कि कोई किसी के अधीन है ही नहीं। यदि किसी के अधीन रहेंगे तो दोनों के बीच में क्लेश नहीं होगा। गुरु शिष्य के अधीन रहे या फिर शिष्य गुरु के अधीन रहे तो हल निकलेगा। गुरु शिष्य के अधीन रहे तो क्या परेशानी है? आँखें नहीं होतीं तब गुरु शिष्य के अधीन रहता ही है न? तो एक जन्म स्वस्थ आँखों से भी शिष्य के अधीन रहो न, तो हल आ जाएगा! मन

में गुरु को ऐसा लगता है कि शिष्य दुरुपयोग करेगा, वह क्या तेरा दुरुपयोग करने वाला है? उसके हाथ में क्या सत्ता है? वह खुद ही प्रकृति के नचाने से नाचता है न! वह भी लट्टू ही है न! लेकिन आज तो सच्चे निःस्पृही गुरु मिलने भी मुश्किल हैं। गुरु शिष्य से स्वार्थ रखता है और शिष्य गुरु से स्वार्थ रखता है, वे हमेशा स्वार्थ में ही रहते हैं। किसी को मोक्ष की पड़ी ही नहीं है। मोक्ष की पड़ी हो तो उसके बाप की सौगंध! शिष्य बढ़ाने और पूजे जाने के ही कामी हो चुके हैं! इनमें सौ में से दो-पाँच एक्सेप्शन केस हो भी सकते हैं। भगवान ने क्या कहा है कि, ''संसार में सब करना, झूठ बोलना, लेकिन धर्म में उल्टी 'प्ररूपणा' मत करना।'' उससे बहुत बड़ी जोखिमदारी आती है। भगवान के कहे हुए ऐसे वाक्यों को दबा दिया है, क्योंकि वे समझते हैं कि यदि लोग जान जाएँगे तो क्या होगा? भगवान ने तो बहुत कुछ कहा है!

वीतरागों के समय में आचार्य और महाराज कितने समझदार होते थे? 80 साल के आचार्य महाराज हों और 18 साल का नया दीक्षित साधु हो और अगर वह बड़े आचार्य से कहता कि, 'महाराज, ज़रा मेरी बात सुनेंगे?' तब महाराज को इतना अधिक असर हो जाता कि मेरी इतनी अधिक अजागृति कि सामने वाले को, छोटे को, ऐसा कहने की बारी आई! जैनों के आचार्य तो सामने वाले का सुनते हैं। अरे, विधर्मी की भी ठंडे कलेजे, ज़रा भी कषाय किए बिना सुनते हैं। आज तो कोई किसी का सुनने को ही तैयार नहीं है!

आचार्य तो कैसे होते हैं? एक आँख दिखाएँ तो सौ शिष्यों को पसीना छूट जाए। उन्हें डाँटना नहीं पड़ता, सिर्फ आँखों से ही काम हो जाता है। शील ही काम करता है। आचार्य तो शीलवान होते हैं। इन शिष्यों के सिर पर तो भय चाहिए। पुलिस वाले का भय नहीं चाहिए, लेकिन शील का भय चाहिए। सिर्फ हवा से ही भय रहता है। हमारे पास कोई नियम नहीं है, फिर भी सब नियम में क्यों रहते हैं? हमारे शील से। वीतराग के यहाँ कानून नहीं होते, वे तो पक्षपात से दूर होते हैं। आपको दो उपवास करने की इच्छा हो तो महाराज

आशीर्वाद देते हैं कि, 'दो उपवास कर।' तो शिष्य को अंदर वैसा रहता है और घोटाला नहीं करता। उसे वचनबल कहते हैं। यह तो शिष्य अंदर बड़बड़ाते हुए महाराज की आज्ञा का पालन करता है। सच्चे गुरु और सच्चे शिष्य के बीच प्रेम की ऐसी कड़ी होती है कि गुरु भले ही कुछ भी बोले फिर भी शिष्य को बहुत अच्छा लगता है।

जहाँ जैन हो, वहाँ कषाय नहीं और जहाँ कषाय हों, वहाँ जैन नहीं है। वीतरागों का मार्ग तो कषाय रहित बनना, वही है। अंतिम पंद्रह जन्म रहे तभी से कहा जाता है कि वीतराग धर्म को प्राप्त किया। 'जिन' को सुने, वह जैन। जैनों के लिए तो क़रारनामा नहीं होता, उनके तो वचन से ही काम होते हैं। ये सेना, पुलिस, वगैरह जैनों के लिए नहीं होना चाहिए, जैनों के लिए सिर्फ टैक्स होना चाहिए। अब इन सब का अंत आ जाएगा। इस दूषमकाल का अंत आ रहा है। सत्ता दूषमकाल की रहेगी, लेकिन उसका अंत आ रहा है! अभी यह उमस भरा माहौल सात साल तक रहेगा।

तपने के बाद धर्मोन्नति

कितने ही लोग मुझसे पूछते हैं कि, 'दादा, इस हिन्दुस्तान का क्या हो रहा है? यह भ्रष्टाचार विरोध की क्रांति, यह रेल्वे की हड़ताल, यह सब क्या हो रहा है? यह कब पूरा होगा?' तब मैं उन्हें समझाता हूँ कि, 'यह तो आलू उबालने के लिए रखे हैं, उसे पाँच ही मिनट हुए हैं। अभी तो मुश्किल से छिलका ही उबला है। अब आलुओं को यों ही निकाल दोगे तो क्या होगा? वे किसी भी काम में नहीं आएँगे। इसके बजाय तो आराम से आलुओं को उबलने दो, फिर मज़ेदार आलूबड़े बनेंगे, वे खाना। अभी तो यह हिन्दुस्तान थोड़ा और उबलने वाला है, लेकिन परिणाम सुंदर आएगा, जहाँ 'ज्ञानी पुरुष' और उनके हाथ से 2103 ज्ञानी तैयार हुए हैं, और दूसरी भी कितनी ही 'टिकिटें' आई हुई हैं, जो किसी काल में पैदा नहीं हुए थे, वे आज हुए हैं! ये सभी धर्मों को ऊपर लाएँगे। ये सभी धर्म अपसेट हो चुके हैं, उन्हें हम फिर से अपसेट कर देंगे! इसलिए फिर क्या हो जाएगा? सेट अप हो जाएगा!

असंसारी कौन?

कुछ साधु ऐसा कहकर गृहस्थियों का तिरस्कार करते हैं कि, 'तुम संसारी हो, संसारी हो' – लेकिन हे साधुओं, आप भी संसारी ही हो। आपको असंसारी किसने कहा? आप त्यागी ज़रूर हो, उसे क्या हम नकार रहे हैं? उन्होंने स्त्री का त्याग किया है, कपड़े-वपड़े, वेष का त्याग किया है। वह सब हम जानते हैं, लेकिन महाराज संसारी तो हैं ही न! भगवान ने जीवराशि के दो भाग किए हैं – एक संसारी और दूसरे सिद्ध। सिद्ध के अलावा अन्य सभी संसारी हैं। भगवान ने कहा है कि, 'उनमें से जो कारण-सिद्ध हो चुके हैं, उतनों को हम एक्सेप्ट करते हैं और उन्हें हम असंसारी कहते हैं।' हे भगवान! जो ऊपर चले गए हैं वे असंसारी और यहाँ पर मनुष्य योनि में हैं, वे भी असंसारी? तो वे कहते हैं, 'हाँ। जो कारण-सिद्ध हो चुके हैं उन्हें हम यह पद दे रहे हैं', तब आप कहो कि, 'हे भगवान, कारण-सिद्ध वाले को यह पद देते हैं तो औरों ने क्या गुनाह किया है?' तब वे समझाते हैं कि, 'कारण-सिद्ध' मतलब यह कि वे सिद्ध होने वाले हैं, थोड़े ही समय में, इसलिए उन्हें अभी से ही इस सीट का रिज़र्वेशन दे देते हैं!' 'भगवान, इन सब में भेद क्यों डाला?' तब भगवान कहते हैं, 'भेद में तो, उसे अंदर भेद बरतता है इसलिए। कारण-सिद्ध को अंदर भेद नहीं बरतता, कारण-सिद्ध को तो अंदर मोक्ष ही बरतता है। तो फिर जिसे मोक्ष बरतता है उसे संसारी कैसे कहा जाए?'

भगवान महावीर कम उम्र में भी बहुत समझदार थे! 72 साल की उम्र में निर्वाण हुआ, लेकिन बहुत सयाने थे! कितने समझदार थे! 30 साल की उम्र में तो भगवान का सयानापन हमें आनंद प्राप्त करवाए वैसा था! जब घर छोड़कर निकले – छोड़ा नहीं था उन्होंने, वे तो संयोगिक *पुरावे* (सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स) थे, जैसे कि मैं सांताक्रुज से यहाँ दादर आया तो इससे क्या मैंने सांताक्रुज छोड़ दिया? नहीं! उसी प्रकार वे तो संयोगिक *पुरावे* थे। भीतर से 'व्यवस्थित' जैसा मार्गदर्शन करता है, उसी तरह जाते हैं, उन्हें खुद को कुछ भी करने को नहीं रहता, कर्तापन रहा ही नहीं। जिसमें कर्तापन नहीं रहा उसे

भोक्तापन नहीं रहा! जिसमें कर्तापन बाकी नहीं रहता उसे भोक्तापन भी नहीं रहता।

भगवान ने जो कहा उसे इन महाराजों ने पकड़ लिया कि हम जैनों के साधु हैं न? भगवान ने कारण-सिद्ध किसे कहा है? साधु को, उपाध्याय को, आचार्य को और तीर्थंकर भगवानों को, इन चार को - कारण सिद्ध कहा है। वे संसारी दिखते ज़रूर हैं, दिखने में संसारी जैसे ही हैं, लेकिन *भोगवटा* में फर्क है। ये चारों सिद्धसम सुख भोगते हैं और आप संसारीपन के सुख-दुःख का वेदन करते हो! ये सभी आचार्य महाराज कहते हैं, 'हम संसारी नहीं कहलाते।' 'महाराज, किस आधार पर संसारी नहीं कहलाते हैं? हमें प्रमाण दिखाइए तो हमें मंज़ूर है। कसौटी पर यदि सोना निकले, 25 प्रतिशत सोना निकले, तब भी हम 100 प्रतिशत सोना मान लेंगे!' और फिर हम कितनी छूट दें? 25 प्रतिशत को 99 प्रतिशत मान लें, तब तक चला सकते हैं, लेकिन फिर जब हम समझाएँगे तो वे ही कहेंगे कि 'हम कारण सिद्ध नहीं हैं।' आप सिद्ध पद भोग रहे हैं क्या? कषाय तो खड़े ही हैं। पूछो कि, 'महाराज, आप में कषाय हैं न?' तो कहेंगे, 'हाँ कषाय तो हैं ही न।' तब हम कहें कि, 'तो महाराज, आप कारण-सिद्ध नहीं हैं।' तब महाराज ही कहेंगे, 'ना, हम संसारी हैं, संपूर्ण संसारी!' हम सभी से पूछें तो सभी कहेंगे या नहीं कहेंगे? कहेंगे ही न! नहीं कहेंगे तो हम थोड़ा सा उकसाएँगे तो तुरंत ही पता चल जाएगा। लेकिन उकसाने से पहले ही चिढ़ जाते हैं, बात करते ही चिढ़ जाते हैं! क्योंकि उतावले व्यक्ति तो बात करते-करते भी चिढ़ जाते हैं!

हड़बड़ी और प्रमाद

चाहे कैसे भी संयोग आएँ, लेकिन उतावला मत हो जाना। आत्मा उतावला नहीं है, आत्मा परमात्मा है, वहाँ हड़बड़ाहट की ज़रूरत है? चाय पीओ, नाश्ता करो, बाजे बजाओ, सबकुछ करो लेकिन यह तो हड़बड़ाहट, हड़बड़ाहट और हड़बड़ाहट और ये क्रमिक मार्ग के ज्ञानी तो पानी भी नहीं पीने देते, गले भी नहीं उतरने देते। हम अगर पानी

पी रहे हों और थोड़ी देर लगे तो कहेंगे, 'हट-हट, यहाँ से जा, प्रमाद कर रहा है?' रख तेरा प्रमाद! प्रमाद तेरे घर ले जा, नहीं जाना ऐसे मोक्ष में! ऐसे कहीं मोक्ष में जाते होंगे? महाराज पानी नहीं पीने देते, गले नहीं उतरने देते, ऐसे कहीं मोक्ष में जाया जाता होगा? आपने ऐसा देखा है? हड़बड़ाहट नहीं देखी?

प्रश्नकर्ता : देखी है न, मैं तो दो साल साधुओं के साथ रहकर आया हूँ दादा।

दादाश्री : वहाँ प्रमाद नाम का शब्द होता है और वह सभी को हड़बड़ाहट, हड़बड़ाहट करवाता है। इससे तो प्रमाद कर न, तो हड़बड़ाहट मिट जाए! कितना विरोधाभास है? यह तो, 'यह' साइन्स, ग़ज़ब का साइन्स प्रकट हुआ है! यह साइन्स! पूरा जगत् दाँत में उँगलियाँ दबाएगा वैसा साइन्स प्रकट हुआ है। 'जैसा है वैसा' ओपन हुआ है, नहीं तो यहाँ भी हड़बड़ाहट होती न, तो दादा आपको चाय-वाय नहीं पीने देते, 'अरे, चाय पी ली या नहीं? उठो, चलो, चलो गाओ, चलो तालियाँ बजाओ' ऐसा करते, लेकिन यहाँ पर हड़बड़ाहट वगैरह नहीं है! आत्मा ऐसा हड़बड़ाहट वाला नहीं है, आत्मा परमात्मा है। वह क्या ऐसा पागल होगा? ऐसा? हम आत्मा जैसे बन जाएँगे, तो आत्मा प्राप्त होगा।

अब मेरी इस बात का सभी से कैसे मेल खाए?! मैं प्रमाद शब्द को हटाना चाहता हूँ। इसने तो प्रमादी आत्मा छोड़ा और अब हड़बड़ाहट वाला आत्मा खड़ा किया! तो भाई, मूल आत्मा को तू कब प्राप्त करेगा? प्रमादी आत्मा था, तब फिर हड़बड़ाहट वाला खड़ा किया। उससे तो प्रमादी आत्मा अच्छा था कि किसी को पत्थर तो नहीं मारता था। इस उतावले से तो किसी को धक्का भी लग सकता है, प्रमादी को कुछ भी नहीं है। बेचारा आहिस्ता चलता है। इसका मतलब प्रमाद को हम पसंद करते हैं ऐसा नहीं है, लेकिन प्रमाद पर आपने द्वेष क्यों किया है इतना अधिक? और उतावलेपन पर राग क्यों किया है? अब ये राग-द्वेष छोड़ने हों और राग-द्वेष करो तो कैसे

चलेगा? अभी चाय पी रहे हो तो नहीं पीने देते, दूध डालने से पहले धक्का मारते हैं, अब इन्हें कैसे पहुँच पाएँ? क्रमिक मार्ग है ही ऐसा कठिन, बहुत कठिन मार्ग है। कृपालुदेव ने प्रभुश्री से कहा कि, 'संस्कृत सीखकर आओ' तो प्रभुश्री ने कहा, 'अब 46 साल हो गए, अब मैं कहाँ इस उम्र में सीखूँ और क्या मुझे आ पाएगा? इससे अच्छा तो मुझे कोई और रास्ता दिखाइए न!' तब कृपालुदेव ने कहा कि, 'विक्टोरिया रानी सभी भाषाएँ सीखती हैं, इतनी बड़ी 76 साल की हैं, फिर भी वे 76 साल की उम्र में अपनी भाषाएँ सीख रही हैं तो आपको क्या अपनी मातृभाषा भी नहीं आएगी। सीखकर आओ।' वह आज्ञा हुई इसलिए सीखना पड़ा। तो प्रभुश्री कहते थे कि, 'मैं खंभा पकड़कर, गम गच्छति टु गो, गम गच्छति टु गो' ऐसे बोलता था, ताकि नींद नहीं आ जाए, प्रमाद नहीं हो। अब कब पार आए? और उन्होंने बाइस पुस्तकें लिखकर दी थीं, इतनी मोटी, और कहा था कि इन्हें साथ के साथ रखना और अंदर से विचार आए तो तुरंत ही इनमें देख लेना! यह है क्रमिक मार्ग! कृपालुदेव 'ज्ञानी पुरुष' थे और उनका मार्ग भी सच्चा है, दूषमकाल में सच्चे ज्ञानी हो चुके हैं, लेकिन वस्तुस्थिति में क्रमिक मार्ग कितना कष्टदायी है और यह अपना तो अक्रम मार्ग, सरल मार्ग प्राप्त हुआ है। जबकि लोग इसकी कदर नहीं करते, यानी अब सही टाइम आया है। एक मिनट तो एक मिनट, लेकिन यहाँ तो एक मिनट की अधिक कीमत है। फिर से ये 'दादा' एक मिनट भी दर्शन करने को नहीं मिलेंगे! एक दिन ऐसा आएगा कि ये 'दादा' दिन में एक मिनट के लिए भी दर्शन करने को नहीं मिलेंगे! 'यह' प्रकट साइन्स जिस घड़ी बाहर जगत् में प्रकट होगा उस घड़ी जगत् क्या खुद को रोक सकेगा?

दो प्रकार के मोक्षमार्ग हैं : एक चालाक व्यक्ति को मिला हुआ मोक्षमार्ग और दूसरा आलसी व्यक्ति को मिला हुआ ऐशोआराम वाला मोक्षमार्ग। संसार में चालाक अधिक होते हैं, ऐशोआराम वाले ज़रा कम होते हैं। ये लोग ऐशोआराम वाले नहीं हैं, लेकिन लोग समझे बिना इस शब्द का उपयोग करते हैं। 'यह' तो अलग ही है, इसमें संसारी

मोह नहीं है, ऐशोआराम है, लेकिन संसारी मोह नहीं है। अत: यह अपना ऐशोआराम वालों का मोक्षमार्ग है और दूसरा चालाक का मोक्षमार्ग, उन दोनों का रास्ता अलग है! ऐशोआराम वाला देर से निकलता है और फिर छोटा रास्ता ढूँढ निकालता है! सोते-सोते बहुत काम निकाल लेता है वह तो। इसलिए अपना यह लिफ्टमार्ग अलग ही प्रकार का है, वह सभी तरह से खिल उठा है।

इसलिए कवि लिखते हैं न कि, '*ज्ञानी विक्रम टोच, ऐश्वर्य हाहाकार*।' अक्रम ज्ञानी हैं और विक्रम शिखर पर बैठे हुए हैं और खलबली मचा दी है! भले ही ऐशोआराम किए होंगे, लेकिन मार्ग भी ऐशोआराम वाला मिला है न! वहाँ पर 'प्रमाद मत करो, प्रमाद मत करो' कहें तो क्या दशा होगी? हड़बड़ी, हड़बड़ी और हड़बड़ी, खाने-पीने में भी हड़बड़ी। वे किसलिए हड़बड़ी करते हैं? प्रमाद निकालने के लिए? प्रमाद गया और हड़बड़ी घुसी, एक ही तरह के भूत है। बल्कि, यह हड़बड़ी का भूत गलत है। कुछ साधु तो ऐसे होते हैं कि उन्हें यदि किसी के यहाँ लड्डू खाने के लिए बुलाया हो तो वे आराम से जाते हैं, हड़बड़ाहट वगैरह उनमें नहीं होती! जबकि कुछ साधु तो रास्ते में चल रहे हों और हम कहें कि, 'मैं अभी आता हूँ, ये सूर्यनारायण के दर्शन करके।' तब ऐसे दर्शन करके यों देखें तब तक तो कहीं दूर पहुँच चुके होते हैं! उसका क्या कारण? हड़बड़ी-हड़बड़ी। संडास जाते हुए भी हड़बड़ी और पेशाब करते हुए भी हड़बड़ी, चलते हुए हड़बड़ी, खाते-पीते हुए हड़बड़ी, सब जगह हड़बड़ी, हड़बड़ी, हड़बड़ी, हड़बड़ी! इसके बदले तो लड्डू खाकर, पेट पर हाथ-वाथ फेरे शांति से तो अपने को ऐसा लगता है कि इनके दर्शन करो बेचारों के, और इस जल्दबाज़ के तो दर्शन करने का भी मन नहीं होता। प्रमाद निकालते हुए हड़बड़ी घुस गई, इससे तो प्रमाद अच्छा था। पहले का जो भूत था वह अच्छा था, अपने परिचय वाला तो था! इस हड़बड़ी का तो अपरियच वाला भूत घुस गया! अब प्रमाद को समझते नहीं है और अंधाधुंध सबकुछ करते हैं।

जल्दबाज़ी का कारण क्या है? तब कहे, प्रमाद छोड़ दिया है उन्होंने। अरे, देह का प्रमाद नहीं छोड़ना है, देह का प्रमाद तो रखना है। आराम से पलंग पर बैठना है, पलंग चरमराए फिर भी बैठना है। भले ही चरमराए, वह तो पलंग है। क्या जीव है वह? कोई जीव दब गया हो तो हम खड़े हो जाएँगे, लेकिन पलंग भले ही चरमराए, बैठ जाएगा तो हम दूसरा ले आएँगे। लेकिन कहेंगे, 'नहीं, प्रमाद हो जाएगा। यानी बैठते हैं, तब भी चैन से नहीं बैठते, हड़बड़ाया हुआ ही रहता है! और आप कोई बात पूछने जाओ न तो वह हड़बड़ी में चिढ़ जाता है, वह 'हट, हट', ऐसे करता है। ऐसे क्या शोभा देता है? भगवान ने ऐसा नहीं कहा है। वीतराग भगवान ऐसे होते होंगे? ये लोग घड़ी भर में कहीं से कहीं चले जाते हैं, क्या महावीर ऐसे चलते होंगे? वे तो यों... आराम से, आराम करते-करते चलते थे, यह तो भीतर यदि आकुल-व्याकुल हो जाता है न, तो बाहर भी आकुल-व्याकुल हो जाता है, भीतर हड़बड़ाहट हुई कि बाहर भी हड़बड़ी, फिर ये पेड़-वेड़ सभी उसे हिलते हुए दिखते हैं, नहीं हिल रहे हों, फिर भी हिलते हुए दिखते हैं, क्योंकि खुद हड़बड़ाया हुआ है!

ये जो औलिया होते हैं उन्हें कोई हड़बड़ाहट नहीं रहती, चैन रहता है। हम कहें कि, 'अरे, आकाश क्या गिरने वाला नहीं है?' तो कहेंगे कि, 'नहीं साहब, गिरने वाला नहीं है। उसे तो खुदा ने बनाया है, कैसे गिरेगा?' और ये लोग तो 'मेरा ही किया हुआ और मुझे ही भोगना है।' यानी कि आकाश गिर गिया तो क्या हो जाएगा? यह सीधी समझ उल्टी हो गई और उसके फल कड़वे आए है, वर्ना ऐसा कहीं होता होगा?

हड़बड़ी वाला व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करता है, फिर भी उसे कभी भी शुद्ध उपयोग नहीं रह पाता, 'शुद्ध उपयोग' दे दें फिर भी हड़बड़ी वाले के पास रह नहीं पाता, क्योंकि हड़बड़ी है न! आप ये खाते हो, पीते हो, घूमते-फिरते हो, लेकिन उपयोगपूर्वक करते हो। जबकि हड़बड़ी वाला ऐसा समझता है कि, 'इसमें तो शुद्ध उपयोग चला ही

जाएगा।' नहीं, शुद्ध उपयोग तो रहेगा ही। चाय अच्छी है या बुरी है, कड़क है या मीठी है, उसमें अपना उपयोग शुद्ध ही रहता है।

प्रमाद शब्द ने मार डाला है। इस प्रमाद शब्द को लोग समझे ही नहीं। इतनी हड़बड़ी करते हैं, चार बजे उठते हैं, फिर भी यदि कभी महावीर से पूछे तो कहेंगे, 'ये सब प्रमादी हैं, संपूर्ण प्रमादी हैं। अंशमात्र भी प्रमाद गया नहीं है।'

प्रमाद क्या है? इस जगत् में कौन प्रमाद में है? पूरा जगत् ही प्रमाद में है। यह प्रमाद कब जाएगा? आरोपित भाव जाएगा, तब प्रमाद जाएगा। मद तो चढ़ा है और ऊपर से यह प्रमाद। एक तो आरोपित भाव है, 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा मानता है। वह मद है और विवाह में मौज मनाता है, वह प्रमाद है। कोई अवस्था अच्छी हो तो उसमें ठंडक भोगता है और खराब अवस्था में घुटन भुगतता है, वह प्रमाद है। यदि आरोपित भाव में स्थिरता करे (रखे) तो वह मद है और यदि आरोपित भाव में रंजन करे, तो उसे प्रमाद कहा है।

अब ये लोग, अगर कोई जल्दी नहीं उठता, तो उसे प्रमाद कहते हैं, लेकिन उसे तो आलस्य कहते हैं। जल्दी नहीं उठना, वह तो आलसी व्यक्ति का विटामिन है। एक तो उठता देर से है और गाड़ी आए तब ऐन मौके पर ऐसा दौड़ता है! यानी यह आलसी व्यक्ति का विटामिन है।

अब साधु प्रमाद का अर्थ उनकी अपनी भाषा में ले गए और भगवान ने कुछ और कहा है, भगवान की भाषा अपने काम की है। ज्ञानी की संज्ञा से चलना है, वह ध्रुवकांटा ठीक है, उनका ज्ञान सही उत्तर दिशा बताता है। बाकी तो सब उत्तर के बदले दक्षिण में ले जाते हैं, कांटा उत्तर दिखाता है और ले जाते हैं दक्षिण में। ज्ञानी के बारे में यथार्थ ही कहा गया है कि,

'मोक्ष मार्गनेत्तारंय भेत्तारं कर्मभुभृताम्
ज्ञातारं सर्व तत्वानाम्, वंदे तद्गुण लब्धये।'

स्व-रमणता : पर-रमणता

जिसने लाचार होकर शादी की है उसके लिए वीतरागों का ज्ञान है और राज़ीखुशी से सहमति देकर तीन-तीन हस्ताक्षर करके विवाह कर लिया, वह वीतरागों का ज्ञान कैसे पाएगा? जिसने लाचार होकर शादी की है, जो लाचार होकर खाता है, जो लाचार होकर पीता है उसके लिए वीतरागों का ज्ञान है! 'लाचारी'-यह एक पद है, स्टेज है, पसंद है ही नहीं फिर भी करना पड़ता है। आपको एकाध चीज़ पसंद तो होगी न? ऐसी आपको खबर होगी न?

प्रश्नकर्ता : पसंद तो है, लेकिन यही है, मैं ऐसा बिल्कुल पक्का नहीं बता सकता।

दादाश्री : 'है' तो सही न? वह 'है' के आधार पर जीवित रहता है। यह जीवित किस आधार पर रहता है? 'है' के आधार पर और 'है' के आधार पर नहीं जीए तो आत्मा प्राप्त हो जाएगा! अभी आत्मा की रमणता 'है' उसमें है। यदि 'है' वाली रमणता नापसंद हो जाए तो उसे आत्मा प्राप्त होगा ही, वर्ना देह रहेगा ही नहीं! लेकिन जो 'है' उसी में रमणता है, तो उसे आत्मा कहते हैं, 'आपका ठीक है। आप अपने गाँव में ठीक हो और मैं मेरे गाँव में ठीक हूँ!' किसी जगह पर रमणता बरतती रहती है, यह अन्य किसी जगह रमणता है, उसके आधार पर जीवित रहते हैं। यदि रमणता किसी भी जगह पर - एक परमाणु मात्र में, *पुद्‌गल* में पौद्‌गलिक रमणता नहीं हो तो उसे

आत्मा प्राप्त होगा ही! हमें एक भी परमाणु पर पौद्गलिक रमणता नहीं है! हम एक क्षण भी आत्म-रमणता के बिन नहीं रहे हैं! यह देह 'मेरी है' ऐसा हमें भान नहीं रहता है, पड़ोसी की तरह भान रहता है, यह देह नेबरर है, फर्स्ट नेबर है।

पौद्गलिक रमणता यदि कभी किंचित्मात्र भी रहे, तब तक आत्मा प्राप्त नहीं होगा। आत्मा का आभास होता हैं, लेकिन तथारूप नहीं हो पाता। तथारूप मतलब भगवान ने जैसा आत्मा बताया है, वैसा नहीं हो पाता। तथारूप आत्मा, वह तो अचल आत्मा है! ये सब चंचल आत्मा हैं! जब तक पौद्गलिक रमणता है, तब तक चंचल आत्मा है। भगवान ने कहा है कि दो प्रकार की रमणता होती है। एक शुद्ध चेतन की रमणता, वह परमात्म रमणता कहलाती है, वर्ना दूसरी *पुद्गल* की रमणता है, वह खिलौनों की रमणता कहलाती है, खिलौने से खेलते हैं ऐसा कहा जाएगा।

सारी-खिलौनों की ही रमणता

हाँ, बच्चे भी खिलौनों से ही खेलते हैं न? दो साल के बालक के खिलौने पाँच साल के बालक को दें, तो वह लेगा क्या? नहीं लेगा। वह तो कहेगा, 'ये तो छोटे बच्चों के हैं, मेरे नहीं हैं!' यानी छोटे बच्चे के खिलौने बड़ा बच्चा काम में नहीं लेता और बड़े के खिलौने से छोटा नहीं खेलता। फिर पाँच साल के बच्चे के खिलौने हों, तो वे बड़ा ग्यारह साल का बच्चा नहीं लेगा, कहेगा, 'हम तो क्रिकेट खेलने जाएँगे' फिर वह चौदह साल का होता है, तब तक क्रिकेट और फुटबॉल और वॉलीबॉल और फलाना बॉल, वगैरह सभी खिलौने खेलता रहता है। फिर अठारह साल का हो जाए, तब पढ़ते-पढ़ते किताबों से खेलता है। किताबें भी खिलौने ही कहलाती हैं। जिन किताबों पर रुचि है, वे क्या कहलाती हैं? जहाँ रुचि है वहाँ रमणता कहलाती है। इसलिए किताबें खिलौने, फुटबॉल खिलौना है, गुड्डे-गुड्डियाँ ये सभी खिलौने ही हैं! फिर बीस-बाईस साल का हो जाए तब कहेगा कि, 'अब मुझे गुड़िया नहीं चलेगी, मुझे बड़ी जीवित गुड़िया

चाहिए।' 'अरे पागल, यह गुड़िया क्या बुरी है? लाने दे न तेरे लिए, यहाँ से जापानी गुड़िया मिलती है, वह बड़ी, साड़ी पहनी हुई आती है वह?' तो वह कहेगा, 'नहीं, मुझे जीवित चाहिए।' फिर वह जीवित गुड़िया ले आता है! अब हम उसे कहें कि, 'अब तो संतोष हो गया न? खिलौने अब बंद करेगा?' तो वह कहेगा कि, 'अब मुझे हर्ज नहीं है।' उसके बाद उत्साहपूर्वक दो-चार साल बीत जाएँ, तब लोग पूछते हैं कि, 'भाई चार साल हो गए शादी के, क्या है? बेटी है या बेटा? नहीं, कुछ भी नहीं?' इसलिए फिर मन में होता है कि इस खिलौने की कमी है, इसलिए वापस उस खिलौने में पड़ जाता है।

जब दूसरा एक बेटा बाईस साल का हो जाए, तब कहेगा, 'नहीं, मुझे तो दीक्षा लेनी है!' 'तुझे यह जीवित गुड़िया नहीं चलेगी?' तो वह कहेगा, 'नहीं, मुझे वह खिलौना नहीं चलेगा, मैं तो त्यागी खिलौने ढूँढूँगा। जो ऐसी जीवित गुड़िया काम में नहीं लेते, अब वे हमारे खिलौने!'

कुछ लोगों की शादियाँ होती हैं, बच्चे होते हैं, फिर उनके उदय ऐसे आए, कि पत्नी के साथ झगड़े होने लगे, यानी उसे त्याग का उदय आया। इसलिए वह क्या करता है कि पत्नी से ज़बरदस्ती लिखवा लेता है कि, 'मैं राज़ी खुशी से मेरे पति को मोक्ष का काम निकाल लेने के लिए जाने दे रही हूँ', इस प्रकार पत्नी-बच्चे को रुलाकर लिखवा लेता है! ये सभी पत्नी-बच्चों को रुला-रुलाकर आए हैं। थोड़े-बहुत होंगे कि जिन्होंने विवाह नहीं किया और अन्य कुछ ऐसे होंगे कि जिन्हें विवाह करने को मिला ही नहीं होगा! अन्य कुछ थोड़े-बहुत हैं कि जिनके घर खाने को भी नहीं था। बाकी थोड़े-बहुत हैं वे मूर्ख, पढ़ने में कमज़ोर, बाकी सभी बातों में मूर्ख, लेकिन इतनी अक़्ल में पहुँचे हुए हैं कि इस संसार में यहाँ रोज़ राशन लेने जाना पड़ता है, नौकरी करने जाना पड़ता है, तो यह *उपाधि* उन्हें पसंद नहीं आती, इसलिए कहेंगे कि, 'साधुपन में तो सिर्फ नंगे पैर चलना पड़ता है, बस इतना ही दुःख है न! लेकिन लोग बाप जी-बाप जी तो करेंगे! कुछ आता है या नहीं, वह कौन पूछता है? यानी कुछ तो इसी तरह

घुस गए हैं! और इनमें सच्चे साधु भी हैं, पाँच-दस प्रतिशत! कुछ करोड़ों रुपये रखकर भी आ जाते हैं, उनसे पूछें कि आपको रुपयों से खेलना अच्छा नहीं लगा, ऐश्वर्य से खेलना अच्छा नहीं लगा, पत्नी से खेलना अच्छा नहीं लगा? यहाँ किसलिए, कौन से खिलौनों से खेलने आए हो?' तब वह कहेगा कि, 'समाज कल्याण करना है।' 'अरे, कौन से जन्म में तू समाज का कल्याण किए बगैर रहा है? तू तेरा ही कल्याण कर न! तेरा खुद का कल्याण किए बिना समाज का कल्याण किस तरह हो पाएगा भाई?'

अब ऐसी उल्टी समझ कब तक चलेगी? वीतरागों की सही समझ से चलना तो पड़ेगा न? और फिर गाते भी हैं, 'पर-रमणता दूर करे, पर-रमणता दूर करे।' अरे, पर-रमणता का मतलब तू क्या समझा? तू जो यह खेल रहा है, वही पर-रमणता है! इसे तो तू किस तरह दूर कर पाएगा। कुछ लोग कहते हैं कि, 'समाजकल्याण कर रहे हैं, जैनों की बढ़ौतरी कर रहे हैं।' अरे जैन बढ़ें या घटें, उससे तुझे क्या पीड़ा है? महावीर भगवान को ऐसी चिंता नहीं थी तो तुझ में कहाँ से आ गई? तेरे गुरु के गुरु, उनके गुरु और पूरी दुनिया के गुरु, ऐसे महावीर, उन्होंने चिंता नहीं की कि जैन बढ़ें, तो तू ऐसा कहाँ से पैदा हुआ है कि जैनों को बढ़ाने में पड़ा है? तेरा चित्त चक्कर में चढ़ा है या क्या? इससे तो घर पर बच्चे बढ़ाए होते तो डज़न या पाँच बढ़ते न? लेकिन इसने तो बच्चों को निर्वंश किया! इसे जैन कैसे कहेंगे? समझना तो पड़ेगा ही न सच? कब तक ऐसी धांधली चलेगी? सही समझना पड़ेगा, सही जानना पड़ेगा तो आत्मा जानने को मिलेगा। जब पर-रमणता जाती है, तब स्व-रमणता उत्पन्न होती है।

रमणता किसे कहते हैं, वह आपको समझ में आया न? अंत तक शास्त्रों से खेलते हैं, गुरु-शिष्यों से खेलते हैं और शिष्य-गुरुओं से खेलते हैं और कहते क्या हैं कि, 'यह मोक्ष का रास्ता है।' अरे, नहीं है यह मोक्ष का रास्ता! गुरुओं से खेलता है और शास्त्रों से खेलता रहता है रोज़! साधु, महाराज, आचार्य सभी शास्त्रों से खेलते रहते हैं।

भगवान ने कहा है कि तू अंत तक खिलौने से ही खेलता है, इससे तुझे क्या मिला? तू खिलौने से खेला है, इसलिए मोक्ष के लिए गेट आउट। तब वह कहेगा, 'भगवान ये आपके शास्त्र, आगम, मैं सभी से खेलता हूँ न!' तब भगवान कहेंगे, 'लेकिन तू गेट आउट, तू खिलौनों से खेला है, एक क्षण के लिए भी आत्मा से नहीं खेला है।' हम स्व-रमणता से मोक्ष देते हैं! इसीलिए तो मैंने तुम सब को पुस्तक पकड़ने के लिए मना किया है न!

स्व में रमणता करते रहो। जिसे स्व प्राप्त नहीं हुआ है, वे सभी खिलौनों से खेलते रहते हैं। ये सभी आचार्य-वाचार्य, जो पूरे वर्ल्ड में हैं, वे सभी खिलौनों से खेलते रहते हैं। सिर्फ अपने यहाँ के महात्मा ही आत्मा से, स्व से खेलते हैं, स्व-रमणता करते हैं। अब ये इतनी सूक्ष्म बात समझते नहीं हैं, इसलिए पूरा दिन पुस्तक और सिर्फ पुस्तक से ही खेलते रहते हैं! पुस्तक नहीं मिले तो चिढ़ते हैं। पूरा दिन सब के ऊपर चिढ़ते रहते हैं, 'तुझ में अक़्ल नहीं है', सभी से ऐसा कहते हैं। यह अक़्ल का बोरा आया! भगवान ने पुस्तक में साफ-साफ मना किया है कि किसी पर चिढ़ना मत, किसी को दु:ख मत देना, लेकिन वही करता है। पुस्तक में क्या इस तरह चिढ़ने को कहा गया है? लेकिन यदि एक पुस्तक खो जाए न, जो पुस्तक चिढ़ने के लिए मना करती है, अगर वही पुस्तक खो जाए न, तब भी चिढ़ता रहता है! ये सभी खिलौनों से खेलते हैं, फिर यदि वे शोर मचाएँ तो उससे क्या भला होगा! करोड़ों जन्मों तक शास्त्र पढ़ता रहे, तो भी वह तो उल्टा शास्त्रों के बंधन में पड़ता है। संसार की रमणता में पड़ता है तो उसके बंधन में पड़ता है। इसमें से उसमें और उसमें से वापस इसमें। पुस्तकें भी खिलौने हैं। पुस्तकें आत्मा को जानने के लिए हैं, इसलिए वह हेतु गलत नहीं है, लेकिन आत्मा की रमणता ही सच्ची रमणता है, दूसरी सारी पर-रमणता है।

एक साधु आए थे, उन्होंने कहा कि, 'मुझे बिल्कुल, एक भी परिग्रह नहीं है, तो मेरा मोक्ष होगा न?' हमने कहा, 'नहीं, आपका

मोक्ष नहीं है। जब तक आत्मा में रमणता नहीं होती है, तब तक मोक्ष नहीं है। ये सब तो खिलौनों की रमणता में हैं, शास्त्र पढ़ें या क्रियाकांड वगैरह करें, वह सब रमणता ही है। परिग्रह बाधक नहीं है। परिग्रह भले ही कितने भी हों, लेकिन यदि खुद आत्मा की रमणता में रहे तो मोक्ष ही है! ऐसा एक तरफा नहीं बोल सकते कि अपरिग्रह से ही मोक्ष है।' तुझे यदि स्व-रमणता प्राप्त हो चुकी है तो शादी कर न 1300 रानियों से! हमें हर्ज नहीं है, तुझ में शक्ति होनी चाहिए। तुझे यदि स्व-रमणता प्राप्त हो चुकी है तो तुझे क्या परेशानी है? स्व-रमणता उत्पन्न होने के बाद किसी भी प्रकार की परेशानी स्पर्श नहीं करती।

रमणता : अवस्था की और अविनाशी की

इतनी सूक्ष्म बातें लोगों को समझ में नहीं आती, यह स्व-रमणता और यह पर-रमणता, ऐसा कुछ भान ही नहीं है। दो प्रकार के लोग हैं : एक अवस्थाओं में पड़े हुए हैं, वे फिर साधु हों या सन्यासी हों, आचार्य हों या सूरी हों, सभी अवस्थाओं में पड़े हुए हैं और दूसरे प्रकार के लोग वे हैं जो स्वरूप में पड़े हुए हैं। 'दादा' ने जिन्हें 'स्वरूप का ज्ञान' दिया, उसके बाद से वे खुद के स्वरूप में ही पड़े हुए हैं।

अवस्थाएँ विनाशी हैं, विनाशी हैं यानी एकदम से पंद्रह मिनट में विनाश हो जाएँ, ऐसी नहीं हैं। कोई तीन घंटे चलती हैं, कोई चार घंटे चलती हैं। जवानी दस साल या पंद्रह साल तक चलती है, बुढ़ापा बीस साल तक चलता है। उसमें बचपन, जवानी और बुढ़ापा ये तीन अवस्थाएँ बड़ी हैं और बचपन में भी कितनी अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। जब दो साल का छोटा बच्चा था-तब नंगा फिरता था, कपड़े नहीं पहनता था तो वह चल जाता था। पाँच साल का हुआ तो कपड़े वगैरह पहनाते हैं, तब इतने खिलौने माँगता है। और ग्यारह साल का हो जाए तब पाँच साल के बच्चे के खिलौने दें तो नहीं लेता। 'मुझे तो बैट और बॉल ही चाहिए' ऐसा कहेगा। 'अरे, खिलौने क्यों बदले?' तब कहेगा, 'मेरी अवस्था बदल गई है, मैं बड़ा नहीं हो गया?' अवस्था बदलने से वह बड़ा हो गया! ऐसे करते-करते अंत तक खिलौनों से

खेलता है। जो खिलौनों से खेलता है वह अवस्था में मुकाम करता है और जो आत्मा की रमणता करता है वह आत्मा में मुकाम करता है। अवस्था में मुकाम करे, तो अस्वस्थ रहता है, आकुल-व्याकुल रहता है और आत्मा में रमणता करे तो स्वस्थ, निराकुल रहता है! 'ज्ञानी पुरुष' आपको अवस्था की रमणता में से उठाकर आत्मरमणता में बैठा देते हैं। फिर इन अनंत जन्मों की अवस्थाओं की रमणता का अंत आ जाता है और निरंतर की आत्मरमणता हमेशा के लिए उत्पन्न हो जाती है। 'ज्ञानी पुरुष' क्या नहीं कर सकते?

आत्मा की रमणता होने के बाद कोई काम बाकी नहीं बचता, वर्ना तब तक खिलौनों से ही खेलना पड़ता है न? क्योंकि तब तक चित्त को रखे किसमें? जब तक स्वरूप का भान नहीं है तब तक चित्त को किसमें रखे? या तो अंदर रखेगा, लेकिन अंदर के स्वरूप का भान नहीं है इसलिए तब तक खुद बाहरी खिलौनों से खेलता है, वर्ना चित्त भटकता रहता है, जब तक वह खिलौनों से खेलता है तब तक तो चित्त स्थिर रहता है!

खिलौने किसे कहते हैं? जिनके खो जाने से द्वेष होता है और मिलने से राग होता है! सामने एक बार 'ज्ञानी पुरुष' से भेंट हो गई और तार जुड़ गया, आत्मा प्राप्त हो गया, 'स्वरूप की रमणता' में आ गया, तो उसके बाद राग-द्वेष मिटें कि हो गया वीतराग! वर्ना तब तक सिर्फ प्रकृति में ही रमणता है। प्रकृति का पारायण पूरा हुआ तो हो गया वीतराग!

जय सच्चिदानंद

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

ऊपरी	: बॉस, वरिष्ठ मालिक
शाता-अशाता	: सुख परिणाम - दुःख परिणाम
गेड़	: *अच्छी तरह समझ में आना*
पुद्गल	: जो पूरण और गलन होता है
उपाधि	: बाहर से आनेवाला दुःख
कढ़ापा	: कुढ़न, क्लेश
अजंपा	: बेचैनी, अशांति
आँटी	: गांठ पड़ जाए उस तरह से उलझा हुआ
अटकण	: जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे
कंटाला	: उकता जाना, चिढ़ जाना, बोरियत, चिढ़ना, ऊब जाना
पूरण	: चार्ज होना, भरना
गलन	: डिस्चार्ज होना, खाली होना
अंतराय	: विघ्न, बाधा
अणहक्क	: बिना हक़वाले
कल्प	: कालचक्र
भोगवटा	: सुख-दुःख का असर
आड़ाई	: अहंकार का टेढ़ापन
तरछोड़	: तिरस्कार सहित दुत्कारना
सिलक	: जमापूँजी
ताँता	: तंत
ऊणोदरी	: जितनी भूख हो उससे आधा भोजन खाना

केश-लुंचन : नोचकर केश निकालना

निर्जरा : आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना

आश्रव : उदयकर्म में तन्मयाकार होना अर्थात् आश्रव होना

आरा : कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा

पोतापणुं : मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन

राजीपा : गुरुजनों की प्रसन्नता

पुरावे : सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स

खेंगार : ज़्यादा पक्का हुआ

शठ : धूर्त

निकाल : निपटारा

अबोल : किसी से बोलचाल बंद करना

वखाणवुं : बखान करना

वखोडवुं : निंदा करना

संवर : शुद्ध उपयोगपूर्वक कर्म की निर्जरा जिससे नए कर्म चार्ज नहीं होते

नोंध : अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लंबे समय तक याद रखना, नोट करना

नियाणां : अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक चीज़ की कामना करना

तायफा : जान-बूझकर किसी को परेशान करने के लिए किया गया फज़ीता, नाटक

ढोरलांघण : मालिक की गफलत की वजह से मवेशी का भूखा रहना

उद्दीरणा : भविष्य में फल देने वाले कर्मों को समय से पहले जगाकर वर्तमान में खपाना

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दु:खों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार(सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 12 (पू)
53. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
55. आप्तवाणी - 14 (भाग-1, भाग-2)
57. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)

(सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध)

- ★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट **www.dadabhagwan.org** पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।
- ★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : (079) 39830100, 9328661166/77
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

दिल्ली	:	9810098564	**बेंगलूर**	:	9590979099
कोलकता	:	9830080820	**हैदराबाद**	:	9885058771
चेन्नई	:	7200740000	**पूणे**	:	7218473468
जयपुर	:	8890357990	**जलंधर**	:	9814063043
भोपाल	:	6354602399	**चंडीगढ़**	:	9780732237
इन्दौर	:	6354602400	**कानपुर**	:	9452525981
रायपुर	:	9329644433	**सांगली**	:	9423870798
पटना	:	7352723132	**भुवनेश्वर**	:	8763073111
अमरावती	:	9422915064	**वाराणसी**	:	9795228541

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 722 722 063

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 421127947

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 81129229

www.dadabhagwan.org

इसे कहते हैं आप्तवाणी!

''आप्तवाणी अर्थात् आप्तपुरुष की वाणी। एक तो तीर्थंकर भगवान आप्तपुरुष कहलाते हैं और दूसरे तीर्थंकर भगवान के अनुगामी आप्तपुरुष कहलाते हैं। आप्तपुरुष, जो संसार में भी सर्वस्व प्रकार से विश्वास करने योग्य हों, वे आप्तपुरुष कहलाते हैं! और आप्तपुरुष की वाणी आप्तवाणी कहलाती है। वह वाणी अविरोधाभास होती है, सैद्धांतिक होती है। उनकी वाणी की समीक्षा करने योग्य नहीं है। वे जो कुछ भी कहते हैं, वह सारा शास्त्र ही है! वे चौबीस तीर्थंकरों के आगम ही कहते हैं! जो वाणी बेजोड़ कहलाती है, जो वाणी शास्त्र में लिखने योग्य है, उस वाणी में से ये सारी पुस्तकें छपती हैं।

ये पुस्तकें बोलेंगी सभी कुछ, अच्छा बोलेंगी और ये पुस्तकें बोलती ही है। लोगों की हेल्प करती है। अभी तो कई लोगों का भला होगा। पूरे जगत् का कल्याण होगा!''

– दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए. एम. पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवानना असीम जय जयकार हो

dadabhagwan.org